हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन

प्रो. भवानीलाल भारतीय

2000

श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन

प्रथम संस्करण : 2000

मूल्य : 400.00 रुपये

प्रकाशक

श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

प्रमुख वितरक

श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

मुद्रण-व्यवस्था

त्रिवेणी ऑफसेट

नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

HINDI KAVYA KO ARYASAMAJ KI DEN

by Prof. Bhawani Lal Bhartiya

समर्पण

(आभार कृतज्ञता प्रकाशन)

इस महत्त्वपूर्ण शोध ग्रन्थ को सुचारु रूप में प्रकाशित करने के लिए सर्वप्रथम मैं आर्यसमाज के प्रतिष्ठित तथा सर्वप्राचीन शिक्षण संस्थान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के यशस्वी कुलपति आचार्य प्रवर डा. धर्मपाल एम.ए. पी-एच. डी. के प्रति आभार तथा कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने मेरे विनम्र अनुरोध को स्वीकार कर आर्य कवियों के सारस्वत महायज्ञ के इस पावन धूम को सर्वत्र प्रसरित किया। साथ ही सुप्रसिद्ध साहित्य समीक्षक, मनीषी, चिन्तक तथा भारतीय प्रज्ञा के सजग पुरस्कर्ता डा. विष्णुदत्त राकेश निदेशक– श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के प्रति भी मै अपने आभार तथा सम्मान भाव को व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में व्यक्तिगत रुचि दिखलाकर मेरे वर्षो के परिश्रम को पाठक समुदाय तक पहुँचाया। डॉ जगदीश विद्यालंकार, पुस्तकालयाध्यक्ष, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस पाडुलिपि के प्रकाशन के प्रबन्ध का दायित्व कुशलतापूर्वक निभाया।

–भवानीलाल भारतीय

दो शब्द

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र से आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा दयानन्द पीठ पंजाब विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष डा. भवानीलाल भारतीय की अद्वितीय शोध कृति 'हिन्दी काव्य को आर्य समाज की देन' प्रकाशित होने जा रही है। डा भारतीय ने वर्षो के परिश्रम से इस कृति का निर्माण किया है तथा हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो को लिखते समय इस ओर देखने-समझने की प्रेरणा दी है, यह एक ऐतिहासिक घटना है।

गुरुकुल विश्वविद्यालय तो आर्यसमाज की साहित्य, विज्ञान, मानविकी तथा अन्य आधुनिक विषयों की शोधकार्य मे निहित भूमिका को उजागर करने की दिशा मे प्रयत्नशील है। मैंने विश्वविद्यालय के शोधकार्य को यथासभव आर्यसमाजोन्मुखी बनाने के लिए यहां कि विद्वानो से अनुरोध भी किया है। प्रकाशन केन्द्र की स्थापना इसी तरह के कार्यो को प्रकाशित करने के लिए की गई है। हम एक ओर प्राचीन दुष्प्राप्य ग्रन्थों के पुनः प्रकाशन की दिशा मे अग्रसर है, गुरुकुल के स्नातको की रचनाओं को छापने की दिशा मे सक्रिय है तो दूसरी ओर आर्यसमाज के बहुश्रुत तथा लोकप्रिय विद्वानों की रचनाओ को छापकर रचनात्मक अभियान भी चला रहे हैं। डा. रणजीत सिंह की पुस्तक 'स्वामी श्रद्धानन्द : समग्र मूल्यांकन' तथा डा. कुशलदेव शंकरदेव कापसे की पुस्तक 'पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति : कृतित्व के आयाम' इसी प्रकार के प्रकाशन हैं। अब इसी क्रम में तीसरी पुस्तक डा. भारतीय की प्रकाशित हो रही है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस उत्कृष्ट शोध संवलित कृति का विद्वान् भरपूर स्वागत करेंगे।

प्रकाशन केन्द्र के सभी प्रकाशन चर्चित हुए हैं। पण्डित सत्यदेव विद्यालंकार प्रणीत स्वामी श्रद्धानन्द, आचार्य प्रियव्रत प्रणीत वेद और उसकी वैज्ञानिकता वेद का राष्ट्रीय गीत तथा आचार्य रामदेव द्वारा लिखित भारतवर्ष का इतिहास हमारे केन्द्र की उपलब्धियां है। डा. विष्णुदत्त राकेश द्वारा सम्पादित स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पादकीय लेख, स्वामी श्रद्धानन्द की सम्पादकीय टिप्पणियॉ एवं दीक्षा लोक इतिहास लेखकों तथा अनुसन्धाताओ के लिए

काम की पुस्तकें हैं। स्वाधीनता का निष्पक्ष इतिहास लिखने के लिए जब कोई आगे बढ़ेगा तो उसे इस सामग्री को आधारभूत सामग्री के रूप में अपनाना पड़ेगा, इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है।

प्रस्तुत कृति आर्य कवियों की प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध रचनाओं का कोश है, इससे पाठकों की ज्ञानवृद्धि तो होगी ही, विद्वानों को आर्य रचनाकारों की सृजन निष्ठा का भी पता चलेगा। मैं डा. भारतीय को महत्वपूर्ण कृति के प्रकाशन पर बधाई देता हूँ तथा डा. जगदीश विद्यालंकार को साधुवाद देता हूँ कि उन्होंने इस प्रकाशन को सुरुचि पूर्ण रूप दिया।

बोधरात्रि 2056 वि.

डा. धर्मपाल
कुलपति

भूमिका

स्वाधीनता, स्वदेशी तथा स्वभाषा की भावना को भारतीय जन-मानस में दृढ़ करने के लिए ही मानो आर्यसमाज का जन्म हुआ था। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने नवजागरण काल में भारत के पुनर्निर्माण का शंख फूँका। पाश्चात्य संस्कृति की आँधी से झकझोरे हुए भारतीय समाज के पुनरुत्थान में उनकी आर्यशक्ति का बड़ा हाथ था। स्वामी जी ने अपने मन्तव्यों, सिद्धान्तों तथा विचारों को मूर्त रूप देने के लिए अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। स्वामी जी ने अपना लेखन कार्य हिन्दी में किया। उन्होंने उपनिवेशवादियों के सांस्कृतिक एवं आर्थिक शोषण के विरुद्ध रचनात्मक अभियान खड़ा किया तथा हिन्दी गद्य को गहन विचारविमर्श का सशक्त माध्यम बनाने का उपक्रम किया।

स्वामी जी की हिन्दी चेतना प्रबल थी। यही कारण है कि स्वामी जी जब शास्त्रार्थ के लिए काशी पधारे तब उन्हें स्टेशन पर लेने के लिए दो सनातनी विद्वान् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा भारतरत्न डा. भगवानदास जी के पिता बाबू माधवदास गए थे। इस घटना का सुपरिणाम यह हुआ कि अतीत के प्रति आकर्षण और उसके गौरव की प्रतिष्ठा के लिए हिन्दी-संस्कृत के अनेक लेखक सामने आ गए। स्वामी जी के धार्मिक खण्डन-मण्डन के विरुद्ध यद्यपि भारतेन्दु तथा भारतेन्दु मण्डल के लेखकों ने प्रत्यक्ष-परोक्ष ढंग से लिखा पर प्रभावित भी ये सब केवल दयानन्द से ही हुए। भारतेन्दु पत्र के सम्पादक श्री राधाचरण गोस्वामी के स्वामी जी से मतभेद थे पर उन्होंने स्वामी जी के विरोधियों को फटकारते हुए लिखा था कि स्वामी जी के देशोपकारी होने में जो संदेह करे वह नारकीय है और आर्यसमाज के देशोन्नति करने में किसी को भ्रम हो तो वह साक्षात्पशु है। निबन्धकार पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा कि परमेश्वर ने बड़ी दया की कि स्वामी दयानन्द को उत्पन्न कर दिया, जिनके वचन रूपी वरुणास्त्रों से क्रिस्तान की भयानक अग्नि बहुत कुछ शान्त हो गई। हिन्दी के प्रसिद्ध गद्यकार तथा पत्रकार पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हिन्दी प्रदीप में लिखा था—"इसमें कुछ संदेह नहीं कि इस

अभागे भारत की भलाई और कल्याण के प्रयत्न में आपने अपने जीवन पर्यन्त एक क्षण का भी अन्तर नहीं डाला। आपका यह पवित्र विग्रह यूरोप खण्ड के किसी देश में इस गुरुभाव से प्रकट हुआ होता तो जिस उन्नति के शैल शिखर तक पहुँचाने की सीढ़ी आप बना रहे थे, उसको अवश्य पूर्ण कर देते और देश का देश आपका सहकारी और सहयोगी बन जाता। जीवन आज यदि किसी सम्प्रदाय या समाज में है तो वह आर्यसमाज में ही है।''

इतना ही नहीं, हिन्दी के माध्यम से जो स्वतंत्रता की लड़ाई महात्मा गाँधी के नेतृत्व में लड़ी गई, उसका पृष्ठाधार महर्षि दयानन्द और उनके भक्त भारतेन्दु का खड़ा किया हुआ है। मई 1874 में स्वामी जी ने अपना पहला व्याख्यान वाराणसी में हिन्दी में ही दिया। जून 1874 में सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में बोलकर लिखाना शुरू किया तथा 1875 में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना कर प्रत्येक आर्यसमाजी के लिए हिन्दी का पढ़ना-पढ़ाना अनिवार्य कर दिया। पूरे देश को हिन्दी के सूत्र में पिरोकर स्वामी जी राष्ट्रीय एकता का दृढ़ आधार प्रस्तुत कर रहे थे। कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब देशवासियों के लिए वह जिस एक भाषा का प्रयोग विहित मानते थे, वह थी हिन्दी। उन्हीं की प्रेरणा पर भारतेन्दु की हिन्दी नई चाल में ढली। हिन्दी-उर्दू के विवाद में शिवप्रसाद सितारे हिन्द के विरुद्ध भारतेन्दु ने स्वामी जी का साथ देना देश के लिए हितकर समझा। आर्यसमाज ने भारतेन्दु मण्डल, द्विवेदी मण्डल तथा आधुनिक साहित्यकारों को पूर्णरूपेण प्रभावित किया। हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, नवीन, प्रसाद, नाथूरामशंकर, रामनरेश त्रिपाठी, नारायण प्रसाद बेताब, गौरीदत्त, प्रेमचंद, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सत्यदेव परिव्राजक, मुंशीराम शर्मा सोम, विष्णु प्रभाकर, आचार्य पद्मसिंह शर्मा, डा. धीरेन्द्र वर्मा, डा. नगेन्द्र, डा. विजयेन्द्र स्नातक, क्षेमचन्द्र सुमन तथा डा. भवानीलाल भारतीय जैसे लेखक आर्य समाज से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभावित साहित्यकार कहे जा सकते हैं। हिन्दी पत्रकारिता और हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता तो आर्यसमाज के लेखकों की ऋणी रहेगी।

स्वामी जी की भाषा शास्त्रार्थ की भाषा थी। तद्भव शब्दों के साथ शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली का भरपूर प्रयोग कर तथा खण्डन-मण्डन में चुटीली व्यंग्यात्मक शैली अपना कर स्वामी जी ने हिन्दी के पण्डिताऊ या कथावाचकी रूप का परिष्कार किया। सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण की हिन्दी सुधार कर उन्होंने हिन्दी के मानकीकरण की दिशा का उद्घाटन किया तथा हिन्दी को समग्र जन जीवन, ज्ञान और विज्ञान की भाषा बनने का गौरव प्रदान किया। 'आधुनिक हिन्दी का आदिकाल' ग्रन्थ में पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने लिखा—'पुनर्जागरण से आर्यसमाज और सनातन धर्म सभाओं के विद्यालयों में हिन्दी चलने लगी। यह आर्यसमाज का ही प्रताप था कि पजाब में उर्दू के व्यापक प्रचार के बावजूद हिन्दू महिलाएँ हिन्दी और देवनागरी ही पढ़ती-सीखती थीं। पंजाब के साथ हिमाचल और हरियाणा की भी यही दशा रही। पंजाब में बसे कश्मीरियों की महिलाएँ भी हिन्दी ही पढ़ती थीं।' हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के इस

कथन से अब हिन्दी के सभी विद्वान् सहमत हैं कि आर्यसमाज की भाषा नीति से हिन्दी भाषा में एक नयी शैली का प्रतिपादन हुआ। सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्द ने जैन, सिख आदि हिन्दू सम्प्रदायों तथा इस्लाम और ईसाई मतों की तीव्र आलोचना की। इससे भाषा में गहन से गहन विषयों पर वाद-विवाद करने की शक्ति आ गई। आर्यसमाज के कारण व्याख्यानों की धूम मची, जिससे हिन्दी भाषा का समस्त उत्तर भारत में प्रचार हुआ। भाव व्यंजना में भी इससे सहायता मिली और तर्कशैली के साथ-साथ भाषा में व्यंग्य तथा कटाक्ष करने की शक्ति का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार आर्यसमाज तथा अन्य धार्मिक आन्दोलनों के कारण हिन्दी भाषा तथा गद्य शैली का विकास हुआ, यह निर्विवाद है। आगे चलकर स्वामी श्रद्धानन्द, उनके सहयोगियों तथा समकालीनों ने और फिर गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों ने संस्कृत, वेद, दर्शन, प्राचीन भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति, आधुनिक विषय—यथा गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, जीवविज्ञान, चिकित्साशास्त्र, पत्रकारिता तथा राजनीति के विषयों पर हिन्दी में बहुचर्चित ग्रन्थों का निर्माण कर हिन्दी को अद्यतन बनाने का उद्योग किया। हम कह सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी के निर्माण के श्रेय के सच्चे पात्र दयानन्द सरस्वती हैं तथा हिन्दी को वर्तमान रूप प्रदान करने में आर्यसमाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

हिन्दी के विद्वानों में 'महर्षि दयानन्द की देन' को सर्वप्रथम मिश्र बन्धुओं ने अपने ग्रन्थ 'विनोद' में स्थान दिया। आचार्य चतुरसेन शास्त्री तथा डा. धीरेन्द्र वर्मा के अतिरिक्त अन्य इतिहासकारों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। आर्यसमाज से विधिवत् जुड़े हुए लेखकों तथा कवियों का भी कोई नोटिस नहीं लिया गया। डा. लक्ष्मीनारायण गुप्त का शोधप्रबन्ध 'आर्यसमाज की हिन्दी को देन' इस विषय का पहला अध्ययन है और लखनऊ विश्वविद्यालय से समादृत भी। इसके बाद आर्यसमाज के प्रभाव को लेकर गुरुकुल कांगड़ी से ही हिन्दी में कुछ शोधप्रबन्ध लिखे गए। बाहर के विद्वानों में डा. चन्द्रभानु सोनवणे का 'हिन्दी गद्य साहित्य' उल्लेखनीय रचना है तथा डा. सत्यकेतु द्वारा सम्पादित आर्यसमाज का वृहत् इतिहास पंचम खण्ड इस विषय पर बहुआयामी सामग्री प्रस्तुत करता है। संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य को आर्यसमाज की देन पर नई प्रामाणिक तथा विपुल मात्रा में सामग्री आर्यसमाज के यशस्वी लेखक डा. भवानीलाल भारतीय ने प्रस्तुत की है और इतनी सामग्री प्रस्तुत की है कि अब हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते हुए इस सामग्री को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

आर्यसमाज में शोध एवं वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित अनुसन्धान का कार्य कर उन्होंने दुर्लभ किन्तु अज्ञात सामग्री का उद्धार किया। यद्यपि उनको राजस्थान विश्वविद्यालय से शोधोपाधि 1968 में 'आर्यसमाज की संस्कृत भाषा एवं साहित्य को देन' विषय पर मिली पर उनकी खोज का सिलसिला निरन्तर चलता रहा। उन्होंने आर्यसमाज से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े शताधिक कवियों का उद्धार किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवनीपरक

महाकाव्यों, लघुकाव्यों, प्रशस्तिकाव्यों तथा दयानन्द प्रणीत ग्रन्थों के पद्यानुवादकों पर उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी संसार में प्रकाश डाला। आर्यसमाज के पत्र और पत्रकारों का ऐतिहासिक विवेचना युक्त विवरण प्रकाशित कराया। आर्यसमाज के लोकप्रिय भजनीकों के काव्य का परिचय दिया। एक बौद्ध भिक्षु विज्ञान मार्तण्ड वात्स्यायन प्रणीत 'बोधरात्रि महाकाव्य' की समीक्षा लिख कर बताया कि बौद्ध भिक्षु भी ऋषि दयानन्द के प्रभाव से अछूते न थे। यह बौद्ध भिक्षु अजमेर के एक ब्राह्मण नवयुवक थे, राहुल जी ने इनका नाम मांगी लाल शर्मा बताया है। स्वामी दयानन्द के भक्त कविकुमार शेरसिंह वर्मा ने 'धर्मदिवाकरोदय' महाकाव्य लिखा था, इसकी विस्तृत चर्चा भी सर्वप्रथम डा. भारतीय ने ही की है। पण्डित आर्यमुनि जैसा संस्कृत का धुरंधर विद्वान् रामचरितमानस के समान 'दयानन्द चरितमानस' की रचना कर सकता है, यह बात भी डा. भारतीय ने बताई। ऐसी दुर्लभ और अप्राप्य सामग्री से भरपूर प्रस्तुत रचना 'हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन' सचमुच हिन्दी की उपलब्धि है। लेखक ने तीस वर्षो तक इस विषय पर खोज कर जो कुछ प्राप्त किया, उसे इस पुस्तक में समाहित कर लिया है। लेखक ने हिन्दी काव्य की विभिन्न विधाओं में आर्यसमाज के लेखकों के अवदान की परीक्षा की है। कृति जितनी महत्वपूर्ण है, कृतिकार भी हमारे लिए उतना ही महत्वपूर्ण है, यह बात इसलिए कि परिशिष्ट में उन्होने सूत्र रूप में 'स्वामी दयानन्द विषयक उर्दू काव्य' का परिचय दिया है। यदि भविष्य मे वह या उनका कोई अधिकारी शिष्य इसी निष्ठा, अध्ययन और अध्यवसाय से इस विषय पर वृहत् ग्रन्थ की रचना कर दे तो एक अभाव की पूर्ति हो जाएगी।

श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र से प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है, यह केन्द्र के लिए गौरव का विषय है। मैं आशा करता हूँ कि इस ग्रन्थ को वही सम्मान और पाठकों का स्नेह प्राप्त होगा जो पहले प्रकाशनों को होता रहा है। ग्रन्थ के प्रकाशन में कुलाधिपति श्री सूर्यदेव, परिद्रष्टा प्रो. शेरसिंह, कुलपति डा. धर्मपाल तथा उपकुलपति आचार्य वेद प्रकाश शास्त्री एवं डा. श्याम नारायण सिंह कुल सचिव का पूर्ण सहयोग मिला, सभी का आभार। वित्ताधिकारी जयसिंह गुप्ता तथा प्रकाशन प्रबन्धक डा. जगदीश विद्यालंकार को धन्यवाद। डा. विद्यालंकार की हरी-भरी दौड़धूप ने इसे आपके हाथों तक पहुँचाया। अधिक क्या, 'जिगर' मुरादाबादी का एक शेर याद आ रहा है–

तेरी ख़बर नहीं मगर इतनी तो है ख़बर,
तू इब्तिदा से पहले है, तू इन्तिहा के बाद।

रग पंचमी,
चैत्र कृष्णा पंचमी 2056 वि.
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

डा. विष्णुदत्त राकेश, डी.लिट्.
आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
तथा निदेशक, स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान
प्रकाशन केन्द्र

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ लिखने का विचार लगभग तीस वर्ष पुराना है जब मैं गवर्नमेंट कॉलेज अजमेर के हिन्दी विभाग में कार्यरत था और शोध छात्रों को आर्यसमाज से सम्बन्धित साहित्यिक विषयों पर अनुसंधान कार्य करने के लिए प्रेरित करता था। हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन विषय पर एक बृहत् शोधपूर्ण ग्रन्थ लिखने की योजना भी मैंने तभी बनाई थी और इस विषय से सम्बन्धित सामग्री का पर्याप्त संकलन भी कर लिया था। विगत वर्षों में विभिन्न साहित्यिक प्रकल्पों की पूर्ति में लगे रहने के कारण मैं इसे पूरा नहीं कर सका किन्तु अन्ततः मेरे अध्यवसाय, श्रम तथा शोध का फल इस ग्रन्थ के रूप में आज पाठकों के समक्ष आ रहा है, यह मेरे लिए नितान्त सन्तोष तथा हर्ष का विषय है।

संसार के सभी धार्मिक तथा सांस्कृतिक-सामाजिक आन्दोलनों के प्रचार-प्रसार में साहित्य की प्रमुख भूमिका रही है और इसी प्रकार ऐसे आन्दोलनों से जुड़े साहित्यकारों की रचनाओं पर भी उनके विचारों का प्रभाव पड़ा है। आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने स्वयं एक कवि हृदय पाया था। यदि वे अपनी धर्म-संशोधन, समाज सुधार एवं राष्ट्रोद्धार जैसी सार्वजनिक प्रवृत्तियों से किंचित् अवकाश निकाल पाते तो सम्भवतः संस्कृत काव्य रचना के लिए भी अपनी प्रतिभा का अधिक उपयोग करते। तथापि उन्होंने अपने ग्रन्थों की प्रस्तावना के रूप में अनेक सुन्दर संस्कृत पद्य लिखे हैं जिनसे उनकी काव्यरचनाचातुरी का परिचय मिलता है। अपने विश्वविख्यात ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने वसन्ततिलका छन्द में एक सुन्दर नीतियुक्त पद्य की रचना की, जो आज भी सहृदय जनों का प्रेरणा वाक्य बन गया है।

विद्या विलासमनसो धृतिशील शिक्षाः
सत्यव्रता रहित मानमलापहाराः।
संसार दुःखदलनेन सुभूषिता ये
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।।

इस पद्य में इसके रचयिता कवि की लोकहितकारी तथा मंगलविधायिनी जीवन दृष्टि प्रतिबिम्बित हुई है।

इसी प्रकार 'दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः' (आर्याभिविनय) से आरम्भ होने वाला शिखरिणी छन्द तथा विमलं सुखदं सततं सुहितं (तोटक छन्द) एवं विशेष भागीहि वृणोति यो हितं (वंशस्थ छन्द), ये दो इसी ग्रन्थ के मंगलाचरण के छन्द भी विशेष रूप से ऋषि दयानन्द की काव्यशक्ति के निर्देशक हैं। संस्कार विधि के आरम्भ में लिखे गए परिचयात्मक पद्य (नवें को छोड़कर) शेष अनुष्टुप् छन्द में लिखे गए हैं जबकि नवाँ शिखरिणी का उदाहरण है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका की प्रस्तावना में 'ब्रह्मानन्दमनादि विश्वकृदजं' शार्दूल विक्रीडित है जब कि ग्रन्थ के अन्त का 'वेदार्थाभिप्रकाशप्रणयसुगमिका' स्रग्धरावृत्त में लिखा गया है। ऋग्वेद भाष्य का आरम्भ स्वामी जी निम्न मन्दाक्रान्ता छन्द से करते हैं—

> विद्यानन्दं समवति चतुर्वेद संस्तावना या
> सम्पूर्येशं निगमनिलयं सम्प्रणम्याथ कुर्वे।
> वेदत्र्यंके विधुयुत सरे मार्ग शुक्लेऽङ्ग भौमे
> ऋग्वेदस्यारिवल गुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम्।।

यजुर्वेद भाष्य का प्रास्ताविक पद्य निम्न है—

> यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वरम्
> तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च।
> ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञान प्रदातुंर्वरं
> भाष्यं काममयो क्रियामय यजुर्वेदस्य भाष्यं मया।।

इतना ही नहीं अपने लघुग्रन्थ गोकरुणानिधि में भी उन्होंने अपने काव्य कौशल का परिचय 'तनोतु सर्वेश्वर-उत्तमं बलं' (वंशस्थ छन्द) तथा श्लेषालंकार युक्त निम्न दृष्टिकूट छन्द लिख कर दिया है—

> धेनुः परा दयापूर्वा यस्यानन्दाद् विराजते।
> आख्यायां निर्मितस्तेन ग्रन्थो गोकरुणानिधिः।।

यजुर्वेद भाष्य की प्रस्तावना में तो स्वामी दयानन्द ने चार हिन्दी दोहे भी लिखे हैं जो उनके इस ग्रन्थ लेखन में भाष्यकार के प्रयोजन को दर्शाते हैं। ये दोहे निम्न हैं—

> जो निर्गुण गुणपुंज से देत सुकृत विज्ञान।
> प्रणतपाल जगदीश्वरहि करिप्रणाम तिहिध्यान।।

ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय।
पर उपकार विचारि करि शीघ्र सुबोध निधाय।।
शतपथ ब्राह्मण आदि पुनि निघण्टु निरुक्त निहारि।
यजुर्वेद जो क्रियापर वर्नो ताहि विचार।
एक सहस्र नवशत अधिक विक्रमसर चौंतीस।
पौष शुक्ल तेरसि तिथि दिन अधीश वागीश।।

उपर्युक्त विवेचन से कवि दयानन्द के काव्य रचना-कौशल का परिचय मिलता है।

कालान्तर में जब स्वामी जी के भक्तों और अनुयायियों ने आर्यसमाज के कार्य को बढ़ाया तो उनमें भी अनेक ऐसे थे जो काव्य प्रणयन में पर्याप्त निपुणता रखते थे। ऐसे ही सहृदय कवियों ने प्रभूत मात्रा में काव्य रचना कर हिन्दी के काव्य भण्डार की अभिवृद्धि की है।

यह बात नहीं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने आर्यसमाज से प्रेरणा प्राप्त कवियों की रचनाओं का नोटिस नहीं लिया। यत्र-तत्र हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहासों में इस काव्य की चर्चा तथा आलोचना हुई है, किन्तु वह सर्वथा अपर्याप्त हैं और इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्रस्तुत ग्रन्थ में विगत एक सौ बाईस वर्षों में लिखित आर्यसमाज के हिन्दी काव्य का वस्तुगत मूल्यांकन करने का एक विनम्र प्रयास किया गया है। इस विपुलकाय ग्रन्थ के कथ्य का सम्यक् परिचय तो पाठकों को इसे पढ़ने से ही मिलेगा, तथापि कुछ बातें अवश्य ध्यातव्य हैं। हमने आर्यसमाज के जिन रचनाकारों की काव्यकृतियों की विवेचना की है वे हिन्दी पद्य के लिए प्रयुक्त खड़ी बोली अवधी तथा ब्रज भाषा में लिखी रचनाओं के अतिरिक्त हिन्दी की उपभाषाओं (राजस्थानी, हरियाणवी, भोजपुरी) तथा उर्दू में भी लिखी गई हैं। भाषा वैज्ञानिकों ने उर्दू को भी हिन्दी की एक शैली ही माना है, अतः उसकी कुछ कृतियों की समीक्षा भी प्रसंगोपात्त इस ग्रन्थ में हुई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ को पढ़ने से पता चलेगा कि आर्यसमाज से जुड़े इन कवियों ने विभिन्न काव्यरूपों तथा रचनाशैलियों को अपनाया है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य आदि तो लिखे ही गए, आल्हा, लावनी तथा राधेश्याम रामायण तर्ज़ की लोक शैलियों का प्रयोग करने में भी इन कवियों ने रुचि दिखाई है। जहाँ तक इस काव्य के भाव एवं विचार पक्ष का सवाल है, यह कहना उपयुक्त होगा कि दयानन्द सरस्वती के धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों का समर्थन एवं प्रतिपादन करना ही इस रचना संसार का मुख्य लक्ष्य रहा है। फलतः धर्म समाज एवं राष्ट्र के पुनर्निर्माण की दृष्टि को इन कवियों ने सर्वत्र प्रधानता दी है। यद्यपि इस कविता में उपदेशात्मकता का स्वर ही प्रमुख है तथापि सहृदय काव्य रसिकों के मनोविनोद की पर्याप्त सामग्री

का भी नितान्त अभाव नहीं है। आर्यसमाजी काव्य की एक अन्य विशेषता यह रही कि वह लोकमानस से सदा जुड़ा रहा तथा उसने जनसाधारण के चरित्रनिर्माण एवं भावपरिष्कार में योगदान दिया। इस काव्य ने मनुष्य को असत् पथ को त्याग कर सत्य, न्याय और धर्म के पथ पर चलने की प्रेरणा दी और यही इसकी मुख्य उपलब्धि भी है।

आर्यसमाज में सुविपुल भजन काव्य की भी रचना हुई है। भजनों को काव्य श्रेणी में अन्तर्भुक्त करना सर्वथा न्याय्य ही है तथापि यह लिखना भी आवश्यक है कि आर्यसमाज का भजन साहित्य गुण एवं परिमाण में इतना विशाल है, जिसके विवेचन के लिए पृथक् ग्रन्थ की आवश्यकता है। तथापि हमने कतिपय भजनोपदेशक कवियों के कृतित्व का मूल्यांकन भी किया है जो इस विषय पर कार्य करने वालों के लिए दिशा-निर्देश का कार्य करेगा। भक्त कवि अमीचन्द, दादा बस्तीराम, कविवर सुखलाल आर्य मुसाफिर तथा कविरत्न प्रकाशचन्द्र जैसे उपदेशक कवियों की काव्य-रचनाओं की समीक्षा उपर्युक्त कथन को प्रमाणित करती है।

ग्रन्थ लेखन में हमने काव्य की विभिन्न विधाओं के पृथक्-पृथक् अनुशीलन का क्रम बनाया है तो कवियों का विवेचन यथाशक्य कालक्रमानुसार किया है। कुछ कवियों का परिचय विस्तार से इसीलिए दिया है ताकि उनके बारे में उपलब्ध जानकारी को सुरक्षित रखा जा सके। साथ ही प्रत्येक कृतिकार की रचनाओं से पर्याप्त उदाहरण भी दिए गए हैं जिनसे पाठक को उसके कृतित्व का ज्ञान हो जाए। अभी तो इतना ही। विशेष तो ग्रन्थ को पढ़कर ही जाना जा सकेगा।

(डा.) भवानीलाल भारतीय

दयानन्द का बोधोत्सव
फाल्गुन कृ. 13, 2054 वि.

विषय-क्रम

अध्याय-1

विषय-प्रवेश

मानव की विचाराभिव्यक्ति का सशक्त साधन ही साहित्य कहलाता है। साहित्यिक अभिव्यक्ति और सामान्य अभिव्यक्ति में अन्तर होता है। साहित्यकार अपने कथन को अधिक रोचक, प्रेरक तथा आह्लादजनक बनाकर प्रस्तुत करता है। शास्त्रकार के वाक्य तथा साहित्यकार की उक्ति में भी मौलिक पार्थक्य दिखाई देता है। शास्त्रकथन को जहाँ हम प्रभु-सम्मित मानकर तत्काल शिरोधार्य करते हैं वहाँ काव्य अथवा साहित्य उसे ललित बनाकर कान्ता-सम्मित शैली में प्रस्तुत करता है।[1] साहित्यशास्त्रियों के मतानुसार हम काव्य को चाहे रसात्मक वाक्य[2] कहें या रमणीयार्थ प्रतिपादक[3] स्वीकार करें, इतना तो निश्चित है कि कवि की रचना एक दिव्य निर्मिति है जिसका निर्माता वह स्वयं द्वितीय प्रजापति है।[4] कवि को हमारे यहाँ क्रान्तदर्शी कहा गया है जो अपनी प्रतिभा के बल पर एक ऐसे दिव्य काव्यलोक का निर्माण करता है जिसमें प्रवेश कर रसज्ञ पाठक काव्यस्वाद का अनुभव करता है। वेद में तो परमात्मा को ही 'कवि' कहकर सम्बोधित किया गया है जो मनीषी, परिभू तथा स्वयंभू है।[5] वैदिक आस्था से अनुप्राणित भारत का आस्तिक समुदाय संसार के साहित्य में प्राचीनतम वेदों को उस परमात्मा की ही दिव्य काव्य कृति मानता है जो न तो कभी जीर्ण होती है और न नष्ट होती है।[6]

---

1. आचार्य मम्मट कृत काव्य प्रकाश मे काव्य का प्रयोजन निर्देशक कारिका 1।2
2. वाक्य रसात्मक काव्यम्—आचार्य विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण। 1।3
3. रमणीयार्थ प्रतिपादक· शब्द काव्यम्—जगन्नाथ कृत रस गगाधर
4. अपारे काव्य ससारे कविरेक. प्रजापति ।
   यथास्मै रोचते विश्व तथा तत्परिवर्तते।। आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक
5. कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू। यजुर्वेद 40।8
6. देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति। अथर्ववेद 10।8।32

निश्चय ही नूतन विचारों के प्रसार, धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक परिवर्तन एवं जातियों और राष्ट्रों के समष्टिगत मानस में उथल-पुथल कर उनमें नवीन क्रान्ति चेतना उत्पन्न करना कवि तथा साहित्यकार का ही कार्य रहा है। कवि का संवेदनशील हृदय विश्वप्रपंच की नाना घटनाओं तथा परिवर्तनों से जिस प्रकार की प्रतिक्रिया ग्रहण करता है तदनुकूल ही वह अपने काव्य में भाव तथा रस की सृष्टि करने में समर्थ होता है। संस्कृत साहित्य की परम्परा में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि क्रौंच युगल में से एक के वध के निर्मम कृत्य को देखकर ही महर्षि वाल्मीकि के हृदय में शोक का भाव उत्पन्न हुआ था जो आगे चलकर श्लोक के रूप में व्यक्त हुआ।[7]

यदि हम हिन्दी के काव्य साहित्य का अध्ययन उसमें निहित वैचारिक सामग्री के परिप्रेक्ष्य में करें तो अनुभव करेंगे कि इन कवियों ने अपने समसामयिक विचारों को ही सफलतापूर्वक काव्यबद्ध किया है। कबीर अटपटी बानी बोलकर अपनी रचनाओं में धार्मिक कदाचार, बाह्याडम्बर तथा साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों का खण्डन करता है तो तुलसीदास जैसा मर्यादावादी कवि राम के रूप में शक्ति, शील और सौन्दर्य के पुंज पुरुषोत्तम को अपने काव्य का नायक बनाता है। हिन्दी का सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य उत्तरापथ में व्याप्त तत्कालीन धार्मिक, दार्शनिक तथा नैतिक संचेतनाओं को अपने भीतर समाहित किए हुए है। यह सत्य है कि भक्तिकाल के बाद का रीतिकालीन साहित्य सामान्य जनता की पीड़ा और कठिनाइयों, अभावों एवं अभियोगों से सर्वथा निर्लिप्त रहकर आभिजात्य वर्ग के क्रीड़ा विलास तथा उद्दाम इन्द्रियपरायणता में मग्न रहने वाले लोगों के हास-विलास का ही चित्रण करता है, किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि इस ह्रासोन्मुखी काव्य की नियति भी उसकी समाज विरोधी प्रवृत्ति ने पूर्व से ही निश्चित कर दी थी। सामन्ती समाज के मृतप्राय हो जाने के साथ ही साथ नारी सौन्दर्य का यह स्थूल एवं मांसल चित्रण करने वाला शृंगारी काव्य भी साहित्याकाश से झंझा प्रेरित अभ्रखण्ड की भाँति सहसा विलीन हो गया था। हम यह भी जानते हैं कि इसका स्थान जिस पर.... काव्य ने लिया उसमें सामाजिक दायित्व का स्वर अत्यन्त प्रखर था।

भारतेन्दुकालीन काव्य युगान्तर का सूचक है। उस काल में घटित देश की सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ भी ऐतिहासिक महत्त्व की थीं। इस युग में हम धर्म, समाज तथा राजनीति में सर्वत्र नवचेतना का संचार होता देखते हैं। उस युग का कवि भी उपर्युक्त क्षेत्रों में आए नवीन परिवर्तनों का संस्पर्श पाकर अत्यन्त प्राणवान् गतिशील तथा स्फूर्तियुक्त हो गया था। इसीलिए हम देखते हैं कि भारतेन्दु काल का रचनाकार नायक और नायिका के विरह और मिलन की ऐकान्तिक अनुभूतियों को तिलांजलि देकर कभी भारत-दुर्दशा की बात करता है तो कभी अकाल, महामारी

---

7 शोक: श्लोकत्वमुपागमत—आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक

एवं भारी टैक्सों से पीड़ित जनसमाज की आकुलता-व्याकुलता को वाणी देता है। यह सत्य है कि कविता की अपेक्षा निबन्ध, नाटक, उपन्यास तथा पत्रकारिता जैसी सशक्त गद्य विधाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में उसे अधिक सुविधा महसूस हुई थी, तथापि काव्य में भी उसने नवीन विषयों का प्रवेश कराने में कृपणता नहीं दिखलाई। आगे चलकर द्विवेदी काल का लेखक तो सामाजिक दृष्टि से अधिकाधिक प्रतिबद्ध हो गया था।

यही वह काल था जब हिन्दी काव्य पर आर्यसमाज जैसी प्रगतिशील तथा युग सत्य को पहचानने वाली संस्था का प्रभाव पड़ा। यद्यपि आर्यसमाज की स्थापना तो विगतशती के सातवें दशक में ही हो गई थी और उस युग का साहित्य भी उसकी विचारधारा से अप्रभावित नहीं रहा था, किन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में रचित हिन्दी साहित्य में तो हमें सर्वत्र आर्यसमाज का सुधारवादी स्वर सुनाई देता है। हिन्दी के इस काल के काव्य तथा गद्य को स्वामी दयानन्द के विचारों ने किस प्रकार प्रभावित और स्थापित किया है, यह अपने आप में विस्तृत शोध, अध्ययन तथा विश्लेषण का विषय है।

आर्यसमाज ने अपने प्रचार और आन्दोलन के लिए भारत की प्रमुख लोकभाषा हिन्दी को ही अपनाया था। स्वामी दयानन्द जैसे दूरदर्शी एव भविष्य द्रष्टा महापुरुष की यह परिकल्पना समीचीन ही थी कि इस देश को एकता के सूत्र मे बाँधे रखने में हिन्दी ही सक्षम है। अतः स्वयं गुजराती होने तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने पर भी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को ही अपनी विचाराभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। वे यह देख चुके थे कि उन्हीं की सी धार्मिक और सामाजिक विचारधारा को रखने वाला ब्रह्मसमाज इस देश की धरती पर अपने पैर इसीलिए नही जमा सका क्योंकि उसकी वैचारिक सम्पत्ति तो पश्चिम से अनुप्राणित थी ही, उससे भी अधिक, शासको की भाषा अँग्रेजी को अपनाने में उसने आतुरता एवं व्यग्रता दिखलाई थी। स्वामी दयानन्द इस हक़ीकत से परिचित थे। अतः उनके द्वारा अपने विचारों के प्रसार के लिए हिन्दी को अपनाना स्वाभाविक ही था। दयानन्द की ही भाँति उनके अनुयायी आर्यसमाज ने भी हिन्दी के द्वारा सम्पूर्ण उत्तर भारत के जन मानस को आन्दोलित किया और यहाँ के लोगों को सामाजिक परिवर्तन के लिए सन्नद्ध किया, यह इतिहास के जानकारों से अविदित नहीं है।

हिन्दी काव्य तथा साहित्य पर आर्यसमाज के विचारो का जो प्रभाव पड़ा है, उसे साहित्य के इतिहासकारों ने उन्मुक्त भाव से स्वीकार किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों में आर्यसमाज के वैचारिक एवं शैलीगत अवदान की जिस प्रकार चर्चा हुई है, उसकी संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक है। सर्वप्रथम मिश्रबन्धु-विनोद को लें। इस बृहत्काय ग्रन्थ में लेखकों ने हिन्दी के प्राचीन एवं अर्वाचीन सहस्रों कवियों और लेखकों के इतिवृत्त का निबन्धन किया है। 'विनोद' में 1916 वि. से 1925 वि. तक

के युग को दयानन्द काल के नाम से अभिहित किया गया है।[8] आर्यसमाज तथा उसके संस्थापक की हिन्दी सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए मिश्रबन्धु लिखते हैं–"इस महात्मा से संस्कृत तथा हिन्दी के प्रसार को भी बल मिला। उनके (द्वारा स्थापित) आर्यसमाज के नियमानुसार हिन्दी की उन्नति धर्म का एक अंग है। स्वामी जी स्वयं गुजराती थे तथापि हिन्दी को राष्ट्रभाषा समझ कर आदर दिया।"[9]

हिन्दी के प्रौढ़ विद्वान् और समीक्षक लाला भगवानदीन तथा वैज्ञानिक लेखक प्रो. रामदास गौड़ के संयुक्त सम्पादन में तैयार की गई पुस्तक हिन्दी भाषा सार में लिखा गया–"जनता के लाभ की दृष्टि से मातृभाषा गुजराती होने पर भी इस दूरदर्शी विद्वान् संन्यासी (दयानन्द) ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही प्रचार किया। अपने ग्रन्थ भी हिन्दी में ही लिखे। हिन्दी की उन्नति और प्रचार को, आर्यसमाज का, जिसके वे प्रवर्त्तक थे, एक विशेष लक्ष्य बनाया। अकेले इन स्वामी जी ने हिन्दी का जितना उपकार किया, हमारा अनुमान है कि अनेक सुसंगठित संस्थाओं ने भी मिल कर नहीं किया।"[10] हिन्दी साहित्य के इतिहास का वैज्ञानिक तथा प्रवृत्तियों के आधार पर लेखन करने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वरचित हिन्दी साहित्य के इतिहास में आर्यसमाज स्थापना की पृष्ठभूमि तथा स्वामी दयानन्द की हिन्दी सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए लिखा–"पैगम्बरी एकेश्वरवाद की ओर नवशिक्षित लोगों को खिंचते देखकर स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक एकेश्वरवाद लेकर खड़े हुए और संवत् 1920 से उन्होंने अनेक नगरों में घूम-घूम कर व्याख्यान देना आरम्भ किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये व्याख्यान देश में बहुत दूर तक प्रचलित साधु हिन्दी भाषा में ही होते थे। स्वामी जी ने अपना (ग्रन्थ) सत्यार्थ-प्रकाश तो हिन्दी या आर्यभाषा में प्रकाशित किया ही, वेदों के भाष्य भी संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में किए। स्वामी जी के अनुयायी हिन्दी को आर्यभाषा कहते थे। स्वामी जी ने सवत् 1932 में आर्यसमाज की स्थापना की और सब आर्यसमाजियों के लिए हिन्दी या आर्यभाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया। युक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों और पंजाब में आर्यसमाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ।"[11]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में आर्यसमाज की हिन्दी सेवाओं का समुचित आकलन किया है। उनके अनुसार "स्वामी

---

8 वस्तुत' हिन्दी साहेन्य के इनिहास मे यदि किसी काल को दयानन्द युग के नाम से अभिहित किया जाना अभीष्ट हो तो यह काल 1931-1940 वि 1874-1883। नक का माना जाना उचित है। यह स्वामी दयानन्द के लेखन कार्य का समय था।

9. मिश्रबन्धु विनोद भाग 3–'विनोद' के प्रथम भाग की अंग्रेजी भूमिका मे मिश्रबन्धुओ न लिखा था– The Vigorous Protestantism of Dayanand paved the ways for much future progress

10. हिन्दी भाषासार, पृ. 62 (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

11 हिन्दी साहित्य का इतिहास (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

दयानन्द ने हिन्दी को ग्रन्थ लेखन तथा व्याख्यानों का माध्यम बनाया था। अतः हिन्दी में धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विषयों को निरूपित करने तथा तार्किक ढंग से गम्भीर विषयों का विवेचन करने की क्षमता आई।...स्वामी दयानन्द हिन्दी की व्यापकता के महत्त्व को समझते थे। उन्होंने पुरानी फक्कड़ी हिन्दी को नहीं अपनाया। उनकी हिन्दी एक विशुद्ध सांस्कृतिक और प्रभावशाली भाषा थी जिसने पंजाब और उत्तर भारत में हिन्दी को अपरिमित बल और दीर्घ जीवन दिया। वे भाषा को साहित्यिक रीति पर अलंकृत नहीं करते थे। उनका दृष्टिकोण साहित्यिक था भी नहीं। स्वामी जी ने देशवासियों में स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति और स्वाभिमान के बीज अंकुरित किए। इन सब ओजपूर्ण भावनाओं के कारण उनकी साधारण भाषा भी प्रभावशाली हो गई थी।"[12]

शास्त्री जी ने स्वामी दयानन्द की हिन्दी सेवाओं की तो विस्तृत समीक्षा की ही, विगत सौ वर्षो में आर्यसमाज द्वारा किए गए हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार का भी उन्होंने आकलन किया है। आर्यसमाज द्वारा स्थापित गुरुकुल संस्थाओं द्वारा हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देने का जो अपूर्व प्रयास हुआ उसका विवेचन भी इस इतिहास में हुआ है। अकेले गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के उद्योग एवं पुरुषार्थ से हिन्दी का जो हित हुआ, उसकी चर्चा करते हुए आचार्य चतुरसेन ने लिखा—"महात्मा मुंशीराम स्वयं एक आचार्य, लेखक, वक्ता और सम्पादक की हैसियत से हिन्दी के एक स्तम्भ रहे। उन्होंने आधुनिक हिन्दी को प्राणदान देने वाले मेधावी जनो का एक स्रोत ही खोल दिया।"[13]

यह तो हुई साहित्य के इतिहासों में आर्यसमाज के हिन्दी विषयक योगदान की चर्चा। साहित्य के अनुसंधित्सुओ तथा शोधकर्ताओं ने भी आर्यसमाज की साहित्य सेवा का विवेचन किया है। फलतः हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं को पुष्ट एवं समृद्ध करने हेतु किए गए आर्यसमाज के प्रयासों का विस्तृत लेखा-जोखा उपस्थित किया गया है। इस प्रसंग में प्रथम दिशा-निर्देश तथा शोध लखनऊ विश्वविद्यालय से शोध उपाधि प्राप्त करने वाले डा. लक्ष्मीनारायण गुप्त ने किया। 'हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन'[14] शीर्षक उनके शोध प्रबन्ध में हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा उसके साहित्य की अभिवृद्धि में किए गए आर्यसमाजी लेखकों के अवदान का समुचित मूल्यांकन किया गया है। वस्तुतः यह ग्रन्थ तो इस वृहत् शोध कार्य का विषय प्रवर्त्तन ही था। डा. ज्ञानवती दरबार ने अपने शोध प्रबन्ध भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा मे आर्यसमाज तथा स्वामी दयानन्द के हिन्दी विषयक प्रचार कार्य

---

12 हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ 485 (द्वितीयावृत्ति)

13 तथैव, पृ. 533

14 हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा 2018 वि. में प्रकाशित।

का उल्लेख करने के पश्चात् पं. भीमसेन शर्मा, भाई परमानन्द, लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज आदि आर्य नेताओं के हिन्दी विषयक कार्य का विशद मूल्यांकन किया है। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कतिपय शोधकार्य ऐसे भी हुए जिनमें साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास में आर्यसमाजी लेखकों के योगदान की विस्तार से चर्चा हुई है। डा. चन्द्रभानु सोनवणे के ग्रन्थ 'आर्यसमाज की हिन्दी गद्य को देन,[15] डा. मदनमोहन जावलिया के शोध प्रबन्ध हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में आर्यसमाज की पत्र-पत्रिकाओं का योगदान'[16] तथा डा. वीणा कल्ला के शोध ग्रन्थ 'स्वामी दयानन्द की विचारधारा का हिन्दी काव्य पर प्रभाव'[17] में हिन्दी गद्य, पत्रकारिता तथा काव्य पर पड़े आर्यसमाज के प्रभाव को चिह्नित किया गया है।

स्वीकार करना होगा कि भारतेन्दु तथा द्विवेदी काल के हिन्दी कवियों के मनोजगत् का निर्माण करने में आर्यसमाज के विचारों की स्पष्ट भूमिका थी। भारतेन्दु कालीन काव्य में नवजागरण का जो स्वर है उस पर स्वामी दयानन्द के सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय नवोत्थान का स्पष्ट प्रभाव है जबकि द्विवेदीकालीन काव्य में गूँजने वाली सुधार, संस्कार तथा देशोद्धार की ध्वनि भी आर्यसमाज के तद्विषयक विचारों की ही अनुगूँज है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन का ऐतिहासिक मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। इसमें जहाँ आर्यसमाज से जुड़े कवियों द्वारा रचित काव्य कृतियों के आलोचनात्मक मूल्यांकन का प्रयास है वहाँ इनके रचयिता कवियों के जीवन एवं कृतित्व की भी भरपूर जानकारी दी गई है। आर्यसमाज के विचारों में आस्था रखने वाले इन कवियों ने काव्य की सभी प्रसिद्ध शैलियों में काव्य रचना की है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरित-काव्य आदि विभिन्न काव्य रूपों को उन्होंने अपनाया है। जहाँ पुराने कवियों ने ब्रज तथा अवधी में काव्य रचना की है, वहाँ नए खेमे के कवियों ने खड़ी बोली को ही अपनी कृति का माध्यम बनाया है। इतना ही नहीं, अनेक कवियों ने तो जनपद अथवा क्षेत्र विशेष में प्रयुक्त होने वाली उप भाषाओं तथा बोलियों में भी काव्य सृजन किया है। उदाहरणार्थ, राजस्थानी तथा हरियाणवी को तो हिन्दी की ही उपभाषाएँ कहना समीचीन है और इन दोनों में ही अनेक आर्यसमाजी कवियों ने पर्याप्त मात्रा में काव्य रचना की है। यदि लिपि की भिन्नता को नजरअन्दाज़ कर दें, तब तो व्याकरण तथा वाक्य रचना की दृष्टि से हिन्दी तथा उर्दू में भी अधिक अन्तर नहीं है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी उर्दू आर्य

15. हिन्दी गद्य साहित्य-ग्रन्थम कानपुर से 1975 में प्रकाशित।
16. अर्चना प्रकाशन अजमेर, 1991
17. पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत अप्रकाशित शोध प्रबन्ध।

भाषा परिवार की ही है जिसका उत्स ब्रज भाषा है। हमारे इस ग्रन्थ में इसी दृष्टि से आर्यसमाज के कुछ उर्दू कवियों की काव्य कृतियों की भी चर्चा उर्दू है। मात्र लिपि का अन्तर होने से ही उर्दू और हिन्दी को पृथक् नहीं कहा जा सकता। इन उर्दू कवियों की ये कविताएँ नागरी लिपि में भी छपी हैं और उनकी लोकप्रियता का यह आलम है कि दशाब्दियों पूर्व लिखे जाने पर भी पाठक समुदाय में इनका आकर्षण यथावत् है।

आर्यसमाजी कवियों द्वारा रचित इस काव्य में हमें विषयगत तथा शैलीगत विविधता के भी दर्शन होते हैं। इन कवियों के लिए काव्य रचना केवल मनोरंजन या मानसिक विलास की ही वस्तु नहीं थी। उच्चतर उद्देश्य को दृष्टि में रखकर वे काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे। वे अपनी कविता के द्वारा पाठकों की मनोवृत्तियों का परिष्कार तथा उनकी भावनाओं का उदात्तीकरण करना चाहते थे। काव्य लेखन को न तो उन्होंने यश प्राप्ति का साधन बनाया और न अर्थ प्राप्ति के लिए ही उन्होंने इसे लिखा। उनकी रचना का प्रयोजन तो लोगों को धर्माचरण में प्रवृत्त करना, सदाचरण को प्रोत्साहित करना तथा वैदिक आदर्शों के अनुकूल जीवनयापन करने का मार्ग बतलाना ही था। इन कृतिकारों में अनेक तो ऐसे हैं जिन्होंने अपने काव्य में स्वामी दयानन्द के आदर्श जीवन तथा उनके कृतित्व को ही प्रस्तुत किया है। स्वामी जी के अतिरिक्त आर्यसमाज के अन्य महापुरुषों के जीवनादर्शों को भी काव्य के माध्यम से चित्रित किया गया है। इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृति के पुरस्कर्ता तथा प्रतिष्ठाता अनेक नए-पुराने लोकोत्तर-चरित्र सम्पन्न महापुरुषों को भी इन कवियों ने अपने काव्य का नायक बनाया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यसमाजी कविता का बहुलांश तो महापुरुषों के लोकपावन चरित्र के चित्रण के लिए ही समर्पित किया गया है। ईश्वर के अवतार लेने में श्रद्धा न रखने वाले ये कवि लोक मंगल तथा जनहित के लिए सर्वस्व को अर्पित कर देने वाले महापुरुषों के आदर्शों के प्रचार- प्रसार में प्रयुक्त अपनी वाणी को ही सार्थक मानते हैं।

धर्म संशोधन, समाज सुधार, कुरीति निवारण, स्वदेश भक्ति, राष्ट्र प्रेम, आर्यावर्त का गौरवपूर्ण अतीत, उसकी वर्तमान अधोगति किन्तु आशाप्रद भविष्य जैसे अनेक विषय इन कवियों की कवता में आए हैं। यद्यपि इस काव्य का प्रधान स्वर उपदेशात्मक है, किन्तु मात्र उपदेशपरक होने से ही उसकी अवगणना तथा उपेक्षा करना उचित नहीं है। हिन्दी के सन्तों तथा भक्तों के काव्य में भी उपदेश तत्त्व की ही प्रचुरता है, किन्तु क्या इसी कारण से उसे काव्य की कोटि से बहिष्कृत किया जा सकता है। सच तो यह है कि आर्यसमाज के काव्य में पाई जाने वाली यह उपदेश प्रधानता उसकी गुणवत्ता को कथमपि हानि नहीं पहुँचाती। भाव और भाषा, कल्पना और शैली सभी दृष्टियों से यह काव्य पर्याप्त समृद्ध तथा सशक्त है।

हमने अपने इस ग्रन्थ में एक अन्य काव्य विधा को भी स्थान दिया है। यह

है अनूदित काव्य। विभिन्न शास्त्र ग्रन्थ तथा कालजयी रचनाएँ जिस प्रकार अन्य भाषाओं में अनूदित होती हैं, उसी प्रकार उनके पद्यबद्ध अनुवाद करने की भी प्रथा प्रचलित रही है। आर्यसमाज के इन कवियों ने अनेक शास्त्रों के महत्त्वपूर्ण उदात्त अंशों को पद्यबद्ध करने का प्रयास किया है। जिस प्रकार गीता के अन्य भाषाओं में समश्लोकी अनुवाद प्रचलित हैं, उसी प्रकार आर्यसमाज में आस्था रखने वाले इन कवियों ने वैदिक सूक्तों, उपनिषदों के भावपूर्ण अंशों तथा विभिन्न छोटे-बड़े शास्त्र ग्रन्थों को सरस काव्य शैली में प्रस्तुत किया है। यहाँ तक कि स्वामी दयानन्द के कतिपय ग्रन्थों को भी सरल पद्यों का रूप दिया गया है। ऐसा करने में इन कवियों की मूल भावना यही थी कि लोकप्रिय पद्य-शैली में प्रस्तुत कर देने के कारण ये गम्भीर ग्रन्थ जनसाधारण के लिए सुबोध तथा बुद्धिगम्य हो जाएँगे।

हमने अपने इस विवेचन में उन कवियों का भी समावेश किया है जो आर्यसमाज की विचारधारा से तो जुड़े ही हैं, अपनी काव्य प्रतिभा के कारण जिन्होंने हिन्दी साहित्य में भी अपना उच्च स्थान बना लिया है। पं. नाथूरामशंकर शर्मा, पं. हरिशंकर शर्मा, पं. अनूपशर्मा एवं क्षेमचन्द्र सुमन आदि इसी श्रेणी के कवि हैं। खेद का प्रसंग है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने उपर्युक्त कवियों की काव्य क्षमता का न तो सम्यक् आकलन ही किया और न उनके काव्यगुणों का पूर्वाग्रह मुक्त होकर विवेचन किया। कोई कवि या साहित्यकार किसी धर्म, मत या सम्प्रदाय विशेष का अनुयायी होने के कारण ही साहित्य समीक्षकों की उपेक्षा का पात्र बन जाए, यह न्यायोचित नहीं है। यह कौन नहीं जानता कि पं. नाथूरामशंकर शर्मा जैसे रससिद्ध कवि इसी संकीर्ण दृष्टि के शिकार होते आए हैं तथा समालोचकमन्यों ने उनके काव्य को आर्यसमाज की सुधारवादी विचारधारा से सम्पृक्त होने के कारण ही नीरस-मात्र-उपदेशबहुल तथा शुष्क कहने की धृष्टता की है जबकि सच तो यह है कि शंकर की कविता नवरस मयी अन्य कोटि की है। हमारे इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो सकेगा कि आर्यसमाज से प्रेरणा पाकर काव्य रचना करने वाले कवियों का अवदान कितना व्यापक, समृद्ध तथा सघन है।

हमारे ग्रन्थ का एक अन्य आयाम यह बतलाना भी होगा कि हिन्दी के अनेक प्रख्यात कवि यद्यपि आर्यसमाज से सीधे जुड़े हुए तो नहीं थे, किन्तु उनका काव्य यत्र-तत्र, भावों और विचारों की दृष्टि से स्वामी दयानन्द के विचारों से प्रेरित तथा अनुप्राणित है। इन कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं. प्रतापनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि की गणना की जा सकती है। इन कवियों के काव्य में धर्म की उदार व्याख्या, समाज सुधार का प्रबल आग्रह, स्वेदश निष्ठा, कुरीति निवारण, देश के विगत गौरव का गान आदि तत्त्व प्रचुर मात्रा में आए हैं, जो यह बताते हैं कि स्वामी दयानन्द की उदार एवं प्रगतिशील दृष्टि ने उन्हें जाने-अनजाने प्रभावित

किया है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, निराला तथा महादेवी के काव्य में सांस्कृतिक चेतना तथा प्राचीन आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति जो आस्था दिखाई देती है, वह भी आर्यसमाज के युगीन प्रभाव को ही सिद्ध करता है। महाकवि निराला ने तो स्वामी दयानन्द के जीवन दर्शन की विवेचना में एक स्वतन्त्र निबन्ध ही लिखा था। उधर सोहनलाल द्विवेदी, श्यामनारायण पाण्डेय, सुभद्रा कुमारी चौहान, तथा दिनकर की राष्ट्रीय कविता भी स्वामी दयानन्द के राष्ट्रवाद की ही प्रतिध्वनि दीख पड़ती है।

सत्य तो यह है कि आलोच्य कवियों की काव्य कृतियाँ सरल, सुबोध, आदर्श प्रधान तथा मानवी चरित्र को उदात्तता की ओर ले जाने में समर्थ हैं। यह तो सम्भव है कि इनमें कलात्मक तत्त्वों, अलंकरण तथा लाक्षणिकता की न्यूनता दृष्टिगोचर हो, तथापि इतने से ही इन्हें काव्य के क्षेत्र से बहिः नहीं किया जा सकता। अतः हमें स्वीकार करना चाहिए कि हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन इतिहास का एक ऐसा सत्य है जो हमारे अध्ययन, अन्वेषण तथा मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है। ऐसा करने के पश्चात् ही साहित्य के इतिहास में उसके महत्त्व का निर्धारण करना उचित होगा।

अध्याय-2

भारतीय नवजागरण और साहित्य

लगभग एक हजार वर्षों से हिन्दी की काव्य-सरिता नाना प्रवृत्तियों, विचारधाराओं तथा भाव-सरणियों से उद्वेलित एवं प्रभावित होती हुई निरन्तर गतिशील रही है। उसका प्रारम्भिक युग वीर और शृंगार रस की मिली-जुली गंगा-जमनी काव्यधारा का काल था, जब रणांगण में चमकती तलवारों की खनक और रणचण्डी के अट्टहास को कवियों ने सुना ही नहीं था, वे स्वयं भी अपने आश्रयदाता राजाओं के सहयोगी बनकर मारु राग गाते हुए युद्धों में सक्रिय भाग लेते थे। दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की पराजय के साथ भारत में इस्लाम का राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित हो गया। हिन्दुओं के स्वाधीन शासन का युग समाप्त होते ही इस देश की जनता के दुःखों और कष्टों का पार नहीं रहा। यहाँ के बहुसंख्यक हिन्दू अपने धर्म, संस्कृति, परम्परा और आस्था की रक्षा के लिए चिन्तित हुए और उनको बचाने के उपाय सोचने लगे। भौतिक पराजय ने उन्हें परलोकोन्मुखी बना दिया। अब वे अपनी रक्षा और बचाव के लिए किसी अलौकिक ईश्वरीय सत्ता के मुखापेक्षी बन गए। इस काल के हिन्दी कवि भी पुराणानुवर्ती धार्मिक चिन्तन से प्रभावित होकर अपने काव्य में अध्यात्म और परलोक सुधार की बात करने लगे।

हिन्दी काव्य की इस भक्ति धारा के जन्म लेने के कारणों की मीमांसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परस्पर विपरीत बातें लिखी हैं। शुक्ल जी का मानना था कि मुसलमानी शासन के जुल्मो-सितम से उत्पन्न हिन्दू समाज की हताशा और निराशा ने ही उस युग के कवियों को परमात्मा और परलोक आदि विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया जब कि द्विवेदी जी इस काल के काव्य को किसी राजनैतिक परिस्थितियों से उत्पन्न निराशा से उपजी प्रतिक्रिया न मानकर संस्कृत तथा उसके बाद की प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में मिलने वाली भक्तिकाव्य की परम्परा की ही एक कड़ी माना है। जो हो, यह तो निश्चित ही है

कि हिन्दी के इस सगुण भक्ति काव्य ने हताश और निराश हिन्दू जाति में नवीन मनोबल का संचार किया। त्रेता के असुरसंहारी राम उन्हें भयत्राता और मुक्तिदाता के रूप में दिखाई पड़े। सूर के लीला गान के नायक कृष्ण की बाल्य और यौवन कालीन क्रीड़ाओं का चिन्तन कर वे स्वल्प काल के लिए ही सही, अपने दुःखों एवं कष्टों को भूल गए।

हिन्दी काव्य का उत्तर मध्य युग रीतिकाल कहलाता है। राजनैतिक दृष्टि से यह मुगल शासन के पतन और ह्रास का काल था। केन्द्रीय शासन की दुर्बलता के कारण क्षत्रप के तुल्य सत्ता भोगने वाले राजा, नवाब और सामन्त अधिकाधिक शक्तिशाली बन गए। दुर्बल और निम्न वर्ग के शोषण के बल पर सुविधाभोगी सामन्ती संस्कृति विकसित हुई जिसने काव्य रचना को भी उच्च वर्ग के उन्मुक्त क्रीड़ा विलास का साधन बना दिया। रीतिकाल का यह काव्य सम्पन्न वर्ण की उद्दाम यौवन-लीलाओं का ही उन्मुक्त चित्रण करता है जिसका सामान्य जनता की आशाओं और आकांक्षाओं, अभावों एवं अभियोगों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। इसमें शृंगार के उत्तेजक प्रसंगों की एकान्त अभिव्यक्ति है, नारी के मांसल सौन्दर्य का उद्दाम चित्रण है, नायिका के नख से शिख पर्यन्त अंग-प्रत्यंगों का विस्तृत एवं तल्लीनतापूर्वक किया गया वर्णन है, साथ ही अष्टयाम और बारहमासा जैसी काव्य शैलियों के माध्यम से आकण्ठ क्रीड़ा विलास में डूबे प्रेमी-प्रेमिकाओं के दैनन्दिन और वार्षिक जीवन चर्या का आलेखन हुआ है। यहाँ आते-आते काव्य के विषय सीमित रह गए और कविता की गतिशीलता समाप्त हो गई। नतीजतन इस काल के काव्य का कलापक्ष और भावपक्ष पिष्टपेषण मात्र रह गया जिनमें न तो नूतन भावों और विचारों को ग्रहण करने की क्षमता थी और न शैलीगत चारुता और नवीनता लाने का सामर्थ्य।

किन्तु साहित्य तो सतत परिवर्तनशील होता है। उसमें किसी कारण विशेष से आई जड़ता अधिक देर तक नहीं टिकती। विगत शताब्दी के आरम्भ में ही भारत में नवजागरण की उज्ज्वल रश्मियों ने चतुर्दिक को आलोकित कर दिया। इस समय तक यूरोपीय शक्तियों—विशेषतः अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों ने देश के अनेक भागों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इस विदेशी दासता ने जहाँ स्वदेश के लोगों को नाना विपत्तियों एवं आपदाओं से ग्रस्त किया, वहाँ उसका एक उज्ज्वल पक्ष यह भी था कि इस देश के नागरिक पश्चिम में विकसित नूतन ज्ञान-विज्ञान से परिचित हुए तथा यूरोप में पनपनेवाले प्रजातन्त्र के प्राणवान् संस्पर्श से स्पन्दित होने लगे। पश्चिमी शिक्षा पद्धति से उत्पन्न हजारों दोषों को गिनाते हुए भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उससे इस देश के लोगों के चिन्तन में विशालता आई तथा उनके मानसिक क्षितिज का विस्तार हुआ। यूरोप में जन्मे, पनपे और बढ़े प्रजातन्त्र, समानता, और बन्धुता के उदात्त भावों से इस देश की जनता परिचित हुई और वह खुद सार्वजनिक जीवन की उपयोगिता को समझ पाई। देश के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में

नव प्राणोन्मेष हुआ और साहित्य में भी नए तेवर दृष्टिगोचर हुए।

भारतीय भाषाओं में नवजागरण के स्वर

नवजागरण से उत्पन्न नई आशाओं और आकांक्षाओं, नए भावों और नूतन विचारों ने साहित्य में नव प्राणों का संचार किया। रूढ़िबद्ध काव्य विषयों को छोड़कर जनसाधारण की अपेक्षाओं को वाणी देने में कवि और साहित्यकार जुट गया। हिन्दी साहित्य में इस परिवर्तन का शंखनाथ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। वे नवीन विचारों के प्रथम वैतालिक बन कर आए।[1] वस्तुतः भारतेन्दु के रूप में हिन्दी के साहित्याकाश में एक ऐसे ज्योतिष्मान् नक्षत्र का उदय हुआ जिसकी दिव्य आभा से सम्पूर्ण साहित्य जगत् आलोकित हो उठा तथा जिसकी शीतल अमृतदायिनी रचना रूपी किरणों ने हिन्दी के पाठक वर्ग को आप्यायित और कृतकृत्य कर दिया। अब कविगण प्राचीन काव्यरूढ़ियों के बन्धनों से मुक्त होने लगे। रीति परम्परा के निर्वाह तथा ब्रजभाषा की अनिवार्यता से भी उन्हें मुक्ति मिली। नायक-नायिका की काम क्रीड़ाओं का उन्मादक वर्णन वर्जित माना जाने लगा और उसके स्थान पर सामाजिक समस्याओं के चित्रण तथा जनता को दरपेश विपत्तियों और कठिनाइयों के वर्णन को काव्य में स्थान मिलने लगा। यद्यपि कुछ कवि अब भी प्रचलित काव्यरूढ़ियों की दुर्निवार शृंखलाओं को तोड़ पाने में असमर्थता अनुभव कर रहे थे किन्तु वे यह भी समझ रहे थे कि युगसत्यों को अधिक देर तक नकारना सम्भव नहीं होगा। परम्परा प्राप्त काव्य विषयों को एकदम छोड़ना भी कठिन लग रहा था किन्तु कवियों ने नए विषयों को अपनाना भी आरम्भ कर दिया था। स्वयं भारतेन्दु साहित्य में प्राचीन और नवीन के सुखद सामंजस्य के पक्षपाती थे। उन्होंने जहाँ पुरातन भक्त कवियों के अनुकरण पर वैष्णव भक्ति को लेकर ब्रजभाषा में कविता लिखी वहाँ देश और समाज की सार्वत्रिक अधोगति को देखकर अपनी खड़ी बोली कविता में भी कम आँसू नहीं बहाए। राष्ट्रभाषा हिन्दी को देश के स्वाभिमान तथा राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक मानने वाले भारतेन्दु ने अपने एक काव्यमय भाषण में कहा था—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को सूल।।[2]

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विशेष अध्ययन के लिए निम्न ग्रन्थ पठनीय हैं—
   (अ) भारतेन्दु युग—डा. रामविलास शर्मा।
   (आ) भारतेन्दु के विचार—एक पुनर्विचार—डा. चन्द्रभानु सोनवणे।
   (इ) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।
   (ई) भारतेन्दु मुकुर—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित।
2. बलिया में दिया भारतेन्दु का पद्यमय भाषण—भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग-2

यह बात नहीं कि उस युग के कवि विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए किसी क्रान्ति को आहूत कर रहे थे, इसके विपरीत अनेक कवि और लेखक तो अंग्रेजी राज्य से आई सुरक्षा, स्थायित्व और जीवनयापन में आने वाली कठिनाइयों से त्राण पाकर विदेशी सत्ता के प्रशंसक बन गए थे। स्वेच्छाचारी तथा तानाशाही सामन्ती शासन से मुक्ति पाकर भारतवासियों ने ब्रिटिश शासकों के उदार रवैये को ईश्वरदत्त वरदान माना। इधर रेल, तार, डाक, पुलिस और सड़कों के आवागमन जैसी मूलभूत सुख-सुविधाओं को नकारना भी सम्भव नहीं था। यही तो साम्राज्यवाद का वरदान थीं। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर भारतेन्दु ने अंग्रेजी राज्य को सब सुखों का साज तो कहा, किन्तु अपनी अन्तर्व्यथा को भी वाणी देने से वे नहीं चूके और दूसरी साँस में कह बैठे—पै धन विदेस चलिजात यहै अति ख्वारी।[3]

साहित्य में पुनर्जागरण का यह स्वर केवल हिन्दी में ही मुखर हुआ, ऐसी बात नहीं थी। देश की अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं का साहित्य भी नवजागरण के स्फूर्तिदायक सन्देश से गूँजने लगा था। प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाएँ नवोदय का पुलक स्पर्श पाकर अभिभूत हो उठी थीं। इससे साहित्य जगत् में जमी मध्यकालीन जड़ता नष्ट हुई तथा उसमें नवगति, नव प्राण और नव स्फूर्ति का संचार हुआ। काव्य के लिए नए विषय, नए भाव और उन्हें अभिव्यक्त करने के नए रूप तलाशे गए। बंगाल तो नवीन युग के नव्य भावों को ग्रहण करने वाले प्रान्तों की अग्रिम पंक्ति में था। अतः बंगला साहित्य में ही नवजागरण का आलोक-पर्व सर्वप्रथम आविर्भूत हुआ। बंकिमचन्द्र ने बंगला गद्य में नए प्राण फूँके। ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने देश के अतीत का गौरव गान किया और आर्य जाति के शील, सदाचार, शौर्य और पराक्रम के गीत गाए। उनके आनन्दमठ को भारत के प्रथम राजनैतिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। स्वयं को भारत माता की सन्तान कहने वाले संन्यासियों ने विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए जो हलचल मचाई उसको भावप्रवण शैली में अंकित करने वाले बंकिम ने इस उपन्यास में वन्दे मातरम् जैसा भाव पेशल, स्फूर्तिदायक गीत भी इस देश की जनता को दिया जो आगे चलकर स्वाधीनता का महामन्त्र बन गया।

बंकिम के उपन्यासों में हिन्दू पुनरुत्थान का स्वर प्रबलता से मुखरित हुआ है। किन्तु उस युग की राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा सम्बल हिन्दू नवजागरण ही था। मुसलमानी शासन ने जिस निर्ममता के साथ हिन्दू अस्मिता को कुचला था, उसकी पीड़ादायक यादें अभी भी जनमानस को विचलित कर रही थीं। इस्लाम के कट्टर अनुयायी धर्मान्ध शासकों द्वारा किए गए धार्मिक अत्याचारों को भुला पाना सम्भव नहीं था। उनकी तुलना में अंग्रेजी राज्य की यह धर्म निरपेक्षता की नीति कहीं अधिक

---

3. भारतेन्दु ग्रन्थावली।

अच्छी समझी गई। यही कारण था कि बंकिम अपने उपन्यासों में मुसलमानों के द्वारा किए गए अत्याचारों का मुखर वर्णन करते हैं जबकि गोरे शासन से उन्हें अस्वस्ति अनुभव नहीं होती। बंगला काव्य तथा नाटकों में भी नवयुग के प्रभाव को देखा जा सकता है। माइकेल मधुसूदन दत्त के काव्य मेघनाद वध तथा विहरिणी व्रजांगना यद्यपि पुरातन धार्मिक आख्यानों पर आधारित हैं, किन्तु उनमें नवीन विचारों की अनुगूँज तो सुनाई पड़ती ही है। गिरीश घोष तथा द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों में भी युग प्रभाव को देखना कठिन नहीं है। यों तो राय महाशय ने शाहजहाँ, दुर्गादास तथा मेवाड़ पतन जैसे नाटक लिखकर राजपूतकालीन भारत को ही पुनरुज्जीवित किया है, किन्तु इन नाटकों के पात्रों में उन्होंने नव्य भावों एवं विचारों का संचरण कर दिया है।

पुनर्जागरण की यह भावोर्मि भारतीय भाषाओं के साहित्य में किस प्रकार उछल कर पाठकों को उच्छ्वसित और आन्दोलित करती रही, इसे विस्तार से बताना यहाँ सम्भव नहीं है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मराठी में हरिनारायण आप्टे के उपन्यासों तथा गुजराती में कवि नर्मद और नान्हालाल आदि की कविता में नवजागरण की यही पदचाप सुनाई देती है। उर्दू की कविता भी आरम्भ में रीतिकालीन हिन्दी कविता की भाँति आशिक-माशूकों के प्रणयजन्य शिकवों-शिकायतों, गुलोबुलबुल की बहारों तथा मीना, साकी और प्याले में ही उलझी रही। इश्किया शायरी की यह परम्परा उर्दू में फारसी काव्य से आई थी। किन्तु नवजागरण की स्फूर्तिदायिनी विचारधारा से उर्दू की शायरी भी अछूती नहीं रही। मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली ने मुसद्दस शीर्षक काव्य लिखकर नए युग की पदचाप को पहचाना तथा इस्लाम के अतीत गौरव का आख्यान करने के पश्चात् उसकी वर्तमान अधोगति पर अश्रुपात किया। निश्चय ही हाली के मुसद्दस में इस्लामी धर्म, संस्कृति और जीवन प्रणाली की श्रेष्ठता को ही स्थापित किया गया है परन्तु हिन्दुओं की ही भाँति भारत के मुसलमानों को भी अंग्रेजों के समक्ष प्रणिपात करने की दयनीय दशा से उबारने के लिए उन्हें अपने प्राचीन गौरव से रूबरू कराना वक्त की जरूरत थी। हाली के मुसद्दस के ही अनुकरण पर हिन्दू जागरण का उद्घोष करने वाले काव्य भारतभारती की रचना मैथिलीशरण गुप्त द्वारा हुई। गुप्त जी के इस अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त काव्य में हिन्दू भारत के गौरवमय अतीत, निराशाजनक धूमिल वर्तमान किन्तु आशाप्रद भविष्य का पद्यात्मक चित्रण है। 'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी' इस सूत्र को पकड़ कर गुप्त जी ने भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य का जीवन्त चित्र उपस्थित किया है। डा. मोहम्मद इकबाल की प्रारम्भिक उर्दू कविता में भी ख्यालों की बुलन्दी और साम्प्रदायिक सौमनस्य के सूत्र दिखाई दिए, परन्तु बहुत शीघ्र उन पर इस्लाम का सर्वातिशायी रूप हावी हो गया और वे 'हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्ताँ हमारा' को भूल कर 'मुस्लिम हैं हम वतन हैं सारा जहाँ हमारा' का राग अलापने

लगे। उधर सैयद अकबर हुसैन (प्रसिद्ध उर्दू कवि अकबर इलाहाबादी) ने अपनी कविता में जीवन के हल्के-फुल्के प्रसंगों की फुलझड़ियाँ छोड़कर सिद्ध कर दिया कि उर्दू शायरी के लिए मात्र इश्किया मजामीन को ही लेना कतई गैर-जरूरी है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य की चर्चा के प्रसंग में हिन्दी कविता में आए परिवर्तनकारी स्वर की चर्चा हम कर चुके हैं। भारतेन्दु युगद्रष्टा और युगप्रवर्त्तक तो थे ही, समकालीन लेखकों को सक्षम नेतृत्व देने की क्षमता भी उनमें थी। पुरानी परिपाटी का अनुसरण करते हुए वे काव्य में ब्रजभाषा को अपनाने के समर्थक तो थे, किन्तु खड़ी बोली को काव्य रचना के लिए स्वीकार करने में भी उनकी स्पष्ट अनुमति थी। उन्होंने स्वयं खड़ी बोली में काव्य रचना कर अन्य लोगों को भी इसमें लिखने की प्रेरणा दी। भारतेन्दु के काव्य में वर्णित विषयों की विविधता तथा उसकी बहुरंगी छवि कवि की व्यापक दृष्टि तथा उसके भाव क्षितिज के विस्तार की सूचक है। देश भक्ति का स्वर प्रथम बार भारतेन्दु की कविता में ही फूटा था। भारतेन्दु तथा उनके समकालीन कवियों की कविता में स्वदेशाभिमान, देश के गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण, समाज की वर्तमान अधोगति तथा उससे उत्पन्न पीड़ा एवं अवसाद का चित्रण सर्वत्र मिलता है। उनके सहयोगी, सखा और अनुवर्ती पं. प्रतापनारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. राधाचरण गोस्वामी, तथा पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन आदि साहित्यकार अपने नेता के स्वर में स्वर मिलाकर स्वराज्य लक्ष्मी का अर्चन कर रहे थे। साथ ही ये सभी साहित्यकार काव्य के अतिरिक्त निबन्ध, नाटक, कहानी, उपन्यास और पत्रकारिता जैसे क्षेत्रों में भरी अपने यश का विस्तार कर सामयिक प्रश्नों और युगीन समस्याओं से पाठकों से मुखातिब हो रहे थे।

नवीन विचारों के प्रचार के लिए यदि भारतेन्दु ने काव्य तथा नाटक का माध्यम चुना तो उन्हीं के समकालीन स्वामी दयानन्द धर्म और समाज के क्षेत्र में क्रान्ति का शंखनाद करते हुए हिन्दी भाषी क्षेत्रों—विशेषतः गंगा के तटवर्ती प्रान्तों का भ्रमण कर रहे थे। दोनों के कार्यक्षेत्र भिन्न थे, उनकी आस्थाएँ, विश्वास, योजनाएँ तथा कार्यक्रम भी भिन्न थे किन्तु दोनों का लक्ष्य एक ही था—स्वदेश में सर्वतोमुखी जागृति तथा नवचेतना का संचार करना। स्वामी दयानन्द धर्म-क्रान्ति के उद्गाता थे जो वैदिक धर्म की पावनता, श्रेष्ठता तथा उदात्तता में विश्वास रखते हुए इसके अनुपालन से ही देश की कठिनाइयों का निराकरण सम्भव मानते थे। उनका विश्वास था कि मध्यकाल में प्रचलित साम्प्रदायिक विभेद तथा पतनोन्मुखी धार्मिक रूढ़ियों ने ही देश की एकात्मता को नष्ट किया है। वेदोक्त एकेश्वरवाद के स्थान पर पुराण प्रतिपादित बहुदेवोपासना, पूजा पद्धतियों की विभिन्नता तथा मत सम्प्रदायों की संकीर्ण एवं प्रतिगामी आस्थाओं ने राष्ट्रीय एकता को अपार क्षति पहुँचाई है। अतः वे वैदिक धर्म की पुनःस्थापना तथा आर्य-संस्कृति के विशुद्ध रूप को पुनः प्रसारित किए जाने को राष्ट्रोत्थान के लिए आवश्यक समझते थे। भारतेन्दु यों तो वैष्णव सम्प्रदाय की

आस्थाओं से पूर्णतया प्रतिबद्ध थे, साथ ही वे इसके उदार दृष्टिकोण तथा सबको अपने भीतर समाविष्ट करने की शक्ति को भी पहचानते थे। उनका यह उदार वैष्णववाद पूजा उपासना की पद्धतियों के विभेद को तो अनुचित नहीं मानता था, किन्तु उन्हें भी दयानन्द की ही भाँति इस बात की पीड़ा अवश्य थी कि आज का भारत अपधर्मो से ग्रस्त होकर पुरातन आर्य भाव से बहुत दूर चला गया है।[4] इस दृष्टि से वे स्वामी दयानन्द द्वारा किए जा रहे धर्म संशोधन और समाजसुधार के कार्यों को श्लाघा की दृष्टि से देखते थे। अपनी वैष्णव आस्थाओं के प्रति पूर्ण दृढ़ता रखते हुए भी भारतेन्दु स्वामी दयानन्द की अग्रगामी दृष्टि तथा उनकी कट्टर देशभक्ति के कायल थे। जिस प्रकार स्वामी दयानन्द पश्चिम के प्रभाव से सर्वथा असंपृक्त रह कर भी नवीन विचारों के वाहक बने, उसी प्रकार भारतेन्दु भी बिना किसी विदेशी विचारधारा को ग्रहण किए, हिन्दी भाषा और साहित्य में वैचारिक क्रान्ति के अग्रदूत कहलाए। दोनों ने एक ही युग में जन्म लेकर सांस्कृतिक जागरण को गति दी, यद्यपि उनके साधनों में भिन्नता थी। स्वामी दयानन्द ने धर्म संशोधन को अपना अस्त्र बनाया जबकि भारतेन्दु साहित्य के द्वारा सामाजिक क्रान्ति को प्रवृद्ध करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में आचार्य चतुरसेन का निम्न कथन पूर्णतया प्रासंगिक है—"सन् 1883 में दयानन्द की मृत्यु हुई और 1885 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की। ये दोनों महानुभाव ऐसा सांस्कृतिक प्रभाव छोड़ गए जो दिन-दिन तेजी से बढ़ता ही गया और जिसने शीघ्र ही सम्पूर्ण उत्तर भारत में जागरण की एक नई लहर पैदा कर दी। स्वामी दयानन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दोनों ने विभिन्न दिशाओं से हिन्दी प्रेम, देशभक्ति और आत्म-गौरव की भावना सम्पूर्ण उत्तरी भारत में भर दी।"[5]

यहाँ संक्षेप में स्वामी दयानन्द के हिन्दी भाषा विषयक दृष्टिकोण की जानकारी ले लेना सर्वथा उचित है। उनकी मातृभाषा गुजराती थी किन्तु इसका प्रयोग तो वे तभी छोड़ चुके थे जब संन्यास ग्रहण के पश्चात् अपनी मातृभूमि को त्याग कर वे हिन्दी भाषी क्षेत्रों में धर्म प्रचारार्थ आए। अब उन्हें अपने विचारों को प्रकट करने के लिए पण्डित मण्डली में संस्कृत किन्तु जनसाधारण में हिन्दी का प्रयोग करना पड़ता था। आरम्भिक वर्षों में तो वे संस्कृत से ही काम चलाते रहे तथा इसी भाषा में ग्रन्थों की रचना भी की।[6] किन्तु शीघ्र ही उन्हें यह अनुभव हो गया कि जनसामान्य की भाषा को अपनाए बिना वे अधिकाधिक जनता तक अपने विचारों को नहीं पहुँचा पाएँगे। उत्तर भारत में उनके विचारों को आम जानता तक पहुँचाने का माध्यम हिन्दी

4. तथैव।
5. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास—चतुरसेन शास्त्री
6. स्वामी दयानन्द द्वारा रचित भागवत खण्डन, वेद विरुद्ध मत खण्डन, वेदान्तिध्वान्त निवारण, शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण, काशी शास्त्रार्थ, प्रतिमापूजन विचार, आदि संस्कृत में हैं।

से भिन्न कोई था भी नहीं। इसी तथ्य को अनुभव कर स्वामी दयानन्द अपने कलकत्ता के प्रवास के पश्चात् हिन्दी में व्याख्यान-प्रवचन करने लगे[7] तथा ग्रन्थ लेखन के लिए भी उन्होंने हिन्दी ही स्वीकार किया। हिन्दी के सम्बन्ध में, जिसे स्वामी जी आर्य भाषा कहते थे, उनके विचार उनके पत्रों, लेखों और वक्तव्यों से उभर कर स्पष्ट होते हैं। आर्यसमाज के उपनियमों का निर्धारण करते समय वे प्रत्येक आर्यसभासद के लिए आर्यभाषा (हिन्दी) का ज्ञान परमावश्यक बताते हैं।[8] अपने ग्रन्थों के उर्दू अथवा अंग्रेजी में अनुवाद देखने के इच्छुक लोगों को उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—"मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लगेंगे। जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी, वे इस आर्यभाषा (हिन्दी) को सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।"[9] स्वामी जी ने लोक व्यवहार और राजकाज में हिन्दी के प्रयोग को एक बड़े सुधार की नींव के तुल्य बताया था।[10]

स्वामी दयानन्द के अधिकांश ग्रन्थ परिष्कृत हिन्दी गद्य में ही लिखे गए हैं। सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि तथा ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका तो उनके साहित्य की वृहत् त्रयी हैं। इनके अतिरिक्त लघु ग्रन्थ भी पर्याप्त संख्या में हैं।[11] इन सभी ग्रन्थों की भाषा परिष्कृत, परिमार्जित तथा संस्कृत निष्ठ हिन्दी है। यत्र-तत्र इनमें लोकोक्तियाँ तथा सूक्तियाँ भी सूत्र में मणिवत् पिरोई गई हैं। संस्कृत के अप्रतिम विद्वान् होने के कारण उनकी हिन्दी में प्रयुक्त सस्कृत के शब्द अपने संस्कृत व्याकरण सम्मत रूप में ही आते है। वे आत्मा, विनय तथा पुस्तक को पुल्लिंग (अथवा नपुंसक लिंग) रूप में ही प्रयुक्त करते हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से स्वामी दयानन्द के हिन्दी गद्य का अध्ययन अपने आप में एक रोचक विषय है।[12]

स्वामी दयानन्द द्वारा सुझाई गई भाषा नीति को आर्यसमाज ने पूर्ण ईमानदारी तथा निष्ठा के साथ अपनाया। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पंजाब जैसे अहिन्दी भाषी प्रान्त में हिन्दी के लिए समुचित वातावरण बनाने का कार्य आर्यसमाज ने ही किया। आर्यसमाज के लेखकों ने स्वामी दयानन्द के वैदिक सिद्धान्तों को प्रचारित करने के लिए उच्च कोटि के साहित्य की रचना की। शास्त्रार्थ, व्याख्यान और प्रचार

---

7. स्वामी दयानन्द को हिन्दी में व्याख्यान देने की प्रेरणा ब्रह्म नेता केशवचन्द्र सेन ने कलकत्ता में दी थी।
8. समाज के प्रत्येक सभासद के लिए सस्कृत और आर्यभाषा (हिन्दी) का ज्ञान वांछनीय है। 36वाँ उपनियम।
9. ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार।
10. तथैव।
11. द्रष्टव्य—ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास—युधिष्ठिर मीमांसक।
12. हिन्दी गद्य साहित्य—डा. चन्द्रभानु सोनवणे।

के अन्यान्य साधनों के द्वारा आर्यसमाज ने अपने दर्शन तथा विचार पद्धति को संसार के सम्मुख जिस रूप में रखा, उसके लिए हिन्दी को ही प्रमुख माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया था। आर्यसमाज से जुड़े अनेक प्रतिभा सम्पन्न कवियों ने काव्य रचना के द्वारा भी वैदिक सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति दी है। आगे के अध्यायों में हम देखेंगे कि आर्यसमाज जैसे विशाल वटवृक्ष की शीतल तथा विश्राम दायिनी छाया में बैठकर जिन कवियों ने उत्कृष्ट काव्य की रचना की है वह अपनी गुणवत्ता, परिमाण तथा अपने कलागत वैशिष्ट्य के कारण समय की रेती पर अपने सुदृढ़ पद चिह्नों को अंकित कर गया है।

अध्याय-3

भारतेन्दु कालीन साहित्य और आर्यसमाज की विचारधारा

हिन्दी के आधुनिक काव्य का आरम्भ भारतेन्दु की कविता से माना जाता है। यह वह समय था जब कि शताब्दियों से मध्यकाल की अन्धकारपूर्ण गुहा-कन्दराओं मे अर्ध-निमीलित नेत्रों से, किंकर्त्तव्यमिमूढ़ की भाँति, बिना किसी दिशा या लक्ष्य को जाने, इतस्ततः भटकने वाले भारतीय समाज ने पश्चिमी क्षितिज पर उदय होने वाले वैज्ञानिक सभ्यता के सूर्य को प्रथम बार देखा। यूरोप के नवीन ज्ञान-विज्ञान, भौगोलिक दूरी को समाप्त कर देने वाले तीव्रगामी यातायात के साधनो तथा रेल, तार, डाक आदि विज्ञान की नवीन उपलब्धियों ने देश के सामाजिक जीवन में नव प्राणों का उन्मेष किया था। उन्नीसवीं शताब्दी का यह युग प्राचीन एवं नवीन तथा पौरस्त्य एवं पाश्चात्य जीवनमूल्यों के पारस्परिक टकराव, साथ ही एक दूसरे की जीवनी शक्ति को परखने का समय था। भारतेन्दु काल की कविता इसी संक्रमणकालीन भारतीय समाज को वाणी प्रदान करती है। इस युग के कवि की चेतना धर्म, राजनीति, समाज तथ समसामयिक समस्याओं का संस्पर्श पाकर नितान्त गतिशील, प्राणवान् तथा स्फूर्त हो उठती है।

स्वयं भारतेन्दु ने ही हिन्दी काव्य को परिवर्तन की नई दिशा दी है। उनकी कविता में यों तो साकार ईश्वर की भक्ति, शृंगार वर्णन आदि प्राचीन विषय उपलब्ध होते हैं किन्तु कविता के लिए नवीन और युगानुकूल विषयों का निर्वाचन करने में भारतेन्दु की काव्य-प्रतिभा कुण्ठित नहीं हुई थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता की धारा को भी नए-नए क्षेत्रों की ओर मोड़ा। इस नए रंग में सबसे ऊँचा स्वर देश भक्ति की वाणी का था। उसी से लगे हुए विषय लोकहित, समाज सुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि के थे।" कहना नहीं होगा कि भारतेन्दु की कविता में स्वदेशी-भावना, समाज संशोधन, कुरीति निवारण आदि के स्वर सर्वत्र मुखरित हुए हैं।

यह हम लिख चुके हैं कि स्वामी दयानन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र समकालीन तो थे, किन्तु दोनों की धार्मिक और दार्शनिक मान्यताओं में रात-दिन का अन्तर था। तथापि स्वामीजी की भाँति भारतेन्दु भी धर्म और समाज के क्षेत्र में क्रान्तिकारी सुधार तथा परिवर्तन लाने के पक्षपाती थे। यह आश्चर्य ही था कि वल्लभ मत के कट्टर अनुयायी भारतेन्दु रूढ़िबद्ध धारणाओं तथा विज्ञान विरोधी दृष्टिकोण के कटु आलोचक थे। उन्हें यह कदापि सह्य नहीं था कि धर्म के उदात्त एवं ऊर्ध्वगामी लक्ष्य को भुला कर उनके देशवासी उसे जर्जर रूढ़ियों और अन्ध विश्वासों का पुंज मात्र ही समझें। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि आर्यधर्म के मौलिक तत्त्वों का प्रतिपादन करने वाले वेद, उपनिषदादि ग्रन्थों का जब तक पुनः प्रचार नहीं होगा, तब तक उन साम्प्रदायिक उपधर्मो का छूटना भी कठिन है जिन्होंने भारत के धर्म प्रवण लोगों में अनैक्य, फूट तथा विद्वेष के बीज बोए हैं। और यह कहने में भी कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि भारतेन्दु के धर्म सम्बन्धी इन प्रगतिशील और रूढ़िमुक्त विचारों की निर्मिति में स्वामी दयानन्द के विचार ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में कारण बने थे।

'तदीय सर्वस्व' नामक ग्रन्थ में भारतेन्दु ने इस देश में प्रचलित धार्मिक विश्वासों को युक्ति एवं विज्ञान विरुद्ध, सामाजिक विषमता के प्रचारक, समष्टि भाव के बाधक तथा तर्क एवं बुद्धि विरुद्ध सिद्ध किया है। उनके निम्न उद्धरण पढ़कर यह सहज ही अनुमित होता है कि स्वामी दयानन्द प्रतिपादित युक्ति, विज्ञान, एवं बुद्धि से अविरुद्ध धर्म को स्वीकार करना उन्हें भी अभीष्ट था तथा वे साम्प्रदायिक संकीर्णता के पोषक मत-विश्वासों को धर्म की संज्ञा प्रदान करने के विरुद्ध थे। इस ग्रन्थ में वे लिखते हैं—"हम आर्य लोगों में धर्म तत्त्व के मूल ग्रन्थों का भाषा में प्रचार नहीं। यही कारण है कि भिन्नता स्थान-स्थान पर फैली हुई है। अनेक कोटि देवी-देवताओं का माहात्म्य, छोटी-छोटी बातों में ब्रह्महत्या का पाप और तुच्छ-तुच्छ बातों में बड़े-बड़े यज्ञों का पुण्य, अहं ब्रह्म का ज्ञान और मूल धर्म छोड़ कर उपधर्मो में आग्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक धर्मों का लोप कर दिया है।"[1]

स्पृश्यास्पृश्य की भावना को भी भारतेन्दु स्वामी दयानन्द की ही भाँति समाज के लिए अनुपयोगी तथा हानिकर मानते थे। 'तदीय सर्वस्व' में वे लिखते हैं—"धर्म हमारा ऐसा निर्बल और पतला हो गया है कि केवल स्पर्श से वा एक चुल्लू पानी से मर जाता है। कच्चे गले सड़े सूत व चिऊंटी की दशा हमारे धर्म की हो गई है।"[2] भारतेन्दु ने यह भी अनुभव कर लिया था कि सम्प्रति आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज के नेता एवं आचार्यगण जिस विशुद्ध धर्म का प्रचार कर रहे हैं वही पुरातन वैदिक

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली (तदीय सर्वस्व)।
2. वही।

धर्म है जो एकेश्वरवाद पर आधारित है तथा सामाजिक समता का प्रचारक है। इस प्रसंग में उन्होंने लिखा था–"इसी धर्म पथ को समुन्नत करने को एक ईश्वरवादी अनेक आचार्यो ने परिष्कृत और सहज धर्म प्रचलित किए हैं और अनेक लोग इन मार्गो में दीक्षित हैं।"

सुधारक वर्ग के लोगों के प्रति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जो सहानुभूति मिश्रित भावना थी, उसका पता हमे उनके व्यंग्यात्मक निबन्ध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' से लगता है। इसमें उन्होंने स्वामी दयानन्द तथा केशवचन्द्र सेन आदि समाज संशोधकों के द्वारा किए गए सुधार कार्यो के प्रति प्रशंसामूलक उद्‌गार व्यक्त किए हैं, यद्यपि इन महापुरुषों के धार्मिक विचारों से वे पूर्णतया सहमत नहीं थे। अपने 'प्रेमयोगिनी' नामक नाटक में तो उन्होंने धर्म एवं समाज में प्रचलित मिथ्या विश्वासों का जिस प्रकार खुलकर उपहास किया है, उसे पढ़कर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि यह आलोचना 'परम वैष्णव' हरिश्चन्द्र की लेखनी से निकली है।

'भारत दुर्दशा' शीर्षक उनके एक अन्य नाटक में लेखक ने देश की दुर्दशा के लिए समाज में व्याप्त कुरीतियों को उत्तरदायी बताते हुए लिखा–

जाति अनेकन करी नीच अरु ऊंच बनायो।
खान पान सम्बन्ध सबन सों बरजि छुडायो।
जन्म पत्र विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बाल्यपन में ब्याहि प्रीति बल नाश कियो सब।
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल वीरज मार्‌यो।
विधवा ब्याह निषेध कियो विभिचार प्रचार्‌यो।
रोकि विलायत गमन कूप मंडूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाई प्रचार घटायो।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में जातपात का भेदभाव, खानपान में संकीर्णता, जन्म पत्रिका से विवाह निश्चित करना, कुलीन प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, विलायत गमन का प्रतिषेध आदि सामाजिक बुराइयों का तीव्र खण्डन किया गया है। आर्यसमाज ने भी इन सभी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अपने स्थापना काल से ही संघर्ष प्रारम्भ कर दिया था।

धर्म के नाम पर प्रचलित मदिरापान, गुप्तव्यभिचार आदि पर भारतेन्दु ने तीखे कटाक्ष किए हैं। 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' शीर्षक अपने एक प्रहसन में वे लिखते हैं–

---

3 प्रतापनारायण ग्रन्थावली

वैष्णव लोग कहावहिं कंठी मुद्रा धारि।
छिप छिप के मदिरा पियहिं यह जिय माँझ विचारि।।

हिन्दी कविता में युगान्तर उपस्थित करने में भारतेन्दु को अपने समसामयिक कवियों और लेखको का भी भरपूर सहयोग मिला था। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी और प्रेमघन आदि उस युग के साहित्यकार एकजुट होकर साहित्य के द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाने के महत् अनुष्ठान में लगे हुए थे। इस लेखक मण्डली का नेतृत्व भारतेन्दु के सशक्त कन्धों पर ही था। उत्कृष्ट कवि तथा सशक्त गद्यकार होने के साथ-साथ भारतेन्दु में सहकर्मी साहित्यकारों का सफल नेतृत्व करने की भी अपूर्व क्षमता थी।

भारतेन्दु के ही समान उनके सहयोगी कवि और लेखक गण भी अपनी वैचारिक उदारता तथा व्यापक दृष्टि के लिए आर्यसमाज तथा स्वामी दयानन्द के ही ऋणी हैं। भारतेन्दु को अपना साहित्यिक गुरु और वेदनीय मानने वाले पं. प्रतापनारायण मिश्र ने स्वसम्पादित ब्राह्मण पत्र से अपनी साहित्य साधना का आरम्भ किया था। इस पत्र के प्रारम्भिक वर्षो की फाइलों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिश्र जी आर्यसमाज की सुधारवादी, प्रगतिशील तथा देशभक्तिपूर्ण कार्य पद्धति से पूर्णतया सहमत थे। उनका काव्य यद्यपि गुणवत्ता की दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता, किन्तु उसमें विवेचित विषयों पर दृष्टि निक्षेप करने से पता चलता है कि मिश्र जी अपनी कविता के द्वारा धर्म और समाज में व्याप्त रूढ़ियों और अन्धविश्वासों पर निर्मम प्रहार करने के पक्षपाती थे। वे कविता को समाज सुधार का प्रबल हथियार मानते थे।

पं. प्रतापनारायण मिश्र का लेखन स्वामी दयानन्द की विचारधारा से पूर्णतया प्रभावित था। उन्होंने स्वामी जी के सम्बन्ध में अपने प्रशस्तिमूलक उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा था—"परमेश्वर ने बड़ी कृपा की कि स्वामी दयानन्द को उत्पन्न कर दिया, जिनके वचन रूपी वरुणास्त्रों से क्रिस्तान की भयानक अग्नि बहुत कुछ शान्त हो गई।" 'ब्राह्मण' के प्रवेशांक में वे रासधारियों द्वारा भगवान् कृष्ण के पावन चरित्र को शृंगार की पंकिलता में निमज्जित करने के लिए दोषी ठहराते हुए लिखते हैं—"और उन सज्जन महात्माओं को क्यों बदनाम करते हो, हाँ, रासधारियों के ठाकुर जी को चाहो तो करो। भगवान् कृष्ण के और ही किसी काम का पक्ष लेते हो ? देखो, महाभारत में उनके धर्मनिष्ठता, धीरता, वीरता, गम्भीरता आदि सद्गुणों की कैसी स्तुति है। यदि हम एक भी उनकी चाल सीखते तो लोक-परलोक में कैसा कुछ आनन्द होता।" स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के 11 वें समुल्लास में कृष्ण विषयक जो उद्गार प्रकट किए हैं, मिश्र जी का उपर्युक्त कथन उन्हीं से प्रभावित है।[4]

---

4 हिन्दी कोविद रत्नमाला, भाग-1—डा. श्यामसुन्दर दास।

मिश्र जी ने समय-समय पर शैव, वैष्णव शाक्त आदि पौराणिक सम्प्रदायों की कटु आलोचना की तथा संन्यासी, वैरागी, तीर्थगुरु पण्डों में व्याप्त बुराइयों का भंडाफोड़ किया। समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों पर भी उन्होंने तीखे व्यंग्य किए हैं। उन्हें इस बात का खेद था कि हिन्दू जाति को जगाने के लिए आजीवन प्रयत्न करने वाले स्वामी दयानन्द के बार-बार उद्‌बोधन देने पर भी इस जाति में जागृति नहीं आई। हिन्दुओं में प्रचलित बाल विवाह, वेश्यानृत्य आदि बुराइयों की कड़ी टीका करते हुए मिश्र जी इस बात पर अफसोस प्रकट करते हैं कि जो लोग वेश्याओं के नाच को देखकर उन पर रुपयों की बौछार करते हैं, वे ही वेद भाष्य के लिए चन्दे की अपील का नाम सुनते ही बेचैन हो जाते हैं–

मरत मरत दयानन्द मरिगै हिन्दू रहे आजु लगि सोय।
पूत बिया हैं पाँच बरस को गहने धरत फिरै घर बार।।
रुपया फेंके जल्लादन पर घर भरि देय पतुरिया क्यार।
वेद मँगैबे के चन्दा को सुनतै नाम सूखि जिऊ जाय।।

वे उन मृतक-श्राद्ध भोजी तथा इस आस्था को लेकर जीने वाले कि मरने के पश्चात् भी उन्हें श्राद्ध के माध्यम से सुस्वादु भोजन मिलता रहेगा, भूदेवों को भी घृणा की दृष्टि से देखते थे जो स्वोदर पूर्ति हेतु इस प्रकार के पाखण्डों को बढ़ावा देते हैं। उधर सच्चे ब्राह्मणों को तो भरपेट भोजन भी नसीब नहीं होता–

मरेउ खाऊ तुम खीरखांड हम जियहिं छुधा कृशनिपट निकाम।।

भारतेन्दु काल के ही एक अन्य लेखक, पत्रकार तथा साहित्यकार पं. राधाचरण गोस्वामी तो वैष्णव कुल में उत्पन्न होने तथा गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य होने पर भी स्वामी दयानन्द की उदात्त विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थे। इतना ही नहीं, उनकी तो यह दृढ धारणा थी कि स्वामी दयानन्द प्रदर्शित मार्ग पर चलने से ही हिन्दू धर्म की उन्नति हो सकती है। उन्होंने स्वामी जी को भगवान् की विभूति कहकर उल्लिखित किया, तथा एक बार वार्तालाप के प्रसंग में यहाँ तक कह दिया कि 'स्वामी दयानन्द के वाक्य मुझे वेदवाक्यवत् मान्य हैं।'[4]

गोस्वामी जी की विचारधारा स्वामी दयानन्द की विचार सरणि से कितनी और किस प्रकार प्रभावित थी, यह इसी तथ्य से प्रमाणित होता है कि उन्होंने स्वामी जी की ही भाँति इस देश का नाम 'आर्यावर्त' तथा इस देश के निवासियों का नाम 'आर्य' प्रतिपादित किया था। वे बाल विवाह निषेध, विधवा विवाह समर्थन, षोडश संस्कार-विधान, समुद्रयात्रा के औचित्य तथा गो रक्षा के महत्त्व आदि उन सभी मन्तव्यों पर स्वामी दयानन्द से पूर्ण सहमति रखते थे, जिनका प्रचार स्वामी जी के जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। भारत के निवासी लोगों का वास्तविक नाम आर्य है, इसी तथ्य

का प्रतिपादन करते हुए गोस्वामी जी ने एक पुस्तक भी लिखी थी, जिसका शीर्षक था—'आर्यशब्द का उपपादन—हिन्दू मत कहो।'

भारतेन्दु काल के साहित्यकारों ने प्रचलित धार्मिक एवं सामाजिक बुराइयों तथा पाखण्डों के खण्डन के लिए व्यंग्य, विनोद तथा परिहास की शैली का सहारा लिया था। यही शैली स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र प्रयुक्त हुई है। भारतेन्दु के समकालीन लेखकों ने विभिन्न कल्पनामूलक आख्यान व्यंग्य तथा हास्य रस का आश्रय लेकर लिखे जिनमें उन्होंने सामाजिक कुप्रथाओं पर तीखे प्रहार किए हैं। राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यम लोक की यात्रा' एक ऐसी ही व्यंग्य रचना है। इस कथा के लेखक को इस बात का बड़ा खेद है कि "न विलायत जाने की रोक उठी न जाति पाँति का झगड़ा मिटा।" मृत्यु के समय गोदान करने से आसन्न मृत्यु के ग्रास जीव को वैतरणी नदी को पार करने में सहायता मिलती है, इस लोकप्रचलित अन्धविश्वास पर फब्ती कसते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं—"यदि गो की पूँछ पकड़कर वैतरणी पार उतर जाते हैं तो क्या बैल से नहीं उतर सकते। जब बैल से उतर सकते हैं तो कुत्ते ने क्या चोरी की ?" कितनी कठोर तथा तीखी मार है पौराणिक विश्वासों पर, और यह प्रहार करने वाला और कोई नहीं पवित्र वैष्णव कुलोत्पन्न गोस्वामी राधाचरण है।

राधाचरण गोस्वामी की दयानन्द भक्ति इतनी अधिक बढ़ी जिससे उनके वैष्णव मतानुयायी साथी यह आशंका करने लगे कि कहीं गोस्वामी जी अपने पूर्वजों के मत का परित्याग कर आर्यसमाजी न बन जाएँ। इस तथ्य का संकेत डा. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक में किया है—"राधाचरण गोस्वामी ने एक भजन में वैदिक धर्म के पुनरुत्थान की चर्चा की थी जिस पर भारतेन्दु ने गुप्त रीति से 'कवि वचन सुधा' में उसका उत्तर छपवाया था। इससे उनके धर्मप्रिय साथियों में बड़ी खलबली मची कि यह सनातनधर्म छोड़कर नए मतों की ओर झुक रहे हैं। इन्होंने भारतेन्दु के उत्तर का प्रत्युत्तर उन्हीं की पत्रिका में छपाया। इससे इनका जी खुल गया और यह अधिक स्वाधीनता से लिखने लगे। उन्होंने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ पढ़े और अनेक बार उनसे बातचीत भी की। यह उनके व्याख्यान सुनने न जा सकते थे, क्योंकि कुल धर्म में किसी के नीचे बैठना मना था। पीछे उन्होंने यह कुल धर्म भी छोड़ दिया।" यहाँ यह भी स्मरणीय है कि जब लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'मित्र विलास' नामक पत्र में स्वामी दयानन्द के विरोध में अनेक प्रकार की अनर्गल सामग्री छपने लगी तो राधाचरण गोस्वामी ने उसका मुँहतोड़ उत्तर दिया था। गोस्वामी जी ने 'भारतेन्दु' नामक मासिक पत्र भी निकाला था, जिसमें वे यदा-कदा स्वामी जी के सम्बन्ध में प्रशंसापूर्ण लेख लिखते रहते थे।

हिन्दी प्रदीप के सम्पादक तथा प्रसिद्ध निबन्धकार पं. बालकृष्ण भट्ट यद्यपि आस्था और विश्वास की दृष्टि से सनातनधर्मी ही थे, किन्तु वे स्वामी दयानन्द और

आर्यसमाज की प्रगतिशील विचारधारा तथा युगसापेक्ष नीतियों के अत्यन्त प्रशसक भी थे। स्वामी जी के निधन पर उन्होंने स्वसम्पादित हिन्दी प्रदीप में दिवगत संन्यासी के प्रति अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा था—"इसमे कुछ सन्देह नहीं कि इस अभागे भारत की भलाई और कल्याण के प्रयत्न में आपने अपने जीवन-पर्यन्त एक क्षण का भी अन्तर नहीं डाला...आपका यह पवित्र विग्रह यूरोप खण्ड के किसी देश में इस गुरु भाव से प्रकट हुआ होता तो जिस उन्नति के शैल शिखर तक पहुँचाने की सीढ़ी आप बना रहे थे, उसको अवश्य पूर्ण कर देते और देश का देश आपका सहकारी और सहायक बन जाता।[5] इसी प्रकार आपने आर्यसमाज की जीवन्तता तथा कर्मठता को अनुभव कर एक प्रसंग में लिखा था—"जीवन यदि किसी सम्प्रदाय या समाज में है तो वह आर्यसमाज में है।" निश्चय ही भट्ट जी की उदार एवं गतिशील दृष्टि के पीछे स्वामी दयानन्द की प्रेरणा ही दिखाई पड़ती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने भारतेन्दु तथा उनके समकालीन साहित्यकारो पर पड़े स्वामी दयानन्द की विचारधारा के प्रभाव को प्रस्तुत किया है। इस विवचेन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काव्य के भाव पक्ष का निर्माण करने में आर्यसमाज की विचारधारा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

5. हिन्दी प्रदीप में स्वामी दयानन्द को श्रद्धाजलि।

अध्याय-4

द्विवेदीकालीन कविता और आर्यसमाज

हिन्दी कविता के जिस काल को सामान्यतया द्विवेदी काल के नाम से जाना जाता है, उस युग की हिन्दी कविता को पं. रामचन्द्र शुक्ल ने 'द्वितीय उत्थान की कविता' कहा है। इस काल के काव्य का भाव पक्ष तो भारतेन्दु काल में ही स्वीकार किए गए देशभक्ति, समाज सुधार, भारत के प्राचीन गौरव का आख्यान जैसे विषयों को लेकर चला है। परन्तु भाषा और काव्य शैली की दृष्टि से इस युग की कविता को अपनी पूर्ववर्ती कविता से अधिक प्रौढ तथा भिन्न प्रकार की मानना होगा। भारतेन्दु काल के अधिकांश कवियों का ब्रजभाषा के लिए प्रत्यक्ष पक्षपात था। उनमें से अधिकांश की यह धारणा थी कि काव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त ब्रजभाषा ही है और इसमें जो लालित्य, माधुर्य और पद सौन्दर्य है वह खड़ी बोली में आना सम्भव ही नहीं है। खड़ी बोली को रूक्ष, कर्कश तथा उसकी शब्दावली को कर्णकटु कहने में भी अनेक कवियों को संकोच नहीं हुआ था। किन्तु द्विवेदीकाल तक आते-आते खड़ी बोली को काव्य के लिए उपयुक्त भाषा स्वीकार न करने का संकोच दूर हो गया। पं. श्रीधर पाठक को खड़ी बोली कविता का वाल्मीकि कहा जाता है जिन्होंने 'एकान्त वासी योगी' शीर्षक काव्य की रचना कर खड़ी बोली में काव्य निर्माण का प्रारम्भ किया।

उनके पश्चात् पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का कार्य अत्यन्त मनोनिवेशपूर्वक किया। अंग्रेजी के प्रसिद्ध रोमाण्टिक कवि वर्ड्स्वर्थ की भाँति उनकी भी यही धारणा थी कि गद्य और पद्य के लिए एक सी ही भाषा का प्रयोग होना चाहिए। उनका यह सुनिश्चित मत था कि यदि हिन्दी का गद्य खड़ी बोली में सफलता के साथ लिखा जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि इस भाषा में उच्च कोटि की काव्य रचना न की जा सके। उनका यह कथन भी सटीक था कि सौन्दर्य और शृंगार के भावों को अभिव्यक्त

करने में चाहे ब्रजभाषा कितनी ही उपयुक्त रही हो, किन्तु साम्प्रतिक युग की सामाजिक तथा राष्ट्रीय परिस्थितियों और प्रश्नों का भावपूर्ण चित्रण करने में जितनी समर्थ खड़ी बोली हो सकती है, उतनी ब्रजभाषा नहीं। छन्दविधान के सम्बन्ध में भी उनकी कुछ मौलिक धारणाएँ थीं। वे मानते थे कि खड़ी बोली में लिखने वाले कवियों को संस्कृत वर्णवृत्तों का प्रयोग निस्संकोच रूप से करना चाहिए। द्विवेदी जी पर मराठी साहित्य का प्रभाव और संस्कार था। वे देख चुके थे कि मराठी भाषा के कवियों ने संस्कृत के वर्णवृत्तों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। वे इसी प्रवृत्तिार को हिन्दी में भी लाना चाहते थे। यद्यपि द्विवेदी जी के समकालीन कुछ कवियों ने कवित्त, सवैया, दोहा, छप्पय आदि छन्दों का सफलतापूर्वक प्रयोग खड़ी बोली कविता लिखते समय भी किया था, किन्तु साहित्यकर्मियों में यह धारणा बद्धमूल हो गई थी कि उपर्युक्त छन्द मुख्यतः ब्रजभाषा के अपने छन्द हैं और उसी भाषा में लिखी कविता को उक्त छन्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

कवि के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिन्दी को योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। उनका काव्य बहुत कुछ इतिवृत्तात्मक, अभिधा प्रधान तथा वर्णनात्मक ही है।[1] अनुभूति-प्रवण और रससिद्ध कवि के रूप में द्विवेदी जी को ख्याति नहीं मिली किन्तु भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य के कुछ अंशों का काव्यानुवाद तथा कतिपय अन्य रचनाएँ उनको कवि के रूप में प्रतिष्ठित अवश्य करती हैं। द्विवेदी जी कवि के रूप में चाहे साहित्य के इतिहास में अपना उच्च स्थान न बना पाए हों, उनके आचार्यत्व में किसी को शंका नहीं हुई। उन्होंने अपने युग के कवियों का जिस प्रकार मार्गदर्शन किया, उन्हें कवि कर्म सिखलाया, काव्य रचना विषयक उनकी त्रुटियों एवं स्खलनों का मार्जन किया तथा स्वसम्पादित 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में उनकी काव्यकृतियों को प्रकाशित कर जिस प्रकार इन कवियों का उत्साहवर्धन किया, ये और इसी प्रकार के कार्य द्विवेदी जी को साहित्य के आचार्य के रूप में सम्मान प्रदान कराते हैं। उनके सम्पर्क और प्रोत्साहन से जिन कवियों ने हिन्दी काव्य को समृद्ध किया उनकी सूची बहुत लम्बी है। किन्तु इस कवि मण्डली के महत्त्व का अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि द्विवेदी जी के शिष्य मण्डल में मूर्धन्य स्थान राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को प्राप्त है।

महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की आलोचना करके ही हम द्विवेदी-कालीन काव्य की प्रवृत्तियों की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। गुप्त जी का काव्य गुण और परिमाण दोनों दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उनके काव्य में वर्णित विषयों के वैविध्य का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक ओर वे रामायण, महाभारत, पुराण तथा संस्कृत के अन्य आकर ग्रन्थों से अपने काव्य का विषय चुनते

1. द्रष्टव्य–किरातार्जुनीय का द्विवेदी जी कृत पद्यानुवाद।

हैं तो दूसरी ओर राजपूत और सिख इतिहास के गौरवपूर्ण प्रसंगों को भी काव्य में वर्णित करना नहीं भूलते। 'साकेत' और 'पंचवटी' रामकथा पर आश्रित काव्य हैं। 'शकुन्तला' का उपाख्यान महाभारत में वर्णित हुआ है। 'द्वापर' लिखकर गुप्त जी ने कृष्ण कथा का विवेचन किया है। इसी प्रकार 'जयद्रथवध' के द्वारा उन्होंने महाभारत के ही एक रोमांचक प्रसंग को पद्यबद्ध किया है। 'यशोधरा' में बुद्ध की कथा ली गई है तो 'सिद्धराज', 'रंग में भंग' तथा 'विकट भट' आदि आख्यानक काव्य राजपूतों की वीरतापूर्ण गाथाओं को लेकर लिखे गए हैं। 'गुरुकुल' में सिख गुरुओं के त्याग, बलिदान और धर्मप्रेम का आख्यान किया गया है तो 'काबा और कर्बला' में मुसलमानी इतिहास के करुणाजनक प्रसंग को काव्य रचना के उपादान के रूप में स्वीकार किया गया है। आलोचकों की इस धारणा में पर्याप्त सचाई है कि गुप्त जी ने काव्य की सभी युग प्रचलित प्रवृत्तियों को अपनाने में कभी संकोच नहीं किया। यही कारण है कि छायावाद और रहस्यवाद की कविता से उनकी प्रतिनिधि कविता का मूल स्वर भिन्न होते हुए भी उन्होंने 'झंकार' शीर्षक संग्रह में संगृहीत कविताओं की रचना की, जिनमें रहस्य भावना के दर्शन होते हैं।

यह बात नहीं कि द्विवेदीकाल के सभी कवि आचार्य द्विवेदी को ही अपना काव्य-गुरु या मार्गदर्शक मानते रहे हों। उस युग में अनेक कवि ऐसे भी थे जो द्विवेदी जी के प्रभामण्डल से पृथक् रहकर तथा उनके प्रभाव से मुक्त रहकर काव्य रचना करते थे। ऐसे कवियों में पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा रामनरेश त्रिपाठी के नाम लिए जा सकते हैं। कविता कामिनीकान्त नाथूराम शंकर शर्मा का काव्यदर्शन यद्यपि द्विवेदी जी के काव्य सिद्धान्तों से बहुत मेल नहीं खाता था तथापि द्विवेदी जी ने ही उनकी रचनाओं को सरस्वती में स्थान देकर उन्हें हिन्दी पाठक समुदाय से परिचित कराया था। यहाँ हमने द्विवेदीकाल के कवियों और उनके काव्य की जो संक्षिप्त चर्चा की है, उसका प्रयोजन यह बताना ही है कि यही वह युग था जब आर्यसमाज से प्रभावित कवियों ने भी अपना काव्य लेखन किया। द्विवेदी युग के काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ, जिनका हम आगे उल्लेख कर रहे हैं, न्यूनाधिक रूप से आर्यसमाजी कवियों में भी उपलब्ध होती हैं। इन कवियों ने भी रामायण, महाभारत आदि संस्कृत महाकाव्यों के अनेक महत्त्वपूर्ण तथा प्रेरणादायी प्रसंगों को लेकर भावपूर्ण काव्य-रचना की है। इसी प्रकार मध्यकालीन राजपूत इतिहास के अनेक मार्मिक प्रसंग इनके काव्य का विषय बने हैं। इन कवियों ने द्विवेदी कालीन कवियों की ही भाँति विगत युग के भारत के गौरवपूर्ण प्रसंगों को अपने काव्य में अंकित किया है तो देश की वर्तमान दुर्दशा, अधोगति तथा देशवासियों में व्याप्त अज्ञान, अशिक्षा, दरिद्रता, दासता आदि बुराइयों को लेकर भी वे अपने शोकोद्गार व्यक्त करने में पीछे नहीं रहे हैं। अतः आर्यसमाज के कवियों का द्विवेदी कालीन हिन्दी कवियों से भाव और कला के क्षेत्रों में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। यह

भी अप्रकट नहीं है कि उस युग के अधिकांश कवि आर्यसमाज के सिद्धान्तों और विचारों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभावित हुए थे। द्विवेदीकालीन हिन्दी कविता पर आर्यसमाज के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन एक अन्य विद्वान् ने किया है, अतः उसे पुनः आलोचित करना पिष्टपेषण ही होगा।[2]

इससे पूर्व कि हम अपने ग्रन्थ के मुख्य विवेचनीय विषय पर आएँ, यह आवश्यक है कि द्विवेदीकालीन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों को हम सूत्रबद्ध कर लें। ये इस प्रकार हैं–

1. द्विवेदीकाल के काव्य को प्रतिक्रिया मूलक काव्य इस अर्थ में कहा जाता है कि रीतिकाल में व्याप्त काव्य में शृंगरातिरेक की प्रवृत्ति के विरोध में इस काल के कवियों में तीव्र प्रतिक्रिया तथा विरोध लक्षित होता है। यही कारण है कि यदि रीतिकाल के कवि के पास नर और नारी के उद्दाम शृंगार के वर्णन के अतिरिक्त अन्य कोई वर्ण्य विषय ही नहीं है तो द्विवेदीकाल के कवि के लिए शृंगार रस सर्वथा वर्जित ही रहा है। वह नारी के प्रेम, विलास और शृंगार वर्णन का पूर्णतया बहिष्कार कर बैठा है। यदि कहीं प्रसग की अनिवार्यता के कारण स्त्री पुरुष के प्रेम का वर्णन उसे करना भी पड़ा है तो उस वर्णन में भावों की तरलता या रस पेशलता के दर्शन नहीं होते। सच तो यह है कि आर्यसमाज आन्दोलन की अतिपवित्रता वादी (Puritan) दृष्टि भी काव्य से शृंगार वर्णन के निष्कासन का कारण रही है। दिनकर के शब्दों में "इस युग के कवियों को शृंगार की कविता लिखते समय यह प्रतीत होता था मानो स्वामी दयानन्द पास ही खड़े हों और सब कुछ देख रहे हों।"[3]

2. इस युग की कविता में देशभक्ति, समाज सुधार, समाज की वर्तमान शोकजनक दुरवस्था, भारत के अतीत का गौरवगान, मध्यकाल के राजपूत, मराठा आदि जातियों के शौर्य, वीर्य, पराक्रम तथा आर्य मर्यादाओं के संरक्षण जैसे कार्यो का प्रशस्ति-गान सर्वत्र उपलब्ध होता है। उर्दू के कवि हाली ने जिस प्रकार अपने मुसद्दस काव्य में इस्लाम के गौरव का वर्णन कर भारत के मुसलमानों को अपनी वर्तमान दुर्दशाजन्य परिस्थिति से उठकर सँभलने का आह्वान किया था, उसी प्रकार इस काल का हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त 'भारत भारती' काव्य लिखकर न केवल आर्यो के गरिमापूर्ण अतीत का ही वर्णन करता है, किन्तु इसी गौरवशाली जाति की वर्तमान हीनदशा को देखकर आँसू भी बहाता है। उसकी कविता में आशा का स्वर भी है क्योंकि देश के उज्ज्वल भविष्य के प्रति वह पूर्ण विश्वास लेकर चला है। इसी युग में प्रसिद्ध समाजसुधारक तथा आर्यसमाज के सिद्धहस्त लेखक हरविलासशारदा का हिन्दू सुपीरियोरिटी (Hindu Superiority) नामक विख्यात ग्रन्थ प्रकाशित

2. द्विवेदी युगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव–डा. भक्तराम शर्मा।
3. काव्य की भूमिका–डा. रामधारी सिंह दिनकर।

हुआ,[4] जिसमें यह सप्रमाण सिद्ध किया गया था कि ज्ञान विज्ञान तथा जीवन की भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा था जिसमें विगत काल की हिन्दू जाति ने सर्वोच्च सफलता न पाई हो। आर्यसमाज के कवियों के तत्कालीन काव्य के लिए विषय जुटाने में हिन्दू सुपीरियोरिटी जैसे ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दू धर्म, संस्कृति, जीवन पद्धति तथा विचारधारा की श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता का प्रतिपादन इन कवियों ने अत्यन्त तल्लीनतापूर्वक किया है।

3. प्रकृति के सहज, सुन्दर तथा आकर्षक रूप की ओर तो इस काल के कवि सामान्यतया आकृष्ट हुए, किन्तु उनके काव्य में मिलने वाला प्रकृति वर्णन बहुत कुछ स्थूल, इति वृत्तात्मक तथा वस्तु परिगणन शैली का ही है। आर्यसमाजी कवियों का काव्य तो प्रकृतिवर्णन की दृष्टि से और भी दरिद्र है। उनके काव्य में उपदेशात्मकता का स्वर इतना प्रबल हो गया है कि प्रकृति के रम्य रूपों की झाँकियाँ प्रस्तुत करने का न तो उन्हें समय ही मिला और न इसके औचित्य की ओर ही उनका ध्यान गया।

4. इस काल में महाकाव्य लेखन के प्रति कवियों की रुचि का ह्रास हुआ। महाकाव्य प्रणयन के लिए जिस विशाल दृष्टि, उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा तथा काव्य रीति पर असाधारण अधिकार की आवश्यकता होती है, उसका प्रायः कवियों में अभाव ही था। पुनः महाकाव्य को पढ़ने तथा उसका रसग्रहण करने की क्षमता बिरले पाठकों में ही होती है। महाकाव्य की तुलना में पौराणिक, ऐतिहासिक तथा अन्य प्राचीन कथानकों के आधार पर छोटे खण्ड काव्य लिखने की परिपाटी इस काल में विशेषतया विकसित हुई। इन काव्यों में आदर्श रक्षा में सर्वस्व बलिदान कर देने वाले वीर नायकों, चरित्र एवं सतीत्व की रक्षा के लिए आत्म त्याग का सर्वोच्च आदर्श स्थापित करने वाले नारी पात्रों तथा स्वामिहित के लिए प्राणों तक को न्योछावर कर देने वाले आदर्श सेवकों के चरित्र अंकित किए गए हैं।

5. द्विवेदी काल में खड़ी बोली ने काव्य भाषा के रूप में अपना एकाधिकार तो स्थापित कर लिया था किन्तु काव्य के लिए उपयुक्त मार्दव, लावण्य और कोमलता उसमें अभी तक नहीं आ सकी थी। खड़ी बोली का प्रयोग करने वाले ये कवि भी अपने अन्तर्मन में कहीं न कहीं यह धारणा पाल बैठे थे कि इस भाषा की कर्कशता और रूक्षता को दूर करना कठिन है तथा इसमें ब्रजभाषा की भाँति मसृणता और माधुर्य आना तो असम्भव ही है। यह दूसरी बात है कि कालान्तर में सुमित्रानन्दन पन्त तथा छायावाद के अन्य कवियों ने खड़ी बोली को अपने काव्य का माध्यम बना कर उसे मृदुता, श्रुतिमधुरता आदि गुण प्रदान किए। द्विवेदीकाल के कवियों की भाषा गद्यवत् (Prosaic) हो गई है। इतिवृत्तात्मक वर्णनों का बाहुल्य होने के

4. Hindu Superiority प्रथम संस्करण 1906 में प्रकाशित।

कारण इस कविता में लाक्षणिकता, वक्रता तथा ध्वन्यात्मकता का अभाव ही है।

6. ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले कवित्त, सवैया, दोहा, छप्पय आदि छन्दों का प्रचलन इस युग में कम हो गया। यह मान लिया गया कि ये छन्द खड़ी बोली की अपेक्षा ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अधिक अनुकूल हैं। संस्कृत के छन्दों के प्रयोग के साथ-साथ उर्दू के 'बहर' छन्द तथा बंगला के 'पयार' छन्द का प्रचलन हुआ। भारत भारती में मुख्यतः हरिगीतिका छन्द प्रयुक्त हुआ था। इसी के अनुकरण पर इस काल के अनेक कवियों ने हरिगीतिका का भी भूरिशः प्रयोग किया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर द्विवेदीकाल के काव्य की एक छवि उभर कर हमारे समक्ष आती है। यही वह युग था जब कि आर्यसमाज का प्रचार अपनी सफलता के सर्वोच्च शिखर पर था। भारतेन्दु काल के कवि और लेखक तो आर्यसमाज की विचारधारा से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुए ही थे, किन्तु द्विवेदीकालीन काव्य का तो वैचारिक आधार ही आर्यसमाज का चिन्तन तथा उसके सिद्धान्त रहे हैं। इस युग का कवि धार्मिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु यदि स्वामी दयानन्द से प्रेरणा ग्रहण करता था तो राष्ट्रीय मसलों के हल के लिए वह महात्मा गाँधी की ओर देखता था। गाँधी और दयानन्द ही इन कवियों के आदर्श रहे हैं। इस युग के शीर्ष कवि मैथिलीशरण गुप्त तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय आर्यसमाज के सदस्य न होने पर भी इसके सिद्धान्तों तथा कार्यों के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखते थे। मैथिलीशरण ने साकेत में राम को ईश्वरावतार तो अपनी वैष्णव आस्था के आग्रह के कारण ही कहा है, वस्तुतः साकेत के राम एक आदर्श महापुरुष हैं जिनमें आर्योचित आदर्शो की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। हरिऔध ने अपने महाकाव्य प्रियप्रवास में कृष्ण के कथानक को स्वीकार करते हुए भी पुराण वर्णित अलौकिक कथाओं को उसी रूप में प्रस्तुत नहीं किया है, जिस रूप में वे भागवत आदि पुराणों में वर्णित हुई हैं। इसके विपरीत वे इन घटनाओं का युक्तिसंगत स्पष्टीकरण इस प्रकार देते हैं जिससे उनका अलौकिक रूप तो समाप्त हो ही जाता है वह पाठक को पूर्णतया बुद्धिसंगत लगती हैं। इसे आर्यसमाज का प्रभाव ही कहना चाहिए कि प्रियप्रवास की गोपियाँ देश सेविका का रूप धारण कर अपने जीवन को समाज हित के लिए समर्पित कर देती हैं।

द्विवेदी काल के नाथूराम शंकर शर्मा आदि कुछ कवि तो ऐसे हैं जो आर्यसमाज की आस्थाओं तथा धारणाओं के प्रति पूर्णतया प्रतिबद्ध हैं। यह दूसरी बात है कि साहित्य के इतिहास में इन कवियों के साथ पूर्ण न्याय केवल इसीलिए नहीं हो सका, क्योंकि वे अपने आपको आर्यसमाजी कहलाने का अपराध (?) कर बैठे थे। हिन्दी के काव्यानुशीलनकर्ताओं को पं. पद्मसिंह शर्मा जैसे मर्मज्ञ समालोचक का कृतज्ञ होना चाहिए जिसने शंकर के काव्य की उत्कृष्टता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया तथा उसके समृद्ध कला पक्ष को सही रूप में परखने की दृष्टि हमें दी। पं. नाथूराम शंकर शर्मा, पं. हरिशंकर शर्मा तथा पं. अनूपशर्मा आदि प्रख्यात कवियों

के अतिरिक्त अन्य भी ऐसे अनेक आर्य कवि हैं जिनके नाम यद्यपि साहित्य के इतिहासों में अनुल्लिखित ही हैं तथापि जिनकी कविता भाषा, भाव, शैली--प्रत्येक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। इनमें बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज के अन्यान्य महापुरुषों को नायक के रूप में स्वीकार कर अनेक उत्कृष्ट कार्यों की रचना की है। इसके अतिरिक्त आर्यसमाज की धार्मिक तथा सामाजिक विचारधारा से अनुप्राणित होकर समाज सुधार, नारी उत्थान, नशा निवारण, कुरीति उन्मूलन, अछूतोद्धार आदि शतशः विषयों पर काव्य रचना करने वाले कवियों की संख्या भी पर्याप्त है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महापुरुषों का चरित गान, समाज सुधार, नीति विषयक उपदेश तथा देश के गौरव का वर्णन इन कवियों के प्रिय काव्य विषय हैं।

आर्यसमाज प्रमुखतः एक धर्मान्दोलन है जिसके मूल में वेदों की आध्यात्मिक एवं दार्शनिक मान्यताएँ विद्यमान हैं। आर्यसमाज आस्तिक पुरुषों का समुदाय है जिसकी परमात्मा विषयक धारणाओं का आधार वेद, उपनिषदादि प्राचीन ग्रन्थ हैं। वैदिक धर्म में स्वीकृत ज्ञान, कर्म तथा उपासना को आर्यसमाज ने भौतिक एवं पारलौकिक उन्नति के साधनों के रूप में स्वीकार किया है। ईश्वरोपासना की उसकी अपनी पद्धति है। आर्यसमाजी कवियों ने आध्यात्मिक विषयों को भी अपने काव्य में वर्णित किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्यसमाजी कवियों का काव्य प्रधानतः हिन्दी के द्विवेदीयुग की अनेक प्रवृत्तियों को स्वीकार करते हुए भी अनेक अर्थों में अपना वैशिष्ट्य लिए हुए है।

अध्याय-5

स्वामी दयानन्द के जीवनपरक हिन्दी महाकाव्य

शास्त्रीय या ज्ञान प्रधान साहित्य से भिन्न रसपरक साहित्य को आचार्यों ने 'काव्य' की संज्ञा प्रदान की है। संस्कृत में यत्र-तत्र साहित्य तथा काव्य पर्याय के रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं। भारतीय मान्यता के अनुसार वेद ही संसार का प्राचीनतम काव्य है, और इसमें काव्य के सभी तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। ईश्वर कृत होने से वेदों को अलौकिक या दिव्य काव्य कहने की परिपाटी आर्य परम्परा में प्रचलित है, जबकि पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार वेद मन्त्रों की रचना ऋषियों के द्वारा हुई है जो कवि प्रतिभा से युक्त थे। कालान्तर में रामायण आदि जिन काव्यों की रचना हुई उनके रचयिताओं के नाम का स्पष्ट निर्देश होने के कारण उन्हें पौरुषेय या लौकिक काव्य कहा गया। रामायण और महाभारत जैसे आर्ष किन्तु लौकिक महाकाव्यों के आधार पर ही कालान्तर में साहित्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के लक्षणों का निर्धारण किया।

प्रस्तुत अध्याय में हम आर्यसमाजी कवियों द्वारा लिखित कुछ ऐसी महाकाव्य धर्मी कृतियों का विवेचन करेंगे जो स्वामी दयानन्द को नायक के रूप में स्वीकार कर लिखी गई हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं लक्ष्य ग्रन्थों को देखकर ही काव्य के लक्षणों का निर्धारण किया जाता है। पूर्ववर्ती काव्यों में पाई जाने वाली सामान्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करके ही परवर्ती कवियों के मार्गदर्शन के लिए काव्य लक्षणों को आचार्यों ने स्वीकार किया है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में महाकाव्य के जो लक्षण बताए गए हैं, उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं।

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। सर्गों की संख्या को लेकर भी कुछ नियम बनाए गए हैं। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग वांछनीय माना गया है, किन्तु सर्गान्त में छन्द परिवर्तन को आवश्यक ठहराया गया है।

2. महाकाव्य का नायक धीरोदात्त गुण युक्त कोई महापुरुष होना चाहिए जो अद्वितीय रूप, गुण, चरित्र और शील सम्पन्न हो।

3. महाकाव्य का अंगी (प्रधान) रस शृंगार, वीर अथवा शान्त होना चाहिए। अन्य रसों का भी प्रसंगोपात्त निर्वाह होना आवश्यक है।

4. महाकाव्य का प्रणयन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि के लिए होता है। अर्थात् महाकाव्य में वर्णित प्रसंगों के सम्यक् अध्ययन से मनुष्य चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करता है।

5. महाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण (ईशवंदना), कथावस्तु का निर्देश तथा सज्जनों का वर्णन रहता है।

6. यथा अवसर और यथा प्रसंग महाकाव्य में नदी, वन, पर्वत, निर्झर, उपत्यका, सागर, सरोवर, उद्यान, वाटिका आदि प्रकृति के सुरम्य एवं मनोहर दृश्यों का आह्लादकारी वर्णन रहता है। प्रसंगानुकूल षटऋतु वर्णन भी किया जाता है।

शास्त्र वर्णित महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षण तो इस काव्य रूप का स्थूल और बाह्य ढाँचा ही प्रस्तुत करते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि उपर्युक्त नियमों की परिपालना करने वाला कोई काव्य निश्चित रूप से महाकाव्य पद का अधिकारी बन ही जाए। महाकाव्य का सर्वोपरि और प्रमुख लक्षण तो यह है कि ऐसी कृति में कवि को अपने राष्ट्र की संस्कृति तथा जीवन दर्शन को विराट् फलक पर प्रस्तुत करना चाहिए। उसे पढ़कर पाठक को नवीन प्रेरणा मिलनी चाहिए। संस्कृत के रामायण, महाभारत तथा हिन्दी के पद्मावत, रामचरितमानस और कामायनी आदि महाकाव्यों की सफलता और सार्थकता उनमें निहित संदेश तथा उनमें चित्रित भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति के कारण ही मानी जाएगी। केवल शैली पक्ष का निर्वाह हो जाना ही महाकाव्य की उत्कृष्टता का प्रमाण नहीं है। वस्तुतः किसी भी देश के महाकाव्य की श्रेष्ठता और उत्कृष्टता की प्रमुख पहचान उसमें अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति तथा मनुष्य को उत्कर्ष की ओर ले जाने वाला उसका उदात्त सन्देश ही है।

आर्यसमाज के प्रति आस्थावान् हिन्दी कवियों ने अपने आचार्य एवं गुरु स्वामी दयानन्द के महनीय चरित्र तथा विराट् व्यक्तित्व को लेकर अनेक उत्कृष्ट महाकाव्यों की रचना की है। निश्चय ही दयानन्द जैसा महाप्राण व्यक्ति किसी भी भाषा के काव्य के नायक पद पर प्रतिष्ठित होने का पूर्ण अधिकारी है। अपने अपूर्व ब्रह्मचर्य, अद्भुत मानसिक, आत्मिक और शारीरिक बल से सम्पन्न, प्रबल इच्छाशक्ति युक्त इस महापुरुष ने लोकहित के लिए समाधि के आनन्द का भी परित्याग कर दिया था। लोक मंगल की सिद्धि को जीवन का लक्ष्य बनाकर इस महापुरुष ने मृत्युपर्यन्त स्वदेश की भलाई, जन सेवा तथा मानव के व्यापक हित की कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन किया। दयानन्द निश्चय ही धर्मवीर, सत्य वीर तथा त्याग वीर थे। इसलिए वीर रस की इस साक्षात् मूर्ति दयानन्द को अपने काव्यों का नायक चुन कर कवियों ने सर्वथा उचित ही किया है। दयानन्द के जीवन पर आधारित महाकाव्यों

का अंगी रस शान्त है क्योंकि तप, त्याग, तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य आदि लोकोत्तर गुण सम्पन्न इस महापुरुष का जीवन स्थितप्रज्ञता का उत्कृष्ट उदाहरण है। यों, इन महाकाव्यों में अवान्तर रूप से अन्य रसों की भी प्रसंगोचित व्यंजना हुई है– यथा वीर, करुण आदि। दयानन्द को नायक के रूप में स्वीकार कर लिए गए इन महाकाव्यों में भाव और कला पक्ष का प्रायः सन्तुलन ही दिखाई देता है। यदि अब तक ये काव्य साहित्य-समीक्षकों की दृष्टि से ओझल रहे तथा साहित्य के इतिहासकारों ने इनकी विस्तृत आलोचना नहीं की, तो इसके लिए इन कृतियों के विधाता कवियों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। आगे के पृष्ठों में हम स्वामी दयानन्द के जीवन पर आधारित महाकाव्यों का विस्तृत परिचय दे रहे हैं। **धर्म दिवाकरोदय काव्य**–(अर्थात् आदित्य ब्रह्मचारी श्री 108 स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवनचरित)

महाकाव्य शैली में लिखित इस ग्रन्थ के रचयिता कविकुमार शेरसिंह वर्मा हैं। ग्रन्थकार बुलन्दशहर जिले के कर्णवास नामक ग्राम के निवासी थे। गंगा के किनारे बसा कर्णवास वह स्थान है, जहाँ स्वामी दयानन्द एकाधिक बार गए थे और वहाँ के क्षत्रियों को वैदिक धर्म की दीक्षा दी थी। शेरसिंह वर्मा भी स्वामी दयानन्द के समकालीन थे और उनकी स्वामी जी से भेंट 1924 वि. में कर्णवास में ही हुई थी। धर्म दिवाकरोदय के प्रारम्भ में कवि ने 'स्वपरिचय और कर्णवास का इतिहास' लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि कवि के पूर्वज अवध के रहने वाले थे परन्तु मुगल सम्राट् जहाँगीर द्वारा प्राप्त जमींदारी का उपभोग करने के लिए उन्हें पश्चिमोत्तर प्रदेश में आना पड़ा। कवि के पिता का नाम ठाकुर सीताराम सिंह था जो सूर्यवंशी बैस क्षत्रिय थे। ये अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। कविकुमार की शास्त्रीय शिक्षा टीकाराम शास्त्री के द्वारा हुई थी। ये वही पं. टीकाराम थे जिन्होंने स्वामी दयानन्द को कर्णवास में धर्म प्रचारार्थ आमन्त्रित किया था। कवि ने पं. टीकाराम से काव्य रचना की रीति भी सीखी थी–

गुरु जी टीकाराम जिन्हों से शिक्षा पाई।
छन्द रचन की विधी कृपा कर मोहि, बताई।।

धर्म दिवाकरोदय के अतिरिक्त कविकुमार शेरसिंह ने अन्य भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें से निम्न के नाम वे स्वयं उल्लिखित करते हैं–ब्रह्म निरूपण, कवि विनोद बधाई, नित्यसुमिरिनी, वियोगसन्ताप चालीसा, नमस्ते, यथार्थगीता आदि।

धर्म दिवाकरोदय उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसकी समाप्ति 1970 वि. में हुई जैसा कि कवि ने निम्न पद्य में लिखा है–

संवत् नभ ऋषि अंक चन्द्र मास आसोजहि जानो।
शरद पूर्णिमा तिथि ग्रन्थ पूरन हुआ मानो।।

यह महाकाव्य 12 मयूखों में समाप्त हुआ है। ग्रन्थारम्भ में कवि निम्न दोहों में निराकार परमात्मा की वन्दना के रूप में मंगलाचरण करता है—

विभु अनन्त आनन्द घन ईश्वर सर्वाधार।
अज अचिन्त्य अव्यक्त प्रभु अलख जगत् करतार।
अविनाशी अव्यय हरी शुक्र अकाय अपार।
अव्रण अनित्य असीम शिव नित्य शुद्ध ओंकार।।

स्वामी दयानन्द के आविर्भाव काल की धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन करने के पश्चात् अवशिष्ट सर्गों (मयूखों) में कवि उनके जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं को वर्णानात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। कविकुमार द्वारा स्वामी जी के जीवन की सभी घटनाएँ रोचक तथा चित्ताकर्षक शैली में अंकित की गई हैं, विशेषतः कर्णवास का प्रसंग तो कवि की निजी जानकारी के आधार पर लिखा जाने के कारण यथार्थ चित्रण का एक उत्कृष्ट नमूना बन गया है।

धर्म दिवाकरोदय की रचना का मुख्य प्रयोजन स्वामी दयानन्द के लोक विश्रुत जीवन को काव्य का जामा पहनाना ही था। इसलिए कवि की दृष्टि घटनाओं के वर्णन पर ही अधिक टिकी है। इतिवृत्तात्मक शैली के काव्यों में प्रकृति के सुरम्य चित्रण की प्रायः उपेक्षा हो जाती है। यह बात आलोच्य काव्य पर भी घटित होती है, तथापि यत्र-तत्र कुछ प्राकृतिक चित्रांकन अवश्य हुआ है। धार्मिक एवं सामाजिक पाखण्डों के चित्रण में कवि ने यथार्थवादी शैली का सहारा लिया है और स्वामी दयानन्द के युग में व्याप्त विकृत सामाजिक ढाँचे को पूर्ण तटस्थता के साथ प्रस्तुत किया है।

कविता की भाषा ग्रामीण ब्रज है जिसमें खड़ी बोली का पुट भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। सरल, सीधी-सादी भाषा में महापुरुष दयानन्द के जीवन की गाथा को प्रस्तुत करना ही कवि का लक्ष्य था। मुख्यतया दोहा तथा चौपाई छन्द ही इस काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं सोरठा तथा रोला का भी प्रयोग किया गया है।

'वियोगी सन्ताप चालीसा'—स्वामी दयानन्द के निधन के उपरान्त शोक काव्य (Elegy) के रूप में लिखी गई कविकुमार की यह एक अन्य उत्तम काव्य कृति है। 40 पद्यों में लिखी गई इस शोक गीतिका में दोहा, सोरठा, छप्पय, सवैया, त्रोटक, कवित्त तथा कुण्डलिया छन्दों का प्रयोग हुआ है। स्वामी जी के परलोकगमन पर निर्दयी काल को उपालम्भ देते हुए कवि ने निम्न मार्मिक पंक्तियाँ लिखी हैं—

अरे निरदई काल दया तोहि नेकन आवे।
जो प्रगटे जग माँहि ताहि तू तुरतहि खावे।

परस्वारथ जे करहिं तिनहु तू सोचत नाहीं।
भले बुरे को ज्ञान तनक हूँ नहि तो मांही।।
धिक तोहि वाहि धिक अति महा जामें तू व्यापक रहै।
धिक इनहिं उनहिं धिक है सदा जे न तेहि धिक धिक कहै।

अन्तिम पंक्तियाँ भर्तृहरि की उस प्रसिद्ध उक्ति का स्मरण कराती हैं जिनमें अपनी पत्नी के पुंश्चलीपन को देख कर कवि सबको धिक्कृत करता है--

धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च। (नीतिशतक-1)

कविकुमार के अन्य काव्य ग्रन्थों--ब्रह्मनिरूपण काव्य, अवश्य कर्तव्योपदेश, कवि विनोद, नित्यसुमरिनी आदि का उल्लेख भी मिलता है। त्योहारमाला तथा यथार्थगीता सम्भवतः पद्य में नहीं लिखी गई थीं। उनके द्वारा लिखे गए स्वामी दयानन्द के कर्णवास प्रवास के संस्मरण इन पंक्तियों के लेखक द्वारा सम्पादित किए गए हैं।

दयानन्द जीवनकाव्य--(हरिदत्त वर्माकृत)

1913 ई. में आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई द्वारा प्रकाशित दयानन्द जीवनकाव्य एक अप्रसिद्ध काव्य कृति है। स्वामी मंगलानन्दपुरी द्वारा लिखित इस ग्रन्थ की भूमिका से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता का मूल नाम रामबुझारथलाल कायस्थ था जिन्होंने अपने नाम को बदल कर हरिदत्त वर्मा रख लिया। इस ग्रन्थ को काव्य गुणों की दृष्टि से सामान्य कोटि में ही रखा जाएगा। इतिवृत्तात्मक वर्णन प्रधान शैली में लिखे गए इस काव्य में दोहा, चौपाई के अतिरिक्त कवित्त, सवैया तथा हरिगीतिका आदि छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। गोविन्दराम हासानन्द कलकत्ता द्वारा प्रकाशित दयानन्द चित्रावली में 'दयानन्द जीवन काव्य' के लम्बे-लम्बे उद्धरण उन चित्रों के भावों को स्पष्ट करने के लिए दिए गए हैं, जिनमें स्वामी दयानन्द के जीवन की प्रमुख घटनाओं को चित्रकार की तूलिका से चित्रित किया गया है। इस काव्य की भाषा ब्रज है जिसमें प्रसाद गुण सर्वत्र पाया जाता है।

सिद्धपुर के मेले में ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य (दयानन्द) जब पिता द्वारा पकड़े जाते हैं, तो घर से भागे बालक की भर्त्सना करते हुए पिता कहते हैं--

करि क्रोध अरुणारे नयन पितु वयन तीक्षण बोलेऊ।
हा कलंकी शंक ना तोहि कुल कलंक को खोलेऊ।
करि क्रोध गेरुया वसन को गहि फारि महिपै डारेऊ।
अरु कर कमण्डल पटकि महि धरि बाँह दोऊ झटकारेऊ।।

सिद्धपुर में पिता द्वारा पुनः बन्दी बना लिए गए दयानन्द के एक बार पुनः

भागने के वृत्तान्त को कवि ने इस प्रकार निबद्ध किया है–

> तृण तैं कुलिश कुलिश तृण करहीं। तासु उपासक कब बन्ध रह हीं।
> जेहि तेहि करिकै रैनि सिरानी। भोर होते दृग सब अलसानी।
> आहट लिए गए सब सोई। तबहिं चल्यो सर्वहिं मुख गोई।।

दयानन्द जीवनकाव्य अब एक दुर्लभ ग्रन्थ हो गया है।

दयानन्द चरित मानस–(आर्यमुनि कृत)

स्वामी दयानन्द की जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित दयानन्द चरितमानस संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि की एक उत्कृष्ट काव्य कृति है। खेद है कि इसका प्रथम खण्ड (जन्म काण्ड) ही लिखा जा सका जो 1981 वि. (1925 ई.) में बी.एल. पावमी के हितचिन्तक प्रेस काशी में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ था। पं. आर्यमुनि का जन्म पटियाला राज्य के रुमाणा ग्राम में हुआ था। इनका अध्ययन काशी में हुआ, जहाँ ये स्वामी दयानन्द के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आए। इनका जन्म का नाम मनिराम था, किन्तु कालान्तर में ये आर्यमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। पं. आर्यमुनि संस्कृत और शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान् थे। इन्होंने कई वर्षो तक डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में संस्कृत और दर्शनशास्त्र का अध्यापन किया था। उपनिषद्, दर्शन, गीता आदि अधिकांश शास्त्र ग्रन्थों पर इन्होंने विस्तृत आर्य भाष्य लिखे हैं।

पं. आर्यमुनि को काव्य रचना करने का शौक था। फलतः वे अपने शास्त्रीय ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र पद्य रचना कर देते थे। दयानन्द चरितमानस गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस की शैली में लिखी गई एक मनोहारी काव्यकृति है। दोहा, चौपाई शैली में निबद्ध इस काव्य में संस्कृत के तत्सम शब्दों का भूरिशः प्रयोग हुआ है। ग्रन्थारम्भ में कवि निराकार परमात्मा की स्तुति करते हुए लिखता है–

> बंदौ प्रथम अनीह अनामा।
> जासु भजे सुधरे सब कामा।।
> देस काल वस्तु कृत भेदा।
> त्रिविध भेद कृत नहिं परिछेदा।।
> मुनि मुनीश जे पार न पावा।
> मम मति अल्प विषय किमि आवा।।
> कोटि कोटि नभ मण्डल तारे।
> कौन गने नहिं जाय विचारै।।
> निगमागम जिहि पार न पावा।
> अगम अगाध प्रभु की माया।।

पं. आर्यमुनि की यह काव्य रचना तत्कालीन पटियाला राज्य के बरनाला नामक कस्बे में लिखी गई थी। काव्य रचना के काल तथा स्थान का उल्लेख कवि ने ग्रन्थान्त के दोहों में इस प्रकार किया है—

> पटियाला शुभ राज्य में बरनाला जिहि नाम।
> तिहिं में मुनि प्रस्तुत कियो महाकाव्य को काम।।
> शासन श्री भूपेन्द्रहरि पाय कथा यह ज्ञान।
> संवत ग्रह विधु विक्रमी एक अशीति जान।।

इन पंक्तियों का भाव यह है कि पटियाला राज्य के बरनाला नामक स्थान में कवि ने महाराजा भूपेन्द्रसिंह के शासनकाल में 1981 वि. में इस काव्य का प्रणयन किया था।

पं. आर्यमुनि ने स्वामी दयानन्द की प्रशस्ति में फुटकर सवैये भी लिखे हैं। ऐसे ही आठ सवैयों को 'दयानन्द चित्रावली' में संगृहीत किया गया है। सरल एवं प्रसादपूर्ण शब्दावली में निर्मित यह सवैया पं. आर्यमुनि के काव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है—

> धन्य भई इनकी जननी जिन भारत आरत के दुख टारे।
>
> रवि ज्ञान प्रकाश किया जग में तब अन्ध निशा के मिटे सब तारे।
> दिन रात जगाय रहे हमको दुखनाशक रूप पिता जो हमारे।
> शोक यही हमको अब है जब नींद खुली तब आप पधारे।।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवनचरित—कृष्ण आर्योपदेशक अमृतसरी द्वारा लिखित।

दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर कृष्ण आर्योपदेशक का स्वामी दयानन्द के जीवन को काव्य रूप में निबद्ध करने वाला उक्त काव्य श्रीमती विद्यावती दिल्ली (मेहरौली) द्वारा प्रकाशित हुआ। यह दो भागों में समाप्त हुआ है। प्रथम भाग 1924 ई. में और द्वितीय 1925 ई. में छपा। इस काव्य के रचयिता कृष्ण अमृतसरी का जन्म अमृतसर जिले के महलांवाला ग्राम में श्री दयालाराम के यहाँ 1867 ई. में हुआ था। इनके गुरु पं. रामरत्न थे जो रायकोट (जिला लुधियाना) में आर्यसमाज के उपदेशक थे। कृष्ण अमृतसरी ने आगे चलकर संन्यास की दीक्षा ले ली और स्वामी धीरानन्द के नाम से विख्यात हुए। इनका निधन 6 जून 1941 ई. को गुरुदत्त भवन लाहौर में हुआ।

स्वामी दयानन्द के जीवनचरित को काव्यबद्ध करने की प्रेरणा इन्हें स्यालकोट जिले के भूपालवाला ग्राम निवासी पं. मूलराज ने दी थी। कृष्ण अमृतसरी के इस काव्य का आधार स्वामी सत्यानन्द रचित श्रीमद्दयानन्द प्रकाश नामक ग्रन्थ है जो

अपने भाषा-सौष्ठव एवं कथानायक के प्रति लेखक की अपार श्रद्धा के कारण दयानन्द के जीवनचरित-साहित्य में पृथक् स्थान रखता है। इस काव्य के प्रथम खण्ड में दोहा, कवित्त, सवैया, लावनी आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं जब कि दूसरा खण्ड राधेश्याम रामायण की शैली में लिखा गया है जो अपने युग की एक लोकप्रिय गेय शैली थी।

कृष्ण अमृतसरी के इस काव्य में साहित्यिक उत्कर्ष के इच्छुक पाठक को तो निराशा हाथ लगेगी। लेखक का प्रयोजन भी उच्चकोटि की काव्य कृति का निर्माण करना नहीं था। वह तो स्वामी दयानन्द की पवित्र जीवन गाथा को जनसाधारण के लिए सरल पद्य शैली में प्रस्तुत करना चाहता था। इस काव्य की समाप्ति माघ शुक्ला 6, 1981 वि. को हुई। कवि ने इसे हरिद्वार में समाप्त किया था। ग्रन्थ की प्रकाशिका श्रीमती विद्यावती कवि की पुत्री ही थीं, जिनसे उसे लेखनकार्य में सहायता मिलती रही। जनसाधारण के लिए रचित इस काव्य की एक बानगी निम्न पद्य में देखी जा सकती है–

हरिद्वार का कुम्भ महाजग में
सम्प्रदायियों की है रजधानी।
झुण्ड के झुण्ड करें प्रश्नोत्तर।
पण्डित साधु जो थे महामानी।
धूम मची सब कुम्भ के भीतर
साधु दयानन्द है महाज्ञानी।
सन्मुख आय न बोल सके कोऊ
युक्ति बताय न उसके सानी।।

कविता की भाषा खड़ी बोली है जिसमें यत्र-तत्र ब्रजभाषा का मिश्रण हुआ है। लेखक की मातृभाषा पंजाबी थी अतः उसका यह काव्य पंजाबी प्रभाव को भी बचा नहीं सका है।

बोधरात्रि महाकाव्य–विज्ञानमार्तण्ड वात्स्यायन कृत

एक बौद्ध भिक्षु द्वारा आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द के जीवन को लेकर किसी महाकाव्य का लिखा जाना आश्चर्यजनक ही कहा जा सकता है। परन्तु यह सत्य है कि विज्ञानमार्तण्ड वात्स्यायन बौद्ध भिक्षु ही थे और उनके द्वारा रचित 'बोधरात्रि' महाकाव्य स्वामी दयानन्द के जीवन एवं कृतित्व को विदग्धतापूर्ण शैली में काव्यबद्ध करने का एक सुन्दर प्रयास है। यदि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन हमें वात्स्यायनजी की जानकारी नहीं देते तो यह जानना कठिन ही था कि यह बौद्ध भिक्षु कौन था और उसे साहित्य को क्या कुछ दिया है ?

भिक्षु विज्ञान मार्तण्ड का मूल नाम मांगीलाल शर्मा था और इनका जन्म अजमेर

के एक ब्राह्मण परिवार में 1909 ई. में हुआ। अपने नगर में ही प्रारम्भिक अध्ययन समाप्त कर ये लाहौर चले गए जहाँ से इन्होंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् काशी में रहकर किसी विद्वान् संन्यासी से अध्ययन किया। इसी समय इनकी जिज्ञासा बौद्ध धर्म के प्रति हुई और राहुलजी तथा डा. काशीप्रसाद जायसवाल की सहायता से ये 1938 में बर्मा चले गए। यहाँ रहकर उन्होंने पालिभाषा का गहन अध्ययन किया तथा बौद्ध मत के अनुशीलन में प्रवृत्त हुए। आर्यसमाज के सम्पर्क में तो वे अपने लाहौर निवास काल में ही आ गए थे, यद्यपि आर्यसमाजी के सदस्य कभी नहीं रहे। माण्डले (बर्मा) में उनकी भेंट वहाँ के डी.ए.वी. हाई स्कूल के मुख्याध्यापक श्री रामचन्द्र भारती से हुई। इन्हीं की प्रेरणा से विज्ञानमार्तण्ड ने अपना प्रसिद्ध बोधरात्रि महाकाव्य लिखा जो भारती जी लिखित विशिष्ट टिप्पणियों सहित सरस्वती बुक डिपो माण्डले से 1939 ई. में प्रकाशित हुआ। कुछ समय पश्चात् वात्स्यायन जी स्वदेश लौट आए और काशी में रहने लगे। देश विभाजन के समय वे कराची में थे और सम्भवतः वहाँ पर ही साम्प्रदायिक उपद्रवों में उनकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार एक प्रतिभा सम्पन्न कवि अज्ञात परिस्थितियों और अल्प वयस में ही संसार से प्रस्थान कर गया।

बोधरात्रि का एक अन्य संस्करण दयानन्द संस्थान नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है। 11 सर्गों में समाप्त बोधरात्रि काव्य कवि की अनूठी सूझ, अनुपम कल्पना शक्ति तथा शास्त्र एवं लोक के उसके अद्‌भुत ज्ञान का परिचायक है। सम्पूर्ण काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् कवि के सम्बन्ध में पाठक की जो धारणा बनती है उसका निष्कर्ष यही है कि इस महाकाव्य का रचयिता स्वच्छन्द प्रकृति का एक ऐसा कलाकार है जो सांसारिक मर्यादा एवं काव्य-रचना में औचित्य के सिद्धान्त को भी अधिक महत्त्व नहीं देता। वस्तु चित्रण में यह यथार्थवादिता का हामी है और अपने कथ्य को अधिकाधिक सारगर्भित एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए वह जिस प्रकार के आलंकारिक उपकरणों का प्रयोग करता है उनके औचित्य के सम्बन्ध में हम प्रश्नचिह्न भले ही लगा दें, उसे कवि की निराली सूझ कहकर हमें उसकी दाद देनी ही पड़ती है। विषयवस्तु के निर्वाह की ही भाँति विज्ञानमार्तण्ड भाषा के प्रयोग में भी अपने आपको पूर्णतया बन्धन मुक्त समझते हैं। उनके काव्य की भाषा में जहाँ संस्कृत की क्लिष्ट से क्लिष्ट शब्दावली का निर्बाध प्रयोग मिलता है, वहाँ उर्दू, फारसी के सरल एवं कठिन शब्दों का प्रयोग करने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं होता। ऐसा लगता है कि अपने वक्तव्य को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना ही उन्हें अभीष्ट है और इसके लिए वे किस भाषा के किन शब्दों का, किस मात्रा या अनुपात में प्रयोग करें, इसके लिए वे अन्य किसी से सलाह लेना आवश्यक नहीं समझते।

बोधरात्रि के काव्य गुणों की ओर हिन्दी के समीक्षकों का ध्यान अब तक नहीं गया, इसका एक मात्र कारण यही है कि स्वामी दयानन्द के जीवन को आधार

बना कर लिखे गए इस काव्य के पाठकों की संख्या भी बहुत अधिक नहीं रही। पुनः भिक्षु वात्स्यायन की सम्भवतः इस कृति को छोड़कर अन्य कोई काव्य रचना प्रकाशित भी नहीं हुई। जो हो, यह आवश्यक है कि बोधरात्रि की समीक्षा विस्तार-पूर्वक की जाए, ताकि उसके गुणावगुणों को प्रकट किया जा सके।

सर्वप्रथम हम इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में प्रस्तुत कथावस्तु की संक्षिप्त आलोचना करते हुए विशेषताओं को तलाश करेंगे। बोधरात्रि महाकाव्य का आरम्भ ही टंकारा की उस शिवरात्रि के वर्णन से होता है जिसमें घटित एक घटना ने बालक मूलशंकर के जीवन क्रम का ही परिवर्तन नहीं किया, उसे भारत का महान् धर्माचार्य तथा सामाजिक क्रान्ति का ध्वजवाहक भी बनाया। प्रथम सर्ग में शिवरात्रि के पर्व पर शिवमन्दिर में जागरण हेतु आए उपासकों के उपासना विषयक शैथिल्य एवं प्रमाद का रोचक वर्णन है। सर्ग का आरम्भ घोर तमसाच्छन्न निशा के वर्णन से होता है। 120 पद्यों के इस सर्ग में कवि की व्यंग्य-प्रधान शैली का प्रथम बार पाठक को दर्शन होता है। वह धार्मिक पाखण्डों और कदाचारों पर कठोर व्यंग्य की वर्षा करने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ता। जागरण की निशा में उपासकों का निद्रा के वशीभूत होकर सो जाना कवि को खटकता है। इस कारण वह कहता है—

शिवरात्रि की शिवरात्रि में है जागरण करना लिखा।
पर द्विज इधर सोए पड़े हैं खोल कर अपनी शिखा।
उपवास से कृशगात्र इनका, श्वास यद्यपि श्रान्त है।
नव सोमरस के पान से अन्तःकरण कुछ भ्रान्त है।

कवि को इस बात से बड़ी हैरानी है कि शिव की जटाओं में बैठे सर्प को देखकर भी प्रतिमा पर चढ़े निर्माल्य का भक्षण करने वाले चूहे को किसी प्रकार का भय नहीं है—

बन्धन बना बैठा हुआ यद्यपि जटा में सर्प था।
तो भी वहाँ पर खेलता निर्भीक आखु सदर्प था।।

वस्तुतः कवि पुराण वर्णित, कपोलकल्पित, साम्प्रदायिक कथाओं पर प्रहार करने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ता। शिवपुराण वर्णित दारुवन की कथा में वर्णित शिव की परनारी लोलुपता को लक्षित कर वह कहता है—

जो पारदारिक भोग लोलुप इन्द्रियों का दास है।
वह दाह मन्मथ का करे होता नहीं विश्वास है।।

इसी प्रसंग में वह मूर्तिपूजा हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरणों की निरर्थकता बतलाने के लिए कहता है—

जागरण जिसकी सृष्टि है निद्रा प्रलय अतिघोर है।
उसके लिए घड़ियाल घण्टा शंख का क्या शोर है ?

कवि को लगता है कि पर्वत पुत्री पार्वती का सम्पर्क पाकर स्वयं शंकर ही पाषाण रूप हो गए हैं–

संसर्ग के गुण प्राप्त कर क्या असलियत भव खो गए ?
पाषाणजा के संग से पाषाण ही खुद हो गए।

मूर्तिपूजा से फैलाए गए इस अनर्थकारी पाखण्ड को लक्षित कर कवि की लेखनी निर्मम और कटु हो जाती है। उसे लगता है कि पापी पेट के लिए ही यह सब आडम्बर किए जाते हैं–

क्या बुतपरस्तों के शिरोमणि अकल के मोहताज हैं।
या पेट पापी के लिए सजने पड़े ये साज हैं ?

इसी सर्ग में मूलशंकर की भगिनी तथा चाचा की मृत्यु के कारण उत्पन्न परिस्थितियों का वर्णन करते हुए कवि ने उसके मृत्यु पर विजय पाने के संकल्प को भी प्रकट किया है। मूलशंकर के मन में शंका उत्पन्न होती है कि अमरत्व प्राप्त करना क्या मनुष्य के लिए सम्भव है, अथवा इसे एक स्वप्न और कल्पना ही मानना होगा–

अमरत्व सच्ची चीज है या आसमां का फूल है।
अब तक किसी को है मिला या मनचलों की भूल है ?

प्रथम सर्ग की समाप्ति मूलशंकर की वेद, धर्म तथा स्वदेश के प्रति निष्ठा तथा उस संकल्प की अभिव्यक्ति से होती है जिसे वह लोक हित की सिद्धि के लिए धारण कर चुका है–

जय वेद की, जय धर्म की, जय भद्र भारतवर्ष की।
जय क्रान्ति की, स्वातन्त्र्य की, जय जाति के उत्कर्ष की।।

बोधरात्रि का द्वितीय सर्ग उत्तराखण्ड में स्थित किसी मठाधीश के ऐश्वर्य विलास के वस्तुनिष्ठ चित्रण से आरम्भ होता है। हिन्दू धर्म में प्रचलित धार्मिक पाखण्डों, आडम्बरों, मिथ्या विश्वासों तथा मूढ़ धारणाओं पर अभिशाप दृष्टि करने में कवि किंचित मात्र भी संकोच नहीं करता। इसलिए वह प्रथम तो हमारे धर्माधीशों के अपार सांसारिक ऐश्वर्य तथा भोग विलास का नग्न चित्रण करता है। जिस धर्म के तथाकथित धर्माचार्य और महन्त गण अत्यधिक इन्द्रियलोलुप, विषय वासना के पंक में निमग्न तथा व्यसन ग्रस्त हों, उस धर्म के पतन में शंका करना ही व्यर्थ है। धर्माचार्यो और

महन्तों की लम्पटता तथा विषय-लोलुपता का वर्णन मैथिलीशरण गुप्त तो संकेत मात्र से ही करते हैं–

भक्त स्त्रियाँ हैं गोपियाँ गोस्वामी ही गोपाल हैं। (भारत भारती)

किन्तु विज्ञानमार्तण्ड इन्हें इतनी सहजता से नहीं छोड़ते। उन्होंने मठों और मन्दिरों में विद्यमान अनाचार, दुराचार तथा व्यभिचार को ढँकने वाले सभी पर्दों को एक बार ही उठाकर धर्म के नाम पर प्रचलित बीभत्सता तथा चरित्रहीनता को बेनकाब कर दिया है। यहाँ उनकी शैली हिन्दी के उन अति यथार्थवादी उपन्यासों में प्रस्तुत किए गए वर्णनों की शैली से अधिक भिन्न नहीं है जो समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा अनाचार को उसकी सम्पूर्ण यथार्थता के साथ उद्घाटित करने में संकोच नहीं करते। महन्त के पान से रंजित अधरों को देखकर कवि को बिल्ली द्वारा चूहे का खाया जाना याद आता है–

ओष्ठ पुटों को अरुण बनाते मुख से पान चबाते हैं।
जैसे कभी विडाल प्रेम से हत मूषक को खाते हैं।।

मठ की दीवारों पर अंकित कृष्ण और गोपियों के शृंगार भावापन्न चित्रों को देखकर कवि को खेद होता है। ये वही चित्र हैं जिनमें कृष्ण द्वारा गोपियों के वस्त्र चुराने तथा रास लीला के शृंगारोत्पादक दृश्य चित्रित किए गए हैं। कवि को कृष्ण के निष्कलुष चरित्र को दूषित करने वाले इन चित्रों को देख कर हैरानी और परेशानी तो होती है, किन्तु वह जानता है कि सभी प्रकार की सांसारिकता को भ्रम समझने वाले भारत के इन तथाकथित वेदान्तवादी महन्तों के लिए अच्छे और बुरे, सदाचार तथा दुराचार में अन्तर करना ही कठिन है। इसी भाव को वह निम्न प्रकार व्यक्त करता है–

दीवारों पर चित्रकला का दृश्य दृष्टि में आता है।
जोकि कृष्ण को चोर और व्यभिचार निरत बतलाता है।
नहीं बद्ध है मुक्त न कोई धर्म कर्म की नहीं प्रथा।
स्थूलाक्षर में अंकित है यह मोहमयी वेदान्तकथा।

इसी सर्ग में कवि ने स्वामी दयानन्द के उत्तराखण्ड की उपत्यकाओं में भ्रमण तथा योगिगवेषण के रोमांचक प्रसंगों का वर्णन किया है। इस सर्ग का समापन करते हुए कवि ने निम्न पद्य को भरतवाक्य के रूप में लिखा है–

बनकर कीर्ति मुसाफिर तेरी चन्द्र बिम्ब को चूमेगी।
सागर को गोष्पद कर देगी, दश दिगन्त में घूमेगी।

गर्ज उठा तब सिंह गुहा में एवमस्तु यह ठीक हुआ।
आत्म विजय से मार मृत्यु को वीरपथिक निर्भीक हुआ।।

बोधरात्रि का तृतीय सर्ग मथुरा में रहकर स्वामी दयानन्द के विद्याध्ययन की झाँकी प्रस्तुत करता है। वैष्णवों की प्रिय नगरी मथुरा साम्प्रदायिक दुर्नीतियों और धर्म के नाम पर रचे जाने वाले पाखण्डों का एक पुंज नहीं तो और क्या है ? इसी मथुरा के निकट बहने वाली यमुना और उसके तटवर्ती प्रान्तों में निर्मित विशाल मन्दिरों, भवनों और अट्टालिकाओं में होने वाली वैभव-विलास पूर्ण लीलाओं का वर्णन करने में कवि की लेखनी अत्यन्त प्रगल्भ हो गई है। मथुरा के अनेक प्रसंग कवि को हास्य रस की सामग्री भी प्रदान करते हैं। ज्योतिषी पण्डित जब यजमान से संकल्प का मन्त्र पढ़ाते समय 'शुक्ल' के स्थान पर 'कृष्ण पक्ष' बोल उठा और यजमान ने उसे टोका तो 'कृष्ण की मथुरा' का निवासी पण्डा जो कुछ कहता है उसे सुनिए–

था पक्ष तो शुक्ल परन्तु कोई
संकल्प में पण्डित कृष्ण बोला।
रोका उसे तो उसने कहा कि,
है कृष्ण का पक्ष यहाँ हमेशा।

युद्ध से त्रस्त होकर द्वारिका की ओर पलायन कर जाने वाले रणछोड़ और कुब्जा बिहारी कृष्ण की पूजा कवि को असमंजसकारी प्रतीत होती है। रणछोड़ और कुब्जा बिहारी की पूजा के प्रति उसका निर्मम व्यंग्य इस प्रकार प्रकट हुआ है–

देखो अनाड़ी रणछोड़ जी को
ये मालती माल्य चढ़ा रहे हैं।
अपूज्य का पूजन मूर्खता है।
धिक है उसे जो रणछोड़ भागा।।

तथा–

धरी हुई मूर्ति घृणा बढ़ाती
कुब्जा बिहारी भगवान् की है।
क्या औरतों की इतनी कमी थी
या व्यास की बुद्धि की हानि है।

इसी सर्ग में विरजानन्द को गुरुदक्षिणा देने के प्रसंग में दयानन्द द्वारा धार्मिक पाखण्डों का उन्मूलन करने तथा वैदिक धर्म के प्रचार में अपना जीवन अर्पित कर देने के संकल्प को व्यक्त किया गया है।

चतुर्थ सर्ग में कुम्भ के अवसर पर स्वामी दयानन्द के हरिद्वार आगमन तथा यहाँ दिए गए उनके उपदेशों को हृदयग्राही ढंग से वर्णित किया गया है। कुम्भ के वर्णन के प्रसंग में कवि को एक बार पुनः धार्मिक पाखण्डों पर अपने वचन बाणों की वर्षा करने तथा साम्प्रदायिक अनाचारों पर कठोर अभिशाप वृष्टि करने का अवसर मिल गया है। कवि ने कल्पना प्रवण दृष्टि से देखा कि गिरि और पुरी उपाधिधारी संन्यासियों के आचरण कितने भ्रष्ट एवं पतित हो गए हैं।

कोई पुरी के साथ बैठी तल्प पर निर्भीक है।
कोई उदर की वेदना गिरि से कराती ठीक है।।

वस्तुतः तीर्थो में युवा नारियों का आगमन अनाचार वृद्धि का ही कारण बनता है। यह तो कहने की बात है कि वे यहाँ पुण्यार्जन के लिए आती हैं–

आई यहाँ हैं औरतें क्या पुण्य पाने के लिए ?
या भ्रूण हत्या आदि के पातक बढ़ाने के लिए।।

स्वामी दयानन्द के क्रान्तिकारी उपदेशों को कवि ने अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से काव्यबद्ध किया है। गंगा में स्नान करने से ही मुक्ति मिलती है, इस धारणा का खण्डन करते हुए स्वामी दयानन्द कहते हैं–

किस धर्म के उद्देश्य से गंगा नहाते हो यहाँ
इन मुफ्तखोरों के लिए क्यों ज़र बहाते हो यहाँ।
है पास पानी के अगर अपवर्ग दर की चाबियाँ।
तो मुक्त क्यों होती नहीं हैं तैर कर मुर्गाबियाँ ?

यज्ञ में मारे जाने वाले पशु की स्वर्ग प्राप्ति तथा मृतकों का श्राद्ध करने से मृत पितरों की तृप्ति जैसी अंध धारणाओं का भी स्वामी जी उपहास करते हैं। यज्ञ में पशुहिंसा तथा मृतक श्राद्ध के निषेध में यों तो ये युक्तियाँ शताब्दियों पूर्व चार्वाक दर्शन में प्रस्तुत की गई थीं,[1] किन्तु स्वामी दयानन्द भी इनसे सहमत थे। कवि ने स्वामी जी द्वारा प्रस्तुत एतद्विषयक युक्तियों को इस रूप में प्रस्तुत किया है–

मख में निधन हैवान को यदि स्वर्ग होता हो कहीं।
निज तात का ही घात तो यजमान क्यों करता नहीं ?[2]

और–

---

1. सत्यार्थप्रकाश के 12वें समुल्लास में उद्धृत।
2. पशुश्चेन्निहतः स्वर्ग ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।।

मृत जन्तुओं की तृप्ति में यदि श्राद्ध कर्म समर्थ है।
तो फिर मुसाफिर को सफर का खर्च देना व्यर्थ है।[3]

पाँचवाँ सर्ग कवि की उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का सर्वोच्च निकष है। इसमें प्रयुक्त भाषा वैभव, कल्पना का चमत्कार तथा भाव गाम्भीर्य सभी कुछ अनुपम है। स्वामी दयानन्द का काशी आगमन तथा यहाँ रहकर अनेक विद्वानों से हुए उनके वाद-संवाद, शास्त्रार्थ-विचार आदि को कवि ने पूर्ण कौशल के साथ चित्रित किया है। इस सर्ग में कवि प्रसाद गुण को छोड़कर ओज गुण स्वीकार कर लेता है, फलतः उसकी काव्य भाषा भी गाढबंध युक्त, क्लिष्ट तथा समास बहुला हो गई है। अप्रचलित शब्दों के प्रयोग ने इस सर्ग को प्रायः दुर्बोध बना दिया है तथापि अनेक शास्त्रीय प्रकरणों तथा सूक्ष्म तर्क-योजना को छन्दोबद्ध करना भी किसी चमत्कार से कम नहीं है। कवि स्वयं कहता है कि कवि शिरोमणि की वर लेखनी से प्रसूत उस पदार्थ विवेचना पूर्ण युक्ति प्रसंग को पूर्णतया समझ लेना सरल नहीं है—

इस पदार्थ विवेचन युक्ति को
समझना जिसका दुश्वार है।
लिख दिया जिसने वह धन्य है
कवि शिरोमणि की वर लेखनी।।

छठे सर्ग में स्वामी दयानन्द का जयपुर आगमन तथा वहाँ क्षत्रियों के समूह समक्ष दिए गए उनके ओजस्वी उपदेशों को पद्यबद्ध किया गया है। कवि की कल्पना है कि जयपुर नरेश ने स्वामी जी को उपदेश हेतु अपने राजमहल में आमन्त्रित किया है। श्री महाराज के प्रवचन को सुनने के लिए राजकुल की ललनाएँ भी पर्दे के पीछे बैठी हैं। स्वामी जी ने अपने प्रवचन में क्षत्रियों को सम्बोधित किया तथा उन्हें चेतावनी देते हुए कहा कि अब तक उन्होंने आपस में वैर और विरोध बढ़ाकर 'सुन्दोपसुन्द न्याय' से एक दूसरे का गला ही काटा है। भागवत वर्णित मुचकुन्द की तरह वे अपने आपको भूल कर आलस्य एवं प्रमाद की निद्रा में सोए पड़े हैं—

वीर क्षत्रियो ! देशदशा का तुम्हें नहीं है जरा ख्याल।
रहते हुए तुम्हारे क्यों हैं हुआ हिन्द इतना बेहाल।।
तुम सुन्दोपसुन्द नय से कर अपने दल बल को क्षार।
सोते हो मुचकुन्द तुल्य क्या तन मन धन का भान बिसार।।

इसी सर्ग में कवि ने स्वामी दयानन्द की स्वराज्य विषयक उस प्रसिद्ध उक्ति

---

3. मृतानामपि जन्तूनां श्राद्ध चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेय कल्पनम्।।

को भी छन्दोबद्ध किया है जिसमें उन्होंने सुराज्य की अपेक्षा स्वराज्य को वरीयता प्रदान करते हुए कहा था—"कोई कितना ही करे किन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तरों के आग्रह रहित, अपने और पराए का पक्षपात शून्य, पुत्र पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"[4] स्वामी जी के इस अमर वाक्य का यह रूपान्तर देखिए—

कितना भी मीठा हो चाहे सुन्दर, शान्त विदेशी राज्य।
वह तो भी धर्मार्थ विरोधी मधुमिश्रित घृत सम है त्याज्य।।

स्वामी दयानन्द अंध परम्पराओं और गतानुगतिकता के घोर विरोधी थे। पुरानी बातें केवल पुरानी होने से ही श्लाघ्य नहीं होतीं। पिता के खुदाए हुए कूप से खारे जल का पान करना बुद्धिमत्ता नहीं है। "तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणो क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।" संस्कृत की इस प्रसिद्ध सूक्ति को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

कूप पिता ने खुदवाया था पानी उसमें निकला क्षार।
जो उसको ही पीकर रहते जीवन है बस उनका भार।

सप्तम सर्ग से लेकर ग्रन्थ के अन्तिम 11वें सर्ग तक कवि उन घटनाओं का वर्णन करता है जिनके कारण स्वामी दयानन्द को असमय में ही अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर देनी पड़ी। सातवें सर्ग में कवि ने मरुभूमि मारवाड़ के जीवन, रहन-सहन तथा तत्कालीन परिवेश का रोचक किन्तु यथार्थ चित्र अंकित किया है। उस देश के ब्राह्मणों का काम था सेठ-साहूकारों की चिलमें भरना, रसोई करना, मादक द्रव्यों का सेवन करना तथा भीख माँग कर जीवन-यापन करना। 'पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेति किंकर्त्तव्यम्' इस स्वामि-प्रोक्त आभाणक[5] को कवि ने निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है—

बिना पढ़े तो अमर न होंगे पढ़ कर भी मरना ही है।
तो दाँतों से दिन भर किच किच क्यों फिजूल ही करना है।।

ब्राह्मणों की ही भाँति मरुदेश के क्षत्रियों और वेश्यों की अधोगति का भी कवि ने ज्वलन्त चित्र अंकित किया है। कवि स्वयं अजमेर का ही मूल निवासी था जो मारवाड़ का निकटवर्ती प्रदेश है, अतः उसे इस देश के जन जीवन का यथार्थ ज्ञान

---

4. सत्यार्थप्रकाश (11वें समुल्लास) तथा व्यवहारभानु में उद्धृत।
5. सत्यार्थप्रकाश—आठवाँ समुल्लास।

था। मारवाड़ की स्त्रियों की वेशभूषा, उनके आभूषणों, अलंकरणों तथा सौन्दर्य प्रसाधनों आदि का उसने रोचक वर्णन किया है। सिर के अग्र भाग पर धारण किए जाने वाले आभूषण 'बोर' तथा केशों में 'आंटीं' लटकाने का वर्णन कवि की इसी जानकारी का ही सूचक है।

इसी सर्ग में कवि ने स्वामी दयानन्द के जोधपुर के राजप्रासाद में जाने, वहाँ गणिका के साथ महाराजा जसवन्तसिंह को देखने तथा वेश्या प्रेमी नरेश को फटकारने के प्रसंग भी वर्णित हुए हैं। नन्ही के सौन्दर्य चित्रण के प्रसंग में कवि ने नारी अंगों के लिए परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है। निम्न पद्य द्रष्टव्य है–

> था शैवाल जाल बालों का चपल नेत्र ही मीन हुए।
> बाहु मृणाल चक्रवाकों का मंजु युगल स्तन पीन हुए।
> वदन कमल था श्रोणि शिला थी यौवन जल की लहर बनी।
> मदन तप्त के स्नान हेतु वह मदन मंजरी नहर बनी।।

किन्तु नारी के जघनस्थल को यज्ञ कुण्ड की उपमा देना अलंकार विषयक औचित्य का उल्लंघन ही समझा जाएगा–

> यौवन अनल दीप्त था जिसमें हवन कुण्ड वह जघन घना।
> अग्निहोत्र की मानो जंगम दी स्मरन वह वेदि बना।।

वास्तव में मंगलामुखी गणिकाएँ उन वापियों के तुल्य ही होती हैं जिनमें हर कोई स्नान कर सकता है–

> वापी थी वह जिसमें निर्भय स्नान सभी कर सकते थे।
> ललित लता थी जिसे देखकर नहीं विलोचन थकते थे।।[6]

आकार की दृष्टि से बोधरात्रि का अष्टम सर्ग सबसे बड़ा है। इसमें कवि ने उस षड्यन्त्र का विस्तृत वर्णन किया है जिसके शिकार होकर अन्ततः स्वामी दयानन्द को इस लोक से प्रस्थान करना पड़ा। कवि ने इस प्रसंग का वर्णन करने में अपनी कल्पना का निर्बाध प्रयोग किया है। उसने सर्वप्रथम वेश्या के आवास तथा वहाँ के प्रचुर वैभव तथा ऐश्वर्य-विलास की सामग्रियों का रोचक विवरण प्रस्तुत किया। कवि की धारणा के अनुसार, स्वामी जी को मार डालने का षड्यन्त्र मुख्यतया नन्ही वेश्या,

---

6 शूद्रक कृत मृच्छकटिकम् (प्रथम अक श्लोक 31) की निम्न उक्ति से तुलनीय–
वाप्या स्वाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः।
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे।
त्वं वापीव लतवे नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज।।

जिसे वह 'कल्प-सुन्दरी' कहता है, ने अपने पालक तथा संरक्षक कृष्णानन्द[7] नामक एक संन्यासी से मिलकर तैयार किया। इसमें उसने डाक्टर अलीमर्दान खां तथा स्वामी जी के पाकाध्यक्ष जगन्नाथ को भी सम्मिलित कर लिया था। षड्यन्त्रकारियों के वार्तालाप तथा स्वामी जी को धराधाम से उठा देने की कूटनीतिक योजनाओं को किस प्रकार अन्तिम रूप दिया गया, यह सब कवि ने पूर्ण तल्लीनता तथा विस्तार से चित्रित किया है। कल्प सुन्दरी गणिका ने स्वामी दयानन्द के जोधपुर आगमन को विपत्ति का कारण माना।

भैरव आपत्ति का शिकार यह देश है।
किस कुक्षण में हुआ मुण्डी का प्रवेश है ?

इस विनाशकारी षड्यन्त्र की मन्त्रणा में ही सारी रात बीत गई और उषा का आगमन हुआ–

किन्तु पाप मन्त्रणा में रजनी समाप्त थी।
सुन्दर उषा की लाली अम्बर में व्याप्त थी।
ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत कुक्कुट का नाद था।
लोक की त्रिविधि मानो सत्ता का संवाद था।

नवम सर्ग में पाचक द्वारा स्वामी जी को दूध में विष पिलाने की निदारुण घटना का वर्णन है। विष पीकर ऋषि सदा की भाँति जब शैयासीन हुए, तो उन्हें एक विचित्र स्वप्न दिखाई दिया और उसके पश्चात् शरीर में अस्वस्ति अनुभव कर वे अचानक उठ खड़े हुए। जल पीने से भी विषजन्य दाहकता दूर नहीं हुई और वमन एवं विरेचन ने तो उन्हें यह निश्चय करा दिया कि अवश्य उन्हें विष ही दिया गया है। इस पर जब उन्होंने पाचक से सही-सही बात पूछी तो रसोइया भयकम्पित गात्र से बोल उठा–

विदित क्या भगवन् तुमको नहीं
वितथ सेवक का बकवाद है।
निज पुरातन पातक का यही
फल पका लपका धनहेतु मैं।

उसके मन का पश्चात्ताप भाव इस प्रकार फूट पड़ा–

---

7. नन्ही का गुरु स्वामी गणेशपुरी था न कि स्वामी कृष्णानन्द।

द्विज महायति घातक पाप से,
पतित है यह पाचक आपका।
जगत् में निज मैं दिखला चुका,
भुजगता जगता अनुताप है।

वाक् वैचित्र्य का समर्थ प्रयोग इस सर्ग में पदे-पदे दिखलाई पड़ता है।

दशम सर्ग में कवि की कल्पना अनेक जौहर दिखाती है। सर्ग का आरम्भ जोधपुर नरेश के एक लम्बे स्वगत भाषण से होता है। स्वामी दयानन्द की लोकोपकारक शिक्षाओं ने मारवाड़ राज्य की शासन प्रणाली को आमूलचूक बदलने की कैसी प्रचण्ड इच्छा नरेश में जाग्रत कर दी थी, यह इस स्वगत कथन से ज्ञात होता है। इसी समय उन्हें पुरोहित ने स्वामी दयानन्द के अस्वस्थ होने का समाचार दिया। स्वामी जी के रोगग्रस्त होने की खबर ने महाराजा को चिन्ताकुल कर दिया। कवि ने एक प्राचीन काव्यरूढ़ि का अनुसरण करते हुए इस अवसर पर दृष्टिगोचर होने वाले अपशकुनों की एक विस्तृत सूची ही यहाँ दे दी है। इसके पश्चात् राजदम्पती का रुग्ण स्वामी जी को देखने उनके डेरे पर जाना तथा स्वामी जी का जोधपुर से विदा लेने की बात कहने आदि प्रसंगों का वर्णन कवि ने बहुत कुछ कल्पना धारित ही किया है। इस सर्ग में स्वामी दयानन्द द्वारा महाराजा को दी गई उपयोगी शिक्षाओं को भी बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया है।

एकादश सर्ग इस महाकाव्य का उपसंहारात्मक अध्याय है। सर्गारम्भ में कवि ने अजमेर नगरी के दर्शनीय एवं रम्य स्थानों का हृदयग्राही वर्णन किया है। इसी नगर का निवासी होने के कारण दौलतबाग, आनासागर, केसर बाग, सोनीजी की नसियाँ (जैन मन्दिर), ख्वाजा साहब की दरगाह, बीसला पाल, एडवर्ड मेमोरियल, हस्बैण्ड मेमोरियल हाई स्कूल, मेयो कॉलेज तथा निकटवर्ती पुष्कर आदि अजमेर के प्रमुख स्थानों का वर्णन करने में वह कोई त्रुटि नहीं करता। अपने नगर का मोह प्रबल होता है। मांगीलाल शर्मा नामक अजमेर का यह अज्ञातनामा ब्राह्मण स्वदेश से हजारों मील दूर ब्रह्मदेश के माण्डले नगर में बैठकर दयानन्द सरस्वती के जीवन विषयक महाकाव्य का प्रणयन करता है तो सांसारिक द्वन्द्वों से सर्वथा विमुक्त वीतराग बौद्ध भिक्षु का बाना धारण कर लेने पर भी उसे अजमेर के नृसिंह मन्दिर तथा वहाँ के पास की हलवाइयों की दूकानों पर बनने वाली चटपटी कचौरियों और पकौड़ियों का स्मरण तो आ ही जाता है। इन सुस्वादु पदार्थों के पीछे वह जन्नत में बहने वाली शहद की नहरों को भी भूलने के लिए तैयार है–

बहें भले ही नहरें बहिश्त में सदाकुमारी परियाँ सदा मिलें।
किसे यहाँ की पर याद आएगी कचौरियाँ और पकौड़ियाँ नहीं।।

अजमेर स्थित भिनाय के राजा की कोठी में स्वामी दयानन्द रुग्णावस्था में शय्यासीन हैं। पं. गुरुदत्त उनके निकट बैठे हैं। दोनों में अनेक धार्मिक विषयों पर वार्तालाप हो रहा है। वस्तुतः यह सारा प्रसंग कवि कल्पना प्रसूत है क्योंकि स्वामी दयानन्द का अजमेर का यह अन्तिम निवास तो मात्र चार दिन का ही था और उस समय महाराज के शरीर की स्थिति ऐसा नहीं थी कि वे किसी जिज्ञासु के प्रश्नों का विस्तृत एवं तर्कपूर्ण समाधान करते। स्वामी जी ने अपने उपदेश का उपसंहार करते हुए पं. गुरुदत्त से कहा—

प्रामाण्य वेदों का अभी तुमको बताना इष्ट है।
लेकिन समय की है कमी यह विषय भी अति क्लिष्ट है।
गुरुदत्त, तुमसे क्या कहूँ आज मैं मन की व्यथा।
तुम लेखनी से व्यक्त कर दो आर्ष भावों की प्रथा।।

इसके पश्चात् अपना अन्तिम उपदेश देने के लिए स्वामी जी ने नगर के समस्त वासियों को आहूत किया। संन्यासी के उपदेश श्रवण की लालसा अजमेर के वासियों में इतनी थी कि वे अपने हाथों का सारा काम छोड़ कर भिनाय की कोठी की ओर दौड़ पड़े। यहाँ पुनः कवि की लेखनी चंचल हो उठी। उसने औचित्यानौचित्य का ध्यान किए बिना कुछ ऐसे ही अन्य कालजयी महाकाव्यों में वर्णित काव्य रूढ़ियों का प्रयोग कर डाला जिसका स्वामी दयानन्द के जीवन की वास्तविक घटनाओं से कोई सम्बन्ध ही नहीं था।

जनकपुर आगमन के समय अयोध्या के अत्यन्त सुन्दर राजकुमारों की एक झलक देखने के लिए पुरनारियों जिस प्रकार अपने हाथों में लिए गृह कृत्यों को त्याग कर, अपने पतियों और पुत्रों की सेवा शुश्रूषा को छोड़कर अथवा अपने शृंगार प्रसाधनादि कृत्यों को तिलांजलि देकर दौड़ पड़ी थीं, उसी भाँति स्वामी दयानन्द के मुख से निकलने वाले अन्तिम उपदेशों के श्रवण की लालसा अजमेर के आबालवृद्ध वनिता वर्ग को स्वामी जी के निकट खींच लाने में समर्थ हो गई। कवि ने इस श्रोतृ मण्डली में उपस्थित, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बंगाल, गुजरात, दक्षिण भारत, केरल आदि प्रान्तस्थ नरनारियों का जो रोचक विवरण प्रस्तुत किया है वह कवि कल्पना की अतिशयता का ही द्योतक है।

स्वामी दयानन्द का अपने भक्तों के समक्ष यह प्रवचन कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा अपने महापरिनिर्वाण को निकट जानकर भगवान् बुद्ध ने स्वभिक्षु संघ को सम्बोधित करते हुए दिया था। किसी बौद्ध भिक्षु की लेखनी से इस दृश्य को अंकित किए जाने के समय तथागत के निर्वाण के काल की घटना का उल्लेख अस्वाभाविक नहीं था। इसी प्रवचन के पश्चात् बोधरात्रि का नायक अपने पाँच भौतिक शरीर का त्याग इस आशा के साथ करता है—

भारत का उद्धार हो, दस्युवर्ग का गर्व चूर्ण हो।
इच्छा तेरी ईश पूर्ण हो।
निखिल विश्व से फिर भी हमको मिले सतत सम्मान।।

किंचित् विस्तार में जाकर बोधरात्रि महाकाव्य की कथावस्तु तथा प्रतिपाद्य का विवेचन करना हमारे लिए इसलिए भी आवश्यक था, क्योंकि आलोच्य कृति हिन्दी-काव्य परम्परा में प्रयुक्त रूढ़ियों से सर्वथा हटकर निर्मित की गई है और इसलिए भी कि इस सुन्दर काव्य रचना की ओर अभी तक पाठकों और काव्य रसिकों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है।

अब हम संक्षेप में बोधरात्रि के कला पक्ष की ओर कुछ संकेत करना चाहते हैं। सर्वप्रथम भाषा को लें। यह काव्य प्रांजल, परिनिष्ठित खड़ी बोली में लिखा गया है। काव्य-भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार है, उसका शब्द वैभव श्लाघनीय है। यह आश्चर्य की बात है कि संस्कृत और उर्दू, फारसी के कठिन और सरल शब्दों का एक साथ प्रयोग करने में कवि को कोई कठिनाई नहीं होती। कहीं-कहीं तो दोनों प्रकार के (संस्कृत तथा उर्दू-फारसी के) अप्रचलित शब्दों का कवि धड़ल्ले से प्रयोग करता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

संस्कृत के कठि तत्सम शब्दा और पद : सापत्न्य दुःख, यमस्वसा, आपन्न सत्वा, दिव्य शब्दागमचक्रवर्तिन्, आखण्ड पाखण्ड-विमर्दकारी, मुक्तावली, द्युतिहारिणी, वादिमातंगकेसरी, वदनारविंदमधु, बिबुधतज्लज, सर्वकषाशेमुषी, निरस्त दोषा आदि।

कठिन उर्दू-फारसी शब्द—मख्लूक, इल्तिजा, हयात, कज़ा, आफताब, ज़हालत, अलफाज़, जज़बात, ग़र्दिश, आदि। निश्चय ही उपर्युक्त कोटि के शब्द प्रयोग ने आलोच्य काव्य को क्लिष्ट तथा दुर्बोध बनाया है। इस काव्य में प्रासादिकता सर्वत्र दिखाई नहीं देती।

कवि ने नाना शास्त्रों, मतों, धर्म सिद्धान्तों तथा दार्शनिक मन्तव्यों का जो व्यापक अध्ययन किया है, उसके प्रचुर प्रमाण यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। शास्त्रीय शब्दावली तथा शास्त्र प्रयुक्त पारिभाषिक पदों का भूरिशः प्रयोग यह सिद्ध कर देता है कि कवि वात्स्यायन ने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा अशेष जानकारी का काव्य में सर्वत्र उपयोग किया है। अतः इस काव्य में प्रयुक्त शास्त्रीय प्रसंगगर्भिता को भली भाँति समझे बिना इसके अर्थ को समझना कठिन हो जाता है। अवच्छेद, अवच्छेदक, पंचावयव, प्राभाकर तथा भाट्ट-मीमांसा, आदि दार्शनिक सन्दर्भो को समझना सामान्य पाठक के लिए सर्वथा दुष्कर है।

अलंकार विधान : बोधरात्रि महाकाव्य का अलंकार विधान नितान्त समृद्ध तथा कलापूर्ण है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, यमक, श्लेष आदि अलंकार बहुतायत से प्रयुक्त

हुए हैं। निम्न पद्य में यज्ञ के सांग रूपक का निर्वाह हुआ है–

सहचर बना पत्नी प्रकृति का काल खुद यजमान है।
विश्वम्भरा ही वेदिका है प्राण हव्य प्रधान है।
तनुयष्टि समिधा सिद्ध है आर्त्विज्य करते रोग हैं।
यह यज्ञ कैसा है कि जिसमें पशु बने हम लोग हैं।। प्रथम सर्ग 102

उत्प्रेक्षा का निम्न उदाहरण दर्शनीय है–

मौक्तिक सदृश हिम बिन्दुओं पर प्रस्रवण कुछ हो रहा।
दयनीय भारत की दशा पर व्योम मानो रो रहा।

यमक अलंकार का प्रयोग करने में कवि को बहुत अधिक सफलता मिली है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

विज्ञान धर्म स्वतन्त्रता धन जन सभी का भंग है।
हे भंग करना चाहती तू और किसका भंग है ?

नवम सर्ग के अधिकांश पद्य सभंग पद यमक के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यथा–

घन घटा न घटा तप सूर्य का। 25.
मचलने चलने उनका लगा। 26.
बिलखती लखती निज नाथ का 31.
नियति से यति सेवक हो गया। 39.
मुखरता खरता खल की खुली 40.
कवि कला विकला रस दोष से 44.
कमलिनी मलिनीकृत सी मती। 53.

छन्द विधान : बोधरात्रि में छन्दों के प्रयोग की दृष्टि से साहित्य शास्त्रीय व्यवस्था का पूर्ण पालन किया गया है। प्रत्येक सर्ग में भिन्न-भिन्न छन्द प्रयुक्त हुए हैं। द्रुतवलम्बित छन्द का कवि ने अनेकत्र सफल प्रयोग किया है। पंचम सर्ग में इस छन्द को कवि ने विशेष रूप से प्रयुक्त किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

श्रुति मनोहर वैदिक मंत्र के,
विशद अर्थ विवेचन में कृती।
अघविहीन तपोधन विप्र ने
वचन का विनियोग वहाँ किया।

पिंगल शास्त्र वर्णित छन्दों के अतिरिक्त कवि ने कुछ सुन्दर गीत भी लिखे हैं। एकादश सर्ग में स्वामी दयानन्द प्रोक्त शिक्षाएँ गीतों के माध्यम से ही प्रस्तुत की गई हैं। इन गीतों के शीर्षक निम्न हैं–

तुम्हें यह है मेरा सन्देश।
तुम्हें कहता हूँ सच्ची बात।
जगाया तुमको कितनी बार।
लगा दो तीव्र क्रान्ति की आग।
न चलना नियमों के प्रतिकूल।
धर्म से मत रहना तुम दूर।
देखना डूब न जावे नाव।
हिन्दुओं, बनो हिन्द की शान।।

रस विचार : बोधरात्रि के अंगीरस का निश्चय करना कठिन है। यों तो काव्य के नायक दयानन्द सरस्वती वीतराग, तपस्वी, परमहंस हैं अतः उनकी गणना धीरोदात्त प्रकृति के नायकों में करना सर्वथा उपयुक्त ही है। धर्म प्रचारक संन्यासी के जीवन के चित्रण में शान्त रस की ही प्रधानता होती है, तथापि आलोच्य महाकाव्य में शान्त के अतिरिक्त, शृंगार, वीर, हास्य आदि रस भी प्रसंगवश विवेचित हुए हैं। मथुरा के भोजन भट्ट पण्डे का एक हास्यपूर्ण वर्णन देखिए।

अजीर्ण से पीड़ित विप्र था,
    कहा किसी ने यह चूर्ण खा लो।
क्रोधान्ध होके उसने बताया,
    कि मैं कहाँ पागल चूर्ण डालूँ।
खाली जरा भी यदि पेट होता,
    तो एक पेड़ा फिर क्यों न खाता ?

हास्य का एक अन्य उदाहरण–

नाई उठा कर पेटियाँ फिरने लगे बाज़ार में।
हस्ती कचों की मिट रही पड़कर छुरे की धार में।
यदि राज्य सिक्खों का कहीं होता हमारे देश में।
तो केश बेचारे कभी पड़ते नहीं यों क्लेश में।।

बोधरात्रि में अन्य ग्रन्थों के भावों का ग्रहण या अनुवाद भी यत्र-तत्र दिखलाई देता है। गीता के 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

गला न सकता जल आत्मा को आग न इसे जलाती है।
नहीं काटते अस्त्र हवा भी नहीं सुखाने पाती है। सर्ग 2.25.

काव्य में देश, काल एवं परिस्थिति का यथार्थ चित्रण करने से ही कवि कर्म की सफलता मानी जाती है। कहीं-कहीं कल्पनातिरेक से बोधरात्रि में कुछ ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं जो काल की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। उदाहरणार्थ, स्वामी दयानन्द के समय तक मोटरकार का आविष्कार नहीं हुआ था, कम से कम मारवाड़ में तो उस समय तक मोटरों का आगमन नहीं हुआ था, किन्तु कवि ने एकाधिक स्थान पर इस वाहन का उल्लेख किया है। दशम सर्ग (पद्य 52) में तेज रफ्तार वाली कार से राजदम्पती का स्वामी सेवा में उपस्थित होना उल्लिखित हुआ है। तथ्य यह है कि जोधपुर के तत्कालीन महाराजा आने-जाने के लिए बग्घी का ही प्रयोग करते थे। इसी प्रकार 11वें सर्ग में रिस्ट वाच, सिगार आदि का उल्लेख भी खटकते हैं।

बोधरात्रि महाकाव्य पर विस्तार से विचार करने के पश्चात् हमारी यह धारणा बनती है कि इस कला-पूर्ण कृति का साहित्यिक कसौटी से विस्तृत अध्ययन अपेक्षित है। काश, समीक्षक वर्ग का ध्यान इस सुन्दर काव्यकृति की ओर गया होता तो यह रचना रसिक वर्ग को अवश्य ही प्रलुब्ध करती।

कविराज जयगोपाल 'उत्तम' कृत दयानन्द चरितामृत

कविराज जयगोपाल ने तुलसीदास के रामचरितमानस की शैली का अनुकरण करते हुए दयानन्द चरितामृत काव्य का प्रणयन किया। इसका पूर्वार्द्ध विद्या पुस्तक भण्डार साहलमी दरवाजा, लाहौर से प्रकाशित हुआ था। कवि ने स्वयं इसकी संक्षिप्त टीका लिखी थी। पूर्वार्द्ध में मथुरा में दण्डी विरजानन्द की पाठशाला में स्वामी दयानन्द के अध्ययन करने और गुरु दक्षिणा तक का प्रसंग वर्णित है। यह कहना कठिन है कि अवशिष्ट घटनाओं का वर्णन करते हुए कवि ने इस काव्य का उत्तरार्द्ध लिखा था या नहीं।

आलोच्य काव्य तीन अध्यायों में समाप्त हुआ है। ग्रन्थारम्भ में कवि ने निम्न दोहे से मंगलाचरण किया—

दीनबन्धु कीजो कृपा मिटहिं सकल भव त्रास।
संशय भ्रम नाशहु तिमिर अन्तर करहु प्रकाश।।

पुनः स्वामी दयानन्द के चरित्र को काव्यनिबद्ध करने की दुष्करता तथा उसमें परमात्मा की सहायता की याचना करते हुए वह लिखता है—

घनवारिधि स्वामी चरित तरिहौ चाहूँ पार।
तुम ही मोर जहाज हो पार लंघावन हार।।

मूलशकर के माता के गर्भ में आने पर यत्र-तत्र जो परिवर्तन लक्षित हुए कवि ने उसे प्रचलित काव्य रूढ़ि की शैली में वर्णित किया है–

भयो गर्भ द्विजि हिय हुलसानी। शोक ताप मन अखिल नसानी।
तेहि दिन ते भारत मन चाऊ। मम दुख दलन हेतु जन आऊ।।
निकस्यो उर रवि तेज प्रकासा। पाखण्डतिमिर चल्यौहत आसा।।
काम कमान भुजंगिनि टूटी। मोह नृपति धन सम्पति लूटी।।

अर्थात् मूलशंकर की माता की गर्भस्थिति होते ही उसका मन हर्षित हो गया और उसके मन का शोक और ताप दूर हुआ। भारत देश का मन भी उमंग से आपूरित हो गया। उसने सोचा कि उसके दुःखों को दूर करने वाले महापुरुष का अवतरण होने ही वाला है। ज्ञान रवि के प्रकाश से पाखण्ड रूपी तिमिर की आशाओं पर तुषारपात हुआ। काम वासनाओं की कमान साँप की रीढ़ की भाँति टूट गई और मोह रूपी राजा की सम्पत्ति भी नष्ट हो गई।

दयानन्द के आगमन ने ऋषि, मुनि तथा देव समाज को भी प्रफुल्लित कर दिया और धरित्री भी नव तृण पल्लव को धारण कर मानो अपना हर्ष प्रकट करने लगी–

फूले ऋषि मुनि देवता फूल्यो सन्त समाज।
रोम हर्ष धरणी कियो नव तृण पल्लव व्याज।।

दयानन्द चरितामृत की मुख्य विशेषता उसमें पाए जाने वाले सरस और हृदयग्राही वर्णनों के कारण है। प्रकृति के नानाविध सुन्दर और आकर्षक वर्णनों के साथ-साथ मानवी प्रवृत्तियों का चित्रण भी कवि ने मनोनिवेशपूर्वक किया है। सर्वप्रथम हम उसके प्रकृति वर्णन को देखते हैं–

दयानन्द सरस्वती के जन्म स्थान काठियावाड़ प्रदेश की सुहावनी प्राकृतिक छटा को कवि ने निम्न चौपाइयों में प्रस्तुत किया है–

निर्मल सरिता सलिल प्रवाहू।
तिय समूह पनघट मन माहूँ।
नाना विटप सरोवर छाये।
सरसिज कुसुम विविध विकसाये।।
कुहू कुहू कोकिल कुहकावे।
चुह चुहार चटकन मनभावै।

इस प्रकार सरिता का शुभ्र जल प्रवाह, पनघटों पर सौभाग्यवती नारियों का जल ग्रहणार्थ संगम, शीतल छाया युक्त वृक्षों से घिरे जलाशय और उनमें खिले सुन्दर कमल, कोयल की कुहुक तथा अन्य पक्षियों की चहचहाहट ने कवि को सहज ही

आकृष्ट किया है।

प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत षड्ऋतु वर्णन कवियों की एक स्वीकृति परिपाटी है। कवि जयगोपाल का ऋतु वर्णन सहज, स्वाभाविक तथा चित्ताकर्षक है। पावस वर्णन के लिए निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

पावस ऋतु बादल घनघोरा।
नाचहिं सन्त मुदित मन मोरा।
चहूँ ओर चपला चमकावहि।
भूले पथिकन बाट दिखावहि।।
मेघ बुन्द इह विधि बरसाई।
जनु देवन पुष्पन झर लाई।।
भूमल चल्यो जलहिं गदराई।
बह्यो पाप भई निर्मलताई।।

प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के साथ किसी न किसी नैतिक या लौकिक उपदेश को प्रस्तुत करना कवि की विशेषता है। यथा, पावस की ऋतु में बादलों के घोर गर्जन को सुनकर सन्तों के मन मयूर का नृत्य करना, चपला का चमककर भूले पथिकों को मार्ग दिखाना, बादलों की जल वृष्टि को देवताओं द्वारा की गई पुष्प वर्षा बताना तथा जल प्रवाह के द्वारा धरती की गन्दगी के बहा ले जाने को पापों के बहा ले जाने और निर्मलता के प्रसार के तुल्य बताना।

प्रातः वर्णन के लिए निम्न चौपाइयों पर दृष्टिपात करें–

चलत पवन अति सुखद सुहावनि।
मन्द मन्द प्यारी मन भावनि।।
अरुण किरण नभ मण्डल छाये।
जहँ तहँ बादर खण्ड ललाए।।
बोलहिं पंछी कलरव बानी।
मथहिं छाछ घर बजहिं मथानी।।

शीतल पवन का प्रवाह, सूर्य की अरुण किरणों का प्रकाश, मेघो की लालिमा तथा पक्षियों के कलरव के साथ-साथ घर-घर में दही बिलोने के कारण मथानी की गूँज को चित्रित कर कवि ने नैसर्गिक सौन्दर्य और मानवी व्यापारजन्य सुन्दरता का आकर्षक सम्मिलन कर दिया है।

दयानन्द सरस्वती के नर्मदा स्रोत की ओर बढ़ने के प्रसंग मे कवि को सघन अरण्य के चित्रण का भी अवसर मिल गया है। वह लिखता है–

गह्वर बन सूझत नहिं पंथा।
तहँ तहँ बन पशु करत रुमन्था।।
तरु ठाढे मानहु छत ताने।
चिर कालिक घन छाये पुराने।।
गज केसरि चित्रक भयहारा।
महिष आरण्य नदत चिक्कारा।।

घने निर्जन बन में मार्ग नहीं सूझता। यत्र-तत्र बनों में बसने वाले पशु रोमन्थ (जुगाली) करते हैं। सघन वृक्षों ने मानो आकाश में वितान-सा तान दिया है। उधर घने काले बादलों ने प्रकाश को ढँक लिया है। केसरी शेर और हाथी, चित्रक मृग और बनैले भैंसों ने अपनी ध्वनि से जंगल को गुंजरित कर दिया है।

प्रकृति वर्णन के तुल्य ही मानवी आकृति, प्रकृति तथा क्रिया-व्यापारों को कवि ने समग्र विवरणों तथा सूझबूझ से चित्रित किया है। कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—मूलशंकर का उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर उसकी बटु छवि का एक चित्र देखिए—

सोहे उज्ज्वल तनु मृग छाला।
ब्रह्मतेज दमकत अति भाला।।
त्रिगुण मेखला कटि मनभाहूँ।
जनु त्रिवेणि सुगम परवाहू।।
गले विशाल चमक उपवीता।
कनक तार सम वर्ण सुपीता।।
रजत खूँटि पद रुचिर खड़ाऊँ।
दण्ड पलाश हस्त शुभ दाऊँ।

शरीर पर उज्ज्वल मृगछाला को धारण किए ब्रह्मचारी मूलशंकर का भाल ब्रह्म तेज से उद्दीप्त हो रहा है। कटि पर धारण की गई मेखला की तीन लड़ियाँ मानो त्रिवेणी की तीन धाराएँ हैं। गले में धारण किया केसर से रंगा जनेऊ अपनी स्वर्णिम पीतिमा के कारण चमक रहा है। चाँदी की खूँटी वाला खड़ाऊँ पाँव में पहने और पलाश दण्ड को हाथ में धारण किए इस दिव्य ब्रह्मचारी को देखकर क्या पुरातन ऋषि-मुनियों के युग का स्मरण नहीं होता ?

मूलशंकर द्वारा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लेने पर कवि ने पुनः शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी को इस रूप में पेश किया है—

गेरु वसन कर दण्ड कमण्डल।
भाल चमक जिमि भासुर मण्डल।।

चरण पादुका चरणन सोहै।
सुठ शरीर बीर मन मोहै।।
अरुण वरन सुन्दर ब्रह्मचारी।
चलत चाल सिंह अनुहारी।। आदि

षोडश वर्षीय किशोर वय मूलशंकर के नख शिख को कवि ने अत्यन्त आकर्षक ढंग से चित्रित किया है–

भयो बाल अब षोडश बरसा।
मधुर गिरा बोले अति सरसा।।
झलकत नयी तनक तरुणाई।
लखि मधु मास चम्प मुसकाई।।
रस भर नयन अरुण लजियाये।
उषा काल सरसिज हरषाये।।
सुन्दर नास अधर रंग वीरा।
बिम्बाफल पर सोहे कीरा।।
उच्चस्कन्ध अरु हृदय विशाला।
जनु जल निर्मल पूरण ताला।।
दीर्घ बाहु जानु अनुहारा।
क्रीड़हिं गज है सुण्ड पसारा।

किशोरावस्था को प्राप्त मूलशंकर की नई तरुणाई मधुमास में चम्पक लता के तुल्य खिल गई। रस भरे अरुण नेत्रों ने उषाकालीन विकसित कमलों की उपमा प्राप्त की। उन्नत नासिका और रक्ताधर ओष्ठ युगल को बिम्बाफलों के लोभी शुक से उपमित करना, विशाल वक्षस्थल को निर्मल जल से आपूरित ताल के तुल्य बताना तथा सुदीर्घ भुजाओं को अपनी सूँड़ें पसार कर क्रीड़ा करने वाले गजों की समानता देना परम्परा प्राप्त उपमा निर्वाह ही कहा जाएगा।

नगर वर्णन की दृष्टि से कवि को मूलशंकर की जन्म नगरी मौरवी का वर्णन करना अभीष्ट जान पड़ा। उसने इस नगर को स्वर्ग की उपमा दी। यहाँ के नागरिक कुबेर के तुल्य धनाढ्य हैं तो गृहिणियाँ गौरी के तुल्य स्त्रियोचित मर्यादाओं का पालन करती हैं। प्रत्येक नागरिक महेश्वर के तुल्य सुशोभित हैं तो घर-घर में लक्ष्मी शोभा प्राप्त कर रही है। मौरवी के हाट बाजारों का वर्णन पढ़ें–

राजत पंगत हाट बजारा।
धनद बजाज सराफ सुनारा।।
तुंग भवन छत मणिमय जाला।
जनु गिरि राजत तारक माला।।

शुक मैना पंजर महँ गावै।
नान्हो बालक उन्हहिं पढावै।।

सिद्धपुर में नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर के आसपास जुड़े कार्तिकी मेले का वर्णन कवि ने यथार्थवादी शैली में किया है। धार्मिक समारम्भों में विभिन्न मत-सम्प्रदायों के अनुयायी साधु-सन्तों को एकत्र होने का अवसर मिलता है। भारत के धार्मिक परिदृश्य में साधु समुदाय के महत्त्व को न्यूनता से आँकना उचित नहीं है। कवि भी सिद्धपुर प्रसंग में भारत के इस साधु-मण्डल की विविधताओं को उजागर करता हुआ लिखता है–

मनुज सहस भर्‌यो अतिमेला।
भण्डवेश अगणित संग चेला।।
औघर गिरि पुरि भारति त्यागी।
आए दूर दरस अनुरागी।।
गावहिं भक्त बजावहिं ढोलक।

× × ×

रास मण्डली बजत पखाजू।
सोहे सारंगी सुन्दर साजू।।
पिवहिं चरस कहिं चिलम तमाखू।
निज बिल प्रविश हेतु जनु आखू।।
घोटत भंग पीवहिं भंग भवानी।
तन सुधि भूलि बनै शिव ज्ञानी।।

गिरि, पुरी, भारती आदि दसनामी संन्यासी, मण्डलेश्वर और औघड़ साधुओं ने सिद्धपुर के मेले को शोभा प्रदान की है। इन साधुओं द्वारा चरस, भंग और तम्बाकू आदि नशीले पदार्थों के सेवन को भी कवि ने विस्मृत नहीं किया है।

उपर्युक्त उदाहरणों से कवि की वर्णन चातुरी पदे-पदे प्रकट होती है। कहीं-कहीं परम्परा बद्ध और यत्र-तत्र स्वतन्त्र उन्मुक्त वर्णन शैली का प्रयोग कर कवि ने अपनी वर्णन-क्षमता को सिद्ध कर दिया है।

दयानन्दचरितामृत में रस व्यंजना : दयानन्द जैसे सर्व संग परित्यागी परिव्राजक की जीवन कथा को चित्रित करने वाले काव्य में शान्त रस का प्राधान्य स्वाभाविक ही है। यहाँ इतर रसों के लिए प्रायः अवकाश ही नहीं होता। तथापि कवि ने प्रसंगोपात्त विभिन्न रसों से परिपूरित प्रसंगों की अवतारणा की है।

मौरवी नगर की ललनाओं के वर्णन में शृंगार रस का सहज उल्लेख–

सोय रहीं ललना भुवन घूँघट रह्यो उघार।
चन्द्र रूप चोरी पियो, सुन्दर बन्यो अपार।।

पुरवासी स्त्रियाँ बिना अवगुंठन सो रही हैं। उनके रूप रूपी अमृत रस का पान स्वयं चन्द्रमा चोर बन कर रहा है।

बालक मूलशंकर के प्रति माता का निर्मल प्रेम वात्सल्य रस का सहज उदाहरण प्रस्तुत करता है—

निरखत छवि अति सुख मैया।
बार बार तनु लेत बलैया।।
साँझ भई बालक अलसाई।
कर गहि मात अंक पौढाई।।

और प्रातः होने पर—

बड़ी भोर भई उठहु प्यारे।
खोलहूँ नैन नींद मतवारे।।

इन पंक्तियों को पढ़कर सूर और तुलसी द्वारा किया हुआ कृष्ण और राम का बाल्य वर्णन स्मरण हो आता है। निम्न कवित्त पर भक्तिकालीन उक्त कवियों के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है—

भई प्रात बीती रैन पट उघार खोलहु नैन।
वारहु तनु कोटि मैन जागहु हो प्यार।।
पूर्व दिक रवि उज्यार विकसि किरण स्वर्ण तार,
गूँथ गूँथ चित्र बुने मेघ पट किनारे।।

दयानन्द चरित्र के वर्णन प्रसंग में किसी अद्भुत चमत्कार या अलौकिक कथा-प्रसंग के आने की तो गुंजाइश ही नहीं है, तथापि कवि ने अपनी वाग्विदग्धता के बल पर एक ऐसी ही चामत्कारिक उद्भावना की है। कवि कहता है कि जो बालक आगे चलकर दयानन्द के रूप में सुप्त भारतीय समाज, अपि च सम्पूर्ण विश्व को जाग्रत और उद्बोधित करेगा, आज उसे ही अपने पालने में सोया जानकर माता जगा रही है। क्या यह किसी महत आश्चर्य से कम है—

को जाने विधिना गति अचरज होवनहार।
जननी तासु जगावहि जो विश्व जगावन हार।।

मूलशंकर की भगिनी और चाचा की मृत्यु प्रसंग के चित्रण में कवि को करुण रस वर्णन का अवसर मिला है। कवि कहता है—

बालक शंकर अति दुखियाई।
रोय रोय नहिं तन सुधि पाई।।
अश्रुधार बहि सूजे नैना।
रुके कण्ठ नहि निकसे बैना।।
जड़ जिह्वा भई स्तम्भ शरीरा।
चलत चाहि जनु प्राण समीरा।।

निराशा के भाव को चित्रित करने वाले निम्न दोहे में कवि के कौशल को स्पष्ट देखा जा सकता है। सिद्धपुर में पिता द्वारा अपने पुत्र को एक बार पकड़ पाने पर भी अन्ततः वह प्रहरियों की गिरफ्त से निकल भागने में सफल हो ही गया। मानो चिड़िया तो उड़ गई और पकड़ने वाले के हाथ में उसके एक दो पंख ही आ सके। इसी भाव को बोधित करने वाला यह दोहा–

चिड़िया उड़ी अकास में रह्यो पंख निज हाथ।
लौटे घर तज आस कूँ शोक झुकाए माथ।।

अलंकार योजना–समतामूलक अलंकारों का प्रयोग इस काव्य में यत्र-तत्र मिलता ही है। सांग रूपक का निम्न उदाहरण द्रव्टव्य है–

भूरे भूरे बादर साँझ की ललाई।
मानो गेरुवा रंगाय तनु चादर ओढाई है।
बक माल उर धार शृंगीनाद बार-बार
कुसुमदल धूरि धार जटा सी सुहाई है।।
पवन झकोर जनु कर्ण मन्त्र फूँक मार
चहुँ दिक कुहार भूत छार सी रमाई है।
धरा दुखदलन हेत दयानन्द योग साधे।
ताहि शिक्षा देन प्रकृति योगिन बन आई है।।

धरती के दुःखों को दूर करने के लिए दयानन्द ने योग साधना आरम्भ की है और उन्हें इस साधना को सिखाने के लिए मानो प्रकृति स्वयं योगिनी बनकर आई है। अब प्रकृति रूपी योगिनी के विभिन्न उपकरणों और साज शृंगार को देखें–भूरे रंग के बादल और संध्याकाल की लालिमा ही इस योगिनी की धूसर वर्णा चादर और गेरुवावस्त्र हैं। आकाश में बकावली की ध्वनि ही योगिनी का शृंगीनाद है और कुसुमों का परिमल पराग योगिनी का धूलि धूसरित जटा जाल है। पवन के झोंकों से उत्पन्न ध्वनि उसका मन्त्रोच्चार है तो चारों ओर छाया कोहरा ही मानो योगिनी के शरीर पर लिपटी राख है। इस सुन्दर रूपक योजना से कवि का अलंकार कौशल

स्पष्ट व्यंजित हुआ है।

दयानन्द चरितामृत में कुछ सुन्दर सूक्तियाँ भी हैं, उदाहरणार्थ—मानस की प्रसिद्ध उक्ति 'सुनहु भरत भावी प्रबल' से मिलती-जुलती इस सूक्ति को देखें।

अति कठोर भावी प्रबल मिटहिं न मस्तक लेख।
को जाने कल की गति चित्र कर्म की लेख।।

जहाँ तक छन्दोविधान का प्रश्न है कवि ने दोहा, सारोठा, चौपाई, कवित्त, सवैया और कुण्डलिया आदि मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों के अतिरिक्त शिखरिणी और शार्दूलविक्रीड़ित जैसे संस्कृत वर्णवृत्तों का भी प्रयोग किया है। निष्कर्षतः दयानन्द चरितामृत को एक सर्वांग सुन्दर काव्य की संज्ञा दी जा सकती है।

विमलेशकृत ऋषिगाथा (महाकाव्य)

स्वामी दयानन्द के जीवन को आधार बना कर लिखे गए महाकाव्यों में श्री विमलचन्द्र विमलेश लिखित 'ऋषि गाथा' का अन्यतम स्थान है। कवि विमलेश आर्यसमाज के भजनोपदेशक श्री शीतलचन्द्र शर्मा 'शीतल' (स्व. स्वामी सोमानन्द सरस्वती) के पुत्र हैं। इनका जन्म 26 जुलाई, 1935 को मथुरा में हुआ। इनकी शिक्षा एम. ए. तक हुई है। 'ऋषि गाथा' महाकाव्य का प्रथम बार प्रकाशन 1953 ई. में हुआ था। इसका द्वितीय संस्करण चेतना प्रकाशन, दिल्ली से 1975 ई. में हुआ।

समग्र महाकाव्य सत्रह सर्गो में विभक्त है। ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण करते हुए कवि ने अपनी सरस्वती को मृत्यु यातना और उत्पीड़न से संघर्ष रत मानव के थके प्राणों में अमृत बिन्दुओं के सिंचन में समर्थ माना है। उसकी धारणा है कि यदि इस संघर्ष में मानव की पराजय हुई तो जीवन अनीतिमय हो जाएगा—

मृत्यु, यातना, उत्पीड़न से मनुज लड़ रहा।
अमृत बिन्दु करो सिंचन उसके प्राणों का।
थक कर हार गया यदि मानव जीवन रण में,
अनीतियाँ नय की सीमा को पार करेंगी।। पृ. 18

प्रथम सर्ग में भारत के अतीत गौरव का जय गान करते हुए कवि ने देश के विराट् रूप की भव्य झाँकी प्रस्तुत की है। पुनः कथानायक के शैशव का मोहक एवं रम्य चित्र अंकित किया गया है। काल के अनन्त प्रवाह में न जाने कितने दिन, मास और संवत्सर व्यतीत हो जाते हैं—इसी क्रम में मानव का जीवन भी शैशव, यौवन और वार्धक्य की सीमाओं में से गुजरता है और "अपनी यात्रा पूरी करता है"—

था प्रातः काल बाल, यौवन–
मध्याह्न हुआ जर्जर शरीर।
आकाश पथिक घर जाने को
हो जाता अन्तर में अधीर।
दिन बीत गया रजनी आई
सप्ताह बीतते जाते हैं।
वह मास गया यह मास नया
नव संवत्सर बन जाते हैं।[8]

बालक मूलशंकर के जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाओं का वर्णन कर कवि उसके गृहत्याग का संवेदनशील चित्र उपस्थित करता है। विश्व की अकिंचनता तथा क्षणभंगुरता ने मूलशंकर के किशोर मन को भी उसी प्रकार आक्रान्त एवं प्रभावित किया, जिस प्रकार अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व राजकुमार सिद्धार्थ मानव जीवन की नश्वरता को प्रत्यक्ष देख चुके थे–

विश्व कितने तुम अकिंचन
भोग हैं सब चार दिन के।
मुस्कराने के समय ही,
धूल होते फूल मन के।।[9]

मूलशंकर का महाभिनिष्क्रमण सप्रयोजन था। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने तथा संसार के दुख, क्लेश, आपत्ति-विपत्ति, आधि-व्याधि से मुक्त होने का लक्ष्य सम्मुख रख कर ही उसने परिवार से मुँह मोड़ा था। वैराग्य ग्रहण करने तथा परिव्राजक वर्ग के सम्पर्क में आने के पश्चात् उसे विदित हुआ कि इन तथाकथित त्यागी, वैरागी लोगों की स्थिति भी कथमपि संतोषप्रद नहीं है। उसने अनुभव किया–

देखा हमने जग के मेले में
मतवाले मिल जाते हैं।
देखा हमने सुन्दर तन में
मन के काले मिल जाते हैं।
हमने देखा वर माला में
विषधर लहराया करते हैं।

---

8. प्रथम सर्ग, पृ. 23
9. द्वितीय सर्ग, पृ. 38

हमने देखा इस जग में ठग
साधक कहलाया करते हैं।
यह भी देखा आचारी बनकर
अनाचार फैलाते जो।
यह जभी देखा वैरागी बन कर
कोष बढ़ाते जाते जो।।[10]

तृतीय सर्ग में शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी (स्वामी दयानन्द का संन्यासग्रहण के पूर्व का नाम) का सिद्धपुर आगमन, पिता से अन्तिम भेंट आदि प्रसंग वर्णित हुए हैं। चतुर्थ खण्ड स्वामी दयानन्द के उत्तराखण्ड भ्रमण को समर्पित है। हिम धवल पर्वत मालाओं का यह मनोग्राही वर्णन 'कामायनी' महाकाव्य की प्रारम्भिक पंक्तियों से तुलनीय है।[11]

ऊँची पर्वत ग्रीवायें थीं।
उठी व्योम को छूती।
विकसित तरु माला कैसे
रहती हिम बिना अछूती।
ऊपर हिम नीचे हिम था
दाएँ बाएँ हिम छाया।
हिम पर निश्चिन्त मधुप सा
फिरता जननी का जाया।[12]

नाना वन-पर्वत-उपत्यकाओं के भ्रमण तथा योगिगवेषण के कार्य को सम्पन्न कर जिज्ञासु दयानन्द मथुरा में गुरु विरजानन्द की सेवा में प्रस्तुत हुए। वृद्ध गुरु को चिर प्रतीक्षित शिष्य की प्राप्ति हुई अनाचार, पाखण्ड और अनीति के ध्वंस में तत्पर कालजिह्व संन्यासी में विरजानन्द को जीवन के जटिल प्रश्नों का समाधान मिला—

को काल जिह्व ! मैं तुझ में
स्वर्णिम कल देख रहा हूँ।
जग के उलझे प्रश्नों का
निश्चित हल देख रहा हूँ।।[13]

---

10 तृतीय सर्ग, पृ. 40
11 कामायनी सर्ग, 1 चिंता
12. चतुर्थ सर्ग, पृ. 71
13. पंचम सर्ग, पृ. 99

विद्या समाप्ति के पश्चात् संन्यासी का लोक हित की सिद्धि हेतु देशाटन आरम्भ हुआ। कवि ने छठे सर्ग को 'उड़ान' शीर्षक देकर दयानन्द की गंगातटवर्ती पदयात्रा को काव्यबद्ध किया है। द्रुतविलम्बित छन्द में लिखित इस सर्ग में महाकवि हरिऔध के 'प्रियप्रवास' महाकाव्य से तुलनीय प्रकृति वर्णन उपलब्ध होते हैं। यथा–

गगन धूमिल सूरज जा रहा,
अरुण भाल लिए निजग्राम को।
सुख थाल लिए मन मोद से,
कर रही विहगावलि आरती।।[14]

इसी प्रसंग में हरिद्वारीय कुम्भ तथा दयानन्द के सर्वस्वत्याग (सर्वमेध यज्ञ) का प्रभविष्णु चित्र उपस्थित किया गया है। दयानन्द का अरण्य विचरण सीता के अन्वेषण में राम के तत्परतापूर्वक गिरि बन उपत्यकाओं में भ्रमण से कहीं अधिक मर्मस्पर्शी है–

मर्यादा पालक राम तुम्हें
अपनी वैदेही प्यारी थी।
ओ दयानन्द तब माँ वैदेही
भारत की हर नारी थी।
श्री राम अँगिनी के वियोग में
तुम बन बन ठोकर खाते थे।
पर दयानन्द तुम कितनी
सीताओं को मुक्ति दिलाते थे।।[15]

सप्तम सर्ग में दयानन्द के अविश्रान्त देश भ्रमण का हृदयस्पर्शी वर्णन उपस्थित किया गया है। आठवाँ सर्ग काशी के अद्वितीय शास्त्रार्थ की गाथा उपस्थित करता है। यहाँ कवि ने भारत के धर्म, संस्कृति और विद्या के केन्द्र काशी का वर्णन कर उस प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का वस्तुनिष्ठ वर्णन किया है, जिसमें दयानन्द ने पुराण मतावलम्बी पण्डितों को परास्त किया था। दयानन्द भ्रमण करते हुए भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता पहुँचते हैं। यहाँ उनकी भेंट उस युग के प्रसिद्ध समाज सुधारकों तथा देश भक्तों से होती है। नवम सर्ग कलकत्ता यात्रा को ही समर्पित है। दसवें और ग्यारहवें सर्ग में दयानन्द के उत्तर प्रदेश तथा महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में भ्रमण का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। द्वादश सर्ग में आर्यसमाज स्थापना की ऐतिहासिक घटना का उल्लेख हुआ है। त्रयोदश सर्ग काव्य नायक की राष्ट्रीय भावना तथा उसके लोक मंगल विधायक

14. षष्ठ सर्ग, पृ. 104
15. वही पृ. 117

विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। दयानन्द ही प्रथम भारतीय थे जिन्होंने 'सुराज्य' की अपेक्षा 'स्वराज्य' की महत्ता स्थापित की। उनका यह सर्व प्रसिद्ध उद्घोष था—

अपना सुत हो रूप कुरूप
वही पिता को सुन्दर रूप।
भला स्वयं का सीमित राज्य
बुरा दूसरों का साम्राज्य।।
भले विदेशी पिता समान
हों माता सम स्नेह निधान।
रच दें वैभव के सामान
त्याज्य सदा दुःस्वप्न समान।।[16]

इसी महापुरुष ने 'बहुजन हिताय' को लक्ष्य बनाकर अपनी मुक्ति को भी ठुकराया—

मुझे नहीं अभिलषित मुक्ति।
मुझे नहीं अभिलषित भुक्ति।
यही कामना एक महान्।
हो दुर्बल जन गण का त्राण।
उनका जीवन मेरा हास।
उनके आँसू मुझको त्रास।
मेरा मंगल इनकी भुक्ति।
उनका मंगल मेरी मुक्ति।।[17]

चतुर्दश सर्ग में कवि ने तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार में उपस्थित होकर स्वामी दयानन्द द्वारा देशी राजाओं और सामन्तों को स्वदेश के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होने की प्रेरणा देने का वर्णन किया है। स्वामी जी जानते थे कि सामन्तवादी व्यवस्था अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है तथा उसका आधार ही जन शोषण तथा अत्याचार रहा है। उनकी यह भी धारणा थी कि देशी शासक तो विदेशी गौरांग शासकों के इंगित पर नाचते हैं अतः उनके द्वारा शासित जनता को दुहरी गुलामी भोगनी पड़ती है। सामन्ती शासकों के बीभत्स क्रियाकलाप तथा उनके अनाचारपूर्ण कृत्यों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

---

16. 13वाँ सर्ग, पृ. 219
17. वहीं पृ. 229

ये घोड़े दौड़ा देते थे जनता पर
ये कोड़े बरसा देते थे जनता पर।
निर्दोष व्यक्ति को काठ लगा देते थे।
बॅधवा करके कुत्ते छुड़वा देते थे।

और भी–

था सब कुछ उचित क्योंकि यह तो शासक थे।
ये ब्रिटिश राज्य के अनुचर संस्थापक थे।
सामन्तवादिता सदा घृणित होती है।
यह जन विकास पर काँटे बो देती है।।[18]

15वें सर्ग में स्वामी जी की पंजाब यात्रा तथा वहाँ के लोगों द्वारा उनके सन्देश के प्रति तीव्र आकर्षण प्रदर्शित करने का उल्लेख हुआ है। पंजाब की पावन धरती तथा वहॉ के उदाराशय निवासियों ने ही दयानन्द की प्रगतिशील तथा प्रबुद्ध शिक्षाओं के महत्त्व को प्रथम बार हृदयगम किया। अतः पंचनद प्रदेश के प्रति कवि का श्रद्धाभाव अनायास ही उमड़ पडता है–

अविभाजित पंजाब! देश के गौरव हो तुम।
मानवीय श्रम कौशल के सुख वैभव हो तुम।
धरती सुन्दर खेत सुहाने सुरबालायें।
जिनमें अंकित अन्तर छूती प्रेम कथायें।।[19]

इसी पंजाब देश ने अनेक महापुरुषों को उत्पन्न किया–

यह धरती गुरुओं के गौरवमय चिन्तन की।
यहॉ कथा कितनी जन के उत्थान पतन की।
महाराजा रणजीत सिंह बंदा वैरागी।
शेख फरीद फकीर तथा नानक से त्यागी।।[20]

16वें सर्ग में स्वामी जी की राजस्थान यात्रा का इतिहास निबद्ध किया गया है। विभिन्न राजधानियों का भ्रमण करते हुए दयानन्द अजमेर की उस नगरी में पहुॅचे जो विभिन्न मतों, सम्प्रदायों तथा संस्कृतियों का केन्द्र है। जहाँ नरपति नाल्ह जैसे

---

18. 14वाँ सर्ग, पृ. 231
19. 15वाँ सर्ग, पृ. 246
20. सर्ग 15, पृ. 247

कवियों ने विग्रहराज को अपना काव्य नायक बनाकर प्रसिद्ध प्रेमाख्यानक काव्य 'बीसलदेव रासो' की रचना की तथा जहाँ रहकर सूफी सन्त ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने मानवता का सन्देश दिया—

नरपति नाल्ह करी समृद्ध रासो परम्परा
ताल बीछला निर्मित हुए कवित्त सोरठे।
ख्वाजा चिश्ती की दरगाह यहाँ शोभित है
री अजमेर ! आज ऋषि का अभिनन्दन कर ले।।[21]

इसी सर्ग के अन्त में स्वामी जी के निधन की मर्मस्पर्शी घटना को 'निर्वाण' शीर्षक से उपस्थित किया गया है। अन्तिम सत्रहवाँ सर्ग उपसंहारात्मक है, जिसमें कवि अपने काव्य विषयक दृष्टिकोण को उपस्थित करते हुए इस आशा के साथ ग्रन्थ को समाप्त करता है—

कोई दयानन्द आकर अस्वस्थ धरा पर
वसुधा की पीड़ा का शुभ उपचार करेगा।
वन जन गण के, सत्ता के, सत्तापतियों के
कार्यक्रमों का खुल कर पुनः विचार करेगा।।[22]

शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर ऋषिगाथा महाकाव्य : शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से महाकाव्य अभिधान वाली रचनाओं में यत्र-तत्र प्राकृतिक तथा मानवीय संरचनाओं के सुरम्य, भावात्मक तथा आह्लादकारी चित्रों की प्रधानता होती है। ऋषि गाथा महाकाव्य भी प्रकृति की रम्य चित्रावली से भरपूर है। कथा-नायक के उत्तराखण्ड भ्रमण प्रसंग में कवि ने गगनस्पर्शी हिम धवल पर्वत शिखरों का हृदयग्राही चित्रण किया है—

ऊँची पर्वत ग्रीवाएँ थीं।
उठी व्योम को छूतीं।
विकसित तरुमाला कैसे
रहती हिम बना अछूती।।[23]

ऊषा काल की एक कमनीय झाँकी द्रष्टव्य है—

21. सर्ग 16, पृ. 255
22. सर्ग 17, पृ. 280
23. सर्ग 4, पृ. 71
24. सर्ग 7, पृ. 129

नील गगन के होंठ गुलाबी मदिरा पाकर
बेसुध अन्तस्तल तक मादकता बिखरा कर।
उड़ जाती तितली कोई तिरछी उतरा कर
मलय पवन मदमत्त किसी का चित्र चुरा कर।[24]

ऐसे सुहावने समय में–

विहगी घर में कर प्रिय की मनुहार रही थी।
हिरणी शावक पर तन मन धन वार रही थी।
अल्हड़ कलिका कर सोलह शृंगार रही थी।
उषा क्षितिज पर क्वारी आँख निहार रही थी।[25]

प्रातःकाल की शोभा विकसित हुई, विहंगम जाग उठे, पुष्पों का हास तरु लताओं पर विकीर्ण हुआ, सरित प्रवाह गीत गाता हुआ बह चला। चक्रवाकों की पीड़ा दूर हुई और निशारानी के प्रहरी तारक वर्ग प्रस्थान कर गए।

जग पड़े विहंगम हँसे कुसुम
आभा बिखराती ओस तरल।
निर्झर मनुहार गीत गाते।
उद्वेलित सरियों के हृतल।
अज्ञात कूप में कोक शोक
जा पड़ा ज्योति से टकरा कर।
राका रानी के प्रहरि वर्ग तारक
रूठे तम बिसरा कर।।[26]

यह तो हुई प्रकृति चित्रण की बात। 'ऋषि गाथा' में नगर शोभा वर्णन के भी अनेक प्रसंग आए हैं। विद्याध्ययन हेतु दयानन्द मथुरा जाते हैं। यहाँ उन्होंने ब्रज संस्कृति की साकार प्रतिमा मथुरा नगरी को देखा–

थे कितने पण्डित विद्वान्
पण्डे थे कितने यजमान।
कर कर के यमुना में स्नान
खोजा करते ब्रह्म महान्।

---

25 वही

26. सर्ग 7, पृ. 129

27. सर्ग 5, पृ. 90

कितने ब्रज भाषा के गीत
जिनमें सूरश्याम की प्रीत।
गाते जाते साधु पुनीत
करते रहते काल व्यतीत।।[27]

तथा–

ब्रज बालाओं के गायन
सुन हर्षित हो जाता मन।
कहीं मन्दिरों में वादन
नृत्य, ताल, रुन झुन रुन झुन।।[28]

आलोच्य महाकाव्य में जहाँ संस्कृति मण्डित मथुरा की भव्य झाँकी उपस्थित की गई है, तो दूसरी ओर महानगरीय सभ्यता के अभिशापों एवं दोषों से ग्रस्त बम्बई का बीभत्स रूप वर्णित हुआ है जहाँ पर नारी के उन्मुक्त शोषण की समाज ने इज़ाजत दे रखी है–

नगरों का अभिशाप
सभ्यता का कलंक है निश्चल।
है दुर्गन्ध समाज तन्त्र की
नारी का क्रय विक्रय।।
देखो बोझ लिए जाता है।
पशु सा वह भी मानव है।
देखो मानव पर चढ़
इठलाता वह भी मानव है।।[29]

दिल्ली दरबार के प्रसंग में कवि ने इतिहास के कुछ पृष्ठों को उलट-पुलट कर भारत की इस अत्यन्त पुरातन नगरी के अतीत को प्रस्तुत किया है–

यह दिल्ली इसका सब विधान उलटा है।
जप तप आडम्बर, सामगान उलटा है।
इसका हर आकर्षण धोखा है छल है।
यह दासी बनती उसकी जिसमें बल है।।

---

28 वही
29. सर्ग 11, पृ. 190
30. सर्ग 14, पृ. 227
31. वही

दिल्ली ने कितने नर नाहर देखे हैं।
वे शेरशाह, अकबर, बाबर देखे हैं।।[30]

परन्तु आज स्थितियाँ बदल गई हैं–

महलों में सोते हैं चाणक्य यहाँ पर।
हैं चन्द्रगुप्त अधनंगे चौराहों पर।।[31]

शसकों के साथ ही दिल्ली की काया भी बदली है–

हर शासक इस दुलहिन को नई बनाता।
वैभव के पुष्पों से शृंगार सजाता।[32]

व्यक्ति चित्रण : प्रकृति की ही भाँति इस महाकाव्य में व्यक्ति चित्रों को भी अत्यन्त कुशलता के साथ उकेरा गया है। काव्य के नायक दयानन्द का निम्न शब्द चित्र द्रष्टव्य है जिसमें नखशिख वर्णन की परम्परागत शैली को ही एक अभिनव रूप दे दिया गया है–

महर्षि का ललाट दिव्य
कान्तिमान सोहता।
सुओष्ठ स्वामि का
अनेक चित्त मोहता।
महर्षि के विशाल नेत्र
ज्ञान तेज पुंज थे।
महर्षि के सुभाव
भवना भरे निकुंज थे।
सुग्रीव धर महर्षि
केसरी समान चाल थी।
विशाल तुंग कंध अंग
अंगिमा सुढाल थीं।।

महाकाव्य के नायक स्वामी दयानन्द शास्त्र उपलक्षित धीरोदात्त कोटि के हैं जिनके चरित्र को काव्य में घटना क्रम तथा परिस्थिति वर्णन के माध्यम से विकसित किया गया है। यत्र-तत्र कवि अपनी ओर से भी चरित्रांकन का कार्य करता है–

---

32. वही

जिसने विष पीकर अमृत की राह बताई।
जो मुसकाता रहा कष्ट अपमान सहन कर।
काँटों पर चल जिसने शूल चुने वसुधा के।
उस यति को भारत जन के शतशत प्रणाम हैं।।

दयानन्द ने अपने वैभव सम्पन्न गृह को त्याग कर जब वन का मार्ग चुना तो उसके हृदय में वैराग्य का तीव्र झंझावात बह रहा था–

यह सुख वैभव भरे महल का राज कुँवर है।
त्याग पिता का नगर डगर काँटों की ले ली।
सरलमना है, भावुक है स्वप्नों का स्रष्टा
यह यथार्थ के भीषण अक्षर समझ रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने न केवल व्यक्ति के बाह्य को ही देखा है, अपितु उसके अन्तस्तल में उत्पन्न होने वाले नाना अन्तर्द्वन्द्वों तथा घात-प्रतिघातों को चित्रित करने की भी उसमें अद्भुत क्षमता है।

रस विचार : सर्वसंग परित्यागी परिव्राट् दयानन्द के जीवन और लोकसंग्रही व्यक्तित्व को समर्पित इस महाकाव्य का अंगीरस तो 'शान्त' ही है, किन्तु यत्र-तत्र अन्य रसों की व्यंजना भी हुई है। मूल शंकर के गृह त्यागने पर माता के पुत्र वियोग का करुणार्द्र प्रसंग कवि ने अत्यन्त संवेदनापूर्वक चित्रित किया है। यहाँ करुण रस की सहज निष्पति हुई है। पुत्र पर आने वाली आसन्न विपत्तियों की सम्भावना करती हुई माता कह उठती है–

माँ कहती–मेरा मूल शूल,
पग से बाहर करता होगा।
निर्जन दुर्गम बन पंथों पर
मारा मारा फिरता होगा।।
भीमा विभावरी, चण्ड ताप
हिंसक, पशुओं से क्षुब्ध बाट।
बाधाओं के दुर्दान्त घात
झंझाओं के भीषण प्रहार।[33]

वह सोचती है जब सायंकाल होने पर मृग शावक अपने घरों की राहों कीओर

33. सर्ग 3, पृ. 58
34. वही

बढ़ेंगे तो क्या बालक को अपने घर की याद नहीं आएगी ?

जब मृग शावक उत्सुकता भर
अपनी राहों पर जाएँगे।
बीते दिन तब क्या बालक के
अन्तर को नहीं लुभाएँगे ?[34]

और तब माता की व्याकुलता इन शब्दों में व्यक्त होती है–

दे दो शिव पंख मुझे उड़ कर
शंकर को खोज निकालूँगी।
घन घोर घटा बन कर
दिनकर की किरणों पर छा जाऊँगी।।[35]

यदि माता को उसका बिछुडा पुत्र नहीं मिलता तो वह शंकर से अनुनय करती है–

अथवा दुखियारी माँ को स्वामिन्
कालकूट ही दे दना।।[36]

वस्तुतः ऐसे ही करुणासिक्त प्रसंगों का मार्मिक चित्रण कर कवि ने करुण रस की सहज व्यंजना की है।

अलंकार विधान : चमत्कार प्रदर्शन से भिन्न लक्ष्य लेकर चलने वाले महाकाव्यों में अलंकारों का गौण स्थान होता है। ऋषिगाथा की रचना में कवि का उद्देश्य मानव जीवन को प्रेरणा और उद्बोधन देने वाले, लोक कल्याण के संदेशवाहक ऋषि दयानन्द के लोकपावन चरित्र को काव्यबद्ध करना है। अतः इस काव्य में अलंकारों का सहज और अकृत्रिम विधान ही दृष्टिगोचर होता है। उपमा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रयोग द्वारा कवि ने अपने कथ्य को सौन्दयपूर्ण एवं आकर्षक बनाया है। अधिक उदाहरण न देकर सांग रूपक की यह आयोजना द्रष्टव्य है–

श्री ऋषिवर के पद कमलों पर प्रिय भक्त भ्रमर इठलाते हैं।
गुन गुन मन शंकाएँ कह कह कर उपदेश गंध ले जाते हैं।।

लोकोक्तियों का काव्यगत प्रयोग : आलोच्य महाकाव्य में कतिपय ऐसी कलागत विशेषताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं जो इस काव्य की विशिष्टता का द्योतन करती

35. सर्ग 3, पृ. 58
36. वही

हैं। कवि ने कहावतों और लोकोक्तियों का इस काव्य में सहज प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं–

भाव विरोधी एक हृदय में
कैसे रह सकता है।
एक म्यान का वास
खड्ग युग कैसे सह सकता है।।

× ×

उद्देश्य हेतु कितने कंटक
कर से सहलाने पड़ते हैं।
जग कहता अवसर पर
गर्दभ तक बाप बनाने पड़ते हैं।।

× ×

मिल जाते बिन माँगे मधु कण
मॉगो न मृत्यु मिलती है।
गुन गुन अलि गुंजन व्यर्थ हुआ
बिन कहे जुही खिल जाती है।।

"बिन माँगे मोती मिले माँगे मिले न भीख" वाली उक्ति को ही उपर्युक्त पंक्तियों में प्रकारान्तर से प्रस्तुत किया गया है।

–'अंधों में काना राजा' तथा संस्कृत की उक्ति 'यस्मिन् देशे द्रुमोनास्ति तत्र एरण्डोऽपि द्रुमायते" को इस प्रकार पद्यबद्ध किया गया है–

जग बतलाया करता अंधों में पंच एक अक्षी रहता।
पादप विहीन भूखण्डों में एरण्ड विजय गाथा कहता।।
अवसर पर रंग कर तन शृगाल बनराज कहाया करता है।
ऐसे ही कुछ विज्ञान जान पण्डित इठलाया करते हैं।

और भी–

श्वान करता रोदन पथ पर चला जाता करि मन में मत्त।
स्वामि वर चले पीठ की ओर देखता रहा क्रूर उन्मत्त।।

"जो गरजते हैं वे बरसते नहीं" इस उक्ति को कवि ने एक नूतन रूप दिया है–

कहा करता जग जो प्रतिपल गड़गड़ाता करता गर्जन।
अंबुधार इठलाने से न भर पाता बालक का मन।।

कतिपय सूक्तियाँ—

विद्वानों की प्रतिभा सत्ताधीशों की पाशविक सत्ता से सदा ही श्रेष्ठ है—

> प्रतिभा तपस्विनी से कब
> सत्ता विलासिनी जीती।
> प्रतिभा विश्वम्भरा रहती
> सत्ता सब पाकर रीती।।

लोगों की सहनशीलता जब सीमातीत स्थिति पर पहुँच जाती है तो वह विद्रोह का रूप धारण कर लेती है, इसी युग सत्य को कवि ने निम्न सूक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है—

> सहन शक्ति की एक सीमा बनी है।
> सदा आक्रमण ने बग़ावत जनी है।।

ऋषिगाथा (महाकाव्य) का प्रतिपाद्य : महाकाव्य का रचयिता कवि अपनी काव्य कृति के द्वारा विश्वमानवता के प्रति अपना विशिष्ट सन्देश प्रेषित करने का इच्छुक होता है। इसलिए महाकाव्य की विवेचना के प्रसंग में केवल इतना देखना ही पर्याप्त नहीं कि उसमें काव्य शास्त्र वर्णित लक्षण पाए जाते हैं या नहीं ? आवश्यकता इस बात का पता लगाने की रहती है कि महाकाव्यकार किस उदात्त और व्यापक सन्देश को अपने पाठकों तक पहुँचा सका है ? आलोच्य महाकाव्य के अन्त में कवि अपना वक्तव्य प्रस्तुत करता हुआ कविता विषयक स्वदृष्टिकोण इस प्रकार रखता है—

> मैं जन का प्रतिनिधि नवयुग का साधारण कवि।
> सदा विजयिनी मानवता का स्वागत करता।
> मनुज जहाँ भी हो जैसे भी हो, जैसा भी हो
> उन दो चरणों में अपना मस्तकनत करता।।
> नहीं महान बने मेरी श्रद्धा के भजन
> मैं साधारण हूँ सामान्य मनुज मेरे हैं।
> सीधी बात सुनाता टेढ़े सीधे पथ पर
> काँटे एवं सुन्दर सुमन मुझे घेरे हैं।।[37]

कवि को इस बात से बड़ी पीड़ा होती है कि आज संसार में शोषण का निर्बाध

---

37. सर्ग 16, पृ. 276
38. सर्ग 17, पृ. 277

चक्र चल रहा है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत सर्वत्र चरितार्थ हो रही है। दीन, हीन और निर्बल व्यक्तियों की पीड़ा और वेदना को दूर कर मानव को पुनः सम्मान और गौरव प्रदान करना होगा—आज तो स्थिति यह है—

पौरुष हीन मनुज केवल शव चलता फिरता।
बल खोकर अपमान आत्मा का होता है।
वह मानव जो तूफानों की बाँह मोड़ दे।
कायर भाग्य सहारे सौ आँसू रोता है।[38]

कवि चाहता है कि शोषण मुक्त समाज की पुनः स्थापना होकर मानव का गौरव प्रतिष्ठित किया जाय—

वसुधा वीर जनों की चेरी रही सदा ही
काल चक्र की गति जो सहज मोड़ देते हैं।
शोषण एवं रक्त सने विष के दाँतों को
प्रासादों में घुस कर स्वयं तोड़ देते हैं।।
यह धरती जन जन की माता जन्म धारिणी।
इस पर विष के बीज नहीं बोने देंगे हम।
यह मानव के गौरव की आधारशिला है।
इसका तन मन ह्रास नहीं होने देंगे हम।।[39]

इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए कवि ने दयानन्द जैसे मनस्वी पुरुष के जीवन चित्रण को अपना लक्ष्य बनाया है। उसकी दृढ़ धारणा और सहज आस्था है कि धरती पर पुनः दयानन्द जैसे महापुरुष अवतरित होंगे जो वसुधा का पीड़ा भार हर कर शोषक सत्ताधीशों के अन्याय और अत्याचार समाप्त करेंगे। ऐसे ही युग द्रष्टा शलाका पुरुष अन्धविश्वास और मूढ़ आग्रहों को समाप्त कर विश्व को प्रगति की राह पर चलने की प्रेरणा देंगे—

कोई दयानन्द आकर अस्वस्थ धरा पर
वसुधा की पीड़ा का शुभ उपचार करेगा।
वह जन गण के, सत्ता के सत्तापतियों के
कार्यक्रमों का खुल कर पुनः विचार करेगा।।
वह संशोधन देगा, बड़ी व्यवस्थाओं को

---

39. वही

40. सर्ग 17, पृ. 280

कुरीतियों की सर्पिणियों पर वार करेगा।
वह युग द्रष्टा विश्व प्रगति के पथ पर फैले
दम घोंटू अँधियारे का संहार करेगा।।[40]

फलतः कवि मानवता को पुनरुज्जीवित करने का सन्देश देता हुआ अपनी शुभाशंसा इन शब्दों में व्यक्त करता है–

मानव का उत्पीड़न कम हो विहँसे जन जीवन की घड़ियाँ।
निर्यात अधिक उत्पादन से मुखरित हो श्रम की पखुड़ियाँ।।
हो मानव का शोषण समाप्त खिल उठें सुमन पाकर उपवन।
प्रति नित्य आरती किया करें सागर की लहरों की थिरकन।।
जन जन का अन्तर विकसित हो पाकर अपने श्रम का विभाग।
हर मुस्काते मुख से मुखरित हो नव जीवन का मधुर राग।।

दयानन्द के जीवन और उनके कार्यो का भी तो यही प्रयोजन था, जिससे कि अज्ञान की अमानिशा व्यतीत होकर ज्ञान की ज्योति-रश्मियों का विकास हो सके। जीवन को एक नूतन दिशा मिले जिसमें शोषण, पीड़ा और अत्याचारों के हलाहल की विषम ज्वालाओं से दग्ध मानवता को त्राण मिल सके। दयानन्द का संसार में आविर्भाव भी इसी प्रयोजन की सिद्धि हेतु हुआ था–

आया है यह अज्ञान रात्रि में
ज्ञान प्रभात खिलाने को।
आया है यह जीवन की परिभाषा
जन को बतलाने को।
अपना तन झुलसा कर जग का
अन्तर सहलाने आया।
विष पीकर जग से द्वेष गरल
का नाम मिटाने यह आया।।

वस्तुतः ऋषिगाथा महाकाव्य की रचना कर महाकवि विमलेश ने महाप्राण दयानन्द के उदात्त एवं तेजस्वी व्यक्तित्व को ही काव्यबद्ध नहीं किया है, अशेष मानव समाज को उन्नति और प्रगति की मंज़िल पर बढ़ते जाने की प्रेरणा भी दी है।

दयानन्दायन (महाकाव्य) ठाकुर गदाधरसिंह कृत

गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व हिन्दी अध्यापक ठाकुर गदाधरसिंह लिखित दयानन्दायन महाकाव्य कवि की मृत्यु के 25 वर्ष पश्चात् 2011 वि. (1955 ई.) में उसी के अनुज

डा. सूबाबहादुरसिंह द्वारा प्रकाशित हुआ कवि का संक्षिप्त इतिवृत्त इस प्रकार है–

ठाकुर गदाधरसिंह का जन्म भृगुवंशीक्षत्रिय ठाकुर जानकीसिंह के यहाँ वाराणसी जिले के प्रभुपुर नामक ग्राम में 1878 ई. में हुआ था। प्रारम्भ में इनकी शिक्षा उर्दू माध्यम से हुई किन्तु 1900 में प्रयाग से सरस्वती मासिक पत्रिका के प्रकाशन से इन्हें हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा मिली। कालान्तर में अध्ययन समाप्त कर इन्होंने अध्यापन का व्यवसाय ग्रहण किया और गुरुकुल कांगड़ी, ऋषिकुल हरिद्वार आदि शिक्षण संस्थाओं में हिन्दी अध्यापक रहे। कुछ समय तक ये बर्मा में भी रहे थे। महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन में इन्होंने भाग लिया और अनेक कष्ट उठाए। इनका निधन 18 जनवरी 1930 को काशी में हुआ।

दयानन्दायन के अतिरिक्त ठाकुर गदाधरसिंह की निम्न काव्य कृतियों का उल्लेख मिलता है–

1. धर्मवीर हकीकतराय–धर्म के लिए आत्माहुति देने वाले बालवीर का जीवनचरित।

2. धर्मवीर फतहसिंह तथा जोरावरसिंह–सिखों के दशम गुरु गोविन्दसिंह के दोनों पुत्रों के बलिदान की पद्यबद्ध गाथा।

3. भृगुवंश बावनी–भृगुवंशी क्षत्रियों की पद्यबद्ध वंशावली। इसमें 22 दोहे हैं। उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ लेखक द्वारा प्रकाशित किए गए थे।

4. भरतमहिमा सतसई–रामानुज भरत के पवित्र जीवन को अंकित करने वाला यह काव्य 700 छन्दों में समाप्त हुआ था। यह प्रकाशित नहीं हो सका।

दयानन्दायन कवि की प्रतिनिधि काव्य रचना है। महाकाव्य शैली में निबद्ध यह कृति पाँच सोपानों में समाप्त हुई है। प्रथम सोपन में ईश वन्दना के पश्चात् कवि ने स्वामी दयानन्द के जन्म स्थान, जन्म, शिक्षा, शिवरात्रि व्रत तथा मूर्तिपूजा के प्रति अनास्था, गृहत्याग, उत्तराखण्ड भ्रमण, गुरु के निकट विद्याध्ययन दीक्षांत तथा देशाटन का वर्णन है। द्वितीय सोपान में गंगा तटवर्ती प्रदेश का भ्रमण करते हुए स्वामी दयानन्द के धर्म प्रचार का वृत्तान्त दिया गया है। तृतीय सोपान में चरित नायक के व्यक्तित्व को राष्ट्रीय स्तर पर उभारा गया है। इसमें काशी शास्त्रार्थ तथा कलकत्ता में स्वामी जी की ब्रह्मसमाज के नेताओं से भेंट का उल्लेख हुआ है। चतुर्थ सोपान स्वामी जी की महाराष्ट्र यात्रा, आर्यसमाज की स्थापना तथा उनके पंजाब भ्रमण का विवरण प्रस्तुत करता है। अन्तिम सोपान में स्वामी दयानन्द का ग्रन्थ प्रणयन, राजस्थान के रजवाड़ों में जाकर क्षत्रिय राजाओं को उपदेश तथा अजमेर में निधन तक की घटनाएँ वर्णित हुई हैं।

दयानन्दायन के कवि ने तुलसीदास के रामचरितमानस की शैली का ही अनुकरण किया है। दोहा, चौपाई छन्दों में रचित यह काव्य नायक के चरित वर्णन की दृष्टि से पूर्णतया सफल हुआ है। स्वामी दयानन्द के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन

तो कवि का लक्ष्य है ही, इन घटनाओं के चित्रण के प्रसंग में स्थान, काल, व्यक्ति और परिस्थिति का चित्रण भी कवि ने सफलतापूर्वक किया है। स्वामी जी एक शास्त्रार्थ सभा का चित्र देखिए–

आय विराजे मंच पर श्रीस्वामी सुखकंद।
नृप प्रेषित पण्डित सकल बैठे सहित अनन्द।।
श्रीस्वामी सोभित भे कैसे। धारा शरीर शान्त रस जैस।।
छटा विचित्र वरनि नहिं जाई। स्वयं धर्म तनु धरि जनु आई।।
पूछेउ स्वामि नीति अनुसारा। केहि कारन आगमन तुम्हारा।।
कछुक पत्र किय पंडित आगे। तब बोले स्वामी अनुरागे।।

उपर्युक्त पंक्तियों में स्वामी दयानन्द के उदात्त चरित्र की अभिव्यक्ति उन्हें 'शरीरधारी शान्त रस' तथा 'शरीरधारी धर्म' कहकर भली भाँति की गई है। चरित नायक की चारित्रिक दृढ़ता को प्रकट करने के लिए कवि ने अनेक प्रसंगों की योजना की है। बम्बई में जिस समय स्वामी दयानन्द के प्राण हरण का षड्यन्त्र किया गया और आततायियों ने उनके सेवक बलदेव को ही इसका जिम्मा सौंपा, तो इस कुचक्र का भण्डा फूटने पर स्वामी जी दृढ़ शब्दों में बलदेव से कहते हैं–

दोहा– ना कछु भया न होइ है मानहु वचन प्रमान।
पूर्ण समय जब होहि हैं तब तन तजि हैं प्रान।।
सोरठा–यह नस्वर है देह, या मंह कछु संदेह नहिं।
तन तजि जैसे गेह, ईश अंस यह प्राण मम।।

दयानन्दायन में मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा कवि ने अत्यन्त तल्लीनतापूर्वक की है और ऐसे स्थलों पर उसकी प्रतिभा ने अनूठे चमत्कार दिखाए हैं। मूलशंकर के जन्म के पश्चात् माता तथा परिवार की अन्य स्त्रियों का बालक के प्रति वात्सल्य और कहीं उसे नजर न लग जाए, इस आशंका का निवारण करने के लिए तृण तोड़ने की क्रिया को कवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ निम्न सोरठे में चित्रित किया है–

देत मात तृण तोरि, सुतछवि निरखत नारि सब।
हिय उमंग नहिं थोरि, लगै न काहु कुदृष्टि इहि।।

माता-पिता अपनी सन्तान के दीर्घजीवन की कामना करते हुए कुल देवता से प्रार्थना करते हैं–

मात पितहिं कुल देवतहिं, विनय करत कर जोरि।
चिरजीवौ यह लाल मम, प्रभु बिनती यह मोरि।।

आलोच्य काव्य में कवि का वर्णन कौशल भी यत्र-तत्र प्रकट हुआ है। प्रकृति के रम्य चित्रों को उकेरने में उसे कोई कठिनाई नहीं होती। स्वामी दयानन्द का उत्तराखण्ड-भ्रमण समाप्त हुआ। अब तक हेमन्त ऋतु भी बीत गई और वसन्त का आगमन हुआ। कवि इस प्रसंग में लिखता है—

> विगत हेमन्त वसन्त सुहाई। विकसे पुष्प महासुखदाई।
> बन उपवन सब एकहि लेखा। चकित भये दर्शक जिन देखा।
> भ्रमन करन शुभ अवसर जानी। चले सहर्ष विरत मुनि ज्ञानी।।

दयानन्दायन की भाषा—ग्रन्थ के प्रकाशक डा. सूबाबहादुरसिंह के अनुसार—"यह काव्य ग्रन्थ, प्रबन्ध काव्य की प्रचलित प्रणाली, जो जायसी के समय में चली आ रही है, उसी के अनुसार दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया है। भाषा इसकी खड़ी बोली है।" परन्तु प्रकाशक का यह कथन तथ्य विरुद्ध है। दयानन्दायन की भाषा ब्रज और अवधी का मिश्रित रूप है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया गया है तथापि कहीं-कहीं भाषा अपरिमार्तित है। यत्र-तत्र खड़ी बोली के क्रिया रूपों का भी प्रयोग किया गया है।

अब तक हमने जिन काव्य कृतियों पर विचार किया है उनमें काव्य सौष्ठव की मात्रा अधिक नहीं मिलती। ये सभी वर्णनप्रधान शैली में लिखे गए पद्यात्मक जीवनचरित ही कहे जा सकते हैं। स्वामी दयानन्द को नायक के रूप में स्वीकार कर कुछ ऐसी काव्य-रचनाएँ भी लिखी गई हैं जिनमें काव्योचित रसात्मकता तथा महाकाव्योचित गरिमा के दर्शन होते हैं। आगे हम जिन काव्यों का विवेचन करने जा रहे हैं उनमें महाकाव्यों के सभी लक्षणों का पूर्णरूपेण निर्वाह हुआ है। साहित्यिक कसौटी पर भी ये सभी खरे उतरते हैं।

कविरत्न प्रकाशचन्द्र रचित दयानन्दप्रकाश (महाकाव्य)

युग पुरुष दयानन्द के चरित को निबद्ध करने वाला यह महाकाव्य आर्यसमाज के प्रख्यात कवि एवं संगीतज्ञ पं. प्रकाशचन्द्र कविरत्न की लेखनी से प्रसूत हुआ है। महाकाव्य का पूर्वार्द्ध ही 1972 ई. में प्रकाशित हुआ, जिसमें चरित नायक के जन्म से लेकर गुरु गृह वास तथा विद्या ग्रहण के अनन्तर दीक्षान्त-संस्कार तक की घटनाएँ वर्णित हुई हैं। इस काव्य की रचना कवि ने उस समय की, जब वह वात रोग से ग्रस्त होकर जयपुर के राजकीय चिकित्सालय में प्रविष्ट हुआ था। काव्य लेखन की प्रेरणा किसी क्षण में कितनी बलवती हो सकती है, यह स्वयं कवि के मुख से ही सुनिए—"जयपुर का अस्पताल, एक बिस्तर पर पड़ा हुआ मैं। सोचता रहता था अपने भविष्य के सम्बन्ध में सोचता था अब कुछ नहीं कर पाऊँगा क्योंकि संधिवात ने मेरे हाथ और पैर बेकार कर दिए हैं। मेरे भीतर उत्साह क्षीण होने लगा था। भविष्य

अमा की रात जैसा अगोचर, रहस्यपूर्ण, निराशा उत्पन्न करने वाला बना दिखाई देता था।" ऐसे अन्धकार में फँसे रुग्ण कवि को एक दिन दवाखाने की खिड़की से झाँकता बाल रवि दिखाई दिया। "न जाने उस दिन सूर्य कैसा लावण्य लिए हुए था कि मन बार-बार उसे ही देखते रहने को ललचाता था। अपनी आँखों में कहीं विकार न हो जाए, सोच कर मैंने अपनी आँखों को जबरन बन्द कर लिया।"

"आँखों के बन्द होते ही गुरुवर दयानन्द की मूर्ति दिखाई देने लगी और सहज ही में विचार आ गया कि क्यों न महर्षि का पावन चरित्र काव्य सरिता में रूपान्तरित किया जाए ? आँखें खोलीं, सूरज खिड़की छोड़ चुका था। किन्तु वह प्रकाश पुंज मेरे नेत्रों में समा गया था। उस बाल रवि के प्रति मैं आज भी आकर्षण अनुभव करता हूँ क्योंकि उसने ही इस अंधकारमय भविष्य में प्रकाश की किरण प्रकाशित की थी। उसी किरण से प्रकाश पाकर दयानन्दप्रकाश काव्य रच रहा हूँ।"[41]

शारीरिक अस्वस्थता और मानसिक वेदना की स्थिति में महापुरुषों के आदर्श जीवन ही मानव के लिए मार्गदर्शक हो सकते हैं। तथा उनकी जीवन घटनाओं की आलोचना ही उसकी पीड़ाओं और आधिव्याधियों को विस्मृत करने का साधन बनती है। आलोच्य महाकाव्य के सम्पादक प्रो. सदाविजय आर्य के शब्दों में, "कवि के प्रेरणा स्रोत महर्षि दयानन्द सरस्वती रहे हैं। और पीड़ा या वेदना की स्थिति में महर्षि के जीवन ने कवि को दिशा प्रदान की है। अतः उस कल्याणकारी प्रबुद्ध महर्षि की जीवनी को ही काव्य रूप देना कवि के लिए सहज हो गया है।"[42]

दयानन्द प्रकाश त्रयोदश सर्गों में विभक्त है। प्रथम सर्ग के 'वन्दना' शीर्षक अंश में कवि ने उस जगन्नियन्ता निराकार परमात्मा को अपना कोटिशः प्रणाम निवेदित किया है जो संसार रूपी रूपक (नाटक) का दिव्य सूत्रधार है तथा जिसके निर्देशन में ही सर्व जीव नटों की भाँति रातदिन जागरूक रह कर अपना अभिनय करते रहते हैं—

दृश्यकाव्य से ये कमनीय कलापूर्ण अति
सकल जगत है नाटक नयनाभिराम।
सर्व जीव नट होके रंग मंच पर प्रकट
अभिनय करते हैं जो विविध निशि याम।।

जागरूक होके आप चुपचाप देखता है—

देता वैसा उसको है जैसा जिसका है काम
लेता है न रूप जो उसी अनूप सूत्रधार
ब्रह्म निकराकार को है मेरा कोटिशः प्रणाम।।[43]

---

41. ग्रन्थारम्भ में कवि वक्तव्य
42. सम्पादकीय वक्तव्य—पढ़ने से पूर्व
43. सर्ग 1, पृ. 1

यहीं पर कवि ने अपने जीवन की संध्या में जब कि शरीर नाना रोगों से ग्रस्त होकर जीर्ण शीर्ण हो चुका है, स्वामी दयानन्द के जीवन को काव्यबद्ध करने की अपनी इस हार्दिक अभिलाषा को व्यक्त किया है–

हो गया हूँ व्याधि ग्रस्त अस्त व्यस्त क्षीणकाय
पोर पोर में अपार वेदना है दाह है।
बह रहा तदपि अजस्र उर में उछाह
आशा परम प्रतीति प्रीति का प्रवाह है।।
हूँ न ही हताश मैं यद्यपि जीवन की साँझ
होने आई इसकी न रंच परवाह है।
केवल महामनीषी श्री महर्षि दयानन्द
जीवन चरित्र काव्य सर्जन की चाह है।।[44]

परन्तु जब कवि एक ओर अपनी अल्पज्ञता तथा अपने में काव्य-सर्जन के आवश्यक उपादानों की विरलता की बात सोचता है तथा दूसरी ओर अपने चरितनायक के विशाल महासागर तुल्य जीवन का चिन्तन करता है तो उसे सहज ही इस बात का आभास हो जाता है कि बिना भगवदीय अनुकम्पा के, वह इस महत् कार्य की पूर्ति नहीं कर सकेगा–

गुरुजन स्नेही सुहृदादि की सहानुभूति
प्रेरणा से ही है मुझे कुछ लिखने का चाव।
छन्दालंकारादि शास्त्र में न है गम्भीर गति
मर्म स्पर्शिणी कवित्व शक्ति का भी है अभाव।।
मेरी दृष्टि में तो ऋषिराज दयानन्द जी का।
जीवन चरित है विशाल एक दरियाव।
आपकी अपार अनुकम्पा के बिना हे नाथ।
पार पा सकेगी नहीं मेरी अल्पमति नाव।।[45]

उसके लिए ऋषि चरित का अवगाहन वैसा ही है, जैसा कि बौने का चन्द्रमा को छूने की अभिलाषा करना। परन्तु ईश कृपा से उसकी कामना पूरी होगी। यह विश्वास भी कवि को प्राप्त है–

है ये एक युग से हृदय अभिलाषा अति
काव्य रचूँ मैं महर्षि जीवन महान पर।

44. वहीं, पृ. 2
45. वहीं, पृ. 3
46. वहीं, पृ. 3

देखता कभी हूँ महर्षि का चरित्र उच्च कभी
दृष्टि जाती निज तुच्छ मति अल्प ज्ञान पर।
जैसे वे अमेरिका निवासी थे पहुँच गए
चन्द्र तक बैठकर अन्तरिक्ष यान पर।
तैसे मैं बौना चला हूँ छूने चन्द्र रूपी लक्ष्य
बैठ के हे प्रभो ! तेरी कृपा के विमान पर।।[46]

सर्ग के अवशिष्ट अंश में वह दयानन्द के महत् चरित की इस आशा के साथ एक मनोरम झाँकी उपस्थित करता है–

विश्व का प्रत्येक प्राणी
शान्त निष्कण्टक अभय हो।
हेय दानवता पराजित हो
मनुजता की विजय हो।
ज्योति जागे ज्ञान की
अज्ञान का तम तोम क्षय हो।
श्री दयानन्दर्षि का जीवन
चरित कल्याणमय हो।।[47]

द्वितीय सर्ग में दयानन्द के आविर्भाव काल की देशदशा का यथार्थ वर्णन हुआ है। पुनः तृतीय सर्ग में दयानन्द के जन्मस्थान का वर्णन करने के पश्चात् वह बालक मूलशंकर के जन्म के अनन्तर उसकी शरीर शोभा का वर्णन परम्परा प्राप्त उपमानों की सहायता से करता है–

मुख अमल कमल कण्ठ मानों कम्बु कल
था शिला सा वक्षस्थल अर्द्ध-चन्द्र सम भाल।
स्वच्छ सीप से थे कान नाक ऊँची छविमान
भौहें धनु के समान युग लोचन विशाल।
बाहु थे जानु पर्यन्त मुक्ता से उज्ज्वल दन्त
चारु चरण अत्यन्त नम्र रेशम से बाल।
पुरजन परिवार मोद पाते थे अपार।
अवलोक बार बार देवताओं का सा लाल।।[48]

चतुर्थ सर्ग में दयानन्द को बोध प्रदान करने वाली शिवरात्रि पर मूर्तिपूजा के

47. वहीं, पृ. 13
48. सर्ग 3, पृ. 28

प्रति अनास्था उत्पन्न करने वाली घटना के वर्णन के पश्चात् कवि ने पंचम सर्ग में दयानन्द में तीर्व वैराग्य उत्पन्न करने वाली घटनाओं को उपस्थित किया है। विशूचिका रोग से ग्रस्त भगिनी की मृत्यु ने मूलशंकर के मानस को किस प्रकार उन्मथित किया था—

अपलक नयनों से भगिनी का जो था मृत देह निहार रहा।
मानस सिन्धु में विचारों का था ज्वार हिलोरें मार रहा।

तथा—

नित झूली जो शाखा के झूलने में
प्रिय गोद में मंजुलता के पली।
रही मुग्ध पिकी तितली छवि पै
करते थे सदा गुणगान अली।
खिलने नहीं पाई अचानक ही
कुंभलाई यों कोमल मंजुकली।
मन मार मसोस के बैठे रहे
नहीं काल समक्ष किसी की चली।।[49]

यह है मृत्यु की अनिवार्यता-अपरिहार्यता का एक ज्वलन्त चित्र। इसी सर्ग में संसार की नश्वरता और क्षणभंगुरता का वर्णन हुआ है—

संध्या राग भाँति अस्थिर गति,
ढाक-पात पर पड़े आस कण।
सदृश ढुलने को आतुर है
यह जग जीवन क्षण भंगुर है।
क्या कंगाल और क्या राजा
एक दिवस सबको है जाना
पथ पथ प्रतिपल अजगर सम मुख
खोले खड़ा काल निष्ठुर है।
यह जगजीवन क्षण भंगुर है।।[50]

छठे सर्ग में दयानन्द के गृहत्याग और महाभिनिष्क्रमण का उल्लेख हुआ है।

---

49. सर्ग 5, पृ. 45
50. वही, पृ. 45
51. सर्ग 9, पृ. 83

क्रमशः अन्य सर्गो में सिद्धपुर के मेले में स्वामी दयानन्द की पिता से अन्तिम भेंट, संन्यास दीक्षा, कुम्भ मेले में साधु समागम आदि घटनाऐं वर्णित हुई हैं। स्वामी दयानन्द के उत्तराखण्ड भ्रमण वृत्तान्त को निबद्ध करते हुए कवि को परम्परागत षट् ऋतु वर्णन का अवसर अनायास ही उपलब्ध हो गया है। सर्वप्रथम ऋतुराज वसन्त के आगमन को कवि ने वर्णित किया। प्रिय ऋतुराज वसन्त समाहित वृक्षों में खसखाओं में नव पत्रों में फल फूलों में लौनी नवल लताओं में सुन्दर आम्र मंजरी पर मीठे स्वर वाली मदमाती पंजम स्वर में कुटअुक कुटुक मानों प्रभु के गुण गाती।।[51]

वसन्तान्तर ग्रीष्म का एक वस्तुनिष्ठ चित्र देखिए–

विकल ग्रीष्म से हो, बैठी गौ छाया में भैंसें जल में,
मोर झाड़ में खग नीड़ों में हरिण घने जंगल में
विचर रहे बादल के छोटे छोटे टुकड़े अंबर में
मानो छोटी नावें विचर रही हैं सागर में।।[52]

वर्षा ऋतु की श्याम घटाओं ने किस प्रकार तिमिर आवरण फैलाकर पथिकों को पथ-पथ भ्रान्त किया है–

सूझ रहा है कुछ न तिमिर में हुए पथिक दिग्भ्रान्त सभी
दिखा रहे पथ जुगनू चमक कर लघु भी आते काम कभी
वायु वेग से छिन्न भिन्न जब हो जाती है घन माला।
इन्द्र धनुष शोभा देता है नभ में सप्त रंग वाला।।[53]

"वर्षा विगत सरद ऋतु आई" प्रिय और काम्य शरद वर्णनद्रष्टव्य है–

चन्द्र यामिनि दिव्य भामिनी ओढे मानो धवल वसन।
सौख्य धाम नयनाभिराम प्रिय शरदकाल अति मन भावन
सरिताएँ कल कल निनादिनी शुचि जल भरित प्रवाहित हैं
कारण्डव चकवा चकोर कल हंस पंक्ति से शोभित हैं।।[54]

हेमन्त में शीत के आधिक्य ने जो परिवर्तन किए हैं उनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है–

---

52 वही, पृ. 84

53. वही

54. वही, पृ. 84

55. वही, पृ. 85

56. वही, पृ. 86

इस हेमन्त काल ने जल हिम सूर्य, चन्द्र सम बना दिया।
पावक, चन्दन, जीवनदात्री मारुत को यम बना दिया।
लिया आश्रय अग्नि दीन वे ओढ़े बोरी के टुकड़े।
हिम ऋतु में दिन रैन बिताते ये केवल सुकड़े सुकड़े।।[55]

तथा

हवेर हुए नृपति के सम सरसिज मुरझित छविहीन हुए।
क्षीण हुई गज, गज कपि उदण्डता जल में व्याकुल मीन हुए।।[56]

और अन्त में,

आया शिशिर समय निज स्वर्णिम किरणावलियों से दिनकर
लगा हटाने शैल घटा के मध्य मार्ग की हिम चादर।
श्वेत भाल भारत का हिम गिरि सकल पर्वतों से न्यारा।
जिससे है बह रही युगों से सतत ज्ञान गंगा धारा।।[57]

दशम और एकादश सर्ग में कवि ने स्वामी दयानन्द के व्यापक देश भ्रमण का वर्णन किया है। अन्ततः वे अपने विद्या गुरु स्वामी विरजानन्द के निकट मथुरा पहुँचते हैं। द्वादश सर्ग दण्डी विरजानन्द को समर्पित है। सर्ग के प्रारम्भ में ही कवि ने वृद्ध गुरु के व्यक्तित्व को निम्न छन्द में उभार कर प्रस्तुत किया है–

यद्यपि था प्राकृतिक दृष्टि का अभाव किन्तु
ज्ञान दृष्टि आत्म तुष्टि थी विगत क्लेश थे।
स्नेह था अथाह था न द्वेष दाह, चिन्ता चाह
दम्भ कपटादिक विकार नहीं लेश थे।
विद्या दानी, ज्ञानी, स्वाभिमानी भक्त थे सशक्त
मानस वचन कर्म से विरक्त वेश थे।
राजसी नहीं थे साथ ठाठ किन्तु परिव्राट
विरजानन्द मानस भवन के राजेश थे।[58]

इसी प्रसंग में कवि को मथुरा नगर के वर्णन करने का भी अवसर मिल गया है। कृष्ण का जन्मस्थान और क्रीड़ास्थल होने से इस नगर की रम्य शोभा वर्णनातीत है। नाना कलाकृतियों का आगार मथुरा नगर दर्शनीय है–

---

57. वही, पृ. 86
58. सर्ग 12, पृ. 113
59. वही, पृ. 119

हाट बाट रमणीक घाट मथुरा विराट नगरी के
भव्य भवन मन्दिर प्रसिद्ध नयनाभिराम अति नीके।
ताल मृदंग चंग सांगी वीणा वंशी वादन
ध्रुव पद धमाल ख्याल तान आलोप सूट पद गायब।[59]

इसी मथुरा में एक सदाशय और उदार पुरुष जोशी अमरलाल ने अपरिचित छात्र संन्यासी दयानन्द सरस्वती के भोजन की सुव्यवस्था कर मानवता पर जो परोक्ष रूप में उपकार किया, उसके मूल्यांकन में असमर्थ कवि कहता है—

एक अपरिचित संन्यासी का तुम कर पालन पोषण।
बाँट रहे थे कोटि कोटि मनुजों को आत्मिक भोजन।
दयानन्द दिनकर में जो भी तेज पुंज था अक्षय।
उसके संचय में तुमने भी भाग लिया है सहृदय।[60]

गुरु गृह में रहकर दयानन्द ने विद्याध्ययन तो किया ही, अद्भुत गुरु भक्ति का परिचय देते हुए तीव्र स्मरण शक्ति, तर्क कौशल आदि गुणों का विकास कर सहृदयता, संयम तथा तपस्वी जीवन यापन का आदर्श भी प्रस्तुत किया। त्रयोदश सर्ग में गुरु दक्षिणा के रूप में दयानन्द द्वारा धर्म एवं समाज संशोधन के महत् कार्य को सम्पादित करने की प्रतिमा के वर्णन के साथ-साथ महाकाव्य का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है।

दयानन्दप्रकाश का कला पक्ष : श्री प्रकाशचन्द्र कविरत्न आर्यसमाज के प्रबुद्ध उपदेशक तथा साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ कवि थे। अतः उनके काव्य में शास्त्रोचित लक्षणों का पाया जाना स्वाभाविक ही है। यद्यपि दयानन्द सरस्वती के विविध घटना संकुल जीवन का चित्रण करने के कारण दयानन्द प्रकाश की शैली में इतिवृत्तात्मकता का आ जाना स्वाभाविक ही था, कवि ने उसे सरस और मनोरम बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। महाकाव्य की भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित है तथा संस्कृत के तत्सम शब्दों से आच्छन्न है। यत्र-तत्र कवि ने संस्कृत के विभक्ति रूपों का तत्सम प्रयोग भी किया है। यथा—

निरन्तर स्वदेश उपकाराय
जनों में भाव भरूँगा भव्य।
करूँगा आकुल लोक हिताय
प्राण पण से पालन कर्तव्य।।

60. वही, पृ. 124
61. सर्ग 6, पृ. 58

लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भाषा की रोचकता को बढ़ाने का कारण बना है। कुछ उदाहरण–

सोचा दयानन्द ने है ठीक गेह त्यागने पै
साथ रखना ये फिर कंचन का मोह क्यों ?
फेंक दिए भूषण तुरन्त कह के ये वाक्य
हाथी दे दिया तो फिर अंकुश का मोह क्यों ?[61]

तथा–

कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की जन्मभूमि अति प्यारी।
है लोकोक्ति पुरानी तीन लोक से मथुरा न्यारी।।[62]

अलंकार योजना–आलोच्य काव्य में अनुप्रास, रूपक, उपमा आदि सादृश्य मूलक अलंकारों के अतिरिक्त श्लेष, भ्रान्तिमान आदि चमत्कार मूलक अलंकारों का भी उचित प्रयोग हुआ है। प्रायः अलंकारों का उपयोग कविगण काव्य में चमत्कार वृद्धि के लिए ही करते हैं किन्तु 'दयानन्द प्रकाश' का अलंकार विधान सहज और अकृत्रिम है। यत्र-तत्र अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है–

महामनीषी माननीय मेधावी महिमा मण्डित।

तथा–

अटल अक्षय अजेय अविकार
अगम अनुपम आनन्दागार
अभ्युदय निःश्रेयस सोपान।। आदि।

कोहरे से आच्छादित शीतकाल के सूर्य को देखकर चकोर को चन्द्रमा का भ्रम हो जाता है और वह उसे चन्द्र समझ कर अपलक नयनों से देखता है। भ्रान्तिमान अलंकार का यह परम्परागत चित्र देखिए–

श्वेत चाँदनी समकुहरे से आच्छादित सूरज की ओर।
विलोकती थी शशि के भ्रम अपलक नयनों से मुग्ध चकोर।

छान्दोविधान–कवि ने काव्य परिपाटी का निर्वाह करते हुए इस महाकाव्य में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा तथा घनाक्षरी आदि छन्दों के अतिरिक्त गीत तथा भजन आदि भी यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं। समग्र दृष्टि से देखने पर हम

---

62. सर्ग 12, पृ. 119

सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'दयानन्द प्रकाश' न केवल महाकाव्योचित लक्षणों की ही दृष्टि से, किन्तु वर्ण्य-विषय की गरिमा तथा शैली-विधान की उत्कृष्टता के कारण भी कवि की एक महत्त्वपूर्ण काव्य कृति है।

कामताप्रसाद रसबिन्दु लिखित महाकाव्य 'ज्वाला'

गोरखपुर जनपद के बडहलगंज कस्बे में जन्मे कामताप्रसाद रसबिन्दु द्वारा स्वामी दयानन्द के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया महाकाव्य ज्वाला 1973 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ के प्राक्कथन में श्री अनिरुद्धसिंह शशि ने उसे ऋषि जीवन पर लिखित प्रथम महाकाव्य कहा है, जो निश्चय ही भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि इससे पूर्व भी कविकुमार शेरसिंह, विज्ञानमार्तण्ड वात्स्यायन, विमलचन्द्र विमलेश तथा प्रकाशचन्द्र कविराज आदि कवियों द्वारा रचित विभिन्न महाकाव्य लिखे जा चुके थे जो स्वामी दयानन्द के जीवन को ही अपना आधार बनाते हैं। आलोच्य ग्रन्थ को कवि ने ज्वाला का नाम दिया है और इसे सात शिखाओं में विभक्त किया है। उसका कथन है कि ज्वाला सप्तवर्णी होती है अतः उसकी यह काव्यज्वाला भी सप्तशिखात्मक है।

प्रथम शिखा में स्वामी दयानन्द के जन्म से लेकर उनके गृहत्याग के पहले तक की परिस्थितियों एवं घटनाओं का उल्लेख हुआ है। इस सर्ग में कवि ने काव्य रूपों के विविध प्रयोग किए हैं। उदाहरणार्थ, शिशु (मूलशंकर) को सुलाने के लिए माता ने जो लोरी गाई उसे लोरी गीत के द्वारा प्रस्तुत किया। द्वितीय शिखा में मूलशंकर का गृहत्याग, प्रथमानुभव, अन्वेषण के पथ पर, कुम्भ तथा हिमालय में तथा अलखनन्दा की ओर शीर्षक वाले उपशीर्षक दिए गए हैं। कुम्भ वर्णन में कवि ने इस महान् धार्मिक मेले में आई विकृतियों तथा धर्म के नाम पर चलने वाले पाखण्डों का यथार्थ चित्रण किया है।

यथा—

> जन्मान्ध देखते वैतरणी।
> गैया को समझे अग्निबोट।।

वैतरणी पार करने के लिए गोदान को ही नौका समझने वालों पर अच्छी व्यंग्योक्ति है। यहाँ आए साधु संन्यासी नाना प्रवंचनापूर्ण कृत्यों से धन संग्रह में लगे हैं—

> काँटों पर सोया लुंज साधु
> था रहा कनखियों से निहार,
> चादर पर सिक्कों की बहार।

तत्त्वानुसन्धान में तत्पर दयानन्द सरस्वती के लिए तो यह कुम्भ मिट्टी के कच्चे

घड़े से अधिक महत्त्व नहीं रखता। उस 'सरस्वती' को वीणा पाणि के जिस हंस (ज्ञान) की तलाश थी वह नीरक्षीर विवेकी, मुक्ता भक्षण करने वाला सरस्वती का वाहन इस कुम्भ में कहाँ था ?

वह कुम्भ मृत्तिका कुम्भ मिला,
था सरस्वती का हंस नहीं।
पा सका कहाँ वह मुक्ताहल ?

विंध्याटवी की ओर दयानन्द के प्रस्थित होने तथा उसके बाद के दो-तीन वर्ष अज्ञातवास में रहने के प्रसंग तृतीय शिखा में आए हैं। सम्भवतः कवि ने स्वामी जी के जीवनचरित का सम्यक् अध्ययन नहीं किया तथा उनके देश भ्रमण के वृत्तान्त को तथ्यपूर्वक नहीं जाना इसलिए वह उनके कन्याकुमारी, सेतुबंध रामेश्वर तथा जगन्नाथपुरी आदि स्थानों पर जाने की भी चर्चा करता है जब कि सत्य यह है कि स्वामी दयानन्द महाराष्ट्र के नगर सातारा के आगे दक्षिणपथ में नहीं जा पाए थे। मथुरा में अध्ययन करने का वृत्तान्त भी इसी शिखा में आ गया है।

चतुर्थ सर्ग (शिखा) में कथानायक के उत्तरभारत में भ्रमण करने का वृत्तान्त आया है। इसी में उनके हलधर ओझा से किए गए दो शास्त्रार्थ तथा काशी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ भी वर्णित हुआ है। काशी शास्त्रार्थ के पूर्व रंग के रूप में वहाँ के धार्मिक वातावरण और सम्प्रदायों के मायाजाल को कवि ने वास्तविक रंग देकर चित्रित किया है–

वह काशी जिसे जिसको कहते हैं
शिव के त्रिशूल पर बसी हुई।
जो अखिल विश्व की संस्कृति से
रहती है अविरल कसी हुई।।

काशी के धर्मस्थलों तथा देवालयों का वर्णन देखें–

जिसके लम्बोदर कोतवाल
तैंतीस कोटि सुर वासी हैं।
अस्सी वरुणा ध्रुवनन्दा की
बाँहों में धर्म प्रकाशी है।।

पुराणवर्णित देवताओं के पराक्रमों का व्यंग्यपूर्ण वर्णन इस प्रसंग को अधिक तीखा बनाता है–

संकट मोचन हर संकट के
संकट बनकर घिर जाते हैं।

वेणी माधव धरहरे से
दुश्मन का पता लगाते हैं।
स्वयं शंकर इसमें रहते
मन्दिर में मण्डित कंचन से।
इसलिए जाह्नवी पापनाश
हर करती नित इन्जैक्शन से।।

स्वामी दयानन्द के इस काशी शास्त्रार्थ में पक्ष प्रतिपक्ष द्वारा मूर्तिपूजा के खण्डन मण्डन में जो युक्ति-प्रत्युक्ति प्रयुक्त की गई थीं, उन्हें कवि ने विस्तार के साथ पद्यों का जामा पहनाया है।

पंचम शिखा में काशी से चलकर स्वामीदयानन्द का कलकत्ता आगमन तथा पुनः पश्चिमोत्तर प्रदेश में भ्रमण के वृत्तान्त को प्रस्तुत किया गया है। कलकत्ता तो देश की तत्कालीन राजधानी ही थी और उसमें महानगर के सभी लक्षण तब भी मौजूद थे। कवि ने इसी महानगरीय बोध का चित्रण यहाँ किया है—

काशी का खित्ता कलकत्ता,
पर नगर दीखता अलबत्ता।
जनपुंज गुंजरित भनन भनन
जैसे मधु मक्खी का छत्ता।
लग रहा शहद में डूबा सा
धरती का एक अजूबा सा।

पं. ताराचरण तर्करत्न से हुगली नगर में स्वामी जी का जो शास्त्रार्थ प्रतिमा पूजन पर हुआ, उसका संक्षिप्त वर्णन भी इस शिखा में आया है। छठी शिखा में स्वामीजी के महाराष्ट्र प्रवास, पुनः 1977 के आरम्भ में दिल्ली दरबार में उपस्थित रहने तथा पंजाब भ्रमण का उल्लेख हुआ है। अन्तिम शिखा उनके राजस्थान भ्रमण तथा मृत्यु के प्रसंगों से सम्बन्धित है।

आलोच्य काव्य का कला पक्ष : जैसा कि समीक्षकों का स्पष्ट मत है, काव्यशास्त्र में वर्णित महाकाव्य के बाह्य लक्षणों की पूर्ति कर देने मात्र से ही कोई रचना महाकाव्य संज्ञक नहीं हो जाती। महाकाव्योचित गरिमा, किसी देश या जाति के सम्रग्र जीवनदर्शन का प्रतिपादन और अन्ततः मानव जाति को लिए दिए गए किसी महत् सन्देश को प्रस्तुत किए बिना घटनाओं के स्थूल चित्रण तथा अन्यान्य परम्पराओं के निर्वाह मात्र से ही कोई कृति महाकाव्य कहलाने की पात्रता अर्जित नहीं कर सकती। इस कसौटी के आधार पर ज्वाला को भी महाकाव्य नाम देने में संकोच होता है। समग्र काव्य को पढ़ जाने के पश्चात् भी पाठक के समक्ष महाकाव्य के नायक तथा उसके जीवनदर्शन

का कोई भव्य चित्र नहीं आता। इसका कला पक्ष भी दुर्बल है, यद्यपि अनेक काव्य रूपों के प्रयोग तथा छन्दों के वैविध्य ने उसे कुछ चित्र विचित्र अवश्य बना दिया है। तथापि यह काव्य पाठक को रसाप्लावित करने तथा उस पर स्थायी प्रभाव डालने में असमर्थ है।

कहने को तो रसबिन्दु की भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा तत्समबहुला है किन्तु शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने तथा उन्हें विकृत करने में कवि ने कोई संकोच नहीं किया है। फलतः मनमाने भ्रष्ट शब्दप्रयोग ने भाषा की प्रवाहशीलता तथा प्रभावोत्पादकता को नष्ट कर दिया है। शब्दों के कुछ विकृत, अस्पष्ट, भ्रष्ट तथा स्वेच्छाचार युक्त प्रयोगों के उदाहरण हैं—तमसि, दुति, क्रुद्धित, उरोदिता, छुद्र, परिन्द, व्याकरणी, अंचली आदि। इस प्रकार के शब्दों की गणना सैकड़ों तक जा सकती है। 'शिवोपरि' तथा 'शिरोपरि' जैसे अस्वाभाविक प्रयोग भी चिन्त्य हैं। यह अवश्य है कि मुहावरों के प्रयोग की दृष्टि से यह काव्य समृद्ध कहा जा सकता है।

यत्र-तत्र प्रकृति के सुन्दर तथा रम्य चित्रों को उकेरने का प्रयास तो कवि ने किया है, किन्तु वहाँ भी जटिलता और क्लिष्टता आ गई है। समग्र काव्य में प्रसाद गुण का प्रायः अभाव हे। अस्पष्टता तथा दुर्बोधता के कारण 'ज्वाला' काव्य को सहृदय संवेद्य कहना कठिन है। तथापि पठनीय स्थल भी यहाँ-वहाँ आए ही हैं। शिवरात्रि व्रत प्रसंग में प्रतिमा पूजन की निस्सारता का विवेचन इस काव्य का एक विदग्धतापूर्ण अंश है—

योग से इसका क्या संयोग।
असोची श्रद्धा मन का रोग।
निराकृति का आकृति निर्माण।
मानना मर्त्य रचित में प्राण।
जिस तरह है गुड़िया का खेल
मूल ! दुखमूल भूल अनमेल।

निष्कर्षतः, ज्वाला में महाकाव्य के लक्षण यथार्थ रूप में नहीं मिलते, यही कहना समीचीन होगा।

राणाप्रतापसिंह गन्नौरी लिखित काव्य—क्रान्तिदूत महर्षि दयानन्द

नौ सर्गों में विभक्त 'क्रान्तिदूत महर्षि दयानन्द' डा. राणाप्रतापसिंह गन्नौरी की एक पद्यात्मक कृति है। कवि का जन्म 3 जून 1938 को पाकिस्तान के जिला मुजफ्फरगढ़ के एक गाँव जहानपुर में हुआ। उनकी शिक्षा हिन्दी, संस्कृत तथा उर्दू में एम.ए. तक हुई और उन्होंने 'हिन्दी-उर्दू काव्य में राष्ट्रीय भावना' (1907-1947) विषय पर

पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। वे विगत कई वर्षों से कैथल (हरयाणा) के एक कालेज में हिन्दी के प्रवक्ता हैं।

आलोच्य काव्य का प्रकाशन 1977 में वार्ष्णेय प्रकाशन बम्बई ने किया। इसमें कवि ने ऋषि दयानन्द के जीवन की प्रमुख घटनाओं को चुन कर एक सरल प्रबन्ध काव्य के रूप में पद्यबद्ध किया है। क्रान्तिदूत महर्षि दयानन्द की रचना राणाप्रतापसिंह ने 1975 में आर्यसमाज की स्थापना शताब्दी के अवसर पर की थी। कवि ने यह स्वीकार किया है कि महाकाव्य के पारिभाषिक लक्षणों से हटकर उसने इस काव्य की रचना की है। प्रत्येक सर्ग में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण काव्य में एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है। जहाँ तक इसकी भाषा का प्रश्न है, कवि यह मानता है कि वह भी मुंशी प्रेमचन्द और उपेन्द्रनाथ अश्क की भाँति उूर्द से हिन्दी में आया है। अतः उसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ न होकर आम बोलचाल की खड़ी बोली है। यदि इस काव्य को उर्दू-फारसी की मसनवी शैली में लिखा माना जाए, तो भी अनुचित नहीं है।

अब हम सर्ग क्रम से इस काव्य पर विचार करते हैं। 'बोध एवं गृहत्याग' शीर्षक प्रथम सर्ग में स्वामी दयानन्द के आविर्भाव काल की परिस्थितियों की झलक प्रस्तुत करने के पश्चात् स्वामी दयानन्द के जन्म से लेकर मूलशंकर के गृहत्याग तक की घटनाएँ वर्णित हुई हैं। तत्कालीन तमसाछन्न वातावरण में स्वामी दयानन्द का आविर्भाव वैसा ही था जैसा अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य का आगमन होता है—

जैसे निशि के अन्धकार को
हरने को आता है दिनकर।
ऐसे उस सामाजिक तम में
उदित हुए थे अपने ऋषिवर।।

शिवरात्रि प्रसंग के वर्णन में कवि ने विशिष्ट काव्य-चातुर्य का परिचय दिया है। यथा—

तन्द्रालस में हर आराधक
जैसे नहले पर दहला था।
भक्त शिरोमणि कर्षण जी का
सोने में नम्बर पहला था।।
किन्तु इस नैश काल में भी—
केवल दो निद्रा विमुक्त थे
इस नीरव निस्तबध समय में।

एक दीप दूजा वह बालक
भरे हुए इस शिव आलय में।

क्या दीपक और मूलशंकर दोनों के जागृत रहने में भी कोई समानता है ? कवि का कथन है–

निःसंशय उज्ज्वल प्रकाशमय
दीप ज्ञान का ही प्रतीक है।
लेकिन जड़ अनुभूतिहीन है
यह कहना भी तो सटीक है।।

'संकट संकुल यात्रा' शीर्षक दूसरे सर्ग में कवि ने स्वामी दयानन्द की उत्तराखण्ड यात्रा तथा नर्मदा तटवर्ती भ्रमण का वृत्तान्त उपस्थित किया है। ओखी मठ के महन्त के सम्मुख दयानन्द अपने जीवनोद्देश्य को निम्न प्रकार प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं–

आलस तथा प्रमाद सरीखे
दुर्व्यसनों से ग्रस्त राष्ट्रजन।
अब तो इन्हें छुड़ाने को ही
कृत संकल्प हुआ मेरा मन।।
और भी, भेदभाव का जो कलंक है
निज श्रमसीकर से वह धोना।
भारत के जन जन के मन को
एक सूज में मुझे पिरोना।।

इस महत् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काव्य का नायक भगवान् से सहायता याचना करता है–

हे ईश्वर, सामर्थ्य मुझे दो।
यह संकल्प निभा पाऊँ मैं।
मानव मंगल के साधन हित
कुछ तो करके दिखलाऊँ मैं।।

दण्डी विरजानन्द के विद्यालय में दयानन्द का शास्त्राध्ययन तृतीय सर्ग में उल्लिखित है। प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द के चर्मचक्षुओं से हीन होने, किन्तु मानस चक्षुओं के उन्मीलन का यह हृदयग्राही वर्णन दर्शनीय है–

महामहिम विरजानन्द जी के
चर्मचक्षु तो मुँदे हुए थे।

लेकिन दैवदया के कारण
मानस के दृग खुले हुए थे।।

'काशी काण्ड' शीर्षक चतुर्थ सर्ग में सुप्रसिद्ध काशीशास्त्रार्थ का वर्णन है। अवशिष्ट पॉच सर्गो में स्वामी जी के जीवन की शेष घटनाओं को क्रमबद्ध वर्णित करने की अपेक्षा कवि ने उनके चरित्र और व्यक्तित्व के कुछ उदात्त पक्षों को ही उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है। फलतः 'तेजस्वी सत्यप्रिय दयानन्द' शीर्षक पंचम सर्ग में स्वामी जी की तेजस्विता, उनकी दृढ़ सत्याग्रह वृत्ति तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के प्रति अभिरुचि प्रदर्शित करने वाले प्रसंग वर्णित किए गए हैं। लोगों के मन-मस्तिष्क से परमात्मा के स्थान पर जमी जड़ मूर्तिपूजा की आसक्ति को निर्मूल करने के लिए बद्धपरिकर दयानन्द के लिए साम्प्रदायिक पूजा पद्धतियों के प्रतीक मन्दिर अथवा मस्जिद के प्रति किसी भी प्रकार की आसक्ति या विरक्ति का भाव नहीं था। तभी तो फरूखाबाद के अपने कुछ भक्तों के इस आग्रह को वे अस्वीकार कर देते हैं कि जिलाधीश को कहकर राजमार्ग के बीच बनी किसी मढिया को हटवा दें तथा मूर्तिपूजा के इस प्रतीक को उन्मूलित करें। स्वामी जी का उत्तर था--

जनसाधारण के मनमन्दिर
से प्रतिमाएँ हैं मुझे हटानी।
ईट और पत्थर से निर्मित
मन्दिर मढिया नहीं गिरानी।।

'प्रभु विश्वासी दयालु दयानन्द' छठा सर्ग है। इसमें अशेष मानवता के सार्वजनिक हित की सिद्धि के लिए आर्यसमाज स्थापना का पावन प्रसंग वर्णित है। सामाजिक संगठनों में लोकतान्त्रिक भावों को पूर्ण प्रश्रय देने वाले दयानन्द के इस कथन की महत्ता को हृदयंगम करना आवश्यक है–

अपने आर्यसमाज उपवन का
मैं हूँ एक तुच्छ सा माली।
मेरा कुछ हो, इस उपवन की
फूले और फले हर डाली।।

उनका हार्दिक भाव निम्न पंक्तियों में उन्मुक्त भाव से मुखरित हुआ है–

हरी भरी हो वेद वाटिका
यज्ञ होम सुरभित समीर हो।
और मन्त्र खग कलरव गूँजे
प्राप्त सौख्य फल हो जन जन को।।

मूर्तिपूजा की निरर्थकता के लिए स्वामी दयानन्द द्वारा प्रयुक्त युक्ति सरण की स्वच्छ व्यंजना द्रष्टव्य है—

देवभावना से भी प्रतिमा
का पूजन कुछ ठीक नहीं है।
जड़ को चेतन कह देने से
ही अभीष्ट फल मिला कहीं है ?
तथा, व्यापक का सीमित सा पूजन
है मज़ाक व्यापकता का ही।
इन प्रस्तर प्रतिमाओं में है
क्या ईश्वर का कोई गुण भी।।

अतः मूर्तियों की पुष्पों द्वारा अर्चना करना क्या फिजूल की कसरत नहीं है—

व्याप्त सब जगह है जब ईश्वर
फूलों में क्या नहीं बसा है
जिन्हें तोड़कर प्रतिमाओं पर
चढ़ा रही भोली दुनिया है।।

स्वामी दयानन्द की कुछ योगजन्य विभूतियों की चर्चा 'परमयोगी दयानन्द' शीर्षक सप्तम सर्ग में हुई है। स्वामी दयानन्द की ब्रह्मसमाज के नेता केशवचन्द्र सेन से भेंट कलकत्ता में हुई थी। कवि ने इसे भागलपुर में हुई बताया है जो स्पष्ट ही तथ्यों से विपरीत है। स्वामी जी की देश भक्ति, स्वराज्य, स्वभाषा तथा स्वदेशी के प्रति उनका अनन्य आस्था भाव विभिन्न प्रसंगों के रूप मे 'देशभक्त दयानन्द' शीर्षक आठवें सर्ग में वर्णित हुआ है। 'हत्यारों के प्राणदायक' शीर्षक नवम सर्ग इस काव्य का अन्तिम सर्ग है। दयानन्द जैसे निर्भीक, आडम्बर, पाखण्ड तथा अनाचार के कटु आलोचक तथा मनस्वी महाप्राण पुरुष के प्राणहरण की विभिन्न चेष्टाएँ समय-समय पर हुई किन्तु उस क्षमाशील महानुभाव ने ऐसे सभी प्रसंगों के आने पर अपने अनिष्टकर्त्ता आततायियों को क्षमादान करने में कभी संकोच नहीं किया। ऐसे ही उदात्त प्रसंगों के वर्णन और महर्षि के महापरिनिर्वाण के करुणोत्पादक घटनाक्रम के वर्णन के साथ-साथ यह काव्य समाप्त होता है। अस्ताचलगामी सूर्य के साथ-साथ दयानन्द के जीवन सूर्य का अस्तंगत होना कवि की दृष्टि में दो सूर्यो के डूबने के तुल्य है—

एक साथ दो सूरज डूबे
एक गगन का एक धरा का।

और व्याप्त हो गया जगत में
घोर अँधेरा अमानिशा का।।

ध्यातव्य है कि महर्षि का निधन भी दीपावली की अमानिशा को ही हुआ था। सरल भाषा और प्रवाहपूर्ण शैली में दयानन्दचरित को पद्यबद्ध करने में ही राणाप्रतापसिंह की काव्य प्रतिभा की सफलता दृष्टिगोचर होती है।

देवर्षि दयानन्द

कोटा निवासी डा. राजेन्द्र वर्मा का देवर्षि दयानन्द शीर्षक महाकाव्य अभी तक अप्रकाशित ही है। उसका वन्दना खण्ड 1981 ई. में प्रकाशित हुआ है जिससे कवि की प्रतिभा का पता लगता है। ईश्वर वन्दना तथा सरस्वती वन्दना के अनन्तर कवि ऋषि दयानन्द की वन्दना करता है। अपने काव्य नायक की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कवि विभिन्न उपमानों की योजना करके करता है–

मलय सुरभि जैसे सुगन्ध में गिरियों में गिरिराज महान।
नीलाम्बर में अनगिन उडुगन पर उडुपति उज्ज्वल अम्लान।
कालिदास कविकुल में जैसे है मराल का मण्डित मान।
ऋषियों में ऋषि दयानन्द का है वैसे सर्वोत्तम स्थान।।

ऐसे अशेष गुण सम्पन्न स्वामी दयानन्द के चरित को यथार्थ रूप में काव्यबद्ध करना किसी भी कवि के लिए कितना कठिन है, इससे काव्यकार भली भाँति परिचित हैं। अतः वह कहता है–

दयानन्द का ब्रह्मज्ञान था जैसे सिन्धु अनन्त अपार।
विमल विशद व्यक्तित्व कि जैसे उठें उदधि के उर में ज्वार।
क्षमता क्षुद्र ज्ञान की मेरी अति ही जीर्ण शीर्ण पतवार।
पर गुरुजन की कृपा नाव से कर जाऊँगा उसको पार।

दयानन्द के अनन्त सिन्धु के तुल्य अपार एवं अगाध चरित को क्षुद्र काव्य रूपी पतवार से सन्तरण करना कितना कठिन है, इसे कवि भली भाँति जानता है तथापि उसे विश्वास है कि गुरु जनों की जिस कृपा नौका पर बैठ कर वह यह दुस्तर कार्य करने जा रहा है, उसमें उसे अवश्य सफलता मिलेगा। निश्चय ही यदि देवर्षि दयानन्द कभी प्रकाशित होकर पाठक समाज के सम्मुख आया तो वह एक रम्य काव्य कृति सिद्ध होगी।

मृत्युंजय दयानन्द महाकाव्य : मदनमोहन जावलिया रचित

स्वामी दयानन्द के प्रेरणादायी जीवन को लक्ष्य में रखकर लिखे गए महाकाव्यों की शृंखला में डा. मदनमोहन जावलिया रचित मृत्युंजय दयानन्द महाकाव्य नवीनतम है। सुरुचिपूर्ण साहित्यिक शैली में लिखे गए इस काव्य से कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा का तो परिचय मिलता ही है, काव्य नायक के प्रति उसकी अशेष श्रद्धा भी प्रकट होती है। इस काव्य का प्रकाशन 1983 ई. में स्वामी दयानन्द की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर हुआ है।

कवि मदनमोहन जावलिया राजस्थान के शाहपुरा (भीलवाड़ा) कस्बे के निवासी हैं। इसी शाहपुरा के राजाधिराज नाहरसिंह द्वारा आमन्त्रित होकर स्वामी दयानन्द 1883 ई. में वहाँ गए थे और पर्याप्त समय तक निवास कर इस प्रदेश के लोगों को अपने शिक्षाप्रद उपेदशों से प्रभावित किया था। कवि जावलिया का जन्म 12 दिसम्बर 1930 को इसी कस्बे के एक आर्यसमाजी परिवार में हुआ। हिन्दी और संस्कृत में एम.ए. परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने 'हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में आर्यसमाज की पत्र-पत्रिकाओं का योगदान' विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि ग्रहण की है। अनेक वर्षों तक राजस्थान कॉलेज शिक्षा सेवा के अन्तर्गत हिन्दी के प्राध्यापक रहने के पश्चात् वे अवकाश ले चुके हैं। काव्य प्रणयन में उनकी सहज रुचि है और वे वर्षो से काव्य साधना में संलग्न हैं। यद्यपि उन्होंने प्रचुर मात्रा में काव्य रचना की है, किन्तु उनकी प्रकाशित कृतियों की संख्या अधिक नहीं है। मृत्युंजय-दयानन्द का प्रकाशन भी उसके निर्माण के कई वर्ष पश्चात् सम्भव हो सका है। उनका 'कालरात्रि' शीर्षक खण्ड काव्य तथा एक कविता संग्रह तो अभी प्रकाशन की प्रतीक्षा में ही हैं।

मृत्युंजय दयानन्द 16 सर्गो में निबद्ध शास्त्रीय लक्षणों से युक्त महाकाव्य है। लेखक का विचार था कि स्वामी दयानन्द के जन्म से लेकर बलिदान पर्यन्त घटनाओं को लेकर तीन खण्डों में एक विशाल महाकाव्य की रचना की जाए। इस योजना के अन्तर्गत दयानन्द के आरम्भिक जीवन से सम्बन्धित 'मूलशंकर दयानन्द' शीर्षक काव्य चार सर्ग पर्यन्त लिखा गया। इसी योजना का अन्तिम खण्ड मृत्युंजय दयानन्द है। इसमे स्वामी दयानन्द के शाहपुरा प्रवास से आरम्भ कर जोधपुर आगमन, वहाँ उनको विष दिए जाने तथा अजमेर में देहान्त तक की घटनाओं को प्रौढ काव्य शैली में वर्णित किया गया है।

इसके पूर्व कि हम मृत्युंजय दयानन्द की विस्तृत समीक्षा प्रारम्भ करें, यह आवश्यक है कि इस कृति के रचयिता का काव्य विषयक दृष्टिकोण जान लिया जाए। जावलियाजी की धारणा है कि महापुरुष युग निर्माता और युग नियामक होते हैं। अतः उनके जीवन की घटनाओं का चित्रण युग विशेष की सम्पूर्ण परिस्थितियों,

विचारधाराओं तथा कार्यकलापों का विराट् प्रति रूप ही हो जाता है। कवि ने अपने काव्य प्रणयन की शैली को छायावादी काव्य का ही एक रूप माना है। अतः वह किसी घटना को सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत कर उसकी प्रतिक्रिया में उत्पन्न होने वाले अपने हृद्गत भावों तथा अन्य अनेक तत्त्वों से प्रभावित होकर ही उसका विस्तृत चित्रण करता है। कवि का यह भी प्रयास रहा है कि स्वामी दयानन्द के जीवन और सिद्धान्तों से आधुनिक जन समाज के समक्ष प्रस्तुत जटिल समस्याओं का समाधान किस प्रकार सम्भव है, इसे भी वह अपनी काव्यकृति में प्रस्तुत करे। काव्यरचना में कवि का अभिप्राय यही रहा है कि इसके माध्यम से वह स्वामी दयानन्द जैसे लोक मंगल-विधायक महापुरुष का चरित्रांकन करें जो मानव जाति के लिए अपूर्व प्रेरणास्रोत रहा है।

यहां कवि ने एक प्रश्न स्वतः ही उठाया है और स्वयं ही उसका समाधान भी किया है। जब संस्कृत और हिन्दी में दयानन्द के जीवनपरक काव्य प्रचुर संख्या में हैं, तो इसी विषय पर पुनः कलम उठाना क्या पुनरावृत्ति मात्र नहीं होगा ? इसका उत्तर वह इस प्रकार देता है—"निश्चय ही दयानन्द के जीवन को लेकर अनेक महाकाव्यों का प्रणयन हुआ है, किन्तु उनमें साहित्यिक तत्त्व बहुत न्यून मात्रा में मिलते हैं। कवि को इस बात का अहसास है कि उसके साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण प्रसाद, पन्त और महादेवी जैसे छायावादी काव्य के सशक्त हस्ताक्षरों से प्राप्त प्रेरणाओं से हुआ है। उसने साहित्यशास्त्र का विधिवत् अध्ययन भी किया है अतः वह स्वयं को ऐसी कृति के निर्माण करने का उपयुक्त अधिकारी मानता है। कवि को इस बात की बड़ी पीड़ा है कि आज के युग में चापलूसी और खुशामद ही एक बड़ी ताकत बन गए हैं। चाटुकार प्रवृत्ति के लेखक को विभिन्न राज्यों की साहित्यिक संस्थाओं, एकेडेमियों आदि से पुरस्कृत किया जाता है किन्तु उनकी इस काव्यकृति को किसी भी पुरस्कार, यहाँ तक कि प्रकाशन की सहायता रूप में दिए जाने वाले अनुदान का भी अधिकारी नहीं समझा गया। तथापि उसे इस बात का सन्तोष है कि वह 'स्वान्तःसुखाय' को ही लक्ष्य बनाकर इस कृति को पूरा कर सकता है। आलोच्य महाकाव्य की भूमिका में कवि ने अपने इसी आत्मकथन को लिखकर काव्य विषयक धारणा को व्यक्त किया है। तथापि 1961-62 की अवधि में लिखे गए महाकाव्य का 21-22 वर्ष पश्चात् प्रकाशन क्या कवि के लिए कम सन्तोष की बात है।

अब हम सर्ग क्रम से मृत्युंजय दयानन्द की विस्तृत समीक्षा में प्रवृत्त होते हैं। प्रथम सर्ग में दयानन्द के शाहपुरा निवास का चित्रण है। सर्गारम्भ में कवि ने उषाकाल की एक रम्य झाँकी निम्न शब्दों में प्रस्तुत की है—

> प्राची के सुरभित अधरों पर
> फैली मंजुल लाली।

पुलकित मुखछवि पर बरसी
केसरपूरित थाली।
जीवन के नवरंगस्थल पर
अरुण जवनिका वर्तन।
उतरी वासकसज्जा जाया,
वेद ऋचा सम शोभन।

वासक सज्जा नायिका को वेद ऋचा के तुल्य शुभ्र एवं पवित्र बता कर कवि ने नूतन ऊहा की है। स्वयं शाहपुरा वासी होने के कारण नगर के समीपवर्ती सरोवर का चित्रण कवि ने पूर्ण हार्दिकता से किया है। इसी सरोवर के किनारे स्वामी दयानन्द प्रातःकालीन उपासना के लिए उपस्थित हुए। ज्योंही उनकी उपासना समाप्त हुई, उन्होंने देखा कि राजाधिराज नाहरसिंह उनकी सेवा में उपस्थित हैं। क्षत्रिय नरेश की वेशभूषा तथा उसके शरीरवैभव को कवि ने निम्न प्रकार चित्रित किया है—

राजोचित था देश, भव्यता
रोम रोम से झरती।
रत्नांकित ज्योतित पगड़ी की
पुलकित प्रभा दमकती।
मांसल थे अवयव पिंडली में,
नहीं अँगुलियाँ धँसती।
शिष्यभाव आप्लावित जन की,
आँखे स्तब्ध विहँसती।।

सर्ग के अवशिष्ट भाग में गुरु-शिष्य का संवाद तथा शाहपुरा से विदा लेते समय स्वामी सेवा में नरेश द्वारा प्रस्तुत किए गए अभिनन्दन पत्र का भावानुवाद भी दिया गया है। जब शाहपुरा नरेश ने स्वामी जी के जोधपुर गमन के कार्यक्रम को सुना तो उन्होंने आचार्यवर को यह चेतावनी अवश्य दी कि वहाँ जाकर वे राजपुरुषों में फैले वेश्यावृत्ति आदि अनाचारों की टीका न करे, अन्यथा उन्हें हानि उठानी पड़ेगी। इस पर वीर संन्यासी का निम्न कथन सर्वथा उपयुक्त ही था—

मैं वसुधा के क्रन्दन को सुन,
तन मन धन से निःस्पृह बन।
निकला हूँ पीड़ित प्राणी को
देने औषधि सान्त्वन।

अपिच, अनाचार को मूल से नष्ट करने में ही उनका विश्वास है। वे दुष्टाचारों

के कँटीले लता वृक्षों को नाखून काटने की नहरनी से विदीर्ण करने में विश्वास नहीं रखते। यहाँ तो उन्हें कठोर परशु या कुन्त का ही प्रयोग करना होगा–

पृथुल कँटीली वृक्ष लता को
क्षुर से नहीं कतरता।
कुन्त दन्तमय कर पत्रों से,
हँस कर उन्हें बिदरता।।

द्वितीय सर्ग में कवि ने स्वामी दयानन्द के जोधपुर आगमन का वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। सर्गारम्भ में उसने संध्याकाल की एक मनोहारिणी झाँकी प्रस्तुत की है। संध्या का मानवीकरण करने में कवि को अपूर्व सफलता मिली है। पीतवर्णा संध्या मानो पीलिया रोग से ग्रस्त विवर्ण नारी है।

गोरज के मिष जो प्रतिफल शृंगार लुटाती।
धूम समाकुल जीवन के
भू पर निश्वास बहाती।
जीर्ण शीर्ण पल्लव दल की
शय्या पर पिंगल वदना।
त्यक्ता तन्वंगी लेटी
हा ! जंगल में निर्वसना।।

जोधपुर में प्रवेश करते समय संन्यासी को नगरवासियों ने कौतूहल और संभ्रम भरी दृष्टि से देखा–

राजमार्ग पार्श्वों में चकित खड़े नर सारे।
हर्म्य गवाक्षों से झाँक रहे स्मित दृग तारे।
व्यस्त नगर स्तम्भित था अलिदल सा रस भागी।
पलक पाँवड़ों पर चलता था प्यारा योगी।

तृतीय सर्ग में स्वामी दयानन्द के जोधपुर निवास तथा महाराजा जसवन्तसिंह को उपदेश देने के प्रसंग को वर्णित किया गया है। मारवाड़ की अबोध जनता, जो अब तक पुराण-गाथा जाल में ही उलझी रहकर धर्म की वास्तविकता से अनभिज्ञ थी, उसे वास्तविक कर्तव्य-कर्म का बोध हुआ–

जन पुराणों गल्प गाथा गरल का ले स्वाद।
जी रहे थे बस चढ़ा था मृत्यु का उन्माद।
आज पाया अमर जीवन पा सुधा सन्देश।
आत्मा की तन्त्रियाँ थीं बज रहीं सविशेष।।

चतुर्थ सर्ग भी जोधपुर की घटनाओं को ही समर्पित है। इसमें महाराजा के अनुज प्रतापसिंह तथा स्वामी दयानन्द के बीच हुए संवाद को प्रभविष्णु ढंग से वर्णित किया गया है। ओज प्रधान शैली में वर्णित यह प्रसंग कवि के रचना संसार का प्रतिनिधि रूप प्रस्तुत करता है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

मेरे प्रताप तू बन प्रताप
म्लेच्छ अनुज दल को भून डाल।
कुटिल कलुष कलशों छम्य मनुज,
नर पशुओं का बन क्रूर काल।
कर स्वतन्त्र विवश माता को,
दुष्टों के पंजों से निकाल।
गोहिंसक शोषक धन भूपति,
जन की सुलगा होलिका ज्वाल।।

पंचम सर्ग में महाराजा प्रतापसिंह के साथ स्वामी दयानन्द का जोधपुर के पुरातन दुर्ग में जाना तथा वहाँ की पुरातात्विक कृतियों का अवलोकन कर देश दशा को स्मरण करना अत्यन्त ओजस्वी शैली में वर्णित हुआ है। क्षत्रिय नरेशों के अतीतकालीन शौर्य, पराक्रम तथा वैभव के चिह्नों को देखकर जब उनकी वर्तमान काल की अधोगति की ओर स्वामी जी का ध्यान गया तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि परवशता ही हमारे पतन का प्रमुख कारण है–

सब अवनतियों का मूल वत्स ! है परवशता।
परवशता जीवित मृत्यु गरल महा हलाहल।
परवशता अभिशाप धरा का है संचित मल।

उन्हें यह भी स्मरण हुआ कि शताब्दियों से हम परकीय शक्तियों से पीड़ित, त्रस्त तथा आक्रान्त हो रहे हैं–

भिन्न देश, संस्कृति जाति प्रकृति का दानव दल।
यवन ईसाई हूण शकों का आक्रामक बल।
रौंद रहा वर्ष सहस्रों से भूमाता को।
कर मल कर वैदिक संस्कृति की रससरिता को।।

और तब वर्तमान में अंग्रेजों की वैश्य वृत्ति से धन लूटने की दस्यु वृत्ति की ओर उनका ध्यान गया–

अंग्रेज वणिक टटपूंजे मुख शुचि बक ध्यानी।
माप तौल कला, विभाजन विद्या कवि ज्ञानी।

शुद्ध कला कर काटे बना यन्त्र गृह श्रम कर।
निर्मित वस्तु विक्रेता थे नक्र सदृश जलचर।।

स्वल्प शब्दों में अंग्रेज जाति की वाणिज्य पर आधारित सभ्यता को तथा उस पर पड़े निकृष्ट एवं काले धब्बों को नंगा कर देने में कवि सफल हुआ है।

षष्ठ सर्ग में स्वामी दयानन्द द्वारा साम्प्रदायिकता पर किए गए तीव्र प्रहारों का विवरण दिया गया है। जब किसी प्रतिद्वन्द्वी ने स्वामी जी द्वारा की गई वास्तविक आलोचना से चिढ़ कर उन्हें चेतावनी के रूप में कुछ कहा, तो दयानन्द के हृदय में विद्यमान पाखण्ड के प्रति अमर्ष का भाव प्रचण्ड अग्नि के रूप में फूट पड़ा। इसी प्रसंग को कवि ने अत्यन्त सशक्त शब्दावली में चित्रित किया है--

हाथ रखकर खड्ग स्वर्णिम मूठ पर
    चिड़चिड़ाकर तमक कर वह शलभ बोला।
मुँह सम्भालें और फिर कुछ सोच बोलें
    फोड़ना इस्लाम का मत स्फोट गोला।
शशक शिशु पर सिंह सदृश मुस्करा प्रभु।
    नम्र स्वर शर फेंक कर निर्भीक बोले।
दुग्ध दन्तावलि है अभी तक शैशवी
    जगत् के व्यवहार तुमने हैं न तोले।।

सर्ग के अन्त में स्वामी दयानन्द की जोधपुर निवास की दिनचर्या को भी पद्यबद्ध किया गया है। आकार की दृष्टि से सप्तम सर्ग बहुत छोटा है किन्तु इसमें कवि ने दयानन्द के विराट् व्यक्तित्व को एक विशाल वटवृक्ष से उपमित किया है। कवि द्वारा प्रस्तुत यह वटवृक्ष का रूपक अत्यन्त प्रभावशाली है।

दयानन्द वट विशाल थे वे देवोपम
जिसकी जड़ हो भू के अन्तर्गर्भो में आश्रित।
दूर दूर तक विस्तृत अणु परमाणु विहंगम,
के मधु स्वन रणन कणन में मुखरित।
जिसका व्यक्तित्व अलौकिक
लोक व्योम में व्यापक।
पीवरशाख से स्कन्ध बाहु,
मसृण मांसल गोल गोल।।

अष्टम सर्ग से उस घोर षड्यन्त्र की कथा आरम्भ होती है जो दयानन्द के प्राणहरण के लिए वेश्या नन्ही, मियाँ फैजुल्ला खाँ तथा चक्रांकित वैष्णव पुरोहितों

की कूटनीतिक अभिसंधि द्वारा रचा गया था। जिस रूपाजीवा ने स्वामी दयानन्द जैसे महामानव के प्राणहरण के लिए षड्यन्त्र जाल की रचना की, उसके प्रति कवि का तिरस्कार चरम सीमा पर पहुँच गया है। अपने सौन्दर्य के पाश में राजा को बाँध कर उसने समस्त मारवाड़ पर एकछत्र प्रभाव जमाने का मनसूबा बाँध रखा था। कवि के शब्दों में–

अँगना नन्ही जान बनी महारानी।
शासन करती नृप मन पर मनमानी।
सौन्दर्य वंचना रूप पूतना थी वह।
ललना छिः ललना, मिथ्या रूपाजीवा।
तन्वंगी धिक् तन्वी स्त्रैण सदृश क्षीवा।
स्वांग धरे रानी का थी वेश्या कुलटा।
कूड़े करकट का ढेर नगर का विष्ठा।।

वस्तु या व्यक्ति का वर्णन करने में कवि की भावनाओं की ही प्रमुख भूमिका रहती है। राजपूत राजा की विलास वासना की तुष्टि करने वाली वेश्या नन्ही का शारीरिक सौन्दर्य चाहे कितना ही रम्य एवं आकर्षक क्यों न रहा हो, कवि को उसमें जुगुप्सा उत्पन्न करने वाले घृणास्पद दृश्य ही दिखाई पड़ते हैं। तभी तो उसका रात-दिन पान चबाना कवि को भैंस का जुगाली करना लगता है और वह इस धूर्त कुलटा को गर्दभी, मार्जारी, उष्ट्री और व्याली तक कहने से नहीं चूकता। फैजुल्ला खां को नन्ही का प्रच्छन्न प्रेमी बताकर कवि ने कविसुलभ कल्पना स्वातन्त्र्य का ही परिचय दिया है, अन्यथा यह इतिहास-सिद्ध तथ्य है कि वेश्या पुत्री होने पर भी नन्ही का प्रणय एक मात्र महाराजा जसवन्तसिंह को ही समर्पित था और जोधपुर नरेश ने भी उसे उपपत्नी (पड़दायत) के रूप में स्वीकार कर रानियों की पद मर्यादा प्रदान की थी।

इसी सर्ग में कवि ने एक अन्य ऊहा भी की है। महाराजा की विवाहिता महारानी की मानसिक वेदना को कवि ने शाब्दिक चित्रों में अत्यन्त सहृदयता के साथ उतारा है। अपने पति को वारवधू के छलनामय पाश में बँधा देखकर उसकी स्थिति सधवा होते हुए भी विधवा की सी है। कवि ने उसे राहु से ग्रस्त चन्द्रकला, रावण के क्रूर पाश में छटपटाती रामवल्लभा, मेघ की नीलिमा में तड़पती ज्योत्स्ना के तुल्य बताया है। सापत्न्यज्वाला से जलती यही महारानी अपने देवर प्रतापसिंह को लेकर स्वामी शरण में आती है। स्वामी जी महारानी की व्याकुल पीड़ा से अपरिचित नहीं हैं। वे उसे आश्वस्त करते हैं और वेश्या नन्ही तथा मियाँ फैजुल्ला द्वारा पसारे गए षड्यन्त्र जाल को छिन्न-भिन्न करने का वादा करते हैं–

बेटी तुम आश्वस्त रहो सावधान हूँ मैं।
हिंस्र जन्तु संहारक शक्तिमान हूँ मैं।

यावन षड्यन्त्र विफल करने का व्रत मेरा
मृत्यु लगाती हो कल आज लगाए डेरा।।

नवम सर्ग में स्वामी दयानन्द द्वारा महाराज जसवन्तसिंह की भर्त्सना को प्रभावपूर्ण शब्दों में वर्णित किया गया है। विलास और भोग को ही जीवन का चरम लक्ष्य मान बैठे महाराजा का पाला आज एक ऐसी विष कन्या से पड़ा है जो 'नागों की खलरानी' और 'जनमेजय के नागयज्ञ की विस्मृत अवशिष्ट निशानी' है। इसी वेश्या के निकट बैठे राजा को जब स्वामी जी ने प्रत्यक्ष देखा तो उनके हृदय में क्रोध और रोष के भाव उमड़ पड़े।

ये ही क्या राजा हैं जो जन–
सम्पद का कर शोषण।
भोग वासना वावरस्त्रियों संग,
लुटा रहे तन मन धन।

और तब उनके मुख से निम्न क्रोधोद्गार फूटे–

राजन् सिंहों की कुतियाओं
में आसक्ति अशोभन।
वेश्याओं वारस्त्रियों में क्यों,
है तुमको आकर्षण।

दशम सर्ग में नन्ही द्वारा बदला लेने और स्वामी जी के प्राण हरण के लिए फैजुल्ला खां तथा वेश्या के कूटनीतिक परामर्श का वर्णन हुआ है। एकादश सर्ग में स्वामी दयानन्द के हृदय की उस निराशा का सटीक चित्रण किया गया है जो मारवाड़ का सुधार करने के स्वप्न भंग से उत्पन्न हुई थी। कहाँ तो स्वामी जी ने यह सोचा था कि जोधपुर के दीर्घकालीन प्रवास तथा वहाँ रहकर किए गए प्रवचन उपदेशों से इस राज्य की प्रजा में समुचित चेतना उत्पन्न होगी तथा यहाँ का शासक वर्ग भी स्वकर्तव्यों के प्रति जागरूक होगा, किन्तु हाथों निराशा ही लगी। इसी भाव को कवि ने निम्न पद्य में व्यक्त किया है–

इन मरुमस्तिष्कों के शोधन में मैं गया हार।
मिलता जाता अधिकाधिक सरसी में लवण क्षार।
व्यर्थ-व्यर्थ सब कुछ धन समय व्यर्थ भोजन निवास।
निरर्थ सब है ये ज्ञानोपदेश शून्य बकवास।।

इसी सर्ग में महाराजा जसन्वतसिंह को प्रेषित स्वामी दयानन्द के पत्र को भी

कवि ने काव्य शैली में प्रस्तुत कर दिया है।

द्वादश सर्ग में पाचक द्वारा स्वामी जी को विष दिए जाने तथा दयानन्द द्वारा उसे मीरा एवं नीलकण्ठ शंकर की भाँति पी जाने का लोमहर्षक प्रसंग वर्णित हुआ है—

हँस विषपान किया मीरा सा
भक्त शिरोमणि प्रभु ने।
कालकूट निधि आरक्षित की,
नवयुग शंकर बनने।

त्रयोदश सर्ग में स्वामी जी की रुग्णावस्था, विषदाता को क्षमादान, चिकित्सा आदि प्रसंग वर्णित हुए हैं। जगन्नाथ को उसके दुष्कृत्य के लिए तिरस्कृत करते हुए स्वामी जी ने इतना तो कहा कि उन्हें विष देकर उसने संसार का ही अनिष्ट किया है क्योंकि जनहित के लिए समर्पित स्वामी दयानन्द के जीवन में 'स्व' के लिए कोई स्थान ही नहीं है। तथापि उन्होंने कर्मफल सिद्धान्त के अनुसार इसे भी स्वकृत किसी कर्म का ही परिणाम माना—

जान सकोगे नहीं कि कितना,
जन हित ध्वस्त हुआ है।
फिर भी तुम अदोष हो मैं ही,
निज कृत फल ग्रस्त हुआ।

चतुर्दश सर्ग में स्वामी जी का जोधपुर से प्रस्थान, आबू आगमन तथा अन्ततः, अजमेर चले आने का वर्णन हुआ है। पन्द्रहवें सर्ग को कवि ने दीपावली सर्ग का नाम दिया है। इसमें दयानन्द के परलोक गमन का करुणोत्पादक प्रसंग चित्रित है। मृत्युंजय महाकाव्य की इति सोलहवें सर्ग की समाप्ति पर होती है जिसमें कवि ने श्री महाराज की अन्त्येष्टि क्रिया का वर्णन कर भक्त जनों में व्याप्त गुरु वियोग की पीड़ा को हृदयबेधी शब्दावली में चित्रित किया है।

पागल से प्रलाप करते थे,
संज्ञा स्मृति धन भू ले।
बिलख रहे थे विधवा भू सुत।
दयानन्द के चले।

तथापि उन्हें अपनी इस प्रतिज्ञा से सन्तोष था—

तेरे शुचि पद चिन्हों का कर
अवलोकन पैर धरेंगे।

तेरे सन्देश, प्रसारण में,
जीएँ और मरेंगे।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने मृत्यंजय महाकाव्य में वर्णित प्रसंगों की सर्ग क्रम से एक झलक मात्र देखने का प्रयत्न किया है। समग्र काव्य का अध्ययन करने से पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कवि ने स्वामी दयानन्द के महनीय जीवन प्रसंग को अत्यन्त उदात्त एवं परिष्कृत शैली में प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। भाषा की दुर्बोधता तथा शैली की क्लिष्टता इस काव्य को सामान्य पाठक के लिए चाहे अनुपयोगी घोषित कर दे। किन्तु साहित्य मर्मज्ञ तथा काव्य के तत्त्वों की परख रखने वाले रसज्ञ मण्डल में इस महाकाव्य का समुचित सम्मान होगा, इतना तो निश्चित ही है।

जगदेव शान्त रचित महर्षि दयानन्द महाकाव्य

चौदह सर्गों में रचित महर्षि दयानन्द महाकाव्य के प्रणेता जगदेव 'शान्त' उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के निवासी हैं। काव्य लेखन में रुचि उनकी किशोरावस्था से ही रही, जिसके परिणामस्वरूप आगे चलकर वे इस महाकाव्य की रचना कर सके। महर्षि दयानन्द के घटना बहुल जीवन को ही यदि वे अपने काव्य में प्रस्तुत करते तो यह कृति केवल इतिवृत्तात्मक विवरण प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ बन जाता। इसलिए उन्होंने अपने कार्य को आरम्भ करने से पहले ऋषि के प्रामाणिक जीवनचरितों का अनुशीलन किया तथा कुछ निश्चित आदर्शों को अपना कर वे काव्य लेखन में प्रवृत्त हुए। फलतः उनके इस काव्य में विशेष गुणवत्ता आ सकी है।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्व. पं. क्षेमचन्द्र सुमन ने हार्दिक अभ्यर्चना शीर्षक अपने प्राक्कथन में इस महाकाव्य का विस्तृत अनुशीलन करते हुए कहा है, "कवि ने इस महाकाव्य को ऐसी शैली में निबद्ध किया है कि उसमें कहीं भी अस्वाभाविकता एवं कृत्रिमता परिलक्षित नहीं होती। इसमें कथा की विश्वसनीयता की रक्षा के साथ-साथ कवि ने छन्द निर्वाह, भाषा सौष्ठव और वर्णन की सजीवता का भी ध्यान रखा है।" यहाँ एक बात आरम्भ में ही कहना आवश्यक है कि यद्यपि इस काव्य के लिए आधारभूत सामग्री एकत्र करने के लिए कवि ने महर्षि दयानन्द के पं. लेखराम, स्वामी सत्यानन्द एवं पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय आदि विश्वसनीय जीवनी लेखकों की कृतियों का सहारा तो लिया है, किन्तु 1857 की राजनैतिक हलचल में स्वामी जी की विवादास्पद भूमिका को चित्रित करने की भूल भी वह कर बैठा। इसका कारण यह था कि उसने घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध का निश्चय किए बिना ही उस अविश्वसनीय सामग्री को प्रामाणिक मान लिया जो बिना ऐतिहासिक प्रमाण दिए स्वामी दयानन्द को 1857 की राजनैतिक क्रान्ति का विधाता बनाने का यत्न करती है। इस शोध ग्रन्थ के लेखक ने विगत

30 वर्षों में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की गई ऐसी अप्रामाणिक सामग्री का सतर्क प्रत्याख्यान ही नहीं किया, यह भी सिद्ध किया है कि स्वामी दयानन्द के जीवन को यथार्थतः तभी प्रस्तुत किया जा सकता है, जब हम उनके प्रामाणिक जीवन चरितों का ही आश्रय लें और मात्र कल्पना पूर्ण अथवा ऋषि के सम्बन्ध में बेसिर-पैर की बातें लिखने वालों की उत्तरदायित्वहीन सामग्री का सहारा न लें। यदि कवि शान्त इस विषय में सतर्कता बरतते तो अधिक अच्छा होता।

इस प्रारम्भिक वक्तव्य के पश्चात् हम आलोच्य कृति का स्वल्प विस्तार से विचार करते हैं। जगदेव शान्त रचित यह कृति शुद्ध, स्वच्छ तथा परिष्कृत खड़ी बोली का एक ऐसा काव्य है जिसमें स्वामी जी के महान् जीवन प्रसंगों की मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत की गई है। प्रथम सर्ग में तत्कालीन परिस्थितियों का उल्लेख कर दयानन्द के आविर्भाव के समय का धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दशा का उल्लेख किया गया है। कवि की प्रतिभा के दर्शन हमें इसी सर्ग में हो जाते हैं जब वह निम्न घनाक्षरी के द्वारा दयानन्द रवि के उदय होने का सांग रूपक प्रस्तुत करता है—

निशा अँधियारी, दिशाहीन बने नर नारी,
सोये बारी-बारी भूल घर परिवार को।
सघन तिमिर छाया गगन में चारों ओर
मगन हो चोर बढ़ा रहे अनाचार को।
देख रहे तारे दशा देश की पसारे नैन,
रैन गिरा रही आँसू धरे ओस भार को।
हो गए सितारे मन्द बन्द हुई चन्द्र छवि,
उगा दयानन्द-रवि चीर अंधकार को।।

द्वितीय सर्ग में मूलशंकर के जन्म तथा गृहत्याग के प्रसंग आए हैं। वास्तविक शिवदर्शन के लिए व्याकुल युवा मूलशंकर का महाभिनिष्क्रमण निम्न दोहे में सुष्ठु रीति से वर्णित हुआ है—

त्यागा घर, त्यागे स्वजन, त्यागा सब परिवार।
मानसरोवर को उड़ गया हंसा पंख पसार।

अवशिष्ट सर्गो में मूलशंकर के प्रव्रज्या ग्रहण करने, उत्तराखण्ड में भ्रमण करने, नर्मदा स्रोत तक जाने, दण्डी विरजानन्द से अध्ययन करने तथा धर्मप्रचारार्थ देश भ्रमण करने के नाना प्रसंग वर्णित हुए हैं। घटनाप्रधान काव्यों में शैली का वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक हो जाना स्वाभाविक है, तथापि यत्र-तत्र कवि को अपने रचना- कौशल का परिचय देने का अवकाश भी रहता है। मथुरा में अध्ययनार्थ पधारे दयानन्द की

देहाकृति का प्रभावोत्पादक वर्णन देखें–

काषाय वस्त्र बढ़ा रहे छवि गौर देह विशाल की।
मानो पड़ी हो कनक गिरि पर धूप प्रातःकाल की।
रुद्राक्ष माला कण्ठ में थी झूलती भली।
मानो चतुर्दिक चन्द्र के हो घूमती तारा वली।

विशाल गौर देह पर पड़े काषाय वस्त्रों को स्वर्णिगिरि पर बिखरी धूप से उपमित कर कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षा की व्यंजना की है। इसी प्रकार–

थी वस्त्र से तन की छटा तन से छटा थी वस्त्र की।
मिल एक दोनों पा गईं छवि कमल पाटल पत्र की।
था एक कर में दण्ड, दूजे में कमण्डलु का गला।
धर ज्ञान और वैराग्य को मानो तरुण तप था चला।।

मूर्त उपमेय (दण्ड और कमण्डलुधारी तरुणदयानन्द) के लिए अमूर्त उपमान (ज्ञान और वैराग्यधारी तप) का यह प्रस्तुतीकरण नितान्त मनोज्ञ तथा रंजक है। स्वामी जी के गंगा तट पर भ्रमण करने का वृत्तान्त प्रस्तुत करने वाला नवाँ सर्ग प्रदीर्घ है। पूर्ववर्ती सर्ग के अन्तिम छन्द में स्वामी जी के हरिद्वार में किए गए सर्वस्वत्याग रूपी सर्वमेध के पश्चात् मौन धारण करने का उल्लेख हुआ है–

सर्वमेध इस भाँति किया फिर कुछ संकल्प लिया था।
सब स्थितियों में सत्य कथन का निश्चय ग्रहण किया था।
समाधिस्थ अपनी कुटिया में सब कुछ छोड़ दिया फिर,
तप से शक्ति समुच्चय के हित धारण मौन किया फिर।।

इसी संकल्प को क्रियान्वित करने के लिए स्वामी जी ने गांगेय तट पर धर्म प्रचारार्थ एकाकी विचरने का व्रत लिया था। काशी-शास्त्रार्थ का विवरण देने वाला दसवाँ सर्ग भी कवि कौशल का परिचायक है जिसमें वादी प्रतिवादी स्वस्व मान्यताओं की पुष्टि में जिन युक्तियों को देते हैं उन्हें कवि जगदेव शान्त ने वाग्-विदग्धतापूर्वक प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ–

पूछा ताराचरण सुधी ने मान्य मनुस्मृति क्यों यतिराज।
कहते उसे वेदमूलक क्यों, इसका सभी बताओ राज।
'औषधियों की भी औषधि है' लिखा गया जो मनु के हाथ।
कहते सामवेद के ब्राह्मण, उत्तर मिला प्रश्न के साथ।।

एकादश सर्ग में स्वामी दयानन्द का बंगाल-महाराष्ट्र भ्रमण वृत्तान्त, बारहवें

में पंजाब भ्रमण, तेरहवें में उनका उदयपुर रह कर महाराणा सज्जनसिंह को शिक्षित करना तथा अन्तिम चौदहवें सर्ग में स्वर्गारोहण के प्रसंग भी तल्लीनतापूर्वक लिखे गए हैं। परलोक प्रस्थान के पूर्व स्वामी जी ने स्वशिष्यों को जो उपदेश दिए उन्हें अत्यन्त मार्मिकता के साथ कवि ने उल्लिखित किया है–

जितना पानी था मुझमें उससे यह बगिया सींची।
वहाँ वहाँ से इसे उठाया जहाँ जहाँ थी नीची।
खर पतवार उखाड़ी जितनी मुझसे गई उखाड़ी।
काट काट कर बाहर फेंकी सभी कटीली झाड़ी।।

तथा ऋषि का यह अन्तिम परमात्मा के प्रति समर्पण वाक्य–

वेदपाठ तेरी बगिया में अब हो रहा चतुर्दिक्
यज्ञ होम का धूम सुगन्धित फैल रहा अधिकाधिक।
अपनी मति अनुसार तुम्हारी बगिया का चिरकालिक,
किया प्रबन्ध शक्ति भर, अब तुम जानो मेरे मालिक।।

स्वामीजी के निधन के पश्चात् पैदा हुए शोक के परिदृश्य को कवि ने सांगरूपक योजना द्वारा प्रस्तुत किया–

रवि प्रकाश का अस्त हो गया शोक तिमिर घिर आया।
हुई दिशाएँ सब कलुषित सी, उमड़ी काली छाया।
भक्तों ने कर्तव्य तेल भर धीरज दीप जलाया।
ऋषि के शव की चरमाहुति का सब सामान जुटाया।"

स्वामी दयानन्द का अनतिदीर्घ जीवन भी जैसा घटना-संकुल रहा उसे देखते हुए उसका चित्रण करने वाला कवि लेखक कोई तथ्यगत अशुद्धि या भूल कर बैठे तो वह असम्भव नहीं कहा जा सकता। आलोच्य काव्य में भी ऐसी भूलें यत्र-तत्र दीख पड़ती हैं। जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह की उपपत्नी नन्ही को वेश्या कहना, डाक्टर अलीमर्दान को अलीमुदीन लिखना, स्वामी दयानन्द की मृत्युशय्या के निकट मेवाड़ नरेश सज्जनसिंह तथा पाड्या मोहनलाल का उपस्थित रहना आदि तथ्य विरुद्ध बातें हैं जो असावधानीवश आ गई हैं।

काव्य की फलश्रुति के रूप में कवि ने एक सुन्दर गीत प्रस्तुत किया है जो दयानन्द के इस धरती से उठ जाने की निराशा को समाप्त कर देशवासियों को आशा का संदेश देता है–

ऋषि का जो काम अधूरा है
वह करना हमको पूरा है।

हम नगर नगर गुरुकुल खोलें
सब नरनारी संस्कृत बोलें
गूँजे घर-घर ऋग्वेद छन्द।
बोलो मिल कर जय दयानन्द।

अभयराम शर्मा कृत दयानन्द गौरव गाथा

सहारनपुर निवासी आर्य प्रचारक पं. अभयराम शर्मा द्वारा लिखित दयानन्द गौरव गाथा तेरह अध्यायों में समाप्त एक वृहदाकार कृति है। इसमें काव्य के तत्त्व तो नगण्य ही हैं, किन्तु कवि ने इसे भक्ति प्रवण श्रद्धा से लिखा है, इसी विश्वास के साथ कि जनसाधारण तथा सामान्य पठित लोग इसे पढ़कर उस महापुरुष की गौरवपूर्ण जीवन गाथा से अवश्य परिचित हो सकेंगे। इस काव्य की रचना मुख्यतः राधेश्याम रामायण की तर्ज़ पर हुई है। यत्र-तत्र दोहा तथा चौपाई जैसे छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। अभयराम शर्मा मूलतः धर्म प्रचारक हैं जो वाद्यों तथा गायन के सहारे वर्षों से जनता के बीच दयानन्द के पावन-सन्देश को प्रसारित करते रहे हैं। यही कारण है कि उनकी रचना शैली में भी गायन शैली तथा गीति तत्त्व स्वभावतः आ गऐ हैं। इतना अवश्य है कि काव्य रचना के पहले शर्मा जी ने परिश्रमपूर्वक स्वामी दयानन्द के अनेक प्रामाणिक जीवनचरितों का अनुशीलन कर लिया था इसलिए वे अपनी कृति को तथ्यों पर आधारित वास्तविक घटनाओं से पूरित कर सके हैं।

आलोच्य कृति की एक अन्य विशेषता यह है कि कवि ने अपने चरितनायक के अनेक जीवन प्रसंगों, उनके उपदेशों तथा कृतित्व को यथातथ्य पद्यबद्ध कर दियया है। यथा स्वामी दयानन्द द्वारा उपदिष्ट अष्टविध गप्पें और सत्याष्टक का निरूपण, मुम्बई में बनाए गए आर्यसमाज के अट्ठाइस नियमों का परिगणन, सत्यार्थप्रकाश के सभी समुल्लासों का विषय वर्णन आदि।

हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाली खड़ी बोली का सीधा और स्वच्छ साधु रूप इस काव्य में प्रयुक्त हुआ है। अभयराम शर्मा के इस वर्णनात्मक काव्य का आरम्भ निम्न दोहे से होता है–

परम पिता परमात्मा कर दो हृदय पवित्र।
देव दयानन्द का करूँ वर्णन जीवन चरित्र।।

पुनः तर्ज राधेश्याम में–

करूँ वर्ण जीवनचरित्र जगत को जिसने अमृतदान दिया।
मगर स्वयं उस देवता ने हँस हँस कर विष पान किया।
ब्रजेन्द्रशाह की प्रेरणा और सुझाव ने भाग्य जगाया है।
कुछ लिखो दयानन्द के ऊपर जिसने सन्मार्ग दिखाया है।।

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना में पं. लेखराम रचित स्वामी जी के जीवनचरित को अपना मार्गदर्शक बनाया है—

आर्यपथिक श्री लेखराम के ही वचन उत्कर्ष रहे।
सबसे प्रमाणित लेख उन्हीं के ऋषि संग कई वर्ष रहे।
आओ इसी सन्दर्भ में ही अब आगे और विचार करें।
दयानन्द गौरव गाथा सुनें और जीवन उद्धार करें।।

पर्याप्त सावधानी रखने पर भी इस काव्य में तथ्यविषयक असावधानी रह गई है। स्वामी जी के निधन के पश्चात् शोक प्रकाशनार्थ काशी के वैदिक यन्त्रालय में पं. बालशास्त्री का आना एक ऐसा ही प्रमादपूर्ण उल्लेख है। 1883 में जब ऋषि का परलोकवास हुआ तब तक वैदिक यन्त्रालय काशी से प्रयाग आ चुका था और पं. बालशास्त्री तो स्वामी जी के जीवित रहते ही स्वर्गवासी हो चुके थे।

दयानन्द गौरव गाथा में स्वामी दयानन्द के निधन पर दी गई श्रद्धांजलियों को भी पद्यबद्ध किया है तथा परिशिष्ट रूप में उनके विभिन्न स्थानों पर जाने और वहाँ रहने का तिथिक्रमपूर्वक विवरण प्रस्तुत किया गया है। जिस उद्देश्य से यह रचना लिखी गई उसकी पूर्ति तो यह करती ही है।

अध्याय-6

स्वामी दयानन्द के जीवनपरक लघु (खण्ड) काव्य

महाकाव्यों की ही भाँति स्वामी दयानन्द के जीवन के विभिन्न प्रसंगों एवं घटनाओं को आधार बनाकर आर्यसमाजी कवियों द्वारा अनेक लघु काव्यों की रचना हुई है। अनेक काव्य तो ऐसे हैं जो आकार में लघु होने पर भी चरित नायक के जीवन की सभी घटनाओं का आद्योपान्त उल्लेख करते हैं जब कि कुछ काव्य ऐसे हैं, जिन्हें खण्ड काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। खण्ड काव्य के सम्बन्ध में काव्य शास्त्रकारों का मत है कि इस काव्य में जीवन के किसी अंश या खण्ड विशेष का ही चित्रण होना चाहिए। जीवन की किसी स्थिति अथवा प्रसंग का चित्रण होने के कारण खण्ड काव्य का आकार लघु होता है। खण्ड काव्य का लेखक जीवन के किसी लघु प्रसंग की अवतारणा करके ही सन्तुष्ट हो जाता है। उसमें व्यक्ति, घटना तथा प्रसंगों के विस्तृत चित्रण के लिए अवकाश नहीं होता, किन्तु कथा विन्यास तथा चरित्र चित्रण में संक्षिप्तता तथा नाटकीयता अवश्य आ जाती है। हिन्दी साहित्य के द्विवेदी काल में पुराण, इतिहास तथा रामायण एवं महाभारत आदि उपाख्यानों को आधार बनाकर अनेक सुन्दर खण्ड काव्य लिखे गए हैं।

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक के जीवन एवं व्यक्तित्व को आधार बनाकर लिखे गए इस श्रेणी के काव्यों की संख्या पर्याप्त अधिक है। जैसा कि हम लिख चुके हैं, इनमें से कुछ चरितनायक के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण करते हैं तो अन्यों में दयानन्द के जीवन-रूपक के कतिपय रम्य एवं प्रभावशाली अंकों को ही प्रस्तुत किया गया है। प्रायः ऐसे काव्यों में सर्वत्र एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है किन्तु कहीं-कहीं छन्दों में परिवर्तन भी दिखाई पड़ता है। यहाँ हम कुछ ऐसे ही लघु काव्यों तथा खण्ड काव्यों का विवेचन करेंगे जो स्वामी दयानन्द के जीवन से सम्बन्धित हैं।

सर्वप्रथम हम उन काव्यों को लेते हैं जिनमें स्वामी दयानन्द के जीवन का समग्र चित्रण किया गया है। इन्हें महाकाव्य से भिन्न मानने के अनेक कारण हैं। प्रथम

तो इन काव्यों में महाकाव्योचित लक्षणों का अभाव पाया जाता है। ये भिन्न- भिन्न सर्गों में विभक्त न होकर कथानायक के जीवन का धारावाही चित्रण करते हैं। ऐसे ग्रन्थ प्रायः एक ही छन्द में लिखे गए हैं। महाकाव्योचित विस्तार, घटनाओं के विस्तृत चित्रण तथा पात्रों के सूक्ष्म चरित्र विश्लेषण के लिए इन ग्रन्थों में स्थान नहीं है। यहाँ कवि का प्रयोजन स्वामी दयानन्द के जीवन को पद्यात्मक शैली में प्रस्तुत करने का ही रहा है। इनसे भिन्न खण्ड काव्य कोटि की रचनाओं में स्वामी दयानन्द के जीवन के समग्र चित्रण को न लेकर किसी विशिष्ट घटना या प्रसंग को ही काव्यबद्ध किया गया है। आगे हम दोनों प्रकार के काव्यों का विस्तृत परिचय दे रहे हैं। सर्वप्रथम उन काव्यों को ले रहे हैं जिनमें स्वामी दयानन्द का जीवन समग्र रीति से, किन्तु संक्षेपतया वर्णित हुआ है।

दिग्विजयी दयानन्द--जेठमल सोढा कृत (1888 ई. में रचित)

आर्यसमाज अजमेर के प्रारम्भिक सभासदों में जेठमल सोढा का नाम आता है। ये अच्छे कवि थे। जिस समय स्वामी दयानन्द के ऊपर विष प्रयोग किया गया और वे जोधपुर में रुग्ण हो गए, उस समय सोढा जी, जो किसी कार्यवश वहाँ गए हुए थे, स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने उनसे चिकित्सार्थ अजमेर चलने का अनुरोध किया। जेठमल सोढा डाक विभाग में डाकिए का काम करते थे, किन्तु आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के प्रति उनकी अनन्य आस्था थी। इसका एक उदाहरण उनके पुत्र स्व. ब्रह्मदत्त सोढा ने उल्लिखित किया है। जिस समय अजमेर में स्वामी दयानन्द के स्मारक रूप में दयानन्द आश्रम के भवन तथा आर्यसमाज अजमेर के मन्दिर का निर्माण हो रहा था, उस समय उन्होंने अपनी साधारण आर्थिक स्थिति होने पर भी इस कार्य हेतु 100 रुपए दान स्वरूप अर्पित किए। यह 100 रुपए की राशि वस्तुतः उन्हें अपनी काव्य रचना के पुरस्कार के रूप में मिली थी, किन्तु इसे उन्होंने स्वामी दयानन्द की स्मृति में बनाए जाने वाले भवनों के निर्माणार्थ देने में संकोच नहीं किया। इस सहायता राशि को परोपकारिणी सभा को अर्पित करते समय उन्होंने इस सभा के मन्त्री को पत्र में लिखा--"मैं जोधपुर गया था। वहाँ मारवाड़ के श्रीदबार ने स्वामी जी महाराज का काव्यबद्ध जीवनचरित सुनकर मुझे सौ रुपए प्रदान किए। उनमें से 79 रुपए तो अजमेर समाज के मन्दिर बनाने में और 21 रुपए श्रीमद्दयानन्द आश्रम के चन्दे में ज्यों का त्यों भेंट करता हूँ।"

सोढा जी का यह पत्र उक्त सभा के चतुर्थ अधिवेशन में 18 दिसम्बर 1888 को पढ़ा गया और सभा ने यह निश्चय किया कि "ज्येष्ठमल जैसे एक साधारण आर्य ने इस द्रव्य की कुछ भी लालसा न करके उसे अर्पण कर दिया है, अतएव उसकी सुख्याति की जावे।"

सोढा जी को कविकर्म जन्मजात सुलभ था। कविता में उनका नाम 'युगराज'

रहता था। स्वामी जी के निधन पर इन्होंने एक शोक गीतिका लिखी थी जो 'दिग्विजयी दयानन्द' शीर्षक से उनके पुत्र ब्रह्मदत्त सोढा द्वारा प्रकाशित हुई है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कित गए मोह तजि हा भारत भ्रम नासी।
श्रीमद्दिग्विजयी दयानन्द संन्यासी।।
यजुर्भाष्य पूरण कियउ ऋग किय पौन प्रमान।
द्वादशांग व्याकरण सरल किय भूगोल हित जान।।
रहि साम अथर्वण वेद भाष्य की प्यासी।
श्रीमद्दिग्विजयी दयानन्द संन्यासी।।

स्वामी दयानन्द द्वारा किए गए अपूर्ण ऋग्वेद भाष्य, पूर्ण यजुर्वेद भाष्य तथा वेदांगप्रकाश के बारह खण्डों का उल्लेख उपर्युक्त पद्यों में हुआ है। कवि को इस बात का खेद है कि स्वामी जी के असामयिक निधन के कारण साम एवं अथर्ववेद का भाष्य नहीं लिखा जा सका।

युगराज कवि के काव्य में नाना चमत्कारपूर्ण ऊहाएँ उपलब्ध होती हैं। स्वामी जी के परलोक गमन के विभिन्न हेतुओं की कल्पना करता हुआ वह कहता है—

काशी के पण्डित बालशास्त्री नामी।
मत हार मान भये अन्य लोक के वासी।।
तिन प्रचलित किए पुराण ताकह स्वामी।
जिनके खण्डन हित बने आप अनुगामी।।

कवि के विचार से काशी के प्रख्यात विद्वान् पं. बालशास्त्री, जो शास्त्रार्थ में स्वामी जी से हार मान कर परलोकवासी हो गए थे, उन्होंने वहाँ भी पुराणों का प्रचलन कर दिया है और उन्हीं पुराणों का खण्डन करने के लिए स्वामी दयानन्द ने भी उनका अनुगमन किया है। ध्यातव्य है कि पं. बालशास्त्री का निधन स्वामी दयानन्द के जीवन काल में ही हो गया था। कवि की एक अन्य कल्पना देखिए—

याकोई सुरलोक में चली पौतलिक रीति।
जिसे जनावन के लिए धाए धर उरप्रीत।।

अथवा ऐसा लगता है कि देवलोक में भी मूर्तिपूजा का पाखण्ड प्रचलित हो गया है जिसका निराकरण करने के लिए आप वहाँ पधारे हैं।

जेठमल्ल सोढा ने परोपकारिणी सभा की स्थापना तथा उसके तृतीय अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावों को लक्ष्य में रखकर कुछ सुन्दर पद्य लिखे थे वे भी 'दिग्विजयी दयानन्द' में संगृहीत हैं। सोढा के काव्य की भाषा सरल ब्रज है जो नितान्त निराडम्बर

किन्तु भावपूर्ण है।

महर्षि दयानन्द जीवन गाथा–पं. बस्तीराम कृत

हरयाणा प्रान्त के लोक कवि और गायक पं. बस्तीराम का जन्म आश्विन कृष्णा चतुर्थी 1898 वि. को रोहतक जिलान्तर्गत खेड़ी सुलतान नामक ग्राम में पं. रामलाल नामक एक ब्राह्मण के यहाँ हुआ था। 1924 वि. में कुम्भ के अवसर पर इन्होंने हरिद्वार में स्वामी दयानन्द के दर्शन किए। इस भेंट का परिणाम यह निकला कि वे स्वामी जी के अनुयायी बन गए। 1877 ई. में दिल्ली दरबार के अवसर पर भी उन्हें स्वामी जी के विचार सुनने का अवसर मिला था। इसका परिणाम यह निकला कि बस्तीराम ने अपनी परम्परागत यजमान वृत्ति का त्याग कर दिया और इकतारे पर स्वनिर्मित भजन गाकर आर्यसमाज का प्रचार करने लगे। इनकी नेत्र ज्योति शीतला रोग के कारण बहुत पहले ही नष्ट हो गई थी। इसके उपरान्त भी वे जीवन पर्यन्त हरयाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तों में भ्रमण कर धर्म प्रचार करते रहे। 26 अगस्त 1958 को 116 वर्ष की दीर्घायु पाकर उनका देहान्त हुआ।

कविवर बस्तीराम ने भजनशैली में स्वामी दयानन्द के जीवनचरित का प्रणयन किया है। इनकी कविता में उच्च कोटि के साहित्यिक गुण तो दृष्टिगोचर नहीं होते क्योंकि इनकी इस काव्य कृति का प्रयोजन जन साधारण को महर्षि के जीवन से परिचित कराना ही था। लोककवि होने के कारण उनकी कविता जनसाधारण तक पहुँच गई थी। अतः समाज के सभी वर्ग उनके काव्य तथा संगीत से आनन्द प्राप्त करते थे। दयानन्द जीवनगाथा में कवि ने जहाँ सोरठा, दोहा, चौपाई आदि परम्परागत छन्दों का प्रयोग किया है वहाँ भजनों एवं प्रचलित रागरागिनियों के द्वारा भी ऋषि चरित्र को उजागर किया है। इनकी कविता का यह नमूना द्रष्टव्य है–

> मुनिवर चरण सरोज बन्दौ सादर जोर कर।
> मुखरित सकल मनोज गुणदायक अवगुण दमन।।
> ऋषि कुल कमल पतंग दोष रहित गुण सागरे।
> होत अविद्या भंग सरसत पद पातक टरहिं।।

पं. बस्तीराम की कविता में यत्र-तत्र ग्राम्य दोष भी मिलते हैं। भाषा के परिष्कार का तो शायद उन्हें समय ही नहीं मिला था तथापि कविता में प्रभाव उत्पन्न करने की पर्याप्त शक्ति है। वर्णन शैली में रोचकता, वास्तविकता तथा सपाटबयानी के दर्शन होते हैं। काशी शास्त्रार्थ के समय विभिन्न मत-मतान्तरों तथा सम्प्रदायों के पण्डितों और साधुओं का बहुत बड़ा समुदाय काशी के आनन्द बाग में एकत्र हुआ था। इसकी एक रोचक झाँकी पं. बस्तीराम ने निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत की है–

जितने पण्डे और पुजारी। जितने साधू थे मठधारी।
चल कर पोप मंडली आई। जिसकी सिफ्त सुनो मन लाई।।
विशुद्धानन्द से थे दण्डी। आये कितने और घमण्डी।
सेवक शिवजी के परचण्डे। आये अकड़ते कितने मुस्टण्डे।
आये नाना मतों के साधू। धारे सीगां सेली नादू।।

दयानन्द जीवनगाथा का प्रकाशन विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय गुरुकुल झज्जर ने 1960 ई. में किया था। आर्य प्रकाशन रोहतक ने इसका एक अन्य संस्करण 2032 वि. में प्रकाशित किया है। पं. बस्तीराम के भजन किसी समय अत्यन्त लोकप्रिय हुए थे। उनके द्वारा रचित भजनों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं—यथा, पाखण्ड खण्डनी, मानस दीपिका, अग्निबाण, भजन मनोरंजनी, अमृत गीता, अमृत कला, बस्तीराम रहस्य, गोभजन संग्रह, पोप की नाखर आदि।

श्री दयानन्द दयाप्रकाश–
अर्थात् ऋषि दयानन्द का जीवनचरित्र छन्दों में (प्रकाशन काल 1925 ई.)

उपर्युक्त शीर्षक से एक काव्य कृति लाला शम्भूनाथ उर्फ शम्भू द्वारा लिखी गई है। पुस्तक की भूमिका गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक आयुर्वेदाचार्य पं. ब्रह्मानन्द वेदालंकार ने लिखी थी तथा दो भागों में समाप्त इस काव्य का प्रकाशन स्वयं कवि ने ही नूरी दरवाजा आगरा से स्वामी दयानन्द की जन्म शताब्दी के अवसर पर 1981 वि. में किया था। कवि का विशेष परिचय उपलब्ध नहीं होता किन्तु अपने नाम के साथ 'कदीमी अग्रवाल' के प्रयोग से उनकी जन्मना जाति का ज्ञान अवश्य हो जाता है। कवि ने अपने निवेदन में यह स्वीकार किया है कि "संसार के कवि मुझे कविता को बदनाम करने वाला और भद्दा तुक्कड़ कहकर बुलावेंगे। किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं ऋषि दयानन्द के गुण तथा उपकारों के पीछे बावला हूँ।" स्वामी दयानन्द के प्रति इसी श्रद्धा भावना ने उसे इस काव्य को लिखने की प्रेरणा दी है।

'दयानन्द दयाप्रकाश' के प्रथम भाग में जन्म से लेकर विराजानन्द की पाठशाला में अध्ययन पर्यन्त घटना क्रम को वर्णित किया गया है। द्वितीय भाग में गुरु दक्षिणा से आरम्भ कर कानपुर में पं. हलधर ओझा और स्वामी दयानन्द के बीच के शास्त्रार्थ तक की घटनाएँ आई हैं। अवशिष्ट घटनाएँ तीसरे भाग में छपी थी नहीं, यह कहना कठिन है। यह कविता साधारण कोटि की है और कवि ने इसमें लावनी, दादरा, ग़ज़ल, कव्वाली के अतिरिक्त दोहा और भजन जैसे काव्यरूपों को अपनाया है। 'दयानन्द दयाप्रकाश' इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा गया है। निम्न दोहों से कविता के स्तर का ज्ञान हो सकता है—

मुल्क काठियावाड में शहर मौरवी धाम।
ब्राह्मण कुल भूषण बसे अम्बाशंकर नाम।।
हो प्रसन्न गुरु ने कहा सुनो दयानन्द वीर।
आशीर्वाद मेरा तुम्हें चिरंजीव रणधीर।

कवि ने दयानन्द कृत शास्त्रार्थ को महाभारत युद्ध के रूपक द्वारा प्रस्तुत किया है। आचार्य विरजानन्द ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए युक्ति और तर्क रूपी शस्त्र प्रदान किए। चारों वेद गाण्डीव के तीरों के तुल्य हैं। युक्ति रूपी शक्ति और ओम् की ध्वजा दयानन्द रूपी सेनापति के रथ पर फहराने वाली विजयपताका है। धर्म रूपी चक्र और ज्ञान रूपी योद्धा इस सेनापति के सहायक हैं। सत्य रूपी रथ पर जब दयानन्द रूपी धर्मयुद्ध का योद्धा आकर बैठा तो मानो स्वयं ईश्वर ने ही सारथी बनकर उसके रथ का संचालन किया।

ईश्वर रथ का सारथी सखा सहायक जान।
दयानन्द आनन्द से सत रथ बैठे आन।।

असावधानीवंश व्यक्ति के नाम को किस प्रकार विकृत कर दिया जाता है, इसका एक रोचक उदाहरण इस काव्य के द्वितीय भाग में दिखाई पड़ता है। स्वामी दयानन्द के जीवनचरित में हम पढ़ते हैं कानपुर में जब उनका शास्त्रार्थ पं. हलधर से हुआ तो उसकी मध्यस्थता कानपुर के संस्कृतज्ञ कलेक्टर श्री डब्लू थेन साहब ने की थी। कहीं-कहीं इन्हें 'थेरा' भी लिखा गया है। किन्तु कवि शम्भूनाथ के इस काव्य तक आते-आते ये थेरा साहब 'हथौरा' बन गए।

दयानन्द दयाप्रकाश में साहित्यिक अभिरुचि वाले पाठकों को शायद बहुत कुछ न मिले, किन्तु साधारण पठित जनता इससे अपना मनोरंजन कर सकती है।

दयानन्द चरितामृत : विद्यानन्द आनन्द (विदेह) कृत (1925 ई.)

वेद संस्थान के संस्थापक तथा वेदों को लोकप्रिय बनाने के लिए समस्त जीवन को अर्पित कर देने वाले स्वामी विद्यानन्द विदेह का जन्म 15 नवम्बर 1899 को अलीगढ़ जिले के टप्पल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके जीवन का अधिकांश समय अजमेर में व्यतीत हुआ। अपने गृहस्थ जीवन में ये पुलिस विभाग के कार्यालय में कार्यरत रहे। 1948 ई. में उन्होंने वानप्रस्थ की दीक्षा ले ली और राजकीय सेवा से अवकाश ग्रहण किया। इसी वर्ष उन्होंने अजमेर में वेद संस्थान की स्थापना की और सर्वात्मना वेदों के प्रचार में लग गए। अजमेर से पूर्व वे अपनी सेवा के काल में आबू तथा इन्दौर में भी रहे थे। कालान्तर में विदेहजी ने चतुर्थाश्रम की दीक्षा ली और वेद-संस्थान की शाखा दिल्ली में स्थापित की। धर्म प्रचारार्थ वे अनेक बार

विदेशों में भी गए। उनका निधन 5 मार्च 1978 को सहारनपुर में हुआ।

विदेह जी नैसर्गिक प्रतिभा युक्त कवि थे। 'विदेह आलाप' तथा 'विदेह गीतांजलि' में उनकी आध्यात्मिक तथा भक्ति सम्बन्धी कविताएँ संगृहीत हैं। उन्होंने सैकड़ों वेद मन्त्रों की सरल भावपूर्ण काव्यमयी व्याख्या अतुकान्त पद्य शैली में लिखी है। स्वामी दयानन्द के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया 'दयानन्द चरितामृत' एक ऐसा कावय है जो 'स्वान्तः सुखाय' दृष्टि से ही लिखा गया है। इसका प्रथम संस्करण दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर 1925 ई. में प्रकाशित हुआ था। इस काव्य के प्राक्कथन में कवि ने कविता विषयक स्वधारणा को प्रकट करते हुए लिखा था—"ये सब पद्य जिन्हें कविता की संज्ञा नहीं दी जा सकती, मैंने स्वान्तः सुखाय लिखे थे और मैं इन्हें आर्यसमाज अजमेर के साप्ताहिक अधिवेशनों में सुनाया करता था।" कवि की इस विनम्र स्पष्टोक्ति से यह बात उजागर होती है कि वे अपनी रचना को पद्य ही कहते हैं जो वास्तविक कविता से भिन्न होती है। वे यह कहना भी नहीं भूलते कि अपने आचार्य स्वामी दयानन्द का गुणानुवाद करने की दृष्टि से ही उन्होंने इस कृति का प्रणयन किया था, तथापि काव्य की दृष्टि से भी आलोच्य ग्रन्थ का महत्त्व कम नहीं है।

दयानन्द चरितामृत प्रबन्धकाव्य की शैली में लिखा गया है। इसमें रामचरितमानस की ही भाँति दोहा, चौपाई शैली का प्रयोग हुआ है। काव्य की भाषा सरल ब्रज है जिसमें यत्र-तत्र खड़ी बोली के शब्द भी प्रयोग में आए हैं। काव्य का आरम्भ एक बधाई गान से हुआ है जिसमें करसनजी तिवारी (स्वामी दयानन्द के पिता) के घर पुत्र उत्पन्न होने पर बधाई गाने का उल्लेख किया गया है। इस प्रसंग को पढ़कर महाकवि सूरदास के सूरसागर के उस प्रसंग का स्मरण हो आता है जिसमें कृष्ण जन्म के उपलक्ष्य में नन्द के घर पर बधाई बजने का उल्लेख हुआ है। विदेहजी के काव्य में बधाई का यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित हुआ है—

> कर्षन के घर गवत बधाई।
> बडकुल में जनम्यो सुत सुन्दर
> बड़ भागिन शोभा हरषाई।
> घर घर में अति मंगल छायो
> बृद्ध बटुक नर नाह सिहाई।।

कुछ प्रारम्भिक बातें लिखने के पश्चात् स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व की अपूर्वता का प्रतिपादन करते हुए कवि ग्रन्थारम्भ में लिखता है—

> आदि सृष्टि से आज तक बिरला ऋषिसम कोय।
> सब महातमन के सकल गुण ऋषि दयानन्द सोय।।

इस प्रसंग में कवि ने अन्यान्य भारतीय तथा अन्य देशवासी महापुरुषों से स्वामी जी की तुलना करते हुए उनकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। राम का सीता के वियोग में वन-वन भटक कर खग, मृग एवं मधुकर वृन्द से उनका पता पूछना तुलसीदास की रुचिर कल्पना है। परन्तु दयानन्द का गिरिवन प्रान्तर भ्रमण किसी लौकिक उद्देश्य की पूर्ति हेतु न होकर सच्चे शिव की तलाश के लिए था—

राम विपिन गिरि जंगल नाना।
घूमत फिरे विपत्ति में आना।
पर ऋषि शिवदर्शन के काजा।
गिरि अरण्य नदी तट साजा।।

कृष्ण ने यदि गीता में आत्मा के अमरत्व का उपदेश दिया है, तो दयानन्द भी उसी आत्मतत्त्व की अनश्वरता का दृढ़ विश्वास लेकर कार्यरत रहे—

अजर आत्म अस मरण न कोई।
छांदत भिनत न विनसत कोई।।
यह विश्वास कृष्ण अनुकूला।
पर ऋषि जीवन का वर मूला।।

अपने माता-पिता तथा गृह को छोड़कर दयानन्द का बन की ओर प्रस्थान महात्मा बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण का स्मरण कराता है—

लख चाचा भगिनी का मरना।
हो वैरागि त्याग गृह करना।।
एक कौपीन धार जिज्ञासू।
सदाशिव मृत्यु विजय मिलि तासू।।
इतहु बुद्ध के लगत सवाये।
उत दयानिधि क्राइस्ट लजाये।।
सब जब एक पिता के पूता।
सबहिं सपूत न कोऊ कपूता।।

दयानन्द की ईसा मसीह से श्रेष्ठता, उनकी दयालुता तथा मनुष्य मात्र को परमात्मा का पुत्र घोषित करने के कारण है। पैगम्बर मोहम्मद से दयानन्द की वरीयता स्थापित करते हुए कवि लिखता है—

इक दूजे सब भाई भाई।
ऋषिवर यह मति सबहिं सिखाई।।

ओम् छांडि पूजो नहि कोई।
इस भाँति ऋषि सबहिं सिखेऊ।।
यह गुण मुहम्मदिहु विसेषा।
तर्क वाद शंका सब प्रेषा।

'दयानन्द चरितामृत' एक वर्णनप्रधान काव्य है जिसमें कवि ने काव्य के नायक की प्रमुख घटनाओं को अत्यन्त तल्लीनता के साथ चित्रित किया है। दोहा, चौपाई के अतिरिक्त कवित्त, सवैया, सोरठा, लावनी आदि छन्द भी यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं। कवि की यह रचना दयानन्द जीवन के जिज्ञासु उन सामान्य लोगों के लिए है जो पद्यात्मक शैली में लिखे गए चरितकाव्य को रुचिपूर्वक पढ़ते हैं। आलोच्य काव्य में जहाँ-तहाँ मात्रा और वर्णो की न्यूनाधिकता के कारण छन्दोभंग की स्थिति उत्पन्न हुई है, किन्तु यह कवि का प्रथम प्रयास ही था, इसलिए इन त्रुटियों को क्षन्तव्य माना जा सकता है। यद्यपि ब्रजभाषा में संस्कृत के शब्द तद्भव रूप में ही प्रयुक्त होते हैं किन्तु कवि ने देववाणी का सम्मान करते हुए अपने इस ब्रजभाषा काव्य में उन्हें तत्सम रूप में ही रहने दिया है।

श्री हरिशरण श्रीवास्तव्य 'मराल' लिखित शिव बोध (1981 वि. 1925 ई.)

मेरठ निवासी हरिशरण श्रीवास्तव्य 'मराल' कृत 'शिव बोध किंवा ऋषि दयानन्द का ज्ञानोन्मेष' शिवरात्रि की उस घटना का चित्रण करता है जिसने दयानन्द के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित कर दिया था। शिव बोध का प्रकाशन 1981 वि. में दयानन्द-जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में हुआ है। आलोच्य काव्य की भूमिका आर्यसमाज के विख्यात विद्वान् पं. घासीरामजी ने लिखी थी। शिव बोध सात खण्डों में विभक्त है जिनका नामकरण कवि ने इस प्रकार किया है—आयोजन, आरम्भ, काल निर्णय, आराधन, प्रबोध, संवाद और प्रयोजन। दयानन्द के आविर्भाव काल की परिस्थितियों का चित्रण करते हुए कवि लिखता है—

हुआ ज्ञान रवि अस्त तामसी निशि है आई।
घोर अविद्या रूप घटा घिरि अम्बर छाई।।
मनमानस पै बिछी तमोगुण रूपी काई।
गौरव गिरि हो चूर्ण हुआ पर्वत स राई।।
सुखद भक्ति रसहीन हो, शुष्क हृदय फटने लगे।
दर्दुरवत् नरपंक धँस राम राम रटने लगे।।

अन्तिम दो पंक्तियों में कवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ रूपक का निर्वाह

किया है।

प्रकृति वर्णन करने में कवि अत्यन्त सफल रहा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

शरद ऋतु का था अन्तः प्रसार।
भरे शीतल दल से कासार।।
शिशिर के शासन का विस्तार।
भुवन में फैला तीव्र तुषार।।
गर्भ में जिसके अस्फुट गुप्त।
खड़े थे शंकित तरुदल सुप्त।।

तुषार वृष्टि के कारण व्याप्त अन्धकार में वृक्षों को सुप्त दशा में बताना कवि की कल्पना सहज स्वाभाविक है।

काव्य के माध्यम से वातावरण निर्माण करने की कवि में अपूर्व क्षमता है। जिस समय चराचर जगत् सोया पड़ा था, उस समय एकाकी मूलशंकर अपने हृदय में ज्ञान के दीप को प्रज्वलित कर तमसाच्छन्न परिवेश को आलोकित करने में लगा हुआ था–

जगज्जीव निस्तब्ध सब हो रहे थे।
अचेतन चराचर पड़े सो रहे थे।
कहीं दीप कुछ कुछ तमस खो रहे थे।
क्षमा की वृथा कालिमा धो रहे थे।
अकेला तभी मूलजी जागता था।
मधुर नींद के भाव से भागता था।।

पार्थिव शिव प्रतिमा पर मूषक के आकस्मिक नर्तन को देखकर बालक के हृदय में विचारों का ज्वार उमड़ पड़ा–

अहो ! क्या यही देव त्रिपुरान्तकारी।
उमामानहारी, त्रिशूलास्त्रधारी।।
कथा में सुनी उग्र की भूति भारी,
इसी पिण्ड ने मैन महिमा विदारी।।
हुआ भक्त आशंक कैसे महेश्वर,
तिरस्कृत जिन्हें कर रहा तुच्छ नश्वर।।

प्रस्तर मूर्ति को सर्वशक्तियुत शिव मानने में जब बालक को संकोच होता है तो वह निर्भीक एवं निस्संकोच भाव से अपने हृदयोद्गार पिता के समक्ष प्रकट कर देता है–

तात देव प्रतिमा का रूप
क्या गिरीश का सत्य स्वरूप ?
कहलाते जगपति भवभूप
क्यों फिर उनका यह अपरूप।
बना हुआ यों दीन अधीन,
कैसा विश्वविधाता दीन ?

पिता का उत्तर पुत्र के लिए समाधानकारक नहीं है। अतः शिवरात्रि की यह साधारण प्रतीत होने वाली घटना ही भारत के धार्मिक जगत् में क्रान्तिकारिणी सिद्ध होती है। ग्रन्थान्त में कवि का निम्न कथन नितान्त सत्य ही है–

यद्यपि घटना साधारण है।
हुआ धर्मान्ध निवारण है।
जगत् जागृति का कारण है।
अतः इसका कवि चारण है।
कथा से बढ़े 'मराल' विवेक,
यही अन्तिम इस गत की टेक।।

निश्चय ही मराल कवि ने 'शिव बोध' लिखकर दयानन्द के जीवन की इस घटना को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

पं. हरिशंकर शर्मा कृत महर्षि महिमा (1929 ई. पुनः मुद्रित 1953)

महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' के सुपुत्र पं. हरिशंकर शर्मा आर्यसमाज के रससिद्ध कवियों में अन्यतम हैं। 19 अगस्त 1881 को हरदुआगंज (अलीगढ़) में उनका जन्म हुआ। आर्यसमाज के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'आर्यमित्र' का उन्होंने वर्षों तक सम्पादन किया और उसे साहित्यिक स्तर प्रदान किया। उन्हें अपने काव्य के लिए देव पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। वे हास्य और व्यंग्य के सिद्धहस्त लेखक थे। शर्माजी का निधन 9 मार्च 1968 को हुआ।

पं. हरिशंकर शर्मा ने 'महर्षि महिमा' लिखकर स्वामी दयानन्द के महनीय व्यक्तित्व के प्रति अपनी काव्यांजलि अर्पित की है। 1929 ई. में उन्होंने 'शिवसंकल्प' नामक एक लघु काव्य कृति लिखी थी जिसमें स्वामी जी के जीवन से सम्बद्ध कुछ घटनाओं का चित्रण किया गया था। कालान्तर में उन्होंने 'महर्षि महिमा' लिखकर दयानन्द विषयक अपनी नई-पुरानी सभी रचनाओं को एकत्र कर दिया। यह ग्रन्थ शंकर सदन आगरा से 2010 वि. में छपा। इस संग्रह में स्वामी जी के कृतित्व से सम्बन्धित कतिपय अन्य विषयों पर लिखी गई कविताएँ भी संगृहीत हैं। स्वामी जी

की प्रसिद्ध कृति सत्यार्थप्रकाश, आर्यसमाज, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली, अछूतों की दशा, स्वदेशी भावना आदि पर भी कई कविताएँ इसमें समाविष्ट हैं। 'महर्षि महिमा' में दयानन्द के आविर्भाव काल की देश दशा का चित्रण करने के पश्चात् मूलशंकर के जन्म, शिवबोध, गुरु के समीप रहकर शास्त्रों का अध्ययन, गुरु-दक्षिणा, आदि के प्रसंग वर्णित हुए हैं। तत्कालीन परिस्थितियों के वर्णन प्रसंग में कवि आर्यावर्त के गौरव का क्रमशः ह्रास होने का उल्लेख करता है–

विद्या बिचारी चल बसी,
पौरुष प्रतापी सो गया।
उद्योग डूबा सिन्धु में,
वाणिज्य हीरा खो गया।
आचार का गौरव गिरा,
आलस्य विष बोने लगा।
कारुण्य पर पाला पड़ा,
सद्भाव कम होने लगा।।

ऐसे ही दुर्दशाग्रस्त वातावरण में सौराष्ट्र के एकान्त कोने में मूलशंकर का जन्म हुआ। यही बालक आगे चलकर दयानन्द के नाम से विख्यात हुआ जिसकी युगान्तरकारी शिक्षाओं ने देश और समाज को नूतन प्रेरणा प्रदान की–

बुद्धिवाद का हुआ विकास,
ज्ञान भानु ने किया प्रकाश।।
मिटा अविद्या का अन्धेर,
जाता रहा समझ का फेर।।
खण्डन खड्ग चला अक्लान्त,
भ्रान्त लोग सब हुए अशान्त।।
लगे निरखने निज निज ग्रन्थ।
हिला दिए ऋषि ने मत पंथ।।

हरिशंकर शर्मा की कविता में ओजस्विता, दर्प तथा तेज के दर्शन होते हैं। राव कर्णसिंह के प्रसंग का वर्णन करते हुए कवि ने स्वामी दयानन्द की निर्भीकता को इस प्रकार व्यक्त किया है–

ए रे क्रूर कर्ण तू डराता है क्या खड्ग लेके,
प्राण भय से क्या कभी सत्य छोड़ दूँगा मैं ?
याद रख दम्भ का गिराऊँगा गपोड़ गढ़,
भौंडी भावना का भीरु भाण्डा फोड़ दूँगा मैं।।

अधम अधर्म जय पायगा न धर्म पर,
मिथ्या मतवादिता का मुँह मोड़ दूँगा मैं।।
ताकता है क्या तू कुल कायर प्रहार कर,
तानते ही तेरी तलवार तोड़ दूँगा मैं।।

अन्तिम पंक्ति में अनुप्रास की मोहक छटा पाठक को आकृष्ट करती है।

यज्ञदत्त त्यागी कृत दयानन्द काव्य–(1937 ई.)

297 पद्यों में समाप्त 'दयानन्द काव्य' श्री यज्ञदत्त त्यागी द्वारा प्रणीत है। इसका प्रकाशन दिसम्बर 1937 में हुआ और महात्मा नारायण स्वामी जी ने इसकी संक्षिप्त भूमिका लिखी थी। पूर्वाभास के रूप में कवि दयानन्द के आविर्भाव के पूर्व की देशदशा का वर्णन करते हुए लिखता है–

हुआ जब लोप आर्य गौरव,
बना यह आर्यावर्त रौरव।
निशा तम छाया था सब ओर,
किसे आशा थी होगा भोर ?

यह काव्य बाल्यावस्था, ज्ञान प्राप्ति, गुरु से भेंट, कर्णसिंह की दुष्टता, देशाटन, विभिन्न प्रान्त भ्रमण तथा सूर्य की अन्तिम छटा, इन सात शीर्षकों में विभक्त है। दयानन्द के परलोक गमन से उत्पन्न शोक का प्रसार कवि ने प्रकृति में भी देखा–

प्रकृति भी लाल रंग में रंग,
रक्तमय हुई शोक के संग।
चतुर्दिक अन्धकार छाया।
रात्रि की फैल गई माया।।

सरल भाषा और प्रसादगुणोपेता शैली में लिखा यह काव्य कवि की अपने आराध्य के प्रति एक विनम्र श्रद्धांजलि है।

रमेशचन्द्र शास्त्री कृत दयानन्द गुरुपथ–
रचनाकाल 1995 वि., 1938 ई.

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक तथा आर्यसमाज के विख्यात उपदेशक एवं कार्यकर्ता स्व. पं. रमेशचन्द्र शास्त्री का जन्म 14 जनवरी 1915 को बिजनौर जिले के गंज-दारानगर कस्बे में हुआ। ज्वालापुर महाविद्यालय से उन्होंने 1933 में विद्याभास्कर उपाधि ग्रहण की और स्नातक बने। गुरुकुल में अध्ययन करते समय

शास्त्री जी को स्वामी शुद्धबोध-तीर्थ, पं. भीमसेन शर्मा आगरा, पं. दिलीपदत्त शर्मोपाध्याय तथा पं. नरदेव शास्त्री जैसे गुरुजनो के सान्निध्य में रहकर विद्याध्ययन करने का अवसर मिला था। हिन्दी काव्य-रचना में वे पं. हरिशंकर शर्मा को अपना प्रेरणा गुरु मानते थे।

1935 वि. में शास्त्री जी शाहपुरा (राजस्थान) आए और राज्य की संस्कृत पाठशाला के आचार्य पद पर कार्य करने लगे। कुछ वर्षो के पश्चात् वे स्थायी रूप से अजमेर में बस गए और आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्यान्य गतिविधियों में भी भाग लेने लगे। 1964 में उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे कई वर्षों तक वनस्थली विद्यापीठ तथा दयानन्द कॉलेज, अजमेर में संस्कृत का अध्यापन करते रहे। शास्त्री जी ने धरानन्दिनीसीता (1968), देवपुरुष गाँधी महाकाव्य (1969 ई.) तथा महाभिनिष्क्रमण (सिद्धार्थ के गृहत्याग पर आधारित खण्डकाव्य) (1969 ई.) आदि अनेक काव्यों की रचना की। उनका निधन 21 नवम्बर 1980 को अजमेर में हुआ।

दयानन्द गुरुपथ 104 छन्दों में लिखा गया एक खण्ड काव्य है जिसमें स्वामी दयानन्द के मथुरा निवास तथा दण्डी विरजानन्द के समीप रहकर विद्याध्ययन करने का प्रसंग वर्णित है। 1995 वि. में यह काव्य विद्याभास्कर पुस्तकालय, शाहपुरा से प्रकाशित हुआ था। संस्कृनिष्ठ हिन्दी में लिखा गया यह सरस खण्ड काव्य कवि की काव्य प्रतिभा का परिचायक है। काव्य के प्रारम्भ में कवि ने यमुना के कूल पर बसी मथुरा नगरी की मनोहर झॉकी प्रस्तुत की है। रूपक, उपमा तथा उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से युक्त यह काव्य निश्चय ही हिन्दी साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति है। विरजानन्द के विद्यालय में दयानन्द के प्रवेश की घटना को कवि ने चमत्कारपूर्ण अलंकार योजना के द्वारा व्यक्त किया है—

खनि निःसृत हेम आ गया,
यह निर्धूम कृशानु अक में।
अथवा विरही चकोर क्या,
पहुँचा आज स्वयं मयंक में।। 49.

और—

मृगराज पिपासु आशु क्या,
पहुँचा है सरिता सदेश में।
अथवा अति श्रान्त पान्थ क्या,
पहुँचा है घन कुंज देश में।। 51.

ग्रन्थान्त में कवि ने स्वामी दयानन्द द्वारा गुरु प्रदत्त आदेश को पूरा करने में

स्वजीवन को समर्पित करने का उल्लेख कर भरतवाक्य रूपी निम्न पद्य को प्रस्तुत किया है–

वसुधा उपकार के लिए,
फिर ऐसे गुरु शिष्य योग हों।
जिससे इस भूमि गोद में,
फिर से सुन्दर स्वर्ग भोग हों।। 101.
ऋषि का पथ पालती रहे,
सुर आराधित भव्य भारती।
सब लोक उतारते रहें,
इसकी नित्य सुरम्य आरती।।

विषयानुकूल कवि ने अपनी भाषा में ओज गुण का भी समावेश किया है। इस दृष्टि से दयानन्द के कर्तृत्व की समीक्षा प्रस्तुत करने वाले इस कवित्त की शब्दावली द्रष्टव्य है–

भारत में भव्य भावना के भूरि भाव भर,
कुटिल कुभावना के कण्टक उखाड़े हैं।
दुष्ट दुराचार दम्भ दुरितों के दल दल,
प्रबल पिशाच पाप पूजक पछाड़े हैं।
सरस सुधा से वसुधा का रोम रोम सींच
लालची लबार लण्ठ लम्पट लताड़े हैं।
दिव्य दयानन्द धन्य धन्य आज आपको है,
आपने ही तोड़े धर्म-ध्वजों के अखाड़े हैं।।

कवि की अनुप्रासप्रियता उपर्युक्त पदावली में स्पष्ट दीख पडती है। 'दयानन्द गुरुपथ' खण्डकाव्य की कसौटी पर पूरे तौर पर खरा उतरता है।

ब्रह्मदत्त तिवारी 'नागर' रचित शिवरात्रि व्रत (1945 ई.)

मूलशंकर के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाली शिवरात्रि व्रत की घटना को अनेक कवियों ने अपने काव्य कौशल से सजाया है। लखनऊ निवासी पं. ब्रह्मदत्त तिवारी 'नागर' रचित शिवरात्रि व्रत भी इसी घटना का सरस चित्रण करने वाला 138 छन्दों में समाप्त एक सुन्दर खण्ड काव्य है। कवि ने सर्वत्र तत्सम संस्कृत शब्दों का श्रुतिमधुर प्रयोग करते हुए द्रुतविलम्बित छन्द में इस काव्य की रचना की है। इस कृति पर महाकवि हरिऔध के प्रिय प्रवास का प्रभाव तो स्पष्टतया लक्षित होता है, किन्तु इससे आलोच्य कृति का महत्त्व कम नहीं होता।

काव्य के आरम्भ में कवि ने भारत देश की दिव्य प्राकृतिक सुषमा का अतीव सुन्दर वर्णन 14 पद्यों में किया है।

विविध पक्षीगण अपने कलकण्ठ गान से भारत की जिस मनोरम वनस्थली को सदा गुंजरित करते हैं उसका एक ललित चित्र निम्न छन्द में द्रष्टव्य है—

सकल भारतवर्ष वनस्थली
विविध पक्षि समूह समन्विता।
मधुर मोहक कोमल कण्ठ से
ध्वनित है करते जिसको सदा।।

इसी महीयसी भारतभूमि की अधोगित को देखकर कवि को लिखना पड़ा—

परम पावन भारतवर्ष की
वह पुरातन संस्कृति थी हुई।
जब अपावन धर्म प्रचार से
कलुषिता, पतिता, अति दूषिता।।

ऐसे विकट समय में ऋषिराज दयानन्द का आविर्भाव हुआ—

पथ प्रशस्त पुरातन को दिखा,
भ्रमित दुःखित मानव वृन्द के।
हृदय का तम नाशन के लिए,
गगन से उतरे ऋषिराज थे।।

पुनः शिवरात्रि प्रसंग की अवतारणा करता हुआ कवि मूलशंकर के पिता के शब्दों में शशिशेखर भगवान् शिव का परिचय निम्न शब्दों में देता है—

इस चराचर सृष्टि विधान का
जनक पालक हारक वस्तुतः।
कह रही निगमागम भारती
बस वही शशिचूड़ महेश है।।

करमन जी त्रिवेदी ने भुजंगभूषण भूतभावन शंकर को उपास्य बनाते हुए कहा—

विलसता जिसके अधि शीष में
मणिसमुज्ज्वल क्षीण तनु शशी।
भुजग भूषित लेपन भस्म से,
सुत, वही तव देव उपास्य है।।

शिवरात्रि के नैश सौन्दर्य का चित्रण कवि ने प्रियप्रवास के अनुकरण पर ही किया है–

शशि विहीन दिगन्त शनैः शनैः
रजनिपाश हुआ अब बद्ध था।
नयनगोचर थी नभ हो रही,
विमल व्योम, प्रभा शिवरात्रि की।।

सूर्यास्त हुआ जानकर कुमुदिनी की प्रसन्नता का भी कवि ने मनोज्ञ चित्रण किया है–

रवि करावलि त्रास सुपीड़िता
कुमुदिनी अति दुःखित थी हुई।
जब लखा अवसान दिनेश का
विकल मानस में मुद छा गया।।

शिव निर्माल्य को तुच्छ मूषकों द्वारा तिरस्कृत होता देख कर मूलशंकर की मानसिक हलचल को कवि ने निम्न प्रकार चित्रित किया है–

जिस उमापति का इस रात्रि में
कर रहा शुभ पूजन प्रान्त है।
वह महेश्वर मन्दिर में बना,
अब अरे, इतना असमर्थ है।।

मूलशंकर की यह शंका स्वाभाविक और सत्य ही थी, क्योंकि–

जन तपोरत हो जिसके लिए,
कठिन योग क्रिया करते सदा।
हृदय मन्दिर का वह ईश है
इस शिवालय में शिव है कहाँ ?

प्रस्तर रूपी शिव जो स्वयं को निर्बल जन्तु से नहीं बचा सका, वह संसार सागर में गोता लगाते हुए प्राणियों का त्राण कैसे कर सकता है–

जब बचा सकता निज को नहीं,
इस अपावन निर्बल जन्तु से।
विषम संकट से सकता छुड़ा,
वह कहो किस भाँति मुझे पिता।।

किन्तु मूर्तिपूजा के समर्थक पिता ने स्वपक्ष का अनुमोदन करते हुए कहा—

उस अनादि अनन्त परेश का,
निहित भौतिक रूपण मूर्ति में।
इसलिए इस माध्यम से सभी
कर रहे शिवमूर्ति समर्चना।

और अन्त में बालक को डपटते हुए कह दिया—

तुम नवोदित बालक हो अभी,
समझ में कुछ आ सकता नहीं।
शिव पदार्चन वन्दन में कभी,
न करना इस भाँति कुतर्कना।।

इस जड़ पूजा के प्रति उत्पन्न तिरस्कार भाव ने किशोर मूलशंकर के हृदय में जो मानस मन्थन पैदा किया वही आगे चलकर भारत के धार्मिक जगत् में एक नूतन क्रान्ति का संदेशवाहक बना। मूलशंकर के बाल्यकाल की उस शिवरात्रि को कवि भारत में नवयुग की उषा वेला का प्रतीक मानता है। उसका आशा भाव निम्न पद्य में व्यक्त हुआ—

सुदिन भारत के अब हो गए,
दुरित दम्भ विखण्डित से हुए।
मत मतान्तर की भयदायिनी,
निखिल ध्वस्त हुई कलुषावली।।

शिवरात्रि प्रसंग को लेकर लिखे गए विभिन्न खण्डकाव्यों में आलोच्य कृति को शीर्षस्थ कहा जा सकता है। क्या भाषा, क्या भाव, सब प्रकार से यह कविता सफल मानी जाएगी। कवि का वर्णन कौशल, सरल मंजुल पदावली का प्रयोग, अतुकान्त शैली में द्रुतवलम्बित छन्द की रचना चातुरी और सर्वोपरि प्रांजल एवं प्रसाद पूर्ण भाषा—इन सभी गुणों ने इस कृति को चारुता प्रदान की है। प्राक्कथन के रूप में लिखे गए प्रो. नरेन्द्रनाथ शास्त्री (प्रोफेसर डी.ए.वी. कॉलेज लखनऊ) के इस वक्तव्य से हम सहमत हैं कि प्रस्तुत खण्ड काव्य की भाषा में प्रवाह है, कवि की लेखनी में शक्ति है। शिवरात्रि का सवाक् चित्रण किया गया है। कल्पनाओं में लालित्य है, भावनाओं में उच्चता है, संवादों में पूर्ण सजीवता है। शिथिलता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती।

यह सुन्दर खण्ड काव्य 1945 ई. में शिवाजी बुकडिपो लखनऊ से प्रकाशित हुआ था।

महारथी–(रचनाकाल 2004 वि. 1947 ई.)

श्री लक्ष्मण शर्मा 'ललित' लिखित पाँच सर्गों का यह लघु काव्य स्वामी दयानन्द के जीवन को खड़ी बोली पद्यों में प्रस्तुत करता है। इस काव्य के रचयिता कवि लक्ष्मण शर्मा दरभंगा जिले के ग्राम अस्थूआ निवासी थे। प्रथम सर्ग के आरम्भ में कवि ने क्रान्ति को जन्म देने वाली काव्य शक्ति का आह्वान किया है। यही काव्य का मंगलाचरण है–

देवि कविते क्रान्ति का आगार तू।
विश्व के उत्थान का आधार तू।
धन्य तेरी कीर्ति सुखदे शारदे।
इस अधम को भी जरा अब तार दे।।

स्वामी दयानन्द के आविर्भाव के समय की देश दशा का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कथा नायक के जन्म एवं शिवरात्रि के प्रसंग को प्रथम सर्ग में चित्रित किया है। द्वितीय सर्ग में मूलशंकर की भगिनी तथा पितृव्य की मृत्यु तथा उससे उत्पन्न नायक के वैराग्य भाव का वर्णन हुआ है। इन मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा करते हुए कवि ने करुण रस के स्थायी भाव 'शोक' को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। जीवन की क्षण भंगुरता तथा नश्वरता का चिन्तन किशोर मूलशंकर के मन में निर्वेद के भाव उत्पन्न करता है–

सोचते कहॉं गए वे प्राण,
दिव्य जीवन का कर अवसान।
जीव का तन से क्या सम्बन्ध,
और उन पर क्या है प्रतिबन्ध ?

तृतीय सर्ग में मूलशंकर के गृह त्याग, सिद्धपुर के मेले में पिता से भेंट, संन्यास ग्रहण, देशाटन, उत्तराखण्ड भ्रमण आदि प्रसंगों को उपस्थित किया गया है। प्रकृति के रम्य और मनोहारी रूप का वर्णन इस सर्ग की विशिष्टता है–

नदी वह कुंचित कूल विचित्र
निर्झरी शोभापूर्ण पवित्र।
तुहिन के खण्डों का आगार,
तरंगित सुरसरिता की धार।।

और भी–

उषा ने पहिन अरुण परिधान।
बनाया स्वर्णिम प्रात महान।

बह रहा था जलजात शरीर।
मूल आए गंगा के तीर।।

उत्तराखण्ड की भीषण उपत्यकाओं तथा हिम-शिखरों पर असीम शारीरिक पीड़ाओं को झेलते समय एक बार तो दयानन्द के मन में बर्फानी चट्टानों के बीच अपने शरीर को गला कर समाप्त कर देने का विचार आया, किन्तु तुरन्त बाद ही उनके मन की निराशा तथा पलायनवादी विचारधारा दूर हो गई—

अरे यह अकर्मण्यता नीच,
कहाँ से आई मेरे बीच।
कष्ट तो सुख साधन का द्वार,
कष्ट में ही पलता संसार।
यही तो नर जीवन का धर्म,
न अकुलाते करने में कर्म।।

चतुर्थ सर्ग में दयानन्द का मथुरा में रहकर शास्त्राध्ययन तथा काशी के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ का विवरण काव्यबद्ध किया गया है। पंचम सर्ग में नायक के जीवन की अन्तिम घटनाओं को चित्रित किया गया है। स्वामी दयानन्द का राजस्थान गमन, विष दिया जाना तथा अजमेर में मृत्यु के प्रसंगों को कवि ने अत्यन्त मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। उपसंहार की पंक्तियों में कवि ने स्वामी दयानन्द के तुल्य महामानव की जीवनगाथा को काव्यबद्ध करने में ही अपनी काव्य साधना की सफलता मानी है। उसके विचार में दयानन्द की जीवन कथा कोई पुराण नहीं है जिसके पढ़ने मात्र से ही मनुष्य का उद्धार हो जाता है, किन्तु यह तो निश्चित है कि श्रेष्ठ पुरुषों की कीर्ति गाथा का गायन मानव मुक्ति के द्वार को खोल देता है—

तुम्हारी गाथा न यह पुराण
पुरातन का नूतन उद्धार।
न गा गा कर हो कौन सनाथ,
मुक्ति का खोले बन्धन द्वार।।

महारथी काव्य का प्रकाशन 2004 वि. में आर्यसमाज लहेरियासराय (बिहार) ने किया था। कवि के जीवनवृत्त के बारे में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी।

बनवारीलाल आजादकृत दयानन्द लहरी (1947 ई.)

हिसार (हरयाणा) निवासी कुँवर बनवारीलाल वर्मा आज़ाद कृत दयानन्द लहरी का

प्रकाशन 2004 वि. में श्रीरामं शर्मा भारद्वाज किरताण (हिसार) ने किया। कवि का परिचय पुस्तक के आरम्भ में सिरसा निवासी श्री लीलाधर दुखी ने लिखा है जिसका सारांश इस प्रकार है—कवि बनवारीलाल वर्मा का जन्म एक साधारण क्षत्रिय कुल में 1962 वि. में हुआ। इनकी शिक्षा जैन पाठशाला, सनातन धर्म पाठशाला तथा गवर्नमेण्ट हाई स्कूल हिसार में हुई। साहित्य की ओर उनकी प्रारम्भ से ही रुचि रही। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में आप समान रूप से काव्य रचना करते थे। कवि सम्मेलनों और मुशायरों में कवि आज़ाद अपनी रचनाओं को प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत करते थे। हरयाणा के प्रसिद्ध आर्य विद्वान् पं. मुरारीलाल शास्त्री ने 'दयानन्द लहरी' पर अपनी सम्मति देते हुए उसे एक मार्मिक कृति बताया है।

दयानन्द लहरी की समस्त पद्य संख्या 50 है। सरल उर्दू में लिखी इस कविता के निम्न उदाहरण कवि की ओजस्वी शैली के परिचायक हैं—

वेद इन्सानी तखय्युल में भी जो आ न सके।
जिसकी गहराई के मतलब को कोई पा न सके।
जिसकी अत्यन्त बुलन्दी पे कोई जा न सके।
जिसके सौन्दर्य की महिमा को कोई गा न सके।
उसी सौन्दर्य को रोशन किया तूने स्वामी।
धन्य इस भूमी को कुन्दन किया तूने स्वामी।

स्वामी दयानन्द के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को कवि आँधी, ज्वाला, तूफान और ज़लज़ले से उपमित करता है—

तुझको आँधी कहूँ ज्वाला कहूँ तूफान कहूँ।
ज़लज़ला कह दूँ तुझे या तुझे इन्सान कहूँ।
तेग़ खंजर छुरी तलवार कहूँ बाम कहूँ।
या पापी के लिए मौत का सामान कहूँ।
आज तक काशी के पाखण्डी डरे जाते हैं।
नाम सुनते ही तेरा भय से मरे जाते हैं।

महात्मा नारायण स्वामी ने इस काव्य की सराहना करते हुए इसके घर घर में प्रचारित किए जाने की इच्छा व्यक्त की थी। सरल और चलती भाषा में लिखा गया यह काव्य कवि-सम्मेलनों में लोकप्रियता अर्जित करने में सफल हुआ था।

पं. लोकनाथ तर्क वाचस्पति रचित महर्षि महिमा और ऋषिराज चालीसा

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं. लोकनाथ तर्कवाचस्पति अपने युग के अद्वितीय व्याख्याता, शास्त्रार्थ कला निष्णात तथा सहृदय कवि थे। उनका जन्म पिण्डदादन

खां (पाकिस्तान) में हुआ था। उनका कार्यक्षेत्र प्रारम्भ में मुख्यतः पंजाब तथा सिन्ध रहा, किन्तु वे देश में सर्वत्र धर्म प्रचारार्थ जाते थे। देश विभाजन के पश्चात् वे दिल्ली आ गए और आर्यसमाज दीवानहाल को अपना केन्द्र बनाया। 1957 ई. में आपका निधन हो गया। आपके द्वारा रचित दयानन्द विषयक काव्यों का विवरण इस प्रकार है–

महर्षि महिमा–16 पद्यों का यह एक लघु काव्य है। शार्दूल विक्रीड़ित छन्द में लिखा गया यह काव्य भाषा की दृष्टि से एक नवीन प्रयोग है। छन्द की प्रत्येक पंक्ति का प्रारम्भिक अंश संस्कृत में तथा अवशिष्ट अंश हिन्दी में लिखा गया है। इस प्रकार दो भाषाओं का मिश्रित प्रयोग इस काव्य के चमत्कार को बढ़ाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

दीक्षाम्प्राप्य वरान् गुरोर्मधुपुरे
दण्डी महाराज से।
पाषण्डोच्चय खण्ड खण्ड करणी
गाड़ी ध्वजा कुम्भ में।
ध्वस्ताऽनर्थकरी प्रपंच सरिता
सत्यार्थधारा बही।
सर्वेषां करुणा विवेक जलधेः
स्वामी दयानन्द की।।

महर्षि महिमा का प्रकाशन साहित्य मण्डल, दीवानहाल दिल्ली ने किया था।

ऋषिराज चालीसा–'हनुमान चालीसा' नामक लोकप्रिय ग्रन्थ की शैली के अनुकरण पर पं. लोकनाथ ने ऋषिराज चालीसा की रचना की है। दोहा, सोरठा तथा चौपाई छन्दों मे रचित यह काव्य सरल खड़ी बोली में लिखा गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

जय ऋषिराज ज्ञान के सागर। जय हो विश्वबंधु करुणाकर।।
गुर्जर प्रान्त नगर टंकारा। उसमें जन्म लिया जग तारा।।
वज्रांगी अति विक्रम धारी। सत्यव्रती निर्भय हितकारी।
कनक समान चमत्कृत देहा। गठित शरीर मंजुता गेहा।।
वेद शास्त्र पढ़ने के रसिया। सत्य रूप शिव में मनबसिया।

यह काव्य चौपाई छन्द की चालीस अर्धालियों में समाप्त हुआ है। हनुमान चालीसा की ही भाँति ऋषिराज चालीसा में भी 'संकटमोचन ऋषिराजाष्टक शीर्षक से आठ छन्द लिखे गए हैं। एक उदाहरण देखिए–

बाल समय शिव मन्दिर में शिव व्रत धार के आप पधारे।
शिव पिण्डी पर मूस चढ़ा तब देख उसे मन मांहि विचारे।
कल्पित वह शिव छोड़ दिया घर त्याग दिया बन बीच सिधारे।
सन्त बने पर सत्य न पाया पुनि मथुरा में आप गए हैं।
को नहि जानत है जग में ऋषि ने पाखण्ड मिटाय दिए हैं।।

ग्रन्थान्त में हनुमान चालीसा के अनुकरण पर ही एक संस्कृत पद्य स्वामी दयानन्द की प्रशस्ति में लिखा गया है–

सुखकर बलराशिं हेमकूटाभ कायम्
कुटिल जन वनाग्निं पण्डितानां महेशम्।
सकल शुभ निकायं योगिनामग्रगण्यम्।
भवपतिवरदासं कार्षणिं तं नतोऽस्मि।।

पद्य की अन्तिम पंक्ति में 'कार्षणि' का प्रयोग करसन जी के पुत्र (दयानन्द) के लिए हुआ है।

पं. लोकनाथ ने स्वामी जी के जीवन की दो अन्य प्रेरणादायी घटनाओं का भी काव्यात्मक वर्णन किया है। 'टंकारे का शिवालय' तथा 'दण्डी की कुटिया' शीर्षक कविताएँ स्वामी जी के बोधोदय तथा शास्त्राध्ययन हेतु मथुरा गमन के प्रसंगों का वर्णन करती हैं। ऋषिराज चालीसा के अनेक संस्करण हमारे देखने में आए हैं। सर्वप्रथम स्वयं कवि ने ही इसे प्रकाशित किया था। पश्चात् वेद प्रचारक मण्डल दिल्ली के अतिरिक्त वेदप्रकाश मासिक के अक्टूबर 1968 के अंक में इसे प्रकाशित किया गया था। इस काव्य की लोकप्रियता को अनुभव कर विदेशस्थ आर्य समाजों में भी इसका प्रचार हुआ। ब्रिटिश गायना के नगर ईस्ट कोस्ट हेमरारा के पण्डित ब्रह्मचारी ने इसे प्रकाशित किया तथा सुरीनाम के पं. आर. शिवरतन ने इसे छापकर प्रचारित किया। ऋषिराज चालीसा का नवीनतम संस्करण वैदिक पुस्तकालय अजमेर ने 1994 में प्रकाशित किया है।

पं. अखिलेश शर्मा कृत महर्षि दयानन्द और दयानन्द लहरी– (प्रकाशन काल 1949 ई.)

ब्रजभाषा कविता की पुरानी शैली को अपनाकर स्वामी दयानन्द की प्रशस्ति में उच्च कोटि के काव्य की रचना करने वाले पं. अखिलेश शर्मा का जन्म सीतापुर जिले के मछरेहटा नामक ग्राम में भाद्रपद शुक्ला 5 सं. 1965 वि. को एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम पं. मंगलदत्त त्रिवेदी था। 1980 वि. में उन्होंने मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदनन्तर 1986 वि. में शिक्षक कार्य का

प्रशिक्षण लिया और सीतापुर ज़िला बोर्ड के अन्तर्गत अध्यापन का कार्य करने लगे। इन्हें काव्य लिखने की प्रेरणा संस्कृत के महाकवि मेधाव्रताचार्य से मिली। स्वामी दयानन्द की प्रशंसा में शर्मा जी ने 2002 वि. में इस काव्य की रचना की। उनकी एतद्विषयक रचनाओं का प्रथम संग्रह 1949 वि. में 'महर्षि दयानन्द' शीर्षक से पं. जगतकुमार शास्त्री रचित टीका के साथ साहित्य मण्डल दिल्ली से प्रकाशित हुआ। 47 छन्दों से युक्त इस कृति के रचनाकाल का निर्देश करते हुए कवि ने लिखा है–

> संवत् जुग नभ शून्य दृग मधु सित पंचमि पाय।
> दयानन्द सुस्तवन किय कवि अखिलेस सिहाय।।

अर्थात् 2002 वि. की चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन कवि ने इस काव्य की रचना की।

ब्रजभाषा काव्य के प्रख्यात मर्मज्ञ समालोचक पं. कृष्णबिहारी मिश्र को कवि अपना काव्य गुरु मानता है।

> कृष्णबिहारी की कृपा, लह्यो काव्यसंसार।
> मो मन अलि तिन पद पदुम, करत मंजु गुंजार।।

तेरह वर्ष की अल्पायु में ही अखिलेश जी को काव्य रचना में सिद्धि प्राप्त हो गई थी–

> सुर नर बानी जावनी वैदक पढ़ी सहर्ष।
> कविता रचना की सकति लही तेरहीं वर्ष।।

अर्थात् तेरह वर्ष की अल्पायु में ही कवि ने संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू का ज्ञान प्राप्त किया और वैद्यक भी पढ़ी। इस वर्ष उसमें काव्य रचना शक्ति का उदय हुआ।

कवि विनम्रतापूर्वक यह स्वीकार करता है कि यद्यपि उसकी कविता अनेक दोषों से युक्त है, तथापि उसे इस बात का विश्वास है कि सज्जनों के द्वारा उसे सम्मान प्राप्त होगा। उसे इस बात का भी सन्तोष है कि यदि काव्य रसिक उसकी कृति की सराहना करें तब तो अच्छा ही है, अन्यथा वह यही मानेगा कि दयानन्द के गुणों का गान कर उसने अपनी कविता को पवित्र किया है–

> मम कृति दोष भरी जदपि तदपि सुजन सनमानि।
> करि हैं मोर पर अनुकृपा निज अनुचर मोहि जानि।।
> काव्य रसिक जो रीझि हैं तो मनभनत प्रमान।
> न तु या ही मिस मैं कियो दयानन्द गुण गान।।[1]

---

1. तुलनीय–रीतिकालीन कविता के बारे में किसी कवि की निम्न उक्ति–
आगे के सुकवि समुझि हैं तो कविताई
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।।

इस काव्य की रचना प्रधानतः कवित्त और छप्पय छन्दों में हुई है जो ब्रजभाषा के अपने छन्द हैं। अखिलेश जी की कविता में ओजगुण की प्रधानता है जो महाकवि भूषण की वीररस प्रधान कविता का स्मरण दिलाती है। टीकाकार ने पद्यों के शब्दार्थ तथा भावार्थ के साथ-साथ अलंकारों का भी निर्देश किया है। ब्रजभाषा काव्य के मर्मज्ञ मिश्र बन्धु, पं. रूपनारायण पाण्डेय, पं. भगीरथ मिश्र तथा पं. मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने अखिलेश के काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ग्रन्थारम्भ में कवि ने रूपक अलंकार का प्रयोग करते हुए दण्डी विरजानन्द की प्रशंसा में निम्न दोहा लिखा है–

गुरु विरजानन्द ज्ञान रवि, अनवऊँ सहित हुलास।
दम्भ अविद्या तिमिर दल, नासत जासु प्रकास।।

आगे का सोरठा तो और भी सटीक है जिसमें विषय सिन्धु को सोखने के लिए दण्डी विराजानन्द को महर्षि अगस्त्य के तुल्य कहा गया है–

बन्दौ विराजानन्द विषय सिन्धु कुम्भज सरिस।
जा रसना स्वच्छन्द नाची बानी नर्तकी।।

शैली की ओजस्विता के दर्शन अखिलेश की कविता में पदे पदे होते हैं। शब्द-चयन का चातुर्य, अनुप्रासप्रियता तथा प्रभविष्णु अभिव्यक्ति इस कविता की विशेषता कही जा सकती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

जयति मदन-मद-मथन मन्दमति तम विनासकर।
कदन-कुतर्क-कुचाल सदनस्री बदन भासकर।।
जयति वेद पथ पथिक अहिंसा मंत्र अलापी।
सत्य-हेतु दृढ़ दिव्य-ज्योति-घन कुसल कलापी।।
जय भक्तन हित सुख सुम सुरभि वितरन मंजुल मोच्छ फरु।
पुरुषार्थ पाथ पोषित जयति दयानन्द कलि कल्पतरु।।

इस काव्य संग्रह का द्वितीय परिवर्धित संस्करण 1961 ई. में हिन्दी साहित्य-भण्डार लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इसमें समस्त पद्य संख्या 52 है तथा ग्रन्थान्त में हर्षि स्तोत्र शीर्षक 4 वंशस्थ छन्द जोड़ दिए गए हैं।

श्री दुलेराय काराणी कृत दयानन्द बावनी– (2010 वि.)

गुजरात का कच्छ प्रदेश किसी युग में ब्रज भाषा कविता का केन्द्र रहा है। इसी कच्छ प्रदेश के मुन्द्रा नामक कस्बे के निवासी श्री दुलेराय काराणी ने स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व, कार्य एवं गुणों का उल्लेख करते हुए खड़ी बोली हिन्दी में दयानन्द-बावनी

की रचना की। कारणी जी का जन्म माघ कृष्णा 7 सं. 1952 वि. तदनुसार 26 फरवरी 1896 को मुन्द्रा (कच्छ) में हुआ। इनके पिता का नाम लाखाभाई तथा माता का नाम माला बेन था। इनकी शिक्षा दसवीं श्रेणी तक ही हुई किन्तु स्वाध्याय के बल पर इन्होंने अपनी मातृभाषा गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी, सिन्धी, अंग्रेजी तथा उर्दू का अभ्यास कर लिया। आपने कच्छ राज्य के शिक्षा विभाग में शिक्षक तथा उपशिक्षा निरीक्षक के पदों पर कार्य किया। कच्छ के एक आर्य पुरुष श्री वल्लभदास रतनसिंह मेहता की प्रेरणा से आपने स्वामी दयानन्द की प्रशस्ति में 'दयानन्द बावनी' की रचना की। यद्यपि इस काव्य का प्रणयन तो 1996 वि. में ही हो गया था किन्तु ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन 2010 वि. में हुआ। इसका द्वितीय संस्करण गुजराती लिपि में लेखक द्वारा 2033 वि. में अहमदाबाद से प्रकाशित किया गया। 26 फरवरी 1989 को इनका निधन हुआ।

दयानन्द बावनी में 52 कवित्तों का संग्रह है। यह काव्य ओज गुण से युक्त है तथा शक्तिशाली एवं प्रभविष्णु शैली में लिखा गया है। इसे पढ़कर अनायास ही महाकवि भूषण कृत 'शिवा बावनी' का स्मरण हो आता है। कविता की भाषा सरल खड़ी बोली है किन्तु उसमें यत्र-तत्र ब्रजभाषा के प्रयोग भी दृष्टिगोचर होते हैं। दयानन्द को आर्यत्व का उद्धारक घोषित करते हुए कवि ने भ्रान्तिमान् अलंकार का प्रयोग किया है, यह निम्न कवित्त से स्पष्ट हो जाता है–

पूर्व को प्रकाश कैधों पृथ्वी पे प्रकट भयो,
कैधों उत्तरायन को तेज दीप आयो है।
असत्य के सागर के सर्व गर्व भंजन को
कैधों रघुराज आज छिति पे छवायो है।
काराणी कहत नवयुग के जगायबे को
कैधों आर्यत्व को पुनरुद्धारक आयो है।।

निम्न पद्य में भूषण के प्रसिद्ध कवित्त 'इन्द्र जिमि जम्भ पर' की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है–

अनल पे नीर जैसो नीर पे समीर जैसो
जैसो घन तिमिर पे तरणी को तीर है।
जैसो कंसराज पर चक्रधर कृष्णचन्द्र,
जैसो क्षत्रियन पै परशुराम वीर है।
काराणी कहत जैसो पहाड़ पे वज्रघात,
जैसो राज रावन पै राम रणधीर है।

जैसे मृग झुण्ड पै महान मृगराज वैसो,
पाखण्ड के पन्थ पर दयानन्द वीर है।।

निश्चय ही काराणी की कविता दयानन्द के ओजस्वी, तेजस्वी तथा धीरवीर व्यक्तित्व का पूर्ण निदर्शन करती है।

राधेश्याम रामायण शैली में महर्षि चरित्र (1951 ई. द्वितीय संस्करण)

बरेली निवासी स्व. पं. राधेश्याम कथावाचक ने रामायण की कथा को एक नूतन किन्तु लोकप्रिय शैली में प्रस्तुत किया था। उनकी राधेश्याम रामायण का प्रचार एक समय इतना बढ़ा कि देश में सर्वत्र उसकी धूम मच गई। राधेश्याम रामायण की मुख्य विशेषताएँ थीं उसकी सरल भाषा तथा लोकप्रिय धुनों में इसके गायन की शैली। कथावाचक जी स्वयं तो इस रामायण कथा का यत्र-तत्र गायन करते ही थे, उनकी इस शैली का अनुकरण अन्य कथावाचकों ने भी करना आरम्भ किया जिससे राधेश्याम रामायण का सर्वत्र प्रचार हो गया। रामलीलाओं के अभिनय के समय तुलसीदास रचित रामचरितमानस के साथ-साथ राधेश्याम रामायण के गान की परिपाटी भी प्रचलित हुई। इस रामायण काव्य की एक विशिष्ट लेखन शैली है जिसमें दोहा तथा गानों (गीतों) के द्वारा मुख्य कथानक को पद्यबद्ध किया जाता है। राधेश्याम रामायण की भाषा सरल खड़ी बोली है जिसमें उर्दू, फारसी के लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग निस्संकोच किया गया है।

पं. राधेश्याम कथावाचक के अनुज पं. मदनमोहनलाल शर्मा ने इसी रामायण की शैली में 'महर्षि चरित्र' का प्रणयन कर स्वामी दयानन्द के जीवन की प्रमुख घटनाओं को पद्यबद्ध किया है। महर्षि चरित्र चार भागों में विभक्त है। 'ऋषि बोध' शीर्षक प्रथम भाग में स्वामी दयानन्द के जन्म से लेकर उनके संन्यास ग्रहण तथा गुजरात प्रान्त में भ्रमण करते हुए योग साधना एवं शास्त्रों के अध्ययन तक की घटनाओं का विवरण अंकित किया गया है। काव्य का आरम्भ स्वामी दयानन्द के आविर्भाव काल की राजनैतिक परिस्थितियों को लिपिबद्ध करने से होता है, यथा—

दया तथा आनन्द से पूरित जिनका नाम।
उन महर्षिवर को मेरा—बारम्बार प्रणाम।।
यवन राज्य के पतन का आया जब शुभ काल।
तब विप्लव से हुआ फिर—आर्य देश पामाल।।
ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कौशल के साथ।
कुछ प्रान्तों को कर लिया था वश अपने हाथ।।

शिवरात्रि के प्रसिद्ध घटना चक्र का वर्णन कवि निम्न दोहे में करता है–

पूर्ण हुई माला तभी देखा नज़र उठाय।
चूहा प्रतिमा पर चढ़ा फल खात्‌ हर्षाय।।

शिव पिण्डी पर चूहे को क्रीड़ा करते हुए देखकर मूलशंकर के मानस मन्थन को कवि ने निम्न प्रकार से प्रकट किया–

बड़ी मूर्खता थी मेरी, था भारी अज्ञान।
जो अब तक पाषाण ही समझे थे भगवान।।
समझ लिया था मोक्ष का पाना केवल खेल।
इसीलिए पाषाण और जल से रखा मेल।।

महर्षि चरित्र का द्वितीय खण्ड 'गुरुकुल' शीर्षक है। इसमें कवि ने स्वामी दयानन्द के उत्तराखण्ड भ्रमण से लेकर मथुरा में स्वामी विरजानन्द की पाठशाला में अध्ययन की समाप्ति एवं गुरुदक्षिणा तक की घटनाओं का उल्लेख किया है। कवि ने उत्तराखण्ड के तीर्थो में पाए जाने वाले पाखण्डों, धर्म के नाम पर किए जाने वाले अनर्थो एवं अनाचारों का यथार्थवादी चित्र उपस्थित किया है। उदाहरणार्थ–

प्रायः वे लोग सुरा सेवी वेश्यागामी ज्वारी पाए।
हत्यारे ढोंगी धूर्त छली दुर्व्यसनी व्यभिचारी पाए।
श्रद्धालु यात्रियों के दल जब यात्रा को आने लगे वहाँ।
यह छली लोग छल कौशल कर बस जाल बिछाने लगे वहाँ।
नित्य नित्य यह कह रहे थे यों धर्मोद्धार।
कहलाते थे मोक्ष के फिर भी ठेकेदार।।

स्वामी विरजानन्द ने साम्प्रदायिक विद्वेषों को नष्ट कर देश में सर्वत्र वैदिक धर्म के प्रचार का आदेश अपने तेजस्वी शिष्य दयानन्द को दिया और इसी महत्‌ अनुष्ठान पूर्ति की उनसे प्रतिज्ञा कराने के पश्चात्‌ उन्होंने अपनी गुरु दक्षिणा माँगी। इसी भावना-प्रधान प्रसंग को कवि ने निम्न प्रकार निबद्ध किया है–

इन सब दुःखों का करो बेटा तुम्ही इलाज।
ये ही दो गुरुदक्षिणा अपने गुरु को आज।।

इस पर–

जो आज्ञा कह कर उठा संन्यासी तत्काल।
छूकर गुरु के पगों को बोला ब्राह्मण लाल।।

सौगन्द इन्हीं चरणों की है, अपना कर्त्तव्य चुका दूँगा।
जो काम किसी ने किया नहीं, वह मैं करके दिखला दूँगा।

स्वामी दयानन्द द्वारा प्रदत्त इस आश्वासन को सुन कर दण्डी विरजानन्द ने जो भविष्यवाणी की, उसे कवि ने अत्यन्त भावस्फूर्त भाषा में व्यक्त किया है–

इतिहास लिखेंगे लेखक गण जिस समय क्रान्तिकारी युग का।
आचार्य तुही होगा बेटा, उस उथल पुथल धारी युग का।।
यह सच है कुछ दिन तक भारत, तुझको पहचान न पाएगा।
लेकिन यह ज्यों ज्यों जागेगा, त्यों त्यों तेरे गुण गाएगा।।

महर्षि चरित्र के तृतीय भाग में कवि ने स्वामी दयानन्द के गुरुकुल त्याग से लेकर बम्बई आगमन तक के इतिवृत्त का चित्रण किया है। कवि ने इस खण्ड को 'शास्त्रार्थ' का शीर्षक प्रदान किया है। शास्त्रार्थ शीर्षक इस चरितांश में कवि ने अजमेर में स्वामी दयानन्द के कर्नल ब्रुक्स से गोरक्षा विषयक वार्तालाप को विशिष्ट विचारोत्तेजक शैली में वर्णित किया है। अमेरिका तथा यूरोपीय देशों में जहाँ कृषि में यन्त्रों का अधिक प्रयोग होने लगा है, वहाँ लोगों में आलस्य, बेकारी, विलासिता आदि दुर्गुण बढ़ रहे हैं। गोरक्षा की उपयोगिता को दर्शाते हुए कवि ने पश्चिम की यान्त्रिक सभ्यता की निम्न शब्दों मे आलोचना की है–

यत्र जगत् है विश्व में नाशकारिणी शक्ति।
आर्यदेश को उचित है ऋषि नियमों में भक्ति।।
इसीलिए अतिठीक है गोरक्षा का धर्म।
गो सेवा गो भक्ति' फिर हों घर घर के कर्म।।

'आर्यसमाज' शीर्षक ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड में आर्यसमाज स्थापना से लेकर अजमेर में स्वामी दयानन्द के परलोक गमन तक का इतिहास काव्यबद्ध किया है। स्वामी जी के प्राण हरण के लिए किए गए षड्यन्त्र को कवि ने अत्यन्त विदग्धता के साथ चित्रित किया है। महाराजा जसवन्तसिंह का स्वामी जी की प्रेरणा से नन्हीं वेश्या के प्रति बेरुखी धारण करना ही मानो स्वामी दयानन्द की मृत्यु की भूमिका बन गई। कवि के शब्दों में–

एवमस्तु कह ऋषि गया हृदय हुआ साह्लाद।
फैल गया सब प्रजा में यह सुन्दर संवाद।।
त्यागी भूपति ने इधर अपनी नन्ही जान।
फड़की पिंजरे में उधर ऋषि की नन्ही जान।।
हिला उसी दिन सूक्ष्म में काल देव का तन्त्र।

भीषण तुरन्त स्थूल में रचा गया षड्यन्त्र।।
उसी नरक के कुण्ड से विष चिनगारी जाग।
हरे भरे उद्यान में जिससे फैली आग।।

उपर्युक्त पंक्तियों में 'नन्ही जान' का द्वयर्थक प्रयोग कर कवि ने यमक की सुन्दर यंजना की है। वस्तुतः राधेश्याम रामायण शैली में महर्षि चरित्र का प्रणयन एवं प्रकाशन इस तथ्य को उजागर करता है कि भारत की साधारण पठित जनता में भी स्वामी दयानन्द के जीवन विषयक तथ्यों को जानने तथा पद्यात्मक शैली में उन्हें पढ़कर आनन्द विभोर होने की कितनी तीव्र ललक थी। **सुशीला पुरी लिखित दयानन्दचरित गान** (1946 ई. में अम्बाला छावनी से प्रकाशित) भी राधेश्याम शैली में लिखा गया एक काव्य है। अनुपलब्ध होने से इस पर विचार करना सम्भव नहीं है।

रमेशचन्द्र वर्मा कृति ऋषिगाथा–(1956 ई.)

मैनपुरी के प्रसिद्ध आर्य नेता तथा विद्वान् लेखक श्री श्यामसुन्दरलाल वकील के पुत्र श्री रमेशचन्द्र वर्मा ने स्वामी दयानन्द के कतिपय जीवन प्रसंगों को काव्यबद्ध किया है। 'ऋषिगाथा' शीर्षक से प्रकाशित यह काव्यकृति कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा की द्योतक है। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष स्व. डा. रामकुमार वर्मा ने वर्मा जी की काव्य प्रतिभा की श्लाघा करते हुए लिखा है–"कवि के भाव लालित्यपूर्ण, संयत एवं भाषा निर्दोष है।"

महान् क्षमाशील दयानन्द ने विषदाता को क्षमा तो किया ही, उसे स्वयं ही धन की थैली देकर कहीं दूर चले जाने का आदेश भी दिया, ताकि वह दण्ड भागी न बन सके। इस प्रसंग का चित्रण करने वाली कवि की निम्न पंक्तियां अत्यन्त मार्मिक हैं–

हो गम्भीर क्षमासागर ने कहा–भृत्य तुम पूर्ण अबोध।
केवल दुख मुझको इतना है कर न सका जगती का शोध।
मैं जीवों को मुक्त कराने आया हूँ फिर क्या अवरोध।
यह लो धन की थैली प्रियवर, मैं देता तुम को अक्रोध।।
पौ फटने से पहले भागा जगन्नाथ लेकर तुम जान।
स्मृति आज जगाते दीपक दयानन्द का दिन निर्वाण।।

इस कृति का प्रथम संस्करण 1956 ई. में छपा था। गंगाप्रसाद उपाध्याय ने ग्रन्थ की परिचयात्मक भूमिका लिखी थी। इसका द्वितीय संस्करण 1975 ई. में छपा।

ऋषि अर्चन–ब्रह्मानन्द बन्धु कृत (1956 ई.)

श्री ब्रह्मानन्द बन्धु कृत 'ऋषि अर्चन' काव्य का प्रकाशन 2013 वि. में सार्वदेशिक प्रकाशन दिल्ली द्वारा हुआ। यह एक लघु काव्य है जिसमें स्वामी दयानन्द के जीवन और व्यक्तित्व का अत्यन्त संक्षिप्त काव्यबद्ध वर्णन उपलब्ध होता है। काव्य की भाषा खड़ी बोली है। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

> अरुणोदय हो उठा पूर्व में
> तम में पंछी कल कल बोले।
> शीतल मलयानिल लहराई
> ऊषा ने स्वर्णिम पर खोले।
> कुसुमों की कलियाँ मुस्काई।
> तिमिर जाल सब नष्ट हो गया।
> बेचारे उलूक के उर में
> उदित अचानक कष्ट हो गया।
> कौन यही ऋषि दयानन्द है?
> आडम्बर के शत्रु-भक्षक,
> क्रान्तिदूत मानो प्रलयंकर
> धर्मध्वजा ये रक्षक हैं।

ऋषि अर्चन के कवि यद्यपि आर्यसमाजी नहीं थे, किन्तु उनकी स्वामी दयानन्द के प्रति अनन्य श्रद्धा थी। अपने प्राक्कथन में उन्होंने स्वीकार किया है कि स्वामी जी हिन्दू जाति के रक्षक थे तथा उन्होंने स्वदेश में जागृति फैलाई।

अनिरुद्ध शर्मा शेरकोटी रचित महर्षि दयानन्द काव्य– रचनाकाल 1964 ई.

बिजनौर जिले के शेरकोट ग्राम के निवासी श्री अनिरुद्ध शर्मा ने स्वामी वेदमुनि परिव्राजक की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द के जीवन को लेकर इस काव्यकृति की रचना की है। 363 छन्दों में समाप्त हुए इस काव्य का प्रकाशन 2020 वि. (1964 ई.) में वैदिक संस्थान बालावाली (जिला बिजनौर) द्वारा किया गया। आलोच्य काव्य सरल खड़ी बोली में लिखा गया है। कविता इतिवृत्तात्मक शैली प्रधान है। कवि का प्रयोजन तो स्वामी दयानन्द के जीवन की प्रमुख घटनाओं को पद्यबद्ध करना ही था और अपने इस उद्देश्य में उसे सफलता भी मिली है। काशी शास्त्रार्थ की पृष्ठभूमि के रूप में कवि ने शंकर के त्रिशूल पर स्थित मानी गई उस नगरी का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है जिसे देखकर कम से कम भारतवासी गर्व का अनुभव

तो नहीं करेंगे–

अब कहते जिसे बनारस,
हिन्दू कहते हैं काशी।
अगणित पण्डित संस्कृत के,
जपते मन में अविनाशी।।
इक इक पत्थर शंकर है, इक इक पत्थर परमेश्वर।
औ पाप अनेक हैं होते, लगता है सब कुछ ईश्वर।
अतिरिक्त ठगी चोरी के
व्यभिचार वहाँ होता है।
है सब कुछ ही वहाँ होता,
नर उम्र व्यर्थ खोता है।।

आलोच्य कृति परिष्कृत रुचि सहृदय पाठकों के लिए चाहे अधिक भावप्रबोधन हो, सामान्य जनों के लिए निश्चय ही उपयोगी है।

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती रचित दयानन्द दिग्विजय काव्य– (रचनाकाल 1964 ई.)

'दयानन्द दिग्विजय' शीर्षक यह काव्य हरिगीतिका छन्द में लिखा गया है। इसके रचयिता स्वामी ब्रह्मानन्द पूर्वाश्रम में बद्रीप्रसाद वर्मा के नाम से जाने जाते थे। 1925 ई. में वे आर्यसमाज वाराणसी के सदस्य बने। 1928 ई. में कांग्रेस में सम्मिलित हुए और स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया। 1942 ई. भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें कारावास यातना भोगनी पड़ी। संन्यास ग्रहण करने के अनन्तर वे स्वामी दयानन्द के निवास स्थान टंकारा चले गए और वहाँ होमियोपैथी विधि से निःशुल्क चिकित्सा द्वारा जनसेवा में लग गए।

'दयानन्द दिग्विजय' हरिगीतिका छन्द और इतिवृत्तात्मक शैली में लिखी गई साधारण स्तर की पद्यात्मक कृति है। कवि ने स्वामी दयानन्द के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं को काव्य रूप देने के साथ-साथ स्वामी दयानन्द द्वारा विभिन्न मत-सम्प्रदायों के खण्डन तथा आर्यसमाज के नियमों को पद्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। आलोच्य काव्य का निम्न उदाहरण उसके स्तर की स्वतः ही घोषणा कर देता है–

जिस समय ऋषि ने किया प्रस्थान आगरे के लिए।
सरस्वती भी चल पड़ी सज वेद हाथों में लिए।
प्रेम का उपहार ले जनता जनार्दन छा गए।

गल्लामल की वाटिका में ऋषिवर दयानन्द आ गए।।
उपदेश वैदिक धर्म का वेदान्त की करते कथा।
ग्रन्थ सन्ध्या के बना दूर कर दी मन व्यथा।।

इस साधारण पद्य रचना में काव्य के गुण तो नगण्य ही हैं।

श्री जगदीश विशारद कृत दयानन्द दर्शन–(1965 ई.)

ऋषि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन वृत्त को संक्षिप्त काव्य का रूप देने वाले जगदीश विशारद (वास्तविक नाम जगन्नाथ प्रसाद) राजस्थान के कोटा जनपदान्तर्गत ग्राम आटोन तहसील अटरू के निवासी हैं। इनका जन्म पौष शुक्ला 2 संवत् 1976 वि. (14 दिसम्बर 1919) को एक साधारण वैश्य परिवार में हुआ। इनकी शिक्षा मैट्रिक पर्यन्त हुई किन्तु हिन्दी में विशेष रुचि होने के कारण आपने साहित्य विशारद की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। 1938 से 1947 तक ये अध्यापक रहे। पुनः स्वेच्छा से त्यागपत्र देकर सेवा से अवकाश ले लिया। आपका काव्य रचनाकाल 1942 से आरम्भ होता है। उनके द्वारा लिखित कुछ काव्य-कृतियों के नाम इस प्रकार हैं–जागरण, युग की पुकार, स्वातन्त्र्य संग्राम, वीर वैरागी बन्दा, आत्म मार्ग (केनोपनिषद् का काव्यानुवाद), इन्द्र का आत्मज्ञान, आरुणि आख्यान, विराट् दर्शन (गीता पर आधारित), चुनौती चीन की, दयानन्द दर्शन, महारथी भीष्म, नेहरू दर्शन, पद्यगीता आदि। इनमें से कुछ रचनाएँ अप्रकाशित हैं।

'दयानन्द दर्शन' महर्षि दयानन्द की काव्यमयी गाथा है जिसे अरविन्द प्रकाशन गृह अटरू (कोटा) ने जून 1965 में प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ को लिखने की प्रेरणा कवि को बांरा निवासी श्री स्व. चन्द्रबिहारी आर्य ने दी थी। दयानन्द दर्शन का कथ्य निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित हुआ है–बाल्यकाल, गृहत्याग, गुरु विरजानन्द से भेंट, कुम्भ (हरिद्वार) राव कर्णसिंह से भेंट, काशी शास्त्रार्थ, ऋषि युग और राजस्थान प्रवास।

काव्य का आरम्भ दयानन्दकालीन भारत के वर्णन से होता है। इसका प्रारम्भिक छन्द इस प्रकार है–

संक्रान्ति काल था भारत का।
सब ओर मुसीबत छाई थी।
विप्लव के कारण जगह जगह,
जनता सारी घबराई थी।।

सरल खड़ी बोली में लिखा गया यह काव्य मुख्यतः इतिवृत्तात्मक शैली को लेकर चलता है। कवि का प्रयोजन ऋषि चरणों में अपनी श्रद्धा के प्रसून अर्पित

करना है। अतः वह नहीं चाहता कि साहित्य की कसौटी पर कस कर उसके काव्य की परख की जाए। तथापि लोकहित को यदि साहित्य का प्रयोजन मानें तो कवि की इस काव्य कृति को हम सफल कहेंगे क्योंकि एक युग पुरुष महात्मा का जीवनवृत्त लिखकर उसने अपनी लेखनी को धन्य किया है। कवि का भाषा पर सहज अधिकार है। अतः वह सरल से सरल खड़ी बोली का प्रयोग करते हुए उसे यत्र-तत्र संस्कृत के तत्सम शब्दों से अलंकृत करने की भी क्षमता रखता है। उदाहरणार्थ—राजस्थान प्रवास प्रकरण का प्रथम पद्य ही देखें जिसमें काव्य नायक के गुणों का कैसा स्वच्छ उल्लेख किया गया है—

धीर वीर गम्भीर ज्ञान गुण गरिमा मण्डित।
लेखन कला प्रवीण वेद के अद्भुत पण्डित।
शिक्षा शास्त्री महायती योगी संन्यासी।
वीतराग निर्लेप तपस्वी परम उदासी।।

घटना चित्रण की कवि की क्षमता निम्न कवित्त में देखी जा सकती है—

बैठे थे प्रशान्त चित्त गंगा के सुरम्य तीर,
प्राकृतिक दृश्यों में मन को लुभाया था।
कहे कवि जगदीश गंगा में प्रविष्ट हो
अबला ने मृतक को जल में बहाया था।
गरीबी के कारण ही खींचा था कफन हाय,
धोकर उसने वह वायु में सुखाया था।
हाय हाय कहती वो चलती वहाँ से बनी,
देख दृश्य ऐसा ऋषि उर भर आया था।।

दयानन्ददर्शन की महत्ता उसकी सरलताशैली और वर्णन कौशल में निहित है।

हरजीतलाल हरिकृत महर्षि दयानन्द शतक

अजमेर निवासी श्री हरजीतलाल आर्य ने महर्षि दयानन्द शतक काव्य की रचना की है। कवि 'हरि' पश्चिमी रेलवे में कर्मचारी रहे तथा 1952 ई. में राजस्थान विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए। भूतपूर्व अजमेर राज्य की विधान सभा के सदस्य भी वे रहे थे। आलोच्य काव्य में स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व एवं कार्यों को कवि ने अत्यन्त सफलता के साथ चित्रित किया है। स्वामी दयानन्द द्वारा विभिन्न धार्मिक पाखण्डों के खण्डन हेतु की गई आलोचना को कवि ने अपने काव्य में अत्यन्त सशक्त भाषा में प्रस्तुत किया है। उसने अधिकांश में कवित्व तथा सवैया छन्दों का ही प्रयोग किया है। दयानन्द शतक की कविता का नमूना इस प्रकार है—

पार्थिव जड़ प्रतिमा में है प्राण प्रतिष्ठा झूठ
ईश्वर है अबद्ध न वह बद्ध पंच तत्व है।
कल्पित तीर्थ व्रत से होता न जीव का उद्धार।
यथार्थ जप व्रत से ही होता जीव मुक्त है।
मिथ्या तंत्र मंत्र यंत्र मारण उच्चारण हैं।
जिन्न भूत प्रेतवाद वाममार्ग कथित है।
अश्व अजा मेध यज्ञ अरु नर गऊ मेध यज्ञ
महिधर को अर्थ कियो नितान्त अनृत है।।

आलोच्य कविता की भाषा खड़ी बोली होने पर भी उसमें यत्र-तत्र ब्रज भाषा के शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

विश्रान्त नवोदित कृत आनन्द स्रोत

नई पीढ़ी के कवि विश्रान्त नवोदित ने स्वामी दयानन्द के कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए 'आनन्द स्रोत' शीर्षक 36 छन्दों का एक लघु काव्य लिखा है। प्रत्येक छन्द के अन्त में 'आर्यो की संस्कृति का दीप दयानन्द था' यह पंक्ति प्रयुक्त हुई है। कविता सरस तथा भावपूर्ण है। इसका प्रकाशन 1971 ई. में भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद् अलीगढ़ ने किया था। नवोदित ने स्वामी दयानन्द के समय की देशदशा का वर्णन निम्न पद्य में रोचक शैली में किया है–

भूल कर निज धर्म को जब जा पड़े थे कूप में।
मान छाया का नहीं था, तप रहे थे धूप में।।
मारते थे ठोकरें जब मान में इन्सान को।
पत्थरों में खोजते थे सर्वव्यापी ज्ञान को।
ज्योति नूतन सी जली जो कौन सा वह छन्द था।
आर्यो की संस्कृति का दीप दयानन्द था।।

सरल खड़ी बोली में लिखा गया यह काव्य कवि का आरम्भिक प्रयास होने पर भी एक सशक्त कृति है।

दयानन्द जीवन गाथा–पं. सत्यपाल पथिक कृत

अमृतसर निवासी पं. सत्यपाल पथिक ने सरल भाषा तथा सुगम गायन शैली में 'दयानन्द जीवन गाथा' की रचना की है। चार परिच्छेदों तथा 164 छन्दों में समाप्त इस काव्य में स्वामी दयानन्द के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं को पद्यबद्ध किया गया है। पथिक का यह काव्य उन गायकों तथा भजनोपदेशकों के लिए विशेष

उपयोगी है जो धारावाही कथा के माध्यम से दयानन्द के इतिवृत्त को श्रोतृमण्डली के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। कविता की भाषा सरल, रोचक तथा जनसाधारण के लिए बोधगम्य है। कवि का लक्ष्य भी यही था कि वह गेय पद्यों के माध्यम से स्वामी जी के प्रेरणादायी जीवन को जनसाधारण के लिए उपलब्ध कराए। स्वामी दयानन्द के जन्म के समय की धार्मिक स्थिति तथा उस युग में फैले हुए पाखण्डों का वर्णन पथिक जी ने वस्तुनिष्ठ शैली में किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

चहुं ओर चल रही थी ऑधी वहमों और पाखण्डों की।
लूट मची यजमानों की और तोदें भरती पण्डों की।

× × ×

फँसा जा रहा था जब सारा भारतवर्ष ज़हालत में।
तभी अचानक चमक उठी एक किरण अँधेरी हालत में।
उस पल ही सारी दुनिया के अन्धकार का नाश हुआ।
जिस पल ऋषि दयानन्द नामक सूरज का यहाँ प्रकाश हुआ।।

सरल खड़ी बोली में लिखी गई यह कविता उर्दू के प्रचलित सरल शब्दों का बहिष्कार नहीं करती। कवि ने दयानन्द जीवन गाथा का प्रणयन 1974-75 में उस समय किया जब वह सिंगापुर में धर्म प्रचारार्थ गया हुआ था। ग्रन्थ का प्रकाशन 1978 ई. में हुआ।

पुरुषोत्तमदास कृत दयानन्द भाग-1 (1984 ई.)

विगत पृष्ठों में हम राधेश्याम रामायण की शैली में लिखे गए स्वामी दयानन्द के जीवन विषयक कुछ काव्यों का उल्लेख कर चुके हैं। मथुरा निवासी श्री पुरुषोत्तमदास ने दयानन्दायन शीर्षक काव्य इसी शैली में लिखा है जिसका प्रथम खण्ड तपोभूमि के विशेषांक के रूप में जनवरी 1984 ई. में प्रकाशित हुआ। इस खण्ड में स्वामी दयानन्द के जन्म से लेकर मथुरा में अध्ययन समाप्त करने तक की घटनाओं को पद्यबद्ध किया गया है। कविता की भाषा सरल खड़ी बोली है जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। ईश विनय के अनन्तर कवि दयानन्द के आविर्भाव काल की दशा को निम्न दोहे में व्यक्त करता है–

भारत भाग्याकाश में छाई घटा अपार।
सत्य सूर्य था छिप गया छाया अंधाचार।।

प्रसाद गुण युक्त यह कविता दयानन्द के जीवन को काव्य प्रेमी पाठकों के लिए पद्यबद्ध करने का सफल प्रयास है। सूर्य के प्रकाशित होने पर कमल पुष्प के विकसित होने के तुल्य गुरुवर विरजानन्द के दर्शनों से दयानन्द के हृदय में हर्षोल्लास

जाग्रत हुआ–

कमल पुष्प खिल जात ज्यों रवि का होत प्रकाश।
गुरु दर्शन कर स्वामि हिय जागा अमित हुलास।।

इस ग्रन्थ का द्वितीय भाग अप्रकाशित है।

देवनारायण भारद्वाज लिखित ऋषि दयानन्द सम्बन्धी स्फुट काव्य

श्री देवनारायण भारद्वाज (जन्म 1994 वि.) ने ऋषि दयानन्द के जीवन विषयक दो लघु काव्यों की रचना की है। इनमें से प्रथम 'स्वामी स्वराज्य संग्रामी' वेदप्रकाश (मासिक) के अक्टूबर 1984 के अंक में प्रकाशित हुआ। 260 पद्यों की इस संक्षिप्त काव्य कृति में कवि ने स्वामी दयानन्द के जीवन प्रसंग को सरल इतिवृत्तात्मक शैली में चित्रित किया है। सरल भाषा में स्वामी जी के जीवन की घटनाओं को पद्यबद्ध करने का यह प्रयास सराहनीय है। स्वामी दयानन्द से प्रेरणा लेकर जिन महापुरुषों ने भारत को स्वतन्त्र करने के लिए अपने वीरतापूर्ण बलिदान किए, उनका विवरण भी इसमें यथास्थान दिया गया है। काव्य-तत्त्वों की दृष्टि से नगण्य होने पर भी स्वामी दयानन्द और उनके अनुयायियों की स्वदेश भक्ति का दिग्दर्शक यह काव्य पाठक समाज में लोकप्रियता प्राप्त का चुका है। श्री भारद्वाज की एक अन्य काव्य कृति 'प्रवर्त्तक' है। जो नवम्बर 1986 में वैदिक सेवाश्रम ट्रस्ट सासनी (अलीगढ़) से छपी है। इसमें शिवक्रान्ति, शिवनिशा, गुरुभक्ति, पाखण्ड खण्डिनी, काशीशास्त्रार्थ, कर्णवास प्रसंग, दीप दिवाकर जैसे शीर्षकों के अन्तर्गत दयानन्द जीवन को पद्यबद्ध किया गया है।

स्वामी स्वराज्य संग्रामी में मुख्य रूप से ऋषि दयानन्द के राष्ट्रवादी स्वरूप को ही प्रस्तुत किया गया है। उसके विचारनुसार भारत की स्वाधीनता के सभी सैनिकों ने देशभक्ति का पाठ ऋषि दयानन्द से ही पढ़ा था। जैसा कि वह लिखता है–

ऋषि दयानन्द सरस्वती, भू परम पुरुष प्रतिमान किया।
कहते थे नेताजी सुभाष ऋषि नवभारत निर्माण किया।
नेताजी की त्याग तपस्या दिनकर सम उद्घोषित है।
जो पथ पकडा नेताजी ने वह दयानन्द से पोषित है।।

महर्षि महिमा–(प्रकाशन काल 1985 ई.)

श्री कृष्णलाल कुसुमाकर रचित यह काव्य कवि की काव्य क्षमता का सुन्दर प्रतीक है। स्वतन्त्र कविताओं के रूप में कवि ने दयानन्द के प्रमुख जीवन प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। भिन्न तुकान्त शैली में लिखा गया यह कविता संग्रह स्वामी जी के जीवन

के निम्न प्रसगों को उल्लिखित करता है—जन्म, गृह त्याग, बोधरात्रि, गुरुदक्षिणा, दीपनिर्वाण। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कविताएँ भी इसमें संगृहीत हैं जिनमें स्वामी दयानन्द के महनीय चरित्र के अनेक उज्ज्वल पक्ष उद्‌घाटित हुए हैं।

'अरुणोदय' शीर्षक कविता में कवि ने दयानन्द के आविर्भाव काल की परिस्थितियों को जीवन्त कर दिया है। यथा—

> देश हतप्रभ था।
> विभा का नहीं लेश जब—
> ब्रिटिश विशाल साम्राज्य भासमान था।
> प्रबल प्रचण्ड मार्तण्ड आसमान में
> सारा आर्यावर्त पराधीनता पिशाचिनी के
> पंजों में पड़ा हुआ कराह आह भरता।

अतुकान्त शैली में कवि को काव्य रचना करने में जितनी सफलता मिली है उतनी ही उसे प्रचलित छन्दों में काव्य लिखने में भी मिली है। उसकी निम्न घनाक्षरी इस सत्य से परिचित कराती है—

> आई शिवरात्रि शिव सत्य का स्वरूप लिए
> प्रकटा पतंग बाल रूप में महान एक।
> तिमिर तमीचर तिरोहित हुआ तुरन्त
> सुप्त आर्य जाति में विलुप्त विकसा विवेक।
> खोल कर देखो ज्ञान भानु का तृतीय नेत्र
> काम को जलाओ मद मोह की मिटा दो टेक।
> धारण किए है वही विश्व का विशाल बोझ
> शंकर त्रिशूलहर, रुद्र नाम हैं अनेक।।

पं. मुन्नालाल मिश्र रचित दयानन्द चरित—(प्रकाशन काल 1988)

हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) के निवासी पं. मुन्नालाल मिश्र ने स्वामी दयानन्द के जीवन के कतिपय रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायी प्रसंगों को लेकर दयानन्द चरित काव्य की रचना की है। मिश्र जी ने इस काव्य में राधेश्याम रामायण में प्रयुक्त शैली को अपनाया है जो गायन प्रधान होने के कारण सामान्य पठित वर्ग में सदा से लोकप्रिय रही है। इस काव्य के आरम्भ के कुछ पद्यों को देखने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि दयानन्दचरित को लेखन करने वाले आर्य कवियों ने लोक प्रचलित काव्य शैलियों को अपनाकर अपने आचार्य के आदर्श चरित को जनमानस तक पहुँचाने का सफल प्रयत्न किया था। आलोच्य काव्य के आरम्भिक अंश को देखें—

मंगलमय भगवान को करके प्रथम प्रणाम।
दयानन्द ऋषि का लिखूँ जीवन चरित ललाम।
प्रान्त काठियावाड़ है और मौरवी राज।
टंकारा लघु ग्राम में रहता सकल समाज।।

शिवरात्रि प्रसंग का एक दृश्य–

पूजन के उपरान्त फिर सोए पाँव पसार।
व्यथित मूलशंकर हुए ऐसा दृश्य निहार।
अन्तरात्मा ने कहा उसी समय ललकार।
अरे मूलशंकर सभी कार्य है यह निस्सार।।

तेलुगु भाषी आन्ध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद में दयानन्द चरित को लेकर लिखा जाने वाला हिन्दी काव्य अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

चन्द्रपाल सिंह यादव मयंक कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती–(प्रकाशन काल 1991)

कानपुर के निवासी पेशे से वकील, साथ ही हिन्दी के सफल कवि चन्द्रपाल सिंह यादव मयंक ने प्रस्तुत काव्य की रचना, बालोपयोगी सुबोध शैली में की है। वे इस रचना के द्वारा बालकों और किशोरों को दयानन्द के महनीय जीवन से परिचित कराना चाहते हैं। जन्म व शिक्षा प्राप्ति, ये सच्चे शिव नहीं, गृहत्याग, गुरु की खोज, गुरुवर विरजानन्द सरस्वती, नूतनज्ञान ज्योति, महर्षि की समाज सेवा, रियासतों में समाज सेवा, महर्षि का निर्वाण, ऋषिवर का सत्यार्थप्रकाश, धन्य धन्य ऋषि दयानन्द आदि 11 शीर्षकों में विभक्त मयंक का यह काव्य सरल खड़ी बोली में लिखा गया है। ग्रन्थ के समर्पण रूप में लिखी गई निम्न पंक्तियों से इस काव्य की गुणवत्ता का अनुमान किया जाना कठिन नहीं है–

था अज्ञान अन्धेरा छाया
पाखण्डों ने जाल बिछाया
गौरव गरिमा के उन्नायक
तूने सोता देश जगाया।
सीधी सच्ची बात बताई,
पाखण्डों पर किया प्रहार।
ऋषिवर दयानन्द तेरे हैं
हम सब पर असीम उपकार।

बालकों के चरित्र एव व्यक्तित्व के निर्माण में महापुरुषों के चरितप्रधान काव्यों के महत्त्व को ध्यान में रखकर ही कवि ने इस काव्य का प्रणयन किया है।

कस्तूरचन्द घनसार लिखित महर्षि दयानन्द का संक्षिप्त जीवनचरित–(प्रकाशन काल 1992)

राजस्थान के जोधपुर जनपद के अन्तर्गत पीपाड़ सिटी कस्बे के निवासी कवि कस्तूरचन्द घनसार का जन्म 1909 ई. में हुआ। काव्य प्रतिभा सम्पन्न कवि घनसार के मानस मोती, गायत्री शतक तथा ओमशतक शीर्षक तीन काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। स्वामी दयानन्द के जीवन को काव्यबद्ध करने का उनका प्रयास इसी कोटि के काव्यों की एक कड़ी है। 423 छन्दों में समाप्त यह काव्य खड़ी बोली में लिखी गई एक ऐसी लम्बी रचना है जिसमें ऋषि जीवन की प्रमुख घटनाओं को अत्यन्त सरस तथा सजीव शैली में पद्यबद्ध किया गया है। ब्रजभाषा में सामान्यतया प्रयुक्त होने वाले दोहा, चौपाई तथा कवित्त जैसे छन्दों का प्रयोग घनसार के इस काव्य में हुआ है।

आलोच्य काव्य का अधिकांश इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा गया है किन्तु यत्र-तत्र कवि ने ऐसे प्रसंगों का भी सृजन किया है जहाँ उसे अपनी कल्पना शक्ति को प्रदर्शित करने का अच्छा अवसर मिला है। कवि का कहना है कि मूलशंकर के जन्म के कारण हर्ष और उल्लास का जो वातावरण बना, उससे प्रकृति भी अछूती नहीं रही। उस समय–

अम्बर में उडुगण चमकाए, सरवर में पंकज विकसाये।
आभः में सुन्दर घन छाये, वन उपवन भी सरसाये।
सागर का वेग अपार हुआ, नदियों का नीर सुधार हुआ।
गिरिवर में रत्नागार हुआ, बन में मंगलाचार हुआ।
खल असुरों के मन भरम हुआ, ऋषि का जिस दिन जन्म हुआ।।

इस काव्य में आए कवित्त भी प्रभावशाली तथा भावपूर्ण हैं। इनके द्वारा कवि को ऋषि के महान् व्यक्तित्व तथा उदात्त चरित्र को उकेरने में अद्भुत सफलता मिली है। निम्न उदाहरण देखें–

सूर्य के समान ब्रह्मचारी वर तेज ताप,
ओज बल साथ वेद ज्ञान का भण्डार था।
वितण्ड विवादी आते ठहर न पाते आगे
समझाते भाँति भाँति परम विचार था।।
आर्ष ग्रन्थों का सत्य प्रमाण बताते स्वामी,
पोप ग्रन्थवादी बैठ जाते मान हार था।

सत्य का प्रकाश वेद ज्ञान की अपार शक्ति,
दयानन्द दिव्य ज्योति मेरा तमकार था।।

1992 में वेदप्रकाश के विशेषांक के रूप में प्रकाशित यह काव्य कस्तूरचन्द घनसार की कवित्व शक्ति का सफल परिचायक है।

आचार्य वेदपाल प्रभुचरणाश्रित रचित दयानन्द प्रकाश-(प्रकाशन काल 1995)

सन्तनगर दिल्ली के निवासी आचार्य वेदपाल का दयानन्द प्रकाश शीर्षक एक लघु काव्य मारिशस निवासी श्री दयानन्द मनसाराम की आर्थिक सहायता से 1995 में प्रकाशित हुआ। दोहा, चौपाई, छन्दों में निबद्ध इस काव्य में रसात्मकता तो स्वल्प ही है तथापि साधारण पठित वर्ग के लिए इसकी उपयोगिता निर्विवाद है।

डा. सत्यव्रत शर्मा अजेय रचित दयानन्द शतक-(प्रकाशन काल 1995)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के उपाचार्य पद से सेवा निवृत्त डा. सत्यव्रत शर्मा अजेय जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं जिनको हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में काव्य-रचना का असाधारण अधिकार निसर्ग से प्राप्त हुआ है। 101 घनाक्षरी छन्दों में स्वामी दयानन्द के जीवन तथा व्यक्तित्व का प्रशस्तिमूलक चित्रण 'दयानन्द शतक' की विशेषता है। प्रख्यात प्राध्यापक तथा समीक्षक डा. विष्णुदत्त राकेश के शब्दों में, "चित्रमयी भाषा, नाद सौन्दर्य, लक्षणा का चमत्कार तथा कल्पना की उड़ान इन घनाक्षरियों की विशेषता है। यह एक ओर रीति-कवियों की विदग्ध परम्परा की याद दिलाते हैं तो दूसरी ओर प्रवाहमयता, सहजता और मार्मिकता में जगदम्बाप्रसाद हितैषी, गोपालशरणसिंह और अनुज शर्मा को सामने ला खडे करते हैं।" निम्न उदाहरणों से दयानन्द शतक की काव्यगत विशिष्टता पाठकों के समक्ष स्पष्ट रूप से आ जाएगी। स्वामी दयानन्द के आविर्भाव-काल की स्थिति को निम्न कवित्त में देखें-

छाया था अविद्या का अन्धेरा चारों ओर घोर,
सूझता न हाथ को था हाथ काली रात में।
संस्कृति समाप्तप्राय हुई थी हमारी हाय,
मेटने को हमें थे विदेशी लगे घात में।
हनुमान, भीष्म पितामह काले ब्रह्मचर्य
कपिल कणाद काले कोविदत्व साथ में।
करने को आर्यावर्त-उपवन सुरभित,
एक पारिजात खिला तब गुजरात में।।

सहज अलंकृत शैली में रचित निम्न घनाक्षरी में समाधिस्थ ऋषि दयानन्द की एक उदात्त छवि को देखें–

ऋषि तपलीन हिमगिरि के शिखर पर,
परम पवित्र पुण्यमय प्रातःकाल है।
प्राची से प्रकट हुआ दिव्य दिवाकर ऐसे,
सीपी से प्रकट जैसे मौक्तिक प्रवाल है।
पुष्प परिमल मल मल जाती मलयज
मधुवात, मानो कि गुलाल लाल लाल है।
विचलित कर सकी किन्तु न प्रकृति नटी,
समाधिस्थ रहा ऋषि शैल सा विशाल है।।

दयानन्द शतक में जहाँ स्वामी दयानन्द के अनेक जीवन प्रसंग छन्दोबद्ध हुए हैं वहाँ आर्योद्देश्य रसमाला में व्याख्यात कतिपय सैद्धान्तिक बिन्दुओं को भी कवि अजेय ने इन पद्यों में काव्यबद्ध किया है। कवि अजेय की ओजस्वी वाणी ने दयानन्द के विराट् व्यक्तित्व को साकार कर दिया है। निम्न कवित्त इसी तथ्य का साक्षी है।

कलित काषाय वस्त्रधारी ब्रह्मचारी वह
  हाथ में प्रचण्ड दण्ड काल का भी काल था।
भव्य मुखमण्डल, विशाल वक्ष लम्ब बाहु
  दमदम दमकता तेजोमय भाल था।
छिति पर छोर छोर छवि छाई ऋषि की थी
  मन्द मृदु हासयुत अधर प्रवाल था।
वह ब्रह्म तेजोबल ध्रुव धैर्य धर्म धारी
  आब्धि का गम्भीर हिमगिरि सा विशाल था।।

वीरेन्द्रकुमार राजपूत रचित दयानन्द महिमा–(प्रकाशन काल 1995)

पेशे से अध्यापक किन्तु सफल काव्य प्रणेता वीरेन्द्रकुमार राजपूत के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका सम्पूर्ण काव्य महर्षि दयानन्द रूपी केन्द्रबिन्दु के इर्दगिर्द ही प्रायः घूमता रहता है चाहे महर्षि दयानन्द के जीवन का कोई प्रेरक प्रसंग हो या फिर उनकी अमर कीर्ति आर्यसमाज अथवा उनका विचार पुंज सत्यार्थप्रकाश। (दयानन्द महिमा के प्राक्कथन में यशपाल आर्य वन्धु द्वारा लिखित।)

'दयानन्द महिमा' में ऋषि दयानन्द को लेकर सात-सात पद्यों के चार सप्तक संगृहीत हैं। कवि को खड़ी बोली तथा ब्रज दोनों भाषाओं पर सहज अधिकार प्राप्त है। ब्रजभाषा में लिखा उसका निम्न सवैया काव्य नायक दयानन्द के मोहक व्यक्तित्व

की एक मनोज्ञ झाँकी प्रस्तुत करता है–

पद्मासन आसन धारे लखौं जब ही तब ही अति भावत हो।
करुनामुस्कान भरे दृगसों, तुम तो नित नेह जगावत हो।
सुविशाल मनोहर तेज भरी, छवि सों कछु यों कर जावत हो।
लगता है कभी तुम दूर नहीं, मन मन्दिर माँहि विराजत हो।।

कविता की भाषा ब्रज है।

यज्ञेश्वर शास्त्री रचित जागृतिदूत दयानन्द

उद्बोधन दीक्षान्त, जीवन झाँकी, व्यक्तित्व, राष्ट्रधर्म तथा आह्वान शीर्षकों में विभक्त 'जागृतिदूत दयानन्द' काव्य की कुल पद्य संख्या 26 है। कविता साधारण कोटि की है जिसमें स्वामी दयानन्द के कतिपय जीवन प्रसंगों के साथ-साथ उनके मन्तव्यों को भी कवि ने पद्यबद्ध किया है।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती रचित दयानन्द बयालीसा–(प्रकाशन काल 1995)

पूर्वाश्रम में त्रिलोकचन्द्र राघव के रूप में काव्य-रचना का आरम्भ करने वाले स्वामी स्वरूपानन्द ने विभिन्न भावों और विषयों को अपनी कविता के लिए चुना है। उनकी सरल तथा प्रसाद गुण युक्त कविता का रसास्वादन आबालवृद्ध सभी कर सकते हैं। बालोपयोगी काव्य रचना करने में उन्हें विशेष सफलता मिली है। बयालीस पद्यों में समाप्त 'दयानन्द बयालीसा' का प्रणयन भी मुख्य रूप से अल्पमति बालकों को स्वामी जी के आदर्श एवं अनुकरणीय जीवन से परिचित कराना ही है। इस काव्य में मुख्यतया दोहा तथा चौपाई छन्दों का प्रयोग हुआ है। सरल अनलंकृत शैली की यह कृति बाल साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में समर्थ है। इस काव्य के फलश्रुति दर्शक वाक्य निम्न हैं–

घर घर सन्ध्या हवन रचाओ।
मानव जीवन सफल बनाओ।
जो यह पढ़े दयानन्द बयालीसा।
उस पर मेहर करे जगदीशा।
सत्य ज्ञान के दर्शन होई।
हितचित अमल करे जो कोई।
मिथ्या नहीं वेदों की वाणी।
जीवन सफल बना ले प्राणी।।

इस काव्य के दो संस्करण छप चुके हैं जो इसकी उपयोगिता के परिचायक हैं।

अध्याय-7

स्वामी दयानन्द विषयक स्फुट प्रशस्ति काव्य

गत अध्याय में हमने स्वामी दयानन्द के जीवन तथा व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने वाले उस काव्य का विचार किया है जो पुस्तकाकार हमें उपलब्ध है। परन्तु हम देखते हैं कि बहुत अधिक संख्या ऐसे कवियों की भी है जिन्होंने स्वामी दयानन्द विषयक स्फुट कविताएँ लिखी हैं। द्विवेदी कालीन काव्य के अध्येताओं से यह अप्रकट नहीं है कि उस युग के कवि अपने काव्य की प्रेरणा के रूप में या तो भारतीय इतिहास के महापुरुषों को चुनते थे अथवा अतीत की किसी गौरवशाली घटना को स्वकाव्य का आधार बनाते थे। आदर्शवाद को काव्य का ध्येय मानकर चलने वाले कवियों के लिए आदर्श महापुरुषों के जीवन एवं क्रियाकलाप का वर्णन प्रस्तुत करना स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि उस युग के कवियों ने रामकृष्ण, बुद्ध, दयानन्द जैसे अप्रतिम प्रतिभाशाली व्यक्तियों के चरित्रांकन से अपनी लेखनी को धन्य किया था। महात्मा गाँधी तो द्विवेदी काल के कवियों के लिए जीवित प्रेरणास्रोत ही थे, अतः उनके जीवनादर्शों की ओर कवियों का आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। किन्तु धर्म और समाज के क्षेत्र में अपूर्व क्रान्ति उपस्थित लाने वाले तथा राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करने वाले महापुरुषों में अग्रणी दयानन्द के प्रति भी कवियों का आकर्षण कम नहीं था।

यहाँ हम कुछ ऐसे ही कवियों के काव्य का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं जिन्होंने महर्षि दयानन्द के जीवन तथा कृतित्व पर स्फुट काव्य रचना की है। इनमे से अनेक ऐसे हैं जो आर्यसमाज से जुड़े हुए हैं तो एक बड़ी संख्या उन कवियों की भी है जो उससे मात्र सहानुभूति ही रखते हैं।

स्वामी दयानन्द के निधन के पश्चात् उन्हें काव्यमयी श्रद्धांजलि अनेक कवियों द्वारा दी गई। भारत सुदशा प्रवर्त्तक के अंकों में किन्हीं रामप्रकाश नामक कवि द्वारा रचित पाँच कवित्त स्वामी दयानन्द के परलोक प्रस्थान पर प्रकाशित हुए थे। इन

कवित्ता के द्वारा कवि ने स्वामी जी के व्यक्तित्त्व, कार्य तथा उनकी देन के सम्बन्ध में भावनाप्रवण शैली में अपने उद्‌गार व्यक्त किए हैं। प्रथम कवित्त में वह स्वामी जी के महाप्रयाण का उल्लेख हुआ लिखता है–

तीस अक्टूबर अठारह सो तिरासी सन,
कार्तिक अमावस कृष्ण भौम वर्तमान भौ।
औन्निसो चालिस के सम्वत में अस्त समय
देश देश चारहु दिसि दीप दीप्यमान भौ।।
ईश्वर को ध्यान, समय, संध्या सुन्दर विचार ताही,
समय सन्मुख संतिष्ठ सुर विमान भौ।।
जहाँ वामदेव व्यास आदि गए ज्ञानी जन,
तहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती को प्रयान भौ।।

स्वामी दयानन्द रूपी विद्या के सूर्य के अस्ताचल की ओर चले जाने पर कवि को सर्वत्र अभाव ही अभाव दृष्टिगोचर होता है–

कौन विधि ऐसे व्याख्यान श्रवण होंगे अब,
वैदिक सत्यार्थ सहित वाणी कौन कथैगो।
वेद शास्त्र सिंधु मध्य मेधा निज मंदर सो,
कौन है प्रतापी जो निर्भय होय मथैगो।।
कैसे श्रुति शारद को प्रसार होय सत्य युक्त,
जालिम मतवादिन को कैसे मतनथैगो।
कैसे अब प्रकाश की हो आशा हमें,
स्वामी सरिस विद्या की विभाकर हु अथैगो।।

कवि ने स्वामी जी को विद्या का सूर्य, दया का सागर, गुणों का भण्डार तथा शील का चन्द्रमा बताते हुए लिखा है–

विद्या के विभाकर और छपाकर दयासागर के
गुण का रत्नाकर करुणाकर जब आए थे।
लागत है अकारथ सम भारत सब स्वारथ रत,
देख एक स्वामी परमारथ मन लाए थे।
हो गई जो होनी थी ऐसी नहिं होनी अब
रामप्रकाश आश निज मन में ठहराए थे।।

स्वामी जी महाराज के परलोक गमन का दुख कवि के लिए अवर्णनीय है। वह कहता है–

हाय ऐसे शोक से विशोक कौन करे मोहि,
कौन हेतु स्वामी परलोक को सिधारे हैं।
करके संवाद वाद विजयी भये जगत जीव,
देश देश जाइ पण्डितान को पछारे हैं।
निज कर चमकाय हाथ फेर ना दिखाय कहूँ
जाय जाय आर्य बंधु बहुविधि निहोरे हैं।
ऐसे शुभचिन्तक निज देश से पयान किए,
रामप्रकाश भारत में कहा होनहार है ?

विभिन्न उत्प्रेक्षाओं का सहारा लेकर कवि स्वामी जी के परलोक प्रस्थान के लिए नाना हेतुओं की कल्पना करता है--

कैधों संसार को असार समुझि स्वामीजी,
नरतन को त्यागन करि देवतन धारे हैं।।
कैधों मूर्तिपूजन सुरलोक में प्रचार भयो।
ताहि खण्डवे को निज मन में विचरे हैं।।
कैधों मृत्यु लोक मध्य जीति सब पण्डित जन
देवलोक जीतिबे को सुरपुर पधारे हैं।।
रामप्रकाश कैधों कुछ शंका उत्पन्न हुई।
सोई पूछिबे को विधि धाम को सिधारे हैं।।

कवि रामप्रकाश मिर्जापुर के निवासी थे और उनकी उपर्युक्त कविताएँ भारत-सुदशा प्रवर्तक के मार्च-अप्रैल 1884 के अंक में प्रकाशित हुई थीं।

आर्यसमाज की पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों में ऋषि दयानन्द को श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए सुन्दर कविताएँ प्रकाशित करने की प्रथा बहुत पुरानी है। आर्यमित्र के उस विशेषांक का सम्पादन हिन्दी के प्रख्यात पत्रकार, कवि और सुलेखक पं. हरिशंकर शर्मा ने किया था, जो ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी के अवसर पर फाल्गुन 1981 वि. में प्रकाशित हुआ था। इस विशेषांक में पं. ज्योतिप्रसाद शर्मा 'निर्मला' की 'ऋषि दयानन्द का स्वागत', पं. मुंशीराम शर्मा 'सोम' की 'नितवर्धमान हो यशलता दयानन्द मुनिराज की', पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'गौरव गान', विद्याभूषण विभु की 'गुरु और शिष्य', भद्रजित 'भद्र' की 'दीक्षा-रात्रि', तथा श्री कौशलेन्द्र की 'दयानन्द स्तोत्र पंचक' शीर्षक कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

हरिऔध तो अपने युग के शीर्षस्थ कवि थे। संस्कृत की तत्समबहुला शब्दावली का प्रयोग करने में उनकी विशेष रुचि थी। 'गौरव गान' शीर्षक उनकी इस श्रद्धांजलिपरक कविता में कवि ने 15 छप्पय लिखे हैं। सामासिक शब्दबहुला उनकी

विशिष्ट शैली का निदर्शन निम्न पद्य में देखा जा सकता है–

वैदिकता विधि पूत वेदिका नन्दनीय वलि।
वेद विकच अरविन्द मंत्र मकरंदमत्त अलि।
आर्य भाव कमनीय रत्न के अनुपम आकर,
विविध अन्ध विश्वास तिमिर के विदित विभाकर।
नाना विरोध वारिदपवन, कदाचार कानन दहन,
हैं निरानन्द तरु वृन्द के दयानन्द आनन्दघन।।

कवि की दृष्टि में दयानन्द वैदिक विधि से पवित्र की गई यज्ञ वेदी पर अर्पित किया गया पुण्य हविष्य (बलि) है, वेद रूपी विकसित कमल पर मँडराने वाला मत्त भ्रमर है। आर्य भावना रूपी मूल्यवान् रत्नों की खान भी वे ही हैं, अन्धविश्वास रूपी घोर अन्धकार को नष्ट करने वाले दयानन्द सूर्य के तुल्य हैं। वैर विरोध रूपी बादलों को उड़ाने वाले वायु तुल्य दयानन्द दुराचार रूपी जंगल को जला कर भस्म करने वाली प्रचण्ड अग्नि भी हैं। देशवासियों के दुख और निराशा से प्रतप्त मानस तरुओं को आनन्द रूपी प्रचण्ड वृष्टि से पुनः हरा-भरा करने वाले दयानन्द बादल तुल्य हैं।

ब्रह्मचारी भद्रजित 'भद्र' की 'दीक्षा-रात्रि' कविता मूलशंकर के शिवरात्रि व्रत प्रसंग का 25 छन्दों में सुन्दर काव्यमय चित्रण है। विद्याभूषण 'विभु' ने 'गुरु और शिष्य' शीर्षक कविता में दण्डी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द के गुरु-शिष्य सम्बन्धों को उजागर किया है। दीक्षान्त के अवसर पर दण्डी जी ने शिष्य को जो आशीर्वाद दिया, वह निम्न पद्य में सुन्दर ढंग से चित्रित हुआ है–

दयानन्द हे वत्स, धन्य तेरी बलिहारी।
तू ही केवल मिला शिष्य है आज्ञाकारी।
देव कुसुम सौरभ सदृश हो तब यश विस्तार।
पुत्र विलम्ब न उचित अब धर्म यही उपकार।
सदा शिवमस्तुते।

कवि कौशलेन्द्र का 'स्तोत्र पंचक' खड़ी बोली में लिखी एक सुन्दर कविता है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

उठा कर अगणित क्लेश महान।
किया सन्तत स्वदेश उत्थान।
सुना कर मधुरी शिक्षा तान।
डाल दी मृत जनता में जान।

आन पर किया आत्म बलिदान
जयति श्री दयानन्द भगवान।।

आर्य पत्रों में प्रकाशित दयानन्द प्रशस्ति के पद्यों का यह तो निदर्शन मात्र है। इनका सम्पूर्ण संग्रह तथा विवेचन तो सम्भव ही नहीं है।

हनुमान चालीसा की शैली में रचित दयानन्द प्रशस्ति के काव्य

उत्तर भारत के हनुमान भक्तो में 'हनुमान चालीसा' नामक एक स्तुतिपरक काव्य का अत्यधिक प्रचलन है। यद्यपि दोहा, चौपाई शैली में लिखी इस लघु काव्य-कृति को गोस्वामी तुलसीदास रचित कहा जाता है, किन्तु गोस्वामी जी की प्रामाणिक काव्य रचनाओं में इसकी गणना नहीं होती। स्वामी दयानन्द के चरित को सामान्य काव्य-रसिकों में लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से कुछ कवियों ने 'दयानन्द चालीसा' जैसी पद्यात्मक कृतियों की रचना की है। इनमें निम्न का उल्लेख आवश्यक है–

मीरां यति रचित दयानन्द चालीसा तथा दयानन्द गाथा

पंजाब के जालंधर जिले के एक ग्राम में मीरां यति का जन्म 1928 मे हुआ। 1984 में उन्होंने संन्यास की दीक्षा ली। वे देश में सर्वत्र भ्रमण कर वैदिक धर्म का प्रचार करती हैं। दयानन्दचालीसा का प्रकाशन 1986 में हुआ। इनकी यह कृति सरल तथा सुबोध भाषा में लिखी गई है। इसका निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

जय जय दयानन्द ऋषिराई।
सन्तन के तुम सदा सहाई।।
अरुण वरन मण्डित सब देहा।
सूर्यतेज चमके अति नेहा।।
दयानन्द अतुलित बल धामा।
कर्षन पुत्र सुशंकर नामा।।
वेदयुक्त बातन को मण्डन।
कीन्हों पाखण्डन को खण्डन।।

स्वामी सेवानन्द रचित–दयानन्द महिमा

यह कृति भी हनुमान चालीसा की शैली में लिखी गई है। इसकी रचना 2001 वि. की पवित्र वैशाखी (चैत्र शुक्ला 13) के दिन हुई जैसा कि निम्न दोहे से स्पष्ट होता है–

विक्रम दोय सहस्र इक वैशाखी सुपुनीत।
विरची शुचि महिमा शतक सेवानन्द विनीत।।

सरल ब्रज भाषा में लिखित यह कविता स्वामी दयानन्द की जीवन घटनाओं को सुरुचिपूर्ण ढग से वर्णित करती है। स्वामी सेवानन्द की कविता का उदाहरण निम्न है।

गुर्जर देश धन्य टंकारा। द्विज कर्शन घर जन्म तुम्हारा।।
प्रथमहिं मूल दयालु कहाये। मोक्ष हेतु गृहत्याग सिधाए।।
पूर्णानन्द दियो यति बाना। विरजानन्द विमल विज्ञाना।।
बालपनहि शुचि कौतुक कीन्हा। महापुरुष शुभ परिचय दीन्हा।।

अध्याय-8

स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों के पद्यानुवाद

आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य के बहुविध प्रयोजनों में जहाँ यश प्राप्ति, अर्थोपार्जन, व्यवहारज्ञान आदि का उल्लेख हुआ है, वहाँ उससे अमंगल के निवारण तथा सद्यः आन्नद की प्राप्ति भी बताई गई है।[1] परन्तु कान्तासम्मित उपदेश तो काव्य का अन्यतम प्रयोजन है। हम देख चुके हैं कि आर्यसमाज की विचारधारा से प्रभावित हिन्दी कवियों ने मुख्यतया उपदेशार्थ ही अपनी काव्य सृष्टि का निर्माण किया है। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए उन्होंने जहाँ स्वतन्त्र रूप से नाना विधाओं, शैलियों और काव्यरूपों में अपनी रचनाचातुरी को प्रकट किया, वहॉ वे अपने आचार्य एवं उपदेष्टा स्वामी दयानन्द के अनेक ग्रन्थों को पद्यबद्ध करने के प्रयास में भी लगे रहे।

यहॉ हम किंचित् विस्तार में जाकर स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों के काव्यानुवादों की चर्चा करेंगे। स्वामीजी की कृतियों में सत्यार्थप्रकाश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा ख्यातिलब्ध है। भारत तथा अन्य देशों की धार्मिक विचारधारा को मोड़ देने में यह ग्रन्थ अत्यन्त सफल रहा है। इसके प्रथम दस समुल्लासों में आदर्श आर्य जीवन, वैदिक आचार-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र तथा धार्मिक मन्तव्यों की सतर्क मीमांसा की गई है। उत्तरार्द्ध के चार समुल्लास समीक्षा प्रधान हैं जिनमें क्रमशः पौराणिक मत, जैन, बौद्ध, ईसायत तथा इस्लाम की प्रमाण पुरस्सर समालोचना की गई है। ग्रन्थान्त में लेखक ने स्वसिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है।

सत्यार्थप्रकाश की उपयोगिता तथा लोकप्रियता इसी बात से जानी जा सकती है कि अब तक इस ग्रन्थ के एक दर्जन से अधिक भारतीय भाषाओं तथा अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। इसके विभिन्न संस्करणों की लाखों प्रतियॉ

1. शिवेतरक्षतये सद्यः परिनिर्वृत्तये आदि।

विश्व के कोने-कोने में प्रबुद्ध पाठकों के हाथों में पहुँच चुकी हैं। साथ ही इस ग्रन्थ की टीका, व्याख्या तथा विवेचना के रूप में सैकड़ों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। निश्चय ही सत्यार्थप्रकाश का लेखन शास्त्रीय शैली में हुआ है जिसमें पूर्वपक्ष एवं सिद्धान्तपक्ष की स्थापना करते हुए लेखक अपने विचारों को युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्ट करता है। यह अनुभव करते हुए कि सत्यार्थप्रकाश एक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है जिसमें विभिन्न दार्शनिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक प्रसंगों को शास्त्रोक्त शैली में विवेचित किया गया है, काव्य प्रतिभा युक्त अनेक आर्यसमाजी कवियों ने इस ग्रन्थ को सामान्य पाठकों के लिए रुचिकर पद्य शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। ऐसा करके उन्होंने एक कालजयी रचना को जनसाधारण के लिए सुगम एवं सुबोध बना दिया है। यहाँ हम सत्यार्थप्रकाश के हिन्दी पद्यानुवादों का समीक्षण स्वल्प विस्तार के साथ करेंगे।

पद्यात्मक सत्यार्थप्रकाश--प्रथम समुल्लास

शाहाबाद (जिला हरदोई) के निवासी पं. रामलाल अग्निहोत्री ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास का पद्यानुवाद किया है। आर्य ग्रन्थमाला संख्या-1 के अन्तर्गत यह अनुवाद पं. हजारीलाल शर्मा शाहाबाद (हरदोई) द्वारा 1972 वि. (1915 ई.) में प्रकाशित हुआ। ग्रन्थ रचना विषयक स्वप्रयोजन को स्पष्ट करते हुए पं. रामलाल लिखते हैं–"मेरा यह विचार बहुत दिनों से था कि आर्य समुदाय के सर्वोच्च ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का पद्यानुवाद प्रकाशित हो तो जनसाधारण को अधिक लाभ पहुँचे।" इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह कृति लिखी गई है। प्रथम समुल्लास का यह पद्यानुवाद 76 पद्यों में समाप्त हुआ है। अनुवाद साधारण-सा ही है जिसमें अनुवादक की किसी विशिष्ट काव्य क्षमता के दर्शन नहीं होते। इस अनुवाद का एक नमूना यहाँ दिया जा रहा है–

सत् चित अरु आनन्द मय वह सर्वदा सर्वकाल है।
व्यापक निरंजन और निर्गुण काल का भी काल है।
जिसका न आदि न अन्त है होता न जिसका नाश है।
सर्वत्र बाहर और भीतर दिव्य जासु प्रकाश है।।

इस ग्रन्थ के अन्त में अनुवादक ने निम्न पद्य को फलश्रुति के रूप में लिखा।

सब आर्य ग्रन्थों में लिखे हैं ओ३म् या अथ शब्द दो।
इसको लिखो आरम्भ में मिथ्यादि नामों को तजो।
बस है प्रभु हम सबन पर तू नित्य निज करुणा करे।
है नाम तेरा मूल सबका ओ३म् जब बाधा हरे।।

हमारे पुस्तक संग्रह में इसका तीसरा संस्करण है जो 1925 ई. में छपा था। इसका प्रकाशन सुखानन्द ग्रन्थमाला लखनऊ द्वारा हुआ था।

पं. गदाधर प्रसाद 'इष्ट' कृत सत्यसागर

सत्यार्थप्रकाश का सफल कथात्मक पद्यानुवाद पं. गदाधरप्रसाद 'इष्ट' ने सत्यसागर के नाम से किया है। लेखक के विचारानुवाद "यदि आर्य सिद्धान्त की कोई पुस्तक सरल दोहा, चौपाई के रूप में प्रकाशित की जाए तो हम लोग उसकी कथा कहकर जीवन को सुधार सकते हैं।" इसी ध्येय की पूर्ति के लिए उसने गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस की शैली में सत्यसागर का प्रणयन किया। लेखक को यह आशंका थी कि जिस प्रकार मानस की शैली का अनुसरण करते हुए समय-समय पर अनेक ग्रन्थ लिख गए हैं, किन्तु उनमें गोस्वामी जी की कृति के सदृश सरसता तथा लालित्य नहीं आ पाया, उसी प्रकार कहीं उसकी कृति भी रस शून्य न हो जाए। किन्तु उसे इस बात का सन्तोष है कि उसका यह तुच्छ प्रयास भी तुष्टिकारक रहा। 'मानस' एक कथाप्रधान काव्य है–जिसमें सरस अलंकार योजना तथा काव्य के अन्यान्य तत्त्वों के समग्र निर्वाह के लिए कवि को अवकाश था, जबकि सत्यसागर एक धर्म ग्रन्थ का अनुवाद मात्र है। तथापि अनुवादक का यह प्रयत्न रहा है कि उसके इस अनुवाद की भाषा सरल तथा प्रांजल रहे जिससे पाठक मूल ग्रन्थ के भावों को सरलता से हृदयंगम कर सकें। सत्यसागर की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि अल्पावधि में ही इस ग्रन्थ के चार संस्करण प्रकाशित हो चुके थे।

कवि परिचय–सत्यसागर के प्रणेता पं. गदाधरप्रसाद 'इष्ट' का जन्म 1939 वि. (माघ मास) में हरदोई जिलान्तर्गत बावन नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता प. बांकेलाल उपमन्यु गोत्र के पाठक ब्राह्मण थे। बाल्यकाल में यज्ञोपवीत के अनन्तर इनका हिन्दी एवं संस्कृत का अध्ययन सम्पन्न हुआ। कालान्तर में इष्ट का आर्यसमाज से सम्पर्क हुआ और ये आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त के वैतनिक उपदेशक बन गए। पर्याप्त समय तक उपदेशक रूप में कार्य करने के पश्चात् ये लखनऊ में रह कर चिकित्सा द्वारा जीवन निर्वाह करते रहे।

ग्रन्थ परिचय–चौदह तरंगों में विभक्त यह काव्य सत्यार्थप्रकाश का अविकल धारावाही पद्यानुवाद है। कवि के एक मित्र श्री साधुचरण चौधरी ने इस काव्य की प्रशंसा में ठीक ही लिखा था–

प्राकृत सागर स्वाद बिन अवगुनमय अति क्रूर।
पर साहित्यिक सिन्धु यह सुधा सरिस गुण पूर।।
यहि मह यत्र तत्र जो रहयो फेन सम भूल।
ताहि सुधार्‌यो 'साधु' जन रखिये लखि अनुकूल।।

श्री चौधरी ने यत्र-तत्र इस काव्य का संशोधन किया था। सत्यसागर के प्रणेता की काव्य क्षमता तथा रचना चातुरी का पता तो इसी बात से लग जाता है कि सत्यार्थप्रकाश जैसे गहन गम्भीर विचारों से युक्त, जटिल, दार्शनिक तर्कावलियों से परिपूर्ण इस ग्रन्थ का उन्होंने सफल पद्यानुवाद कर दिया। यों तो यह ग्रन्थ पद्य शैली में निबद्ध अनुवाद ही है किन्तु इसमें अनुवादक का मौलिक रचना कौशल भी सर्वत्र प्रकट होता है। समग्र ग्रन्थ गुरु-शिष्य संवाद के रूप में लिखा गया है तथा प्रत्येक तरंग के प्रारम्भ में कवि ने संवाद योजना के रूप में एक कल्पित कथानक का समावेश किया है। उदाहरणार्थ–प्रथम रंग की प्रास्ताविक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

पुष्कर तीर्थ महाविख्याता। आवहिं मुनि गन करहिं सुबाता।
तहँ एक दिन ऋषिवर गयऊ। दै उपदेश सबन चित लयऊ।।
पुनि एकान्त बैठि सब काहू। कथा सुनावत सहित उछाहू।
सत्य कथा जस वेदन गाई। सोइ कहत सब कहँ समुझाई।।
बहु भूपति तहँ अवसर आये। ऋषि के वचन सबहिं मन भाये।।
राजपुरुष इक बोल्यहु भाई। हमहिं सुनाबहु ईश बड़ाई।
नाम कवन जग तारन हेता। कवन नाम जपि होत सचेता।।

और इस प्रकार प्रश्न पूछने पर–

स्वामि कह्यो तब ध्यान धरि सुनहु सकल महिपाल।
नाम सुनावहुँ ईश के जो हैं परम कृपाल।।

सत्यसागर में दोहा, चौपाई के अतिरिक्त सोरठा, सवैया, कवित्त आदि छन्द भी प्रयुक्त हुए है। काव्य की भाषा सरल अवधी है, जिसमे सस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। ऐसा होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि मूल ग्रन्थ एक ऐसी शास्त्रीय रचना है जो संस्कृतिनिष्ठ हिन्दी में लिखी गई है। सत्यसागर की रचना कर श्री इष्ट ने यह सिद्ध कर दिया है कि सत्यार्थप्रकाश जैसी विशाल एवं विद्वत्तापूर्ण कृति को भी सफलतापूर्वक पद्यबद्ध किया जा सकता है। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

कवि जयगोपाल रचित सत्यार्थप्रकाश कवितामृत

सत्यार्थप्रकाश जैसी गुरु गम्भीर कृति को काव्य का जामा पहनाने का एक अन्य प्रयत्न कविराज जयगोपाल ने किया। इनका जन्म 1892 ई. में अवभिाजित पंजाब की राजधानी लाहौर में आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्ता श्री रामदास वधवा के यहाँ हुआ। जीविका निर्वाहार्थ आपने आयुर्वेद चिकित्सा को अपनाया। आपके द्वारा रचित ग्रन्थों में 'सत्यार्थप्रकाश कवितामृत' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि ने इस कृति का

लेखन अपनी आयु के 59वे वर्ष में किया था, जैसा कि निम्न दोहों से ज्ञात होता है।

रामदास कविवर सुवन श्री कवि जयगोपाल।
कवितामृत रचना रची, आयु उनसठ साल।।
द्वै सहस्र इक विक्रमी संक्रान्ति वैसाख।
आरम्भ्यो यह ग्रन्थ शुभ ओट प्रभु की राख।।

ग्रन्थ की समाप्ति पौष प्रतिपदा 2002 वि. को हुई–

द्वै सहस्र द्वय पौष की प्रथम तिथि संक्रान्त।
कवितामृत पूरण कियो, जयगोपाल नितान्त।।

कवि ने सत्यार्थप्रकाशकार के ग्रन्थ रचना के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

सत्य अर्थ प्रकाशहित यह सत्यार्थप्रकाश।
जगे जोत नितय सत्य की, झूठ तिमिर का नाश।।

पुनः एक कुण्डलिया लिखकर कवि ने सत्यार्थप्रकाश की रचना में निहित लेखक के आशय को व्यक्त किया है–

मनुष्य जाति की उन्नति अरु होवे उपकार।
लिखने में इस ग्रन्थ के यही भाव आधार।।
यही भाव आधार सत्य को सब जन धारे।
निर्मल करके चित्त झूठ को मन से टारे।
बिना सत्य उपदेश न होवे नरन समुन्नति।
केवल यही विचार मनुष जन की उन्नति।।

कवि जयगोपाल के इस पद्यानुवाद में किसी विशिष्ट काव्य कौशल अथवा प्रौढ़ता के दर्शन तो नहीं होते तथापि एक महाकाय ग्रन्थ को पद्यबद्ध करना अपने आप में महत् प्रयास ही कहा जाएगा। अनुवाद की भाषा ब्रज और अवधी का मिश्रित रूप है। यत्र-तत्र संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ है। रामचरितमानस के ही अनुकरण पर कवि ने इस ग्रन्थ में मुख्यतः दोहा-चौपाई का प्रयोग किया है। पद्यानुवाद का निम्न उदाहरण प्रथम समुल्लास के इस प्रकरण से दिया जा रहा है जहाँ ईश्वर के मुख्य नाम ओम् का प्रतिपादन किया गया है–

ओमकार सर्वोत्तम नामा। अर्थ गम्भीर श्रवण अभिरामा।
अक्षर त्रय का है समुदाया। पार हुआ भव जिसने पाया।।
मिले अकार उकार मकारा। बना नाद नाम ओमकारा।।

रामचरितमानस की लोकप्रचलित शैली में किया गया यह अनुवाद पाठकों को मूलग्रन्थ के प्रतिपाद्य से परिचित कराने में सफल रहा था।

कविराज रघुनन्दनसिंह निर्मल कृत सत्यार्थप्रकाश दिग्दर्शन

सामान्य पठित जनता को सत्यार्थप्रकाश की विषय वस्तु से परिचित कराने की दृष्टि से कविराज स्व. रघुनन्दनसिंह निर्मल ने 37 पद्यों में इस ग्रन्थ के चौदह समुल्लासों तथा स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश के प्रतिपाद्य को पद्यबद्ध कर दिया है।

इस कृति को काव्य कोटि में परिगणित करना तो कठिन ही होगा किन्तु यह सर्वथा तुकबन्दी भी नहीं है, यह इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है–

इन्द्र विष्णु और ब्रह्मा सब उसी के नाम हैं।
ईश्वर के गुण हजारों और हजारों काम हैं।
सब में व्यापक है वही सारे उसी के धाम हैं।
ज्ञान अर्थो का न होने से बुरे परिणाम हैं।
सत्य के पालन का ही है नाम मंगल आचरण।
ओम् और अथ शब्द से था ग्रन्थ लिखने का चलन।।

इस ग्रन्थ की दो आवृत्तियाँ क्रमशः 2024 वि. तथा 2035 वि. में निकल चुकी हैं।

पं. प्रकाशवीर व्याकुल कृत सत्यार्थप्रकाश काव्यानुवाद

भजन शैली में किया गया यह काव्यानुवाद प्रथम दस समुल्लासों का ही है। इसे दयानन्द सन्देश (दिल्ली) ने कार्तिक 2044 वि. में अपने विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया। सम्पूर्ण कथ्य को 43 भजनात्मक पद्यों में प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य का नमूना ऋग्वेद के मन्त्र 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' की निम्न व्याख्या से स्पष्ट होगा–

दो पक्षी रहते एक वृक्ष के ऊपर।
उन दोनों में बतलाया है इक अन्तर।
रहा जीव कर्म से भोग प्रकृति फल को।
पर नहीं भोगता ईश जान दल दल को।
दोनों पक्षी व वृक्ष सदा रहते हैं।
अव्यक्त व्यक्त दो रूप वेद सदा कहते हैं।

आर्याभिविनय का काव्य रूपान्तर

वेद मन्त्रों के आधार पर ईश्वर भक्ति का निरूपण करते हुए स्वामी दयानन्द ने

आर्याभिविनय नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उनका विचार तो चारों वेदों के भक्ति-निरूपक मन्त्रो का संकलन कर उनकी व्याख्या करने का था, किन्तु इस आयोजन के प्रथम चरण में वे ऋग्वेद (53 मन्त्र) तथा यजुर्वेद (54 मन्त्र) के मन्त्रो की ही व्याख्या लिख सके। आर्यसमाज के भक्तिवाद का निरूपक आर्याभिविनय स्वामी जी की एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। यहाँ इस ग्रन्थ के कतिपय काव्यानुवादों का उल्लेख किया जा रहा है।

श्री रामकृष्ण भारती कृत काव्यानुवाद

आर्याभिविनय के प्रथम प्रकाश (ऋग्वेदीय मन्त्र) का काव्यानुवाद आर्यसमाज (गोरखपुर) जबलपुर ने 1960 ई. की शिवरात्रि पर प्रकाशित किया। द्वितीय प्रकाश इसी वर्ष के नवम्बर मास में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण दयानन्द सस्थान दिल्ली ने 2032 वि. मे प्रकाशित किया। सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. सूर्यनारायण व्यास ने इस काव्य रूपान्तर के सम्बन्ध में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा—"आपने मन्त्रों का गूढ़ार्थ अपनी सरल भाषा में विशद् कर सर्वगम्य बना दिया है। काव्यमय अनुवाद होने के कारण यह रुचिकर होगा और अनेको के कण्ठ का हार बन जाएगा।" भारती जी कृत आर्याभिविनय का यह काव्यानुवाद स्वामी दयानन्द कृत मन्त्र व्याख्या का शब्दानुवाद मात्र न होकर मंत्रगत भाव तथा उसकी व्याख्या का विशदीकरण भी है। 'अग्निमीडे पुरोहितम्' ऋग्वेद के इस प्रथम मन्त्र का भारती कृत काव्यानुवाद द्रष्टव्य है—

अग्निदेव तेरी स्तुति करते, तुम्ही पुरोहित हो सबके।
यज्ञदेव हो ऋत्विक भी हो, हो तुम्ही रत्नधनी जग के।
बार बार स्तुति करें आपकी इसे आप स्वीकार करें,
कृपा पात्र तेरे बन जायें, आनन्दित हम सदा रहें।
हित साधक हो सकल विश्व के ऋतुओं के स्रष्टा स्वामी।
योगक्षेम करते हम सबका दुखहर्ता अन्तर्यामी।
ज्ञानरूप प्रभु तुम ईश्वर हो हम पर तेरी रहे कृपा।
हम सब तेरे अनुयायी हों नेता बनकर करो दया।।

डा. सूर्यदेव शर्मा कृत अनुवाद

आर्याभिविनय का एक अन्य काव्यानुवाद आर्यसमाज के लब्धप्रतिष्ठ कवि तथा लेखक डा. सूर्यदेव शर्मा ने किया। यह अनुवाद आर्य प्रेमी कार्यालय अजमेर द्वारा 1962 ई. में प्रकाशित हुआ। इस अनुवाद में सूर्यदेवजी ने गीतिका, तोटक, पद्धरी, रोला, उल्लाला, तोमर, ताटक, दिक्पाल, छप्पय, हरिगीतिका आदि छन्दों का प्रयोग किया

है। उपर्युक्त हिन्दी छन्दों के अतिरिक्त मालिनी, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शिखरिणी, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित आदि सस्कृत वृत्तों का भी इस अनुवाद में यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। हिरण्यगर्भ सूक्त के प्रथम मन्त्र 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' का छप्पय छन्द में काव्यानुवाद निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

लोक प्रकाशक तेज पुंज सबका स्वामी था।
विश्व रचन से पूर्व वही पति था नामी था।
उसने ही पश्चात् किया धारण भूमण्डल।
अन्तरिक्ष दिव धाम धरा बनकर आखण्डल।
उस देव प्रजापति पूज्य की सेवा में हम क्या धरें ?
शुभ श्रद्धा हविषा भक्ति से प्रेमपूर्ण पूजा करें।।

श्री भद्रजित 'भद्र' ने भी आर्याभिविनय का एक पद्यानुवाद किया था, जो आर्यसमाज कानपुर द्वारा 1981 वि. में प्रकाशित हुआ।

ऋग्विनय गीतिका–आर्याभिविनय के प्रथम प्रकाश का पद्यानुवाद

शाजापुर (मध्यप्रदेश) निवासी श्री रामनरायण माथुर 'ओम प्रेमी' ने आर्याभिविनय के प्रथम प्रकाश का एक सुन्दर पद्यानुवाद किया है जो आर्यसमाज शाजापुर के मन्त्री श्री चन्द्रशेखर शर्मा द्वारा 2019 वि. (1962) में प्रकाशित हुआ। महाकवि मैथिलीशरण गुप्त तथा प. हरिशंकर शर्मा जैसे प्रसिद्ध कवियों ने श्री माथुर के काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। 'ऋग्विनय गीतिका' में आर्याभिविनय में संकलित मूल वेद मन्त्र तथा उसके दयानन्द कृत व्याख्यान को देने के पश्चात् अनुवाद कर्त्ता ने मन्त्र गत भावों का पल्लवन करते हुए यह काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है जो सर्वत्र मनोरम बन पड़ा है। 'अग्निः पूर्वेभिःऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवां एह वक्षति' (ऋ. 1.1.2) का यह भावानुवाद द्रष्टव्य है–

सब सुजनों से जो संस्तुति के
योग्य सदा ही रहता आया।
सर्व पूज्य उस अग्नि ओम् को
विभु कह कर वेदों ने गाया।।
मन्त्रों का सत्यार्थ देखने वाले,
ऋषि प्राचीन काल के।
व्रतधारी वेदार्थ पठन पटु,
नूतन बटुजन वर्तमान के।
जिसे उपास्य मानते आए
वह ईश्वर आप्तों ने पाया।।

आर्याभिविनय का देवनारायण भारद्वाज कृतकाव्यानुवाद

'गीत स्तुति' शीर्षक से आर्याभिविनय का एक अन्य काव्यानुवाद श्री देवनारायण भारद्वाज ने प्रस्तुत किया है। (अनिल प्रकाशन अलीगढ़ द्वारा 2044 वि. (1987) में प्रकाशित इस काव्य में आर्याभिविनय में व्याख्यात ऋग्वेद के 53 तथा यजुर्वेद के 55 कुल 108 मन्त्रों को गीति काव्य में अनूदित किया गया है। ग्रन्थान्त में वेद मन्त्रों मे प्रयुक्त पदों का सरल अर्थ देकर इसे साधारण पाठकों के लिए भी सुगम वना दिया गया है। सुमित्रियान आप ओषधयः (यजुर्वेद 6.22) की गीतमय स्तुति का उदाहरण द्रष्टव्य है—

हे प्रभु सर्वमित्र सम्पादक।
जल प्राण शक्ति विद्या साधक।
हों औषधियाँ सब उपयोगी।
आरोग्य आयु की निष्पादक।
जो हमसे द्वेष किया करते,
या द्वेष दुष्ट से हम करते।
हो उसको विषमय औषधियाँ
होकर निष्प्राण वही मरते।।

ज्ञानी पिण्डीदास कृत आर्याभिविनय का भावानुवाद—

अमृतसर के आर्य लेखक और साहित्यकार ज्ञानी, पिण्डीदास ने आर्याभिविनय (प्रथम खण्ड) की 'अपने प्रभु से' शीर्षक विस्तृत भावपूर्ण व्याख्या लिखी। 1976 में प्रकाशित इस ग्रन्थ में प्रत्येक मन्त्र की व्याख्या के पश्चात् चार पक्तियों के विभिन्न लघु छन्दों में इन मन्त्रों का भावार्थ पद्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ—वायवाहि दर्शतेमे (ऋ. 1/2/9) की व्याख्या—

हे वायो वेगेश अमित आशा से आओ।
मेरे द्वारा दिव्य सोम आदिक को पाओ।
विश्ववंद्य अमल आभा फैलाओ।
सेवा हो स्वीकार सुअनुकम्पा दर्शाओ।। वासन्ती वृत्त

आर्योद्देश्यरत्नमाला का पद्यानुवाद

स्वामी दयानन्द रचित लघु ग्रन्थों में आर्योद्देश्यरत्नमाला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेखक ने इस अल्पकाय कृति में वैदिक धर्म के प्रमुख मन्तव्यों को सरल भाषा में परिभाषित किया है। 'रत्नमाला' का एक सुन्दर पद्यानुवाद आज से 110 वर्ष पूर्व केवलकृष्ण शर्मा ने किया था। 'सदुद्देश्य रत्नमाला' शीर्षक से यह अनुवाद बरेली से प्रकाशित

होने वाले आर्य पत्र (हिन्दी उर्दू का द्विभाषी पत्र) के चार अंकों में धारावाही निकला था। अनुवाद के आरम्भ में कवि ने मंगलाचरण के पद्य में ग्रन्थ का नामोल्लेख करते हुए लिखा–

जगदीश्वर ओंकार को बार बार सिर नाय।
सदुद्देश्यमाला विमल कही भाव उर लाय।।

अनुवादक के अनुसार इस ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन हुआ है–

दयानन्द स्वामी कहे मुख्य शास्त्र सिद्धान्त।
जिसे मन्दमति छन्द में बालक बुद्धि नितान्त।।

पुनः ग्रन्थ रचना के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा–

बालक पढ़ि कण्ठस्थ करि नहिं भूले बहु काल।
यह विचारि दोहादि कृत क्षमहु कवीश दयाल।।

आर्योद्दिश्यरत्नमाला का अनुवादक मैनपुरी के निकटवर्ती कुरावली नामक ग्राम का निवासी है। आत्म परिचय देते हुए केवल कृष्ण शर्मा लिखते हैं–

कुरावली द्विजवरपुरी मदनपुरी के तीर।
मुख्य निवास स्थान है केवलकृष्ण शरीर।।
शर्मा केवलकृष्ण कृत माला रत्न प्रधान।
सभा बरेली आर्य की सत उपदेशक जान।।

उक्त दोहे से ज्ञात होता है कि वे आर्यसमाज बरेली के उपदेशक भी थे। अगले दोहे में ग्रन्थ रचना काल का निर्देश कवि ने चित्रात्मक शैली में किया है–

बसु बसु बसु शशि ईसवी द्वादश मारच जान।
तिहि दिन यह पूरन भई पुस्तक माला मान।।

'अंकानां वामतो गतिः' के नियमानुसार अर्थ लगाने पर विदित होता है कि 12 मार्च 1888 ई. को यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ था। 'रत्नमाला' का यह पद्यानुवाद सरल, सरस तथा मूल ग्रन्थ के भावों को स्पष्ट करता है। मूल ग्रन्थ में ईश्वर की जो परिभाषा दी गई है उसे कवि केवल कृष्ण ने निम्न कवित्त के रूप में प्रस्तुत किया है–

जिनके गुण कर्म और स्वभाव सत्य केवल हैं,
चेतन अद्वितीय एक वस्तु मात्र रूप हैं।

व्यापक अनादि निर्विकार सर्व शक्तिमान,
त्यों ही अनन्त गुण नित्य सद् रूप हैं।
शुद्ध अविनाशी ज्ञानी आनन्दी न्यायकारी,
परम दयालु जन्म मृत्यु शून्य भूप हैं।
पालन विनाशन उत्पत्ति जग जीवन के,
पाप पुण्य फलदाता ईश्वर अनूप हैं।

ग्रन्थ प्रतिपादित अवशिष्ट मन्तव्यों को कवि ने दोहा तथा सोरठा छन्दों में अनूदित किया है। मुख्य छन्द तो दोहा ही है किन्तु यत्र-तत्र रोला तथा सवैया आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। ग्रन्थान्त में कवि ने काव्य प्रणयन के प्रेरक आर्यसमाज के प्रधान बाबू राजबहादुर का उल्लेख किया है। ग्रन्थान्त के तीन दोहे निम्न हैं–

शतदोहा छन्दादियुत स्वामी भाव विचार।
छन्द भंग आशय विगत हित करि लेहु सुधार।।
बाबू राजबहादुर आर्यसमाज प्रधान।
तिनकी आज्ञा पाइ के कहे यथा विज्ञान।।
ईश्वरादि गुण गण कथन तथा नमस्ते अन्त।
सदुद्देश्यमाला विमल करी आर्य गुनवन्त।।

इसी कवि ने आर्यसमाज के दस नियमों का भी काव्यानुवाद किया था। सवैया तथा दोहा छन्दों में किया गया यह अनुवाद आर्य पत्र बरेली के जनवरी 1889 ई. के अंक में प्रकाशित हुआ था।
मंगलाचरण तथा प्रथम नियम का अनुवाद इस प्रकार है–

परमेश्वर के सत्य गुण सुमिरि अमित सुख पाय।
बरनहुँ आर्यसमाज के दसों नियम चित लाय।।
सर्व सत्य विद्या तथा विद्या से जो ज्ञात।
आदि मूल इन सर्व का ईश्वर ब्रह्म कहात।।

पं. ताराचन्द वानप्रस्थी कृत दयानन्द शतक

आर्योद्देश्यरत्नमाला का एक अन्य पद्यानुवाद स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के शिष्य पं. ताराचन्द आर्य वानप्रस्थी ने किया था। यह स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन वैदिक-साधन आश्रम, यमुनानगर से दो बार प्रकाशित हुआ है। इसमें 'रत्नमाला' में वर्णित 100 सिद्धान्तों को उतने ही सरल पद्यों में अनूदित किया गया है। साधारण पठित लोग इससे वैदिक मन्तव्यों का सुगमता से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। एक उदाहरण दिया जा रहा है–

सत्य झूठ की खोज कर जाने साथ विवेक।
सत्यवादी धर्मात्मा एक प्रभु की टेक।।
प्यार करे तो सत्य से विद्या को करे ग्रहण।
पण्डित कहिये उसी को सर्वहितकारी वयण।

आर्योद्देश्य रत्नमाला का एक अन्य सुन्दर पद्यानुवाद प्रसिद्ध कवि ओंकार मिश्र प्रणव ने किया है। यह दोहा छन्द में है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

रचना पालन विश्व का करता जो कि विनाश।
उसको ईश्वर जानिए, उस पर हो विश्वास।।

अध्याय-9

शास्त्रीय एवं इतर ग्रन्थों के काव्यानुवाद

कविगण अपनी कारयित्री प्रतिभा का उपयोग भिन्न-भिन्न रूपों में करते हैं। कभी वे अपनी सर्जन क्रिया को स्वानुभूति एवं संवेदना के बल पर मौलिक काव्य-कृतियों के निर्माण में नियोजित करते हैं तो कभी वे अन्य ग्रन्थकारों द्वारा प्रकट किए गए भावों एवं विचारों को स्वशक्ति के द्वारा काव्य रूप में अनूदित भी कर देते हैं। ऐसे अनूदित काव्यों में अनुवादक कवि का यह दावा तो नहीं रहता कि उसने कोई मौलिक भावाभिव्यक्ति की है, किन्तु उसे इतना सन्तोष अवश्य होता है कि वह किसी अन्य प्रतिभाशाली कवि, लेखक अथवा ग्रन्थकार की किसी महत्त्वपूर्ण कृति को स्वभाषा में काव्यानुवाद के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा है।

आर्यसमाज की निष्ठा आर्यजाति के मान्यता प्राप्त वेदों, उपनिषदों तथा अन्यान्य शास्त्र ग्रन्थों के प्रति रही है। फलतः इन ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन भी आर्यसमाज में सदा से रहा है। आर्यसमाज से सम्बद्ध कवियों ने वेदों के अनेक सूक्तों, उपनिषदों तथा अन्य शास्त्र ग्रन्थों को हिन्दी काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। यहाँ हम पृथक्-पृथक् शीर्षकों के अन्तर्गत ऐसे अनूदित काव्य तथा अनुवादकर्त्ता कवियों का विवरण प्रस्तुत करेंगे।

सामवेद (पूर्वार्चिक) का रामनिवास विद्यार्थी कृत काव्यानुवाद

मेरठ जिले के ग्राम फजलपुर निवासी रामनिवास विद्यार्थी ने शिक्षक के रूप में अपना जीविकोपार्जन किया। वेदमन्त्रों को पद्य के रूप में ढालना उनका रुचि का विषय रहा है। आपने सामवेद (पूर्वार्चिक) का पदार्थ सहित गीति काव्य में भावानुवाद किया जो 1983 में प्रकाशित हुआ है। उत्तरार्चिक का अनुवाद भी वे कर चुके हैं जो अद्यापि अप्रकाशित है। सामवेद के इन मन्त्रों के अभिप्राय को अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्होंने इन गीतों को कुछ अधिक विस्तार दिया है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

मूलमंत्र-अग्निं दूत वृणीमहे होतारंविश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।। (आग्नेय पर्व 1।3)
संसार के उजाले सम्पूर्ण ज्ञान वाले।
तुमको वरण करें हम हे दिव्य दान वाले।
इस विश्वयाग के हो तुम सर्वश्रेष्ठ कर्त्ता।
पालक तुम्हीं हमारे जीवन विधान वाले।।

इस काव्यानुवाद की भाषा सरल, प्रसादपूर्ण तथा प्रांजल है। 320 ऋचाओं का उनका किया एक अन्य पद्यानुवाद 'ऋचाओं की छाया' में 1970 में प्रकाशित हो चुका है।

सामवेद संहिता–भाषा काव्यानुवाद प्रकाशवती शास्त्री कृत

ऋषि दयानन्द को ही इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने वेद के पठन-पाठन का अधिकार मनुष्यमात्र को दिया, जिसमें वय, वर्ण, जाति, लिंग आदि किसी प्रकार का भेद नहीं है। फलस्वरूप भारत की महिलाओं ने भी वेदाध्ययन में रुचि प्रदर्शित की तथा वेदविद्याओं पर वे अधिकारपूर्वक अपने विचार प्रकट कर सकीं। सामवेद का भाषा काव्य में अनुवाद करने का श्रेय श्रीमती प्रकाशवती (दिल्ली) को है। इनका जन्म लाहौर में हुआ। आपका अध्ययन शास्त्री और एम.ए. (हिन्दी) तक का है। रघुमल आर्य कन्या विद्यालय नई दिल्ली में आचार्या के पद से आपने अवकाश ग्रहण किया और समाज सेवा में लग गई। सामवेद का उनका किया यह अनुवाद अत्यन्त संक्षिप्त है। इसे हम मन्त्रों का छायानुवाद कह सकते हैं। एक उदाहरण देखें–भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः (उत्तरार्चिक नवम प्रपाठक अ. 21) का संक्षिप्त अनुवाद इस प्रकार है–

यज्ञ की दिव्य शक्ति पाके कानों को भद्र सुनावें।
आँखों से पावन दृश्य लखें, अंगों को पूर्ण सशक्त बनावें।।

इसी शैली में सम्पूर्ण संहिता का पद्यानुवाद कर श्रीमती प्रकाशवती ने पुरातन विदुषियों के आदर्श को मूर्त किया है।

पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड कृत सामसंगीत सुधा

वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् तथा लेखक पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड को काव्य प्रतिभा भी मिली थी। उन्होंने सामवेद का अंग्रेजी अनुवाद तो किया ही है, कतिपय साम मन्त्रों का काव्यानुवाद भी किया जो 2030 वि. (1966) मे प्रकाशित हुआ। सामवेद का प्रथम मन्त्र है–

अग्न आयाहि वीतये।
गृणानो हव्य दातये।
निहोता सत्सि बर्हिष।।

इसका पं. धर्मदेव कृत काव्यानुवाद देखें–

आओ देव हमारे हिय में ज्ञान ज्योति जगाने को।
पाप ताप जो त्रिविध हमारे उनको दूर भगाने को।
हम जो तेरी स्तुति करते हैं भक्ति शक्ति का दे दो दान।
दो उपदेश शुभान्तर्यामिन् जिससे हो सब विध कल्याण।।

मन्त्र गत भावों की इस अनुवाद में पूर्णरूप से रक्षा हुई है।

श्रीमती मृदुलकीर्ति कृत सामवेद का समश्लोकी पद्यानुवाद

सामवेद का सरल हिन्दी पद्यों में अनुवाद करने वाली श्रीमती मृदुल कीर्ति का जन्म पीलीभीत जनपद के कस्बे पूरनपुर में डा. सुरेन्द्रनाथ के यहाँ 1953 में हुआ। इस अनुवाद को प्रकाशित करने का श्रेय श्रीमती राकेश रानी को है जिन्होंने इसे जनज्ञान मासिक के विशेषांक के रूप में नवम्बर 1887 में प्रस्तुत किया। सामवेद के प्रत्येक मन्त्र का समश्लोकी पद्यरूपान्तर दो-दो पंक्तियों में हुआ है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

मूल मंत्र–उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि।। (पूर्वार्चिक आग्नेय काण्ड मंत्र 4)
करें प्रातः सायं स्तुति तेरी हरपल हर क्षण में प्रणाम करूँ।
मम जीवन स्तुतिमय हे प्रभु हो, इक क्षण को भी न विराम करूँ।।

वेद मन्त्रों का काव्यानुवाद

वेद मानव जाति का प्राचीनतम वाङमय ही नहीं अपित प्राचीनतम काव्य भी है। वैदिक परम्परा के अनुसार यह ईश्वरीय ज्ञान है जिसे सृष्टि के प्रारम्भ काल में परमात्मा ने मानव जाति के हितार्थ मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के माध्यम से प्रस्तुत किया था। वस्तुतः वेदों में विभिन्न आध्यात्मिक, दार्शनिक, नैतिक और धार्मिक विषय वर्णित हुए हैं, परन्तु वेद मन्त्रों में वर्णित सामाजिक तथा अन्य लौकिक सन्दर्भो का महत्त्व भी कम नहीं है। यहाँ यह स्मरणीय है कि ये वेद मन्त्र काव्य तत्त्वों से परिपूर्ण हैं। इनमें रस, अलंकार, ध्वनि, सौन्दर्य-चित्रण तथा कल्पना आदि काव्य के विभिन्न तत्त्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में यदि वेदों को काव्य कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। स्वयं वेदों की अन्तःसाक्षी भी उन्हें परमात्मा का दिव्य काव्य ही कहती है जो न तो कभी मरता है और न जीर्ण होता है।[1]

---

1. देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति (अथर्व. 10। 8। 32)

आर्यसमाज के धर्मान्दोलन की तो आधारशिला ही वेदों पर रखी गई थी। अतः वेदों के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय आर्यसमाज के माध्यम से किए गए। वैदिक चर्चा को ही आर्यसमाज ने पुनरुज्जीवित नहीं किया, अपितु उसने वेदों के वास्तविक अभिप्राय तथा वैदिक शिक्षाओं की उदात्तता की ओर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। इसी प्रसंग में वेदों के विभिन्न भाष्य, अनुवाद, टीका, एवं व्याख्याएँ आदि लिखी गई। कविप्रतिभा सम्पन्न आर्यसमाजी विद्वानों ने वेदों के अनेक सूक्तों, अध्यायों तथा प्रसंगों का हिन्दी पद्यों में अनुवाद किया। कहीं-कहीं यह अनुवाद शब्दानुवाद मात्र होकर रह गया, तो अन्यत्र मन्त्र निहित भावों का पल्लवन कर इन कवियों ने मन्त्रगत अभिप्राय को विशद भी किया। इस प्रसंग में यह लिख देना उचित ही है कि हिन्दी की महीयसी कवयित्री महादेवी वर्मा ने भी वेदमन्त्रों का सफल काव्यानुवाद कर आर्यसमाजी कवियों की परम्परा का ही अनुगमन किया है। यहाँ हम वेद के ऐसे ही कुछ काव्यानुवादों की चर्चा करेंगे।

सत्यभूषण योगी कृत वेद मन्त्रों का काव्यानुवाद

गुरुकुल कांगड़ी के लब्ध प्रतिष्ठ स्नातक श्री मनोहर विद्यालंकार ने श्री लक्ष्मीः शीर्षक ग्रन्थ में कुछ ऐसे वेद मन्त्रों का संकलन किया है जो श्री (शोभा) तथा लक्ष्मी (धन, सम्पत्ति, वैभव) से सम्बन्धित हैं। सत्यभूषण योगी ने इन मन्त्रों का सुन्दर काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है। 104 मन्त्रों के इस संग्रह में अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के ही हैं। 'सक्तुमिव तितउना' (ऋ. 10.71.2) इस प्रसिद्ध मन्त्र का काव्यानुवाद श्री योगी ने इस प्रकार किया है–

लक्ष्मी शोभा गरिमा महिमा मंजुलता भद्र मनोहरता।
उसकी वाणी में रहती है मनुज मनन जो प्रतिपल करता।
मन की छलनी में वाणी को जन सक्तु समान छान बोले।
मनन, विवेचन, विश्लेषण कर मनुज यहाँ अपना मुख खोले।
मनन, करे तो मनुज, शक्तिशाली हो जाता है उसका मन।
सखि जन सख्य भाव से उसके निकट बैठते फुल्ल वदन।।

वीर भावना एवं शत्रु विजय के भावों को अभिव्यक्त करने वाले वेद मन्त्रों का एक संग्रह 'दुर्गा विजय' शीर्षक श्री मनोहर विद्यालंकार द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसमें ऋग्वेद के दशम मण्डल के 103 वें सूक्त के अतिरिक्त चारों वेद संहिताओं के वीररसपरक तथा विजयभावना द्योतक मन्त्र संकलित किए गए हैं। श्री सत्यभूषण योगी ने इन्हीं मन्त्रों का सरस काव्यानुवाद उक्त 'दुर्गा विजय' ग्रन्थ में किया है। इन वेद मन्त्रों में आर्यो के प्रमुख देवता 'इन्द्र' का वर्णन है। वेद वर्णित यह 'इन्द्र' राष्ट्र का नेता, सेनापति तथा वीर पुरुषों का नायक है। इसी के नेतृत्व में युद्ध कर

सेनाएँ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करती हैं। वीर भावापन्न इस मन्त्र संग्रह का अनुवाद भी कवि योगी द्वारा ओजपूर्ण शैली में किया गया है। 'अस्माकमिन्द्र समृतेषु' (ऋ. 10.103.11) मन्त्र की काव्यमय व्याख्या द्रष्टव्य है—

हाथ में उठाए जयध्वजा हम बढ़ते हैं।
सज्जनों का संघ रहा बढ़, इन्द्र साथ चल।
तान तान बाण मारे इन बाणों की विजय हो।
सौजन्य विवेक श्रम लिए बढ़ते हैं हम।
ये हैं देवभाव कर्म, इनमें अजेय बल।
दिव्य शक्तियाँ तुम्हें पुकारते हैं देव बन।
हम रक्षित हों नित्य अविजेय अविचल।

सत्यभूषण योगी वेदालंकार आर्यसमाज के विख्यात शिक्षाशास्त्री तथा गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य प्रो. रामदेव के पुत्र हैं। इनका जन्म 14 नवम्बर 1917 को हुआ। सं. 1995 वि. में इन्हें वेदालंकार की उपाधि प्राप्त हुई और ये गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक बने। सेंट स्टीफेन्स कॉलेज दिल्ली में ये वर्षो तक हिन्दी तथा संस्कृत के प्राध्यापक पद पर कार्य करते रहे। हिन्दी में इनकी कुछ अन्य काव्य रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं जिनके नाम हैं—योगी का वीर काव्य, योगी की मधुशाला तथा योगी का सोऽहं काव्य।

यजुर्वेद के विभिन्न अंशों का काव्यानुवाद

ऋग्वेद यदि स्तुति प्रधान है तो यजुर्वेद मनुष्य के सांसारिक एवं पारमार्थिक हितों के अनुष्ठान की दृष्टि से किए जाने वाले नाना कर्तव्य कर्मो का विधान करता है। इस वेद की कुल मन्त्र संख्या 1975 है तथा यह 40 अध्यायों में विभक्त है। आर्यसमाज के कवियों ने यजुर्वेद के 31वें (पुरुषाध्याय) तथा 40वें अध्याय को ही प्रायः काव्यानुवाद के लिए चुना है। यदा-कदा अन्य मन्त्रों तथा प्रकरणों को भी काव्यरूप प्रदान किया जाता रहा है। यहाँ हम प्रथम यजुर्वेदीय पुरुष सूक्त (31वें अध्याय) के अनुवादों का उल्लेख करेंगे।

डा. सूर्य देव शर्मा कृत पुरुष सूक्त का पद्यानुवाद (2009 वि. (1952 ई.) में आर्य साहित्य मण्डल अजमेर से प्रकाशित) यह अनुवाद वेदमन्त्रों के पदार्थ को प्रस्तुत करने के पश्चात् दिक्पाल छन्द में किया गया है। उदाहरण द्रव्टव्य है—

'वेदाहमेतं पुरुषं महन्तं' (31-18) का अनुवाद—

उस सूर्य रूप विभु को मैं श्रेष्ठ जानता हूँ।
तम से परे पुरुष को सुमहान मानता हूँ।

जन जान कर उसी को दुख मृत्यु पार करता।
है अन्य मुक्ति का पथ कोई न दृष्टि पड़ता।।

इसी पुस्तक में यजुर्वेद के 32 वें अध्याय के 16 मन्त्रों को भी दिक्पाल छन्द में अनूदित किया गया है। ध्यातव्य है कि ये सभी मंत्र आध्यात्मिक भावों का निरूपण करते हैं तथा परमात्मा के दिव्य स्वरूप को अभिव्यक्ति देते हैं।

श्री कृष्णलाल कुसुमाकर लिखित वेद वीणा

फीरोजाबाद निवासी स्व. कृष्णलाल श्री कुसुमाकर आर्यसमाज के प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। इन्होंने वेद वीणा शीर्षक से यजुर्वेद के 31 व 32 वें अध्याय का सुन्दर काव्यानुवाद किया है। ग्रन्थ के प्राक्कथन में डा. हरिदत्त शास्त्री ने प्रशस्ति रूप में ठीक ही लिखा है कि—'काव्य का सरस प्रवाह वेद के गम्भीर रहस्य को ऐसा आत्मसात् किए बैठा है कि पढ़ने से मन नहीं उचटता।' वस्तुतः वेद मन्त्रों के गूढ़ार्थ को कुसुमाकर ने सरल एवं सुबोध शैली में व्यंजित किया है। यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है—

'अद्भ्यः सम्भृतः' (31-17) मन्त्र का काव्यार्थ—

अवनि जल सूर्य आदिक कार्य का कारण विधाता है।
जगत् स्रष्टा सभी में पूर्व से विश्राम पाता है।
अनेकों रूप देता विश्व को विज्ञान दाता है।
उसी विधि का विविध विधि से जगत् गुणगान गाता है—
करो आदेश प्रभु पालन बनो वर वेदपथगामी।
तुम्हीं देवत्व पाओगे, बनोगे मोक्ष के स्वामी।।

पं. ओंकार मिश्र 'प्रणव' कृत पुरुष सूक्तम्

आर्यसमाज के लब्ध प्रतिष्ठ कवि श्री प्रणव ने पुरुष सूक्त का पद पाठ, अन्वय तथा हिन्दी एवं संस्कृत व्याख्या युक्त जो संस्करण तैयार किया है उसमें प्रत्येक मन्त्र का सरल हिन्दी पद्यार्थ भी दिया गया है।

उदाहरण-द्रष्टव्य है—

'तस्माद् यज्ञात्' (36-9) मन्त्र की व्याख्या पद्य शैली में कवि ने इस प्रकार की है—

मानवी जीवन लता के जो कि शुचि आधार हैं।
वे ज्ञान के भण्डार अनुपम वन्द्य वेद विचार हैं।
'ऋग्यजु' जो 'साम' सुन्दर या अथर्वण रूप है।
वे भी पिता प्रणवेश की रचना अनन्त अनूप है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्रणव का पुरुष सूक्त का यह रूपान्तर ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त को आधार बनाकर किया गया है जिसमें केवल 16 मन्त्र ही हैं।

रुद्र स्तोत्र अथवा भक्त की पुकार

महात्मा आनन्द स्वामी जी के पुत्र तथा मिलाप के सम्पादक स्व. श्री रणवीर ने यजुर्वेद के 16वें रुद्राध्याय का अतुकान्त काव्य शैली में अत्यन्त सुन्दर भावानुवाद किया है। 'नमः शम्भवाय च' (16-41) इस प्रसिद्ध नमस्कार मन्त्र का स्वतन्त्र छन्द में अनुवाद देखिए--

पिता।
तुम शम्भु हो।
कल्याण और मुक्ति को देने वाले।
तुम मयोभव हो।
सांसारिक सुख और ऐश्वर्य के दाता,
तुम्हीं को नमस्कार हो।
तुम शंकर हो निरन्तर सुख कर,
तुम मयस्कर हो
पाप और पीड़ा से छुड़ाने वाले
तुम्हीं को नमस्कार हो।
तुम शिव हो परितः कल्याण रूप।
और तुम शिवतर हो।
अनन्त कल्याणों की वर्षा करने वाले
तुम्हें नमस्कार हो।
बार बार नमस्कार हो।।

सामवेद का पद्यानुवाद

गुरुकुल भैंसवाल के स्नातक तथा संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् स्व. पं. विद्यानिधि शास्त्री (1911-1991) ने सम्पूर्ण सामवेद का पद्यानुवाद किया है। प्रारम्भ में यह अनुवाद धारावाही रूप से सविता मासिक पत्रिका, (वेद संस्थान अजमेर से प्रकाशित) में प्रकाशित होता रहा। रोड़ महासभा करनाल ने इस अनुवाद के एक अंश--आग्नेयपर्व को 1974 में प्रकाशित किया। समग्र तदनन्तर अनुवाद भी प्रकाशित हुआ।

'प्रतित्यं चारुमध्वरं' (आग्नेय पर्व मन्त्र 16) का अनुवाद द्रष्टव्य है--

हिंसा रहित सुचारु यज्ञ में हम तुमको आहूत करें।
सोमपान के हेतु आइये सब अपना मन पूत करें।

मृत्युंजय मरुतों को भी प्रभु आप साथ मे ले आओ।
निज भक्तों के प्रीति भोज में पूर्ण शान्ति सुख दे जाओ।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के काव्यानुवाद

अथर्ववेद के 12वें क़ाण्ड का प्रथम सूक्त पृथ्वी सूक्त या भूमि सूक्त के नाम से विख्यात है। 63 मन्त्रों के इस सूक्त में चराचर जगत् का धारण एवं पोषण करने वाली धरती माता की महिमा का भावस्फूर्त वाणी में गायन किया गया है। व्याख्याकारों ने इसे विश्व का प्रथम राष्ट्र गीत कहा है। 'माताभूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः' 12.1.12 भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ, इस सत्य की घोषणा प्रथम बार अथर्ववेद के इसी सूक्त में की गई है। यहाँ पृथ्वी के गौरव तथा उसकी नाना मनोरम, रोमांचक तथा मार्मिक झाँकियाँ प्रस्तुत कर मनुष्य के लिए इस मातृभूमि को ही परम आराध्य घोषित किया गया है। आर्यसमाज के अनेक विद्वानों ने इस सूक्त की पाण्डित्यपूर्ण टीकाएँ तथा विशद व्याख्याएँ लिखी हैं। इसी प्रकार प्रतिभा सम्पन्न कवियों ने इस सूक्त का काव्यानुवाद भी किया है। पृथ्वीसूक्त के इन काव्यानुवादों का विवरण इस प्रकार है–

डा. सूर्यदेव शर्मा कृत पृथ्वीसूक्त का काव्यानुवाद

'वैदिक राष्ट्रगीत' के शीर्षक से यह अनुवाद आर्य साहित्य मण्डल अजमेर द्वारा 2009 वि. (1952 ई.) में प्रकाशित हुआ। अनुवाद में कवि ने रुचिरा, दिक्पाल, रोला, वीर आदि छन्दों का प्रयोग किया है। अनुवाद पर्याप्त संक्षिप्त है जिससे मन्त्र का तात्पर्य मात्र जाना जाता है। 'यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे' (12.1.5) का अनुवाद निम्न प्रकार किया गया है–

पूर्व समय मे पितर हमारे जहँ स्वच्छन्द विचरते थे।
आर्य वीर जहँ असुर जनों को सब प्रकार संहरते थे।
अश्व गऊ पशु पक्षी को जो अतिशय सुख देने हारी।
वही मही दे हमें तेज यश गुण गरिमा गौरव भारी।

पं. ब्रह्मदत्त सोढा प्रणीत राष्ट्र निर्माण की वेदोक्त योजना

अजमेर निवासी ब्रह्मदत्त सोढा ने पृथ्वीसूक्त का सरल भावार्थ पद्यबद्ध कर 2020 वि. में वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित कराया। 'यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे' (12.1.5) मन्त्र के काव्यानुवाद को यहाँ उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जाता है–

भूमाता पर पूर्व जनों ने विविध भाँति के यज्ञ किए।
दानव असुर हुए पराजित देव वृन्द कृतकृत्य हुए।

अश्व गौ पशु पक्षी विचरें हो अवध्य माता मुझ पर।
वर्चस्वी तेजस्वी सब हों तेरे शरणागत होकर।
धर्मपूर्वक प्राप्त करें धन, यश श्री से होवे सम्पन्न।
वीतराग योगी ज्ञानी हों निशिदिन रहें अपूर्व प्रसन्न।

विश्व का प्रथम राष्ट्रगीत

आगर (मध्यप्रदेश) निवासी पं. गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र' हिन्दी के वयोवृद्ध लेखक थे। आपने आर्यसमाज के साहित्य को अपनी अनेक रचनाओं से सम्पन्न किया है। इन्द्र जी द्वारा किया हुआ पृथ्वीसूक्त का पद्यानुवाद आर्यकुमार सभा किंग्जवे दिल्ली द्वारा 1964 ई. में प्रकाशित हुआ। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस ग्रन्थ की भूमिका लिखी थी तथा मध्यप्रदेश शासन ने इस कृति के लिए कवि को 500 रु. प्रदान कर पुरस्कृत किया था। यह अनुवाद सरल, संक्षिप्त तथा मूल के भावों को अधिक स्पष्ट करता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—आलोच्य सूक्त के मन्त्र 'जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं' (12.1.85) को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

विविध धर्मपालक जनता और विविध वाणियों के विद्वान्।
सब जीवों की पालक है तू धारक सुखदा क्रोड़स्थान।।
सौम्य शान्त सुरभिसमभूमे ! धनैश्वर्य की अविरलधार।
हमें निरन्तर दान कीजिए बिनती है यह बारम्बार।।

मास्टर दुर्गाप्रसाद कृत स्वाध्याय मंजरी

आर्यसमाज की पुरानी पीढ़ी के विद्वानों में मास्टर दुर्गाप्रसाद का नाम जाना-पहचाना है। उन्होंने अपना अधिकांश साहित्य अंग्रेजी में ही लिखा था, किन्तु स्वाध्याय मंजरी शीर्षक से उन्होंने 101 वेद मन्त्रों की अत्यन्त भावपूर्ण काव्यमयी व्याख्या की है। स्वाध्याय मंजरी का प्रकाशन 27 सितम्बर 1916 ई. को विरजानन्द प्रेस लाहौर से हुआ था। इसमें ऋग्वेद के विभिन्न सूक्तों के 84 तथा यजुर्वेद के 40 वें अध्याय के 17 मन्त्र काव्य शैली में प्रस्तुत किए गए हैं। मास्टर जी ने मन्त्रों के भावों को अपने काव्य के माध्यम से अत्यन्त विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। अतः दोहा और चौपाई की शैली इस अनुवाद में प्रयुक्त हुई है। ऋग्वेद के अन्तिम संज्ञान सूक्त के द्वितीय मन्त्र 'संगच्छध्वं संवदध्वं' का भावार्थ और भाव पल्लवन कवि ने इस प्रकार किया है—

व्यवहारों में न्याय से मिलकर करो विचार।
ज्ञानी पुरुषों के सदृश भाग करो स्वीकार।
जब सब मिल सबके लिए पोषण का लें काम।

रहे न तब चोरी कपट दुख दरिद्र का नाम।

उपर्युक्त दोहों के पश्चात् मन्त्रगत भाव को उपबृंहित करते हुए कवि ने निम्न चौपाइयाँ लिखी हैं–

करो कर्म सबके हितकारी।
पर हानिहि को देउ बिसारी।।
जैसे एक कुटुम्ब के भाई।
मिल कर रहें अरु करें भलाई।
सबहिं अर्थ धन अर्जन करते।
सुख दुख में सब मिल कर रहते।।

अहिन्दी भाषी पंजाब के एक साहित्यकार द्वारा बयासी वर्ष पूर्व किया गया यह अनुवाद उसके काव्य प्रेम का परिचायक है।

पं. सत्यकाम विद्यालंकार कृत वेद मन्त्रों का गीति शैली में काव्यानुवाद

गुरुकुल कांगड़ी के लब्ध प्रतिष्ठ स्नातक, प्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार स्व. पं. सत्यकाम विद्यालंकार (1905 ई.-1991) ने वेद मन्त्रों का मार्मिक गीति शैली में अनुवाद किया है। उनका इस प्रकार का प्रथम संग्रह 'वैदिक वंदना गीत' गुरुकुल कांगड़ी की स्वाध्याय मंजरी ग्रन्थमाला (सं. 29) के अन्तर्गत 2017 वि. में प्रकाशित हुआ। कालान्तर में 'वैदिक वंदन' तथा 'वैदिक गीतांजलि' भी प्रकाशित हुई। सरस्वती विहार नई दिल्ली ने 52 मन्त्रों की इनके द्वारा रचित गीतिमयी व्याख्याओं को 'वेद पुष्पांजलि' शीर्षक से 1977 ई. में प्रकाशित किया। 'सहस्र शीर्षा पुरुषः' तथा 'एतावानस्य महिमा' पुरुष सूक्त के इन दो मन्त्रों को कवि ने एक संक्षिप्त गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया है–

प्रभु का है अनन्त विस्तार। द्यावा पृथ्वी के इस पार।
सर्वव्यापक परम पुरुष के शत सहस्र हैं शीर्ष नयन।
दशों दिशाओं के अनन्त में विचरण करते दिव्य चरण।
प्रभु का है अनन्त विस्तार। द्यावा पृथ्वी के उस पार।
प्रभु का ही विस्तार विश्व है प्रभु असीम है अगम अपार।
एक चरण में यह जग सारा, अमृत तीन चरण उस पार।
प्रभु का है अनन्त विस्तार द्यावा पृथ्वी के उस पार।।

वेदव्रत वेदालंकार की वेद गीतांजलि

1936 ई. में गुरुकुल कांगड़ी से वेदालंकार की उपाधि प्राप्त करने वाले श्री वेदव्रत

मूलतः बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। साहित्य में इनकी आरम्भ से ही अभिरुचि रही। कालान्तर में ये अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी में रहे। वहीं 1944 में इनका निधन हुआ। वेद गीतांजलि का प्रकाशन गुरुकुल कांगड़ी स्वाध्याय मंजरी शीर्षक ग्रन्थमाला के अन्तर्गत नवम पुष्प के रूप में हुआ।

आलोच्य ग्रन्थ में वेदों के कतिपय सूक्तों के ऋषि, देवता, छन्द तथा अलंकार उल्लेख करने के पश्चात् पदच्छेद तथा भावार्थ दिया गया है। तदनन्तर मन्त्र के भाव को शैली में अनूदित कर प्रस्तुत कर दिया गया है। हिन्दी की विख्यात मासिक सरस्वती के अक्टूबर 1938 के अंक में इसकी समीक्षा प्रकाशित हुई थी। समीक्षा प्रो. गोपालस्वरूप भार्गव ने आर्यसमाज में विद्यमान काव्य कला रसिकों की भावना का उल्लेख करते हुए लिखा था। "कुछ दिन पहले समाजी भाई केवल मस्तिष्क से ही काम लेते थे, किन्तु अब उनके वेद भाष्यों में हृदय की भावुकता-परिचय मिलने लगा है।"

निश्चय ही काव्य के रस में निमग्न होकर ही पं. वेदव्रत ने कुछ चुने हुए मन्त्रों को यह रूप प्रदान किया है। उदाहरणार्थ—

> तिस्तोवाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।
> हरिरेति कनिक्रदत्।। (ऋग्वेद 10/33/4)

इस मन्त्र को कविता का रूप प्रदान करने में कवि का अद्भुत कौशल दिखाई देता है—

> दिन भर थककर भूखे बछड़े को
> माँ की सुधि हुई उसे अब।
> वही रंभाना सुन पड़ता है,
> दिशा दिशा से चैन कहाँ अब ?

वह आई माँ, अहा रसीली, यह दुलार पुचकार। इसी प्रकार अथर्ववेद के 'अष्टचक्र नव द्वारा देवानां पूरयोध्या' इस मन्त्र को कवि ने निम्न प्रकार अनूदित किया है—तीन तीन बार बार आठ चक्र नव द्वार।

> अजेय देवनगरी।
> हिरण्यमयी यहाँ बनी
> ज्योति में सदा सनी।
> स्वर्ग की कला निहार
> तीन तीन बार बार।
> कुबेर का हिरण्य कोष

पूजनीय विगत रोष।
आत्मवान् हीन दोष
सखि अवाक् जग री।

ऋग्वेद के वरुण सूक्त उपासक के दैन्य भाव युक्त आत्मनिवेदन की दृष्टि से अपूर्व हैं। आराध्य के सम्मुख भक्त अपनी विपन्नता का संकेत करते हुए उसकी अनुकम्पा की चाहना करता है। इसी वरुण सूक्त का प्रसिद्ध मन्त्र है–

मोषु वरुण मृन्मयं गृहे राजन्नहं गमम्।
मृडा सुक्षत्र मृडय। (ऋग्वेद 7/89/1)

वेद गीतांजलि में इसका जो अनुवाद हुआ है वह भक्ति के स्रोत को ही प्रवाहित कर देता है–

मट्टी का घर बना बसेरा,
वरुण कहूँ क्या इसको मेरा।
विपदाओं के त्राण, निरन्तर,
सुन्दर बरसो प्रिय उर अन्तर।।

वैदिक अमूर्त परमेश्वर की यही उपासना क्या हिन्दी के रहस्यवादी कवियों की प्रेरणा नहीं बनी थी ? इसका उत्तर तो हाँ में ही दिया जा सकता है।

इसी सूक्त का चौथा मन्त्र आगे चलकर 'जल में मीन पियासी' जैसी रहस्यपूर्ण उक्तियों और उलटबासियों का प्रेरणा स्रोत बना था। मन्त्र इस प्रकार है–

अपां मध्ये तस्थिवांसम्। तृष्णाऽविदज्जरितारम्।
मृडा सुक्षत्र मृडय।। (ऋग्वेद 7/89/4)

वेद की इस अनुपम आध्यात्मिक अनुभूति पूर्ण सूक्ति को कवि ने इस प्रकार काव्य का रूप दिया है।

खड़ा हुआ मैं बीच सरोवर
तृषित प्यास से हूँ व्याकुल पर।
यह खारी जल हे प्रिय सुन्दर,
मंगल घन बरसो उर अन्तर।।

सोम देवता का प्रसिद्ध मन्त्र है–

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः। (ऋग्वेद 9/1/1)

इसका सरस अनुवाद हिन्दी के हालावादी काव्य से कम मादक तथा नशीला नहीं है—

बहती नवल नशीली धार।
झूम झूम मदमाती लाती।
सुख संजीवन सार।
रोम रोम बन ओठ चूसता
ऐसा सरस खुमार।
मेरी देवपुरी के राजा
करो ग्रहण उपहार।
बहती नवल रसीली धार।।

निश्चय ही वेद मन्त्रों के इस काव्यानुवाद ने काव्यरसिकों का मनोरंजन तो किया ही है, पाठकों को वेद मन्त्रों में निहित काव्य सौन्दर्य तथा उसकी सरसता से भी परिचित कराया है।

वेद मन्त्रों का भाव पल्लवन

पद्यानुवाद की अपेक्षा भावपल्लवनपूर्वक मूल रचना के कथ्य को प्रस्तुत करना अधिक परिश्रमसाध्य एवं कठिन होता है। हिन्दी के विख्यात समालोचक विद्वान स्व. डा. मंशीराम शर्मा ने अपनी संध्या संगीत, भक्ति तरंगिणी तथा श्रुतिसंगीतिका आदि काव्य कृतियों में वेद के प्रेरणादायी विचारों को काव्य रूप में पल्लवित करते हुए जीवन को अवसाद, निराशा आदि से मुक्त कर स्फूर्ति एवं दीप्ति प्रदान करने की सामग्री प्रदान की है। 'श्रुति संगीतिका' इस प्रकार की उनकी प्रमुख कृति है। इसमें 'निवेदन' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए लिखा है—'श्रुति संगीतिका' में मुख्यतः मन्त्रगत भावों का ही पल्लवन है। केन्द्रस्थ भाव के निकट रह कर यदि कुछ शाखाओं एवं प्रशाखाओं में विहरण का दृश्य दिखाई दे, तो उसे भी उन्हीं का प्रसाद समझिए। सर्वप्रथम जब वेद मन्त्रों पर कुछ लिखने बैठा, तब लघुकाय संस्कारी छन्दों में ही वाणी फूटी। ये छन्द मध्याह्न के अन्तर्गत हैं।

आलोच्य कृति प्रातः, मध्याह्न, सांय तथा वैकालिक इन चार शीर्षकों में विभक्त है। प्रथम प्रातः शीर्षक वर्ग में 33 कविताएँ हैं। इनमें से अधिकांश गीत शैली में हैं। ऋग्वेद का प्रथम सूक्त अग्नि सूक्त है। इसमें अग्निदेव को पुरोहित, यज्ञ का देवता, ऋत्विक्, रत्नों का धारण कराने वाला, प्राचीन तथा अर्वाचीन ऋषियों का पूज्य कहा है। इस सूक्त के प्रारम्भ के तीन मन्त्रों का भाव पल्लवन करते हुए कवि ने लिखा—

अग्नि सर्व अग्रणी पुरोहित है जगती का
सद्यः हितकारी, ज्ञान ध्यान यज्ञ साधना।
पूर्व या नवीन ऋषियों का ऋषि एक वही।
करते उसी की दिव्य देव समाराधना।।

ऋग्वेद के अन्य मन्त्र जो संग्रह में काव्य रूप धारण कर आए हैं। उनमें कतिपय निम्न हैं—

त्वमस्य पारे रजसो व्योमन्—ऋ. 1.4.14.
पाहि नो अग्ने रक्षसः—ऋ. 1.3. 10-15.

इसी प्रकार यजुर्वेद के 'गणानां त्वांगणपति' (यजुर्वेद 23/19) आदि मन्त्रों का भी काव्यमय भाव पल्लवन एक सुन्दर गीत के रूप में प्रस्तुत किया गया है—

मेरे प्रिय धन मेरे गणेश।
मैं कब से तुम्हें पुकार रहा हूँ आओ मेरे मंगल अशेष।

विभिन्न कविताओं के शीर्षक ही उनमें निहित भावों की व्यंजना करते हैं। अग्नि, पतितपावन, विश्वचेतना, अकलंक, महातेज, विज्ञानधाम, पिता, मनीषी, कवे आदि सम्बोधनात्मक कविताएँ परमसत्ता के विविध रूपों की झलक प्रस्तुत करती हैं तो निकटता, आस्था, चरणाश्रय प्रपत्ति, दर्शन, विनय, पुकार, आत्म-निवेदन आदि शीर्षकों के अन्तर्गत जो कविताएँ हैं वे कवि की मनोदशा तथा उसके भक्तिप्रवण भावों का चित्रण करती हैं।

श्रुतिपर्णा—डा. विष्णुदत्त राकेश द्वारा वेद मन्त्रों का हिन्दी काव्यान्तरण

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के हिन्दी विभाग के आचार्य डा. विष्णुदत्त राकेश जाने-माने समीक्षक तथा काव्यमर्मज्ञ हैं। 8 मार्च 1941 को उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर जनपद के एक गाँव में उनका जन्म हुआ। एम.ए., पी-एच.डी. तथा डी.लिट. आदि उपाधियाँ प्राप्त करने के अतिरिक्त वे दीर्घकाल से उच्चस्तरीय लेखन में लगे हैं। श्रुतिपर्णा शीर्षक 77 वेदमन्त्रों का भावपूर्ण काव्यानुवाद कर उन्होंने वैदिक ज्ञान को कविता रसिकों के लिए सुलभ बना दिया है। अनुवादक के शब्दों में "श्रुतियों के पर्णों से उड़ती हुई अर्थ गन्धों की छबियों का संकलन ही श्रुतिपर्णा है।" उन्होंने मन्त्रों में निहित अर्थो को अपनी कविताओं द्वारा पल्लवित किया है और मन्त्रों का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखा है कि उन्हीं ऋचाओं का काव्यान्तरण किया जाए जो हमारी आर्ष संस्कृति, धर्म, दर्शन, साधना तथा उत्कृष्ट जीवन मूल्यों के स्पन्दन से ओतप्रोत हों। डा. राकेश द्वारा किया हुआ यह काव्यान्तरण पाठक

को मन्त्र के हार्द तक पहुँचाने में निश्चय ही सफल हुआ है। 'अग्नेनय सुपथा' (यजु. 40/16) को इस प्रकार पद्य का रूप दिया गया है–

अग्निदेव सुखरूप विधाता न्याय मार्ग पर हमें चला।
ज्ञान और विज्ञान, शक्ति दे, हम सबका नित करें भला।
आप्त पुरुष जिस विरज मार्ग से गए आपकी छाया में।
क्या वह अक्षय तृषा तुष्ट होगी इस मरु सी काया में।
बचा हमें तू कुटिल पाप से बना हमें तू ज्योति स्वरूप।
हम तेरे जैसे हो जाएँ किया करें नित स्तवन अनूप।।

कुछ मन्त्रों के अनुवाद गीत रूप में भी किए गए हैं। द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया (ऋग्वेद 1।164।20) जीवेश्वर भेद का कथन करने वाले इस प्रसिद्ध मन्त्र को जिस गीतिका के द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया उसका आरम्भ इस प्रकार होता है–

डाली पर बैठा विहग युगल,
है एक शान्त दूसरा चपल।।

वस्तुतः श्रुतिपर्णा वेदमन्त्रों के काव्यानुवाद का एक अनूठा प्रयास है।

आर्यसामाजिक पत्रों में वेद मन्त्रों पर आधारित संक्षिप्त कविताएँ देने की परिपाटी बहुत पुरानी है। प्रायः इन पद्यों में मन्त्रों का भावानुवाद ही रहता है। यदि इस प्रकार के मन्त्रों के काव्यानुवादों का विस्तृत अध्ययन किया जाए, तो उसके लिए बहुत स्थान अपेक्षित होगा। तथापि कुछ उदाहरण देना आवश्यक है। आर्य (लाहौर) के श्रावण 1981 वि. के अंक में ऋग्वेद के इस प्रसिद्ध मन्त्र–

कारुरहं ततोभिषगुपल प्रक्षिण्णी नना।
नाना विद्या वसूयवो नुगाइवतस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्राव।। (9.112.3)

का भावार्थ निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है–

पुत्र पुरोहित तात वैद्य हैं
माता चूर्ण पिसनहारी।
वृत्ति मात्र करते धन संग्रह
काम धेनु सम उपकारी।
विविध वृत्ति कर संयत इन्द्रिय
सभी मोक्ष के अधिकारी।।

वेद की धारणा है कि एक ही परिवार के व्यक्ति भिन्न-भिन्न व्यवसायों और कार्यों को अंगीकार करते हुए भी मोक्षाधिकारी बन सकते हैं, यदि वे स्वकर्तव्य पालन

में पूर्ण निष्ठा रखें। तभी तो मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहता है कि मैं स्वयं तो कारु (संस्कार कर्म सम्पन्न कराने वाला पुरोहित) हूँ जब कि मेरे पिता वैद्यक वृत्ति को अपनाए हुए हैं, उधर मेरी माता तो पास-पड़ोस के लोगों का आटा पीसकर कुछ कमा लेती है। इस प्रकार एक ही परिवार के हम लोग विभिन्न कर्म करते हुए भी परमात्मा के आनन्द रूपी मोक्ष को प्राप्त करने के अधिकारी बन सके हैं।

उपनिषद् ग्रन्थों का पद्यानुवाद

वैदिक सूक्तों तथा वेदों के स्फुट मन्त्रों का काव्यानुवाद करने के साथ-साथ आर्यसमाज के कवियों की दृष्टि उपनिषदों की ओर भी गई। उपनिषद् भारतीय दार्शनिक-चिन्तन के चरम सोपान हैं जहाँ मनुष्य जाति की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई हैं। सरल किन्तु रहस्यपूर्ण शैली में उपनिषद्कार ऋषियों ने परमात्मा एवं आत्मा के स्वरूप, सृष्टि की रचना, संचालन एवं विलय विषयक समस्याओं और प्रश्नों को बड़ी सूझबूझ के साथ हल किया है। प्रामाणिक उपनिषद् ईश से श्वेताश्वतर पर्यन्त 11 ही माने गए हैं। आर्यसमाज के कवियों ने प्रायः ईशोपनिषद् को ही पद्यबद्ध किया है। यहाँ कुछ ऐसे ही अनुवादों का उल्लेख किया जा रहा है।

ब्रह्म विज्ञान—आर्यसमाज के प्रख्यात दार्शनिक विद्वान् पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय के पुत्र स्व. डा. सत्यप्रकाश ने ईशोपनिषद् का समश्लोकी काव्यानुवाद किया जो 1980 वि. में 'ब्रह्मविज्ञान' शीर्षक से कला प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ। 18 पद्यों में समाप्त यह अनुवाद श्री सत्यप्रकाश की काव्यप्रतिभा का श्रेष्ठ परिचायक है 'ईशावास्यमिदं सर्वं' उपनिषद् के इस प्रथम मन्त्र का निम्न अनुवाद द्रष्टव्य है—

माया से जो बना जगत है जीव चराचर का जो स्थान।
व्याप्त सभी यह ईश्वर से हैं अणु अणु में व्यापक भगवान।।
भोग करे सब भोगों को नर होके उनसे पूर्ण विरक्त।
किसका द्रव्य भला यह जग में, तज के इच्छा हो हरि भक्त।।

हितैषी अलावलपुरी ने ईशोपनिषद् गान तथा मुंशीलाल गुप्त ने पद्यात्मक-ईशोपनिषद् (2004 वि.) लिखकर इस लघुकाय ग्रन्थ के अभिप्राय को काव्य माध्यम से प्रकट किया। स्व. ओमशरण 'विजय' का काव्यानुवाद 'दिव्य जीवन' (1963 ई. में विजय-प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित) सरल पद्यों में उपनिषद् के कथ्य को स्पष्ट करता है। एक उदाहरण—'यस्मिन् सर्वाणि भूतानि' (मन्त्र संख्या-7) का विजय कृत पद्यानुवाद—

जो सदा सभी को अपने सम लखता है।
जो प्राणि मात्र में भेद नहीं रखता है।

शत्रु ना मित्र उसका कोई हो सकता,
वह मोह शोक से ग्रस्त नहीं हो सकता।।

कवि प्रतिभा सम्पन्न पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति कृत ईशोपनिषद् का काव्यानुवाद भी सरस तथा भाव पूर्ण है। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' मन्त्र की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है–

करते हुए सदा शुभ कार्यो को जीने की इच्छा कर।
'सौ वर्षों तक मैं जीऊँगा' यही भावना मन में धर।
ऐसे ही निष्काम भाव से यदि प्रियवर तू कर्म करे,
होवे लिप्त न कार्यों में सुख भी अनुपम लाभ करे।।

ईशावास्योपनिषद् से भिन्न अन्य उपनिषदों के पद्यानुवाद करने में कवियों ने रुचि नहीं दिखलाई। कारण स्पष्ट है। केन, कठ तथा प्रश्न एवं मुण्डक आदि चार पाँच उपनिषदों को छोड़कर अन्य उपनिषदों में दार्शनिक जटिल तत्त्वों की प्रधानता है अतः उन्हें काव्य का रूप प्रदान करना भी कठिन है। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषदों का आकार तो दीर्घ है ही, उनका वर्ण्य विषय भी दुरूह तथा क्लिष्ट है। तथापि श्वेताश्वतर उपनिषद् का काव्यानुवाद श्री सत्यप्रकाश ने किया है जो 1980 वि. में पूर्व चर्चित 'ब्रह्मविज्ञान' के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ। 'स्वभावमेके कवयो वदन्ति' श्वेताश्वतर-उपनिषद् के छठे अध्याय के इस प्रथम मन्त्र में यह जिज्ञासा की गई है कि इस संसार चक्र को घुमाने वाली सत्ता कौन है ? कोई उसे स्वभाववश घूमता हुआ बताते हैं तो अन्यों की राय में काल ही इसका कारण है। परन्तु उपनिषद्कार ऋषि के विचारानुसार तो यह ब्रह्मचक्र परमदेव परमात्मा के द्वारा ही चलाया जा रहा है। अनूदित पद्य का सौन्दर्य स्वतः ही प्रकट हो रहा है–

जो है जाता नित्य घुमाता सकल चक्रवत यह संसार।
कोई कवि जन हमें बताते इसका हेतु स्वभाव अपार।।
भटके भूले भ्रम में कुछ जन इसका हेतु बताते काल।
पर है कारण गुप्त चक्र का ईश्वर यश जो महा विशाल।।

पं. प्रकाशवीर व्याकुल कृत उपनिषदों का काव्यानुवाद

सत्यार्थप्रकाश के सफल काव्यानुवादक प्रकाशवीर व्याकुल ने ईश, केन, कठ तथा प्रश्न–इन चार उपनिषदों का पद्यानुवाद किया है जो उनके भव्य भारती शीर्षक काव्य संग्रह में समाविष्ट किया गया है। प्राचीन आर्य ऋषियों की इस दार्शनिक मनीषा को पद्य का रूप देने में कवि व्याकुल को अपूर्व सफलता मिली है। ईशोपनिषद् के प्रस्ताविक मन्त्र (ईशावास्यमिदं सर्वं) का यह काव्यमय अनुवाद देखें–

जो सकल जगत् में ओत प्रोत जड़ चेतन में जिसका निवास।
कर त्याग सहित उपभोग मित्र, धन नहीं रहा किसी के पास।।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि (ईश. 2) का पद्यमय रूपान्तर इस प्रकार किया गया है–

शत शत वर्षों तक जी जग में, कर्त्तव्य कर्म का कर पालन।
जिससे हो जीवन सफल तथा छूटे सब कर्मों के बन्धन।।

असुर्या नाम ते लोका (ईश. 3) का भाव निम्न पद्य में सफलतापूर्वक रूपायित किया गया है–

असुरों के हैं वे लोक जहाँ तम तोम भयानक अन्धकार।
जो करे आत्म हनन मानव, मर कर जाता है उसी द्वार।।

केनोपनिषद् के प्रथम खण्ड में ब्रह्म के अनिर्वचनीय रूप का शाब्दिक निर्वचन किया गया है जब कि दूसरे खण्ड में प्राकृतिक शक्तियों से परमात्म शक्ति की श्रेष्ठता को यक्ष-देव संवाद के उपाख्यान के द्वारा समझाया गया है। 'केनेषितं पतित प्रेषितं मनः' केनोपनिषद् की इस उक्ति का पद्यानुवाद इस प्रकार हुआ है–

मन करता किसकी इच्छा से विषय वासना का चिन्तन।
किसके द्वारा प्राण जन्म होते ही करने लगा गमन।।

'ब्रह्मह देवेभ्यो विजिज्ञे' यक्ष-देव उपाख्यान की आरम्भिक उक्ति को कवि व्याकुल ने पद शैली में प्रस्तुत किया है–

एक दिवस देवों पर विजय ब्रह्म ने पाई।
जब हुआ कल्प आरम्भ ब्रह्म की विजय और महिमा जानी।
अग्नि वायु जल इन्द्र आदि देवों ने उसे अपनी मानी।
प्रत्येक देव ने मान स्वयं को बड़ा हुआ था अभिमानी।।

ब्रह्म निरूपण की दृष्टि से कठोपनिषद् को अध्यात्म विधाओं का निकष माना जाता है। प्रकाशवीर व्याकुल ने इस श्रेष्ठ उपनिषद् को भी काव्य का रूप दिया है 'नाविरतो दुश्चरितात्' तथा 'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनं' इन दो औपनिषदी-श्रुतियों का पद्यमय रूपान्तर श्लाघनीय है। इसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

दुश्चरित अशान्त यदि मन हो तो कभी नहीं होता दर्शन।
अत्यन्त समाहित चित्त से ही प्रज्ञान ज्ञान प्रकटे पावन।।
है ब्रह्म क्षत्र जिसका भोजन, औ मृत्यु कही चटनी समान।
सारे जग का रक्षक भक्षक है वही गुप्त और विद्यमान।।

इस प्रकार प्रकाशवीर व्याकुल ने भारतीय अध्यात्म-विज्ञान के आकर रूप उपनषिद् ग्रन्थों को पद्य रूप में प्रस्तुत कर उन्हें जनसाधारण के लिए सुगम तथा हृदयगम्य बना दिया है।

हैदराबाद के निवासी पं. वेदभूषण ने भी ईशोपनिषद् का गीतात्मक अनुवाद जीवनसार शीर्षक से किया गया है। उनके द्वारा 'ईशावास्यमिदं सर्व' इस प्रथम श्रुति को इस प्रकार पद्य का रूप दिया गया है–

इस जगती में जगत् रूप में जो कुछ भी है दीख रहा।
वही ईश है स्रष्टा सबका, कण कण में तल्लीन रहा।
सकल विश्व का स्वामी है वह, भीतर से जो झाँक रहा।
मत ललचा तू पर द्रव्यों पर कर्म सभी के आँक रहा।।

इसी प्रकार केनोपनिषद् का पद्यानुवाद उन्होंने 'कौन सिरजानहार ?' शीर्षक से किया है।

कठोपनिषद् का देवेश भिक्षुकृत पद्यानुवाद

गाजियाबाद जिले के एक ग्राम में उत्पन्न देवीचरण तृतीय आश्रम में देवेश भिक्षु बन गए। पूर्वाश्रम में वे भारत सरकार के रक्षा विभाग में उच्च पदासीन थे। सेवानिवृत्त होने के पश्चात् उन्होंने अपना सम्पूर्ण समय स्वाध्याय तथा लेखन में ही लगाया। इन्होंने कठोपनिषद् का सारगर्भित पद्यानुवाद किया है। उदाहरण के लिए 'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च' (2।25) तथा 'ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके' (3।1) इन दो श्रुतियों का सम्मिलित पद्यानुवाद द्रष्टव्य है–

प्रज्ञा से प्रभु प्राप्त होत हैं, ब्रह्म ज्ञान जिसका ओदन।
कालबली उपसेचन जिसका क्षत्रिय बल जिसका भोजन।
कौन जान सकता है उसको पूर्ण रूप से जो देखे।
दोनों स्थित हृदय गुहा में मिलते ऋषियों के लेखे।
यज्ञ सेतु नचिकेता अग्नि द्वारा उसको तर सकते।
परमाक्षर पर ब्रह्म प्रभू को निर्भय योगी वर सकते।।

अनुवाद में प्रयुक्त प्रत्येक पद्य छः पंक्तियों का है और कुल 28 छन्दों में संक्षेपरीत्या अनुवादक ने इस अनुवाद को समाप्त किया है। एक अन्य विद्वान् वेदपाल प्रभुशरणाश्रित ने 'कठोपनिषद् प्रकाश' शीर्षक से कठोपनिषद् का सरल पद्य में अनुवाद किया है। दोहा-चौपाई शैली में कठोपनिषद् की आध्यात्मिक शिक्षाओं को अनुवादक ने जन सामान्य के लिए सुगम बनाया है। 'स्वर्गेलोके न भयं किंचनास्ति' इस काठक श्रुति को निम्न दोहे में स्पष्ट किया गया है–

स्वर्ग लोक में भय नहीं नहीं जरा सन्ताप।
भूख प्यास लगती नहीं है आनन्द आलाप।।

वस्तुतः उपनिषद्शास्त्र तो हमारी विरासत में आध्यात्मिक काव्य का स्थान रखते हैं। उनके इन पद्यानुवादों ने उन्हें अधिक सुगम बनाया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के काव्यानुवाद

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय धर्म एवं दर्शन का परिचायक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में गीता के अनेक उद्धरण दिए हैं। यह भी एक तथ्य है कि गीता वर्तमान समय में उपलब्ध महाभारत के भीष्मपर्व का ही एक अंश है। समय-समय पर महाभारत में अनेक अंशों को प्रक्षिप्त किया जाता रहा है, तथापि स्वामी दयानन्द ने उसे एक आर्ष इतिहास ग्रन्थ के रूप में मान्यता दी है। गीता की आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षाएँ प्रायः निर्विवाद तथा सभी के लिए स्वीकार्य रही हैं। आर्यसमाज के अनेक काव्य प्रतिभा सम्पन्न लोगों ने गीता जैसे लोकप्रिय, सर्वमान्य तथा उपयोगी ग्रन्थ का पद्यानुवाद किया है। इन अनुवादों में से कुछ का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

गीतायन–गीता के इस पद्यानुवाद के कर्ता गुरुकुल वृन्दावन के डा. देवदत्त हैं। सरल एवं सुबोध ब्रजभाषा में प्रस्तुत किया गया यह अनुवाद एक कमनीय काव्य कृति है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

गीता के प्रथम श्लोक (धृतराष्ट्र के सजय के प्रति कथन) का अनुवाद इस प्रकार किया गया है–

दोहा– धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र महँ गमन कीन्ह रण हेत।
पाण्डुपुत्र अरु मम सुतन निज निज सैन्य समेत।।
सोरठा–कहा कीन्ह तह जाय। किमिपुनि रण रचना करी।
संजय कहु समुझाय, समाचार विस्तार युत।।

इस प्रकार एक ही श्लोक को दोहा एवं सोरठा–दो छन्दों में अनूदित किया गया है। अन्यत्र कवि ने सवैया छन्द का भी प्रयोग किया है–

'सीदन्ति मम गात्राणि' (अ. 1-29) तथा 'गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्' (अ. 1-30) इन दो श्लोकों के भावों को निम्न सवैया में प्रस्तुत किया है–

गात सिराज सुखात मुखो तनु कम्प छुटो लरजावत है।
रोम खरे तुच हू पजरे मन चंचल और भ्रमावत है।
हाथन तें धनु जात गिरो अंधियार भयो सुलखावत है।
बैठन की सकता न रही इमि शोक समूह जरावत है।।

द्वितीयाध्याय के 'आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं' (2 70) श्लोक को अनुवादक कवि ने चौपाई की शैली में प्रस्तुत किया—

अचल पयोनिधि पूर्ण सदाई।
सरिता आप गिरहिं तहँ आई।।
लहइ कामना इति विधि जोई।
शान्त सोय न तु कामी कोई।।

समग्र दृष्टि से विचार करने पर 'गीतायन' विश्व प्रसिद्ध भगवद्गीता का एक सफल ब्रज-भाषा अनुवाद माना जा सकता है। ग्रन्थ के प्रकाशन का काल अज्ञात है।

गीता के अन्य पद्यानुवाद (राधेश्याम रामायण शैली में)—राधेश्याम कथावाचक रचित पद्यात्मक रामायण अपनी सरल भाषा, गेय शैली तथा रोचक मुहावरेदानी के कारण किसी समय हिन्दी भाषी क्षेत्रों में अत्यन्त लोकप्रिय हुई थी। आर्यसमाज के कतिपय कवियों ने राधेश्याम रामायण की शैली का ही अनुकरण करते हुए गीता के कुछ पद्यानुवाद प्रस्तुत किए हैं। यहाँ इन्हीं अनुवादों पर विचार किया जा रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता—सरल हिन्दी पद्यानुवाद

आर्यसमाज मॉडल बस्ती दिल्ली के उत्साही कार्यकर्ता स्व. ज्ञानप्रकाश ने राधेश्याम तर्ज़ में गीता का यह अनुवाद किया है। इसका प्रथम संस्करण गौतम बुकडिपो दिल्ली से 1949 ई. में तथा द्वितीय संस्करण आनन्द प्रकाशन, शक्तिनगर दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

आलोच्य ग्रन्थ में गीता के कथ्य को कवि ने ओजस्विनी शैली में जन साधारण के लाभार्थ प्रस्तुत किया है। अनुवाद की भाषा सरल तथा प्रभावोत्पादक है। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

द्वितीय अध्याय के श्लोक संख्या 9-12 को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

दोहा—अर्जुन तो यों वचन कह बैठ रहा चुपचाप।
नहीं लड़ूँगा कृष्ण ! मैं हुआ मुझे सन्ताप।।
सुन कर उसकी बात को कृष्ण दिए मुस्काय।
सेनाओं के बीच में, बोले यह समुझाय।।
तुम व्यर्थ बात का शोक करो, अरु बात पण्डितों की करते।
जीवित अरु मृतक मनुष्यों का नहिं पण्डित शोक कभी करते।।
मैं भी तू भी ये सभी नृपति यहाँ पूर्व जन्म में आये थे।
अब भी मर कर आएँगे फिर जैसे ये पहले आए थे।।

यह ध्यातव्य है कि अनुवादक कवि ने एक श्लोक के अनुवाद के लिए एक ही छन्द का प्रयोग किया है।

श्री ज्ञानप्रकाश ने गीता के कतिपय महत्त्वपूर्ण एवं उदात्त शिक्षाओं से युक्त श्लोकों के भावों को घनाक्षरी छन्द में पल्लवित किया है। ऐसे 10 घनाक्षरी कवित्त गीता के इस अनुवाद के अन्त में दिए गए हैं। आत्मा के अमरत्व का प्रतिपादन करने वाले 'नैनं छिन्दति शस्त्राणिं'। (2-33) श्लोक का निम्न प्रकार से भाव पल्लवन किया गया है–

मरे नहीं आत्मा अमर औ अजर है यह,
शस्त्र नहिं काटते न आग ही जलावे है।।
पानी में न गीली होवे हवा न सुखाय इसे,
नाश अविनाशी का न कोई कर पावे है।।
कहे जो यह मरती है, मारती है दूसरे को,
मूर्ख मतिहीन नर जग में कहावे है।।
धर्म हेतु वीर तुम युद्ध निष्काम करो,
स्वार्थहीन कर्म ही तो मोक्ष को दिलावे है।।

श्रीमद्भगवद्गीता सार

मुरादाबाद जिले के बहजोई कस्बे की महिला आर्यसमाज की मन्त्राणी श्रीमती सावित्री देवी ने भी गीता को राधेश्याम रामायण की शैली में प्रस्तुत करने का एक अन्य श्लाघनीय प्रयास किया है। 'श्रीम्रद्भगवद्गीता' नामक उनका यह ग्रन्थ 1964 ई. में प्रकाशित हुआ। 'गाण्डीवं स्रंसतें हस्तात्' (1-30) तथा आगे के श्लोकों के अभिप्राय को श्रीमती सावित्री देवी ने निम्न पद्यों में प्रस्तुत किया है–

कहाँ प्रभो गाण्डीव धनुष हाथ से गिरता जाता है।
और सर भी चक्कर खाय रहा, हृदय भी धड़कता जाता है।
हे केशव, इन चिह्नों से तो यही दिखाई पड़ता है।
जो कुल का नाशक होता है, दुख नरक उसे ही मिलता है।।

अनुवाद की भाषा सरल और जनसाधारण के समझ में आने लायक है।

गीता-हिन्दी पद्यानुवाद

श्री रामकृष्ण भारती ने गीता का एक अन्य पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है जो सरल, सरस तथा मूल के भावों को स्पष्ट रीति से प्रस्तुत करता है। मुनि प्रकाशन दिल्ली से 1969 ई. में प्रकाशित गीता के इस पद्यानुवाद में प्रत्येक श्लोक के लिए एक

ही पद्य प्रयुक्त किया गया है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

गीता के तृतीयाध्याय के 'लोकेऽस्मिन् द्विविधा प्रोक्ता' आदि श्लोकों का यह काव्यानुवाद भारतीजी की काव्य कला की सुन्दर झलक प्रस्तुत करता है–

दो प्रकार की निष्ठा मैंने पहले अर्जुन अनघ कही।
ज्ञान योग है ज्ञानि जनों का कर्मयोग योगी जन की।
कर्म न करने से होता नहिं प्राप्त मनुज निष्क्रियता को।
कर्म त्यागने मात्र न होता ईशदर्श सिद्धिः भव को।।
इस जग में कोई भी क्षण भर कर्म बिना नहिं रहता है।
प्रकृतिजन्य गुण गण परवश हो मनुज कर्म सब करता है।।

भगवद्गीता सार या गीता गान

पं. कृष्ण अमृतसरी नाम के एक आर्योपदेशक ने संन्यास लेकर अपना नाम स्वामी धीरानन्द सरस्वती रख लिया था। इन्हीं स्वामी धारानन्द ने गीता के कतिपय श्लोकों का सरल भावानुवाद पद्य के माध्यम से किया था। इस ग्रन्थ को आत्मानन्द प्रकाशन मन्दिर यमुनानगर ने प्रकाशित किया है। स्वामी धीरानन्द कृत यह गीतानुवाद साधारण कोटि का है। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' (2-27) का अनुवाद यहाँ दिया जाता है–

जन्म जो लेने वाले प्राणी। उनकी मौत है निश्चय जाणी।
हैं जब मिटने ही वाले सारे। फिर उनका क्यों शोक विचारे।।

हिन्दी की दृष्टि के काफी पिछड़े हुए उस युग के पंजाब प्रदेश के एक देहात में निवास करने वाला साधारण पठित संन्यासी का गीतानुवाद का यह प्रयास प्रशंसनीय कहा जाएगा।

गीताज्ञान प्रकाश

बुलन्दशहर जिले के बरहाना ग्रामवासी श्री प्रकाशवीर शर्मा 'व्याकुल' ने 'गीता ज्ञान-प्रकाश' नाम से गीता का पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ 1974 ई. में प्रकाशित हुआ। व्याकुल कवि द्वारा किया हुआ यह गीतानुवाद सरल भाषा में होने पर भी मूल के समग्र अभिप्राय को अपने भीतर समाविष्ट किए हुए है। एक उदाहरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी' (2-69) के भाव को कवि इस प्रकार स्पष्ट करता है–

दुनिया जिसको दिन कहती है, संयमी पुरुष के लिए है वह रात।
जब सब जग सोता रहता है, तब होती है उनकी प्रभात।।

प्रत्येक अध्याय के अन्त की पुष्पिका को भी अनुवादक ने दोहों में अनूदित कर दिया है।

वैदिक भगवद्गीता का दोहानुवाद–डा. वेदप्रकाश कृत

मेरठ कॉलेज, मेरठ में हिन्दी विभाग के प्रवक्ता डा. वेदप्रकाश एक स्वाध्यायशील विद्वान् हैं। उन्होंने अपने विचार के अनुसार समझे गए गीता के प्रक्षिप्त श्लोकों को हटाकर इस ग्रन्थ का एक संक्षिप्त संस्करण तैयार किया है जिसमें संकलित सभी श्लोक वैदिक सिद्धान्तों के नितान्त अनुकूल भाव प्रकट करते हैं। इस संक्षिप्त वैदिक गीता का उन्होंने समश्लोकी दोहानुवाद भी किया है। प्रत्येक श्लोक के अभिप्राय को दोहा जैसे संक्षिप्त लघु छन्द में प्रस्तुत करना निश्चय ही श्रमसाध्य कार्य है। किन्तु अनुवादकर्त्ता इसमें सफल हुए हैं। एक उदाहरण देखें–

> यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
> इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। (2 158)

के अनुवाद की संरचना इस प्रकार हुई है–

> कछुआ अंग समेट ले विषम समय जब होय।
> अपनी इन्द्रिय रोक ले फिर बुद्धि है सोय।।
> इन्द्रियवश में होत है छूटे जब आहार।
> भक्ति भाव में डूब कर विषय नदी से पार।।

इस प्रकार 434 दोहों में वैदिक गीता का यह पद्यमय रूप प्रस्तुत किया गया है।

यों तो गीता जैसे लोक विश्रुत ग्रन्थ के पद्यानुवाद के न जाने कितने प्रयास हुए हैं, किन्तु आर्यसमाज से सम्बद्ध कवियों का भी इस कार्य में प्रवृत्त होना यह दर्शाता है कि गीता के लोक मंगल विधायक उपदेशों को सर्वसाधारण तक पहुँचाने में उनकी भूमिका को भी स्वीकार करना ही चाहिए।

मनुस्मृति का पद्यानुवाद

स्मृति शास्त्रों में मनुस्मृति की प्रधानता सर्वमान्य है। इसे औषधियों की औषध कहा गया है। स्वामी दयानन्द ने मनु से भिन्न अन्य स्मृतियों को तो अप्रामाणिक माना किन्तु वैदिक मन्तव्यों का अनुसरण करने वाली मनुस्मृति को उन्होंने मानव जाति के सर्वश्रेष्ठ सामाजिक विधान के रूप में मान्यता दी। अपने ग्रन्थों में उन्होंने सर्वाधिक प्रमाण मनुस्मृति के ही दिए हैं। ऐसे महान् शास्त्र ग्रन्थ को हिन्दी पद्य का रूप देना वस्तुतः अद्वितीय साहस ही समझा जाएगा। इस बात का पता चलता है कि स्वामी प्रेस मेरठ ने मनुस्मृति के कुछ अंश को आल्हा शैली में पद्यबद्ध प्रकाशित किया

था। बदायूँ (उत्तरप्रदेश) के निवासी पं. रामसहाय शर्मा ने मनु के प्रथम तीन अध्यायों का राधेश्याम रामायण शैली में पद्यानुवाद किया था। छन्दोबद्ध मनुस्मृति शीर्षक से यह ग्रन्थ 1923 में प्रकाशित हुआ। दोहा छन्द में मनु की शिक्षा को पद्यबद्ध करने का यह एक सफल प्रयास था। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

श्लोक—**मनुमेकाग्रमासीनम्** (अ. 1।1)

अनुवाद—

एक समय एकाग्रचित्त हो बैठे थे मनु महाराज।
धर्म विवेचन हेतु तभी वहाँ आया ऋषि समाज।।

श्लोक—आपो नारा इति प्रोक्ता (अ. 1।10)

अनुवाद—

नारा जल का नाम है वही प्रभु का नाम।
इस कारण उस ईश को नारायण कहें सुजान।।

श्लोक—**श्रुति स्मृत्युदितं धर्मं** (अ. 2।9)

अनुवाद—

वेद स्मृति के धर्म को जो आचरहिं श्रद्धा पाय।
निश्चय जग में भोग सुख ब्रह्मलोक को जाय।।

हितैषी की गीता

श्री लालचन्द हितैषी अलावलपुर (पंजाब) के निवासी थे। उन्होंने गीता का पद्यानुवाद समश्लोकी दोहों में किया है। इसका द्वितीय संस्करण 1946 में प्रकाश पुस्तकालय दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। आकार में लघु होने के कारण दोहा याद रखने में सुगम होता है। इस दृष्टि से हितैषी की गीता सामान्य पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। सुख दुःखे समे कृत्वा लाभा लाभौ जया जयौ (गीता) का हितैषी कृत अनुवाद इस प्रकार है—

सुख और दुःख की भावना हानी लाभ विचार।
इक सम इनको जानकर रण को हो तैयार।

श्रीमती चन्द्रमुखी ने गीता सार पद्य (1951 में प्रकाशित) नामक एक अन्य अनुवाद किया था जो हमारे देखने में नहीं आया।

आर्य प्रह्लाद गिरि कृत हिन्दी मनुस्मृति

मनुस्मृति के हिन्दी पद्यानुवादक आर्य प्रह्लाद गिरि यों तो पश्चिमी बंगाल के आसनसोल जिले के निंजा ग्राम के एक शिव मन्दिर के पुजारी हैं, किन्तु विचारों से वे दृढ़ आर्य हैं। वे स्वयं जगत् गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती का अनुचर कहते हैं। निराकार परमात्मा में पूर्ण आस्था रखने वाले आर्य प्रह्लाद गिरि ने सम्भवतः जीविका के लिए ही पुजारी के व्यवसाय को चुना है। उन्होंने हिन्दी मनुस्मृति शीर्षक से मनुस्मृति का 1200 आर्या छन्दों में पद्यानुवाद किया है जो 1996 में प्रकाशित हुआ। इस पद्यानुवाद ने धर्मशास्त्र के इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को जनसाधारण के लिए सुगम और सुबोध बना दिया है। मनुस्मृति के आरम्भिक श्लोकों में से एक का गिरि कृत पद्यानुवाद इस प्रकार है-

श्रद्धायुत ऋषियों की बातें सुनकर के मानव ऋषिराज।
कर स्वागत कहने लगे, सुनिए जगहित सन्त समाज।।

आज जब अनेक क्षुद्रमनस्क राजनीतिज्ञों ने महर्षि मनु के वास्तविक अभिप्राय को जाने बिना ही मानव-जाति के इस धर्मशास्त्र के प्रति निन्दात्मक अभियान चला रखा है, मनुस्मृति के महत्त्व और गौरव की प्रतिष्ठापना के लिए किया गया यह साहित्यिक प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय है।

चाणक्यनीति का पद्यानुवाद

संस्कृत साहित्य अपने नीति ग्रन्थों के लिए सुविख्यात है। शुक्र, चाणक्य तथा कामन्दक आदि नीति विशारदों द्वारा रचित नीतिग्रन्थ लोक व्यवहार दर्शक तथा जनोपयोगी शिक्षाओं को सरल ढंग से प्रस्तुत करते हैं। अफज़लगढ़ (उत्तरप्रदेश) के निवासी श्री रामस्वरूप पाटक ने चाणक्यनीति का हिन्दी दोहा छन्द में एक सुबोध अनुवाद किया था। पाठक जी बिजनौर जिले की नगीना तहसील के अन्तर्गत रायपुर सादात नामक ग्राम में 'मुदर्रिस' (अध्यापक) थे। चाणक्य नीति का यह पद्यानुवाद अत्यन्त सरस तथा हृदयग्राही बन पड़ा है। कुछ उदाहरण देना समीचीन होगा—'विद्वत्त्वं च नृपत्त्वं च नैव तुल्यं कदाचन' चाणक्यनीति[2] के इस श्लोक का यह अनुवाद देखिए—

नृपता अरु विद्वानता होत बराबर नाहिं।
नृप स्वदेश ही पूज्य है गुणी सकल जग माँहि।।
पण्डिते च गुणाः सर्वे मूर्खे दोषा हि केवलम्।
तस्मान्मूर्खसहस्रेषु प्राज्ञ एको विशिष्यते।। चा. नी. 2.

2. यह श्लोक चाणक्य शतक का है।

श्री पाठक ने उपर्युक्त श्लोक को निम्न दोहे में पद्यबद्ध किया–

पण्डित होवत गुणनयुत मूढ दोष युत देख।
तासों मूरख सहस में पण्डित एक विसेष।।

'मातृवत् परदारेषु'[3] इस प्रसिद्ध उक्ति को कवि ने निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है–

जननी सम परदार को पर धन धूरि समान।
सब प्राणी निज आत्म सम लखे सो पण्डित जान।।

'रूप यौवन सम्पन्न' का दोहानुवाद–

यौवन रूप समेत नर हो विशाल कुल वास।
विद्या बिना न शोभता ज्यों निर्गंध पलास।।
माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा।

चाणक्य की इस प्रसिद्ध उक्ति को कवि ने इस प्रकार पेश किया–

जननी पितु बैरी भयौ जिन न पढ़ायो बाल।
सभा मध्य किमि सोह सो जिमि बक मध्य मराल।।

ग्रन्थान्त में अनुवादक कवि ने इस काव्यानुवाद को तैयार करने में की गई शीघ्रता की ओर संकेत करते हुए निम्न सोरठे लिखे–

रहि अशुद्धता अर्थ, क्योंकि शीघ्र पूरण कियो।
लखहु जो बुद्धि समर्थ, क्षमहुचूक जन जान के।।
पढ़त थके नहिं कोय, इमि कारण लिख्यो लेख लघु।
पाठक अर्पण सोय, आशय लेहु विचार मित।।

पाठकजी ने यह काव्यानुवाद तीन दिनों में ही समाप्त कर लिया था, इसका संकेत उनके निम्न दोहों में मिलता है–
ग्रन्थारम्भ की तिथि–

गुण शिव ग्रह शशि अब्दशुभ विक्रम पूरण कीन।
तिथि षष्ठी आषाढ बदि बुद्धवार शुभ लीन।।

ग्रन्थ समाप्ति की तिथि–

3. चाणक्यनीति दर्पण में पाठ है–'मातृवत् परदाराश्च'

गुण शिव ग्रह शशि अब्द शुभ विक्रम सेन बखान।
तिथि नवमी आषाढ बदि शनिवार इति जान।।

हितोपदेश का पद्यानुवाद—

नीति तथा व्यवहार ज्ञान के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ हितोपदेश का दोहा, चौपाई शैली में पद्यानुवाद श्री गिरधारीलाल शर्मा ने किया था। स्वामी प्रेस मेरठ से 1901 ई. में उनका यह पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ। 'वरमे को गुणी पुत्रो' इस नीति पद्य को दोहानुवाद श्री शर्मा द्वारा इस प्रकार किया गया है—

एक गुनी सुत है भलो नहिं मूढ़न के ढेर।
एक चन्द्रमा तम हरे नहिं गण तारन केर।।

एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

यस्मिन् देशे न सम्मानं न च वृत्तिर्न च बांधवः।
न च विद्यागमः कश्चित्तं देशं परिवर्जयत्।।

उपर्युक्त श्लोक का पद्यानुवाद—

द्रव्य लाभ गुण लाभ पुनि बंधु और सम्मान।
चारि नहिं जेहि देश तेहि तुर्तहि तजे सुजान।।

श्री शंकराचार्य कृत परापूजा का काव्यानुवाद

आद्य शंकराचार्य द्वारा रचित बताई जाने वाली 11 श्लोकों की एक लघु पुस्तक 'परापूजा' बृहत्स्तोत्र संग्रह में संगृहीत है। इस पुस्तक में निर्गुण एवं निराकार परमात्मा की सर्वव्यापकता का उल्लेख करते हुए साकारोपासना तथा षोड्शोपचार मूर्ति-पूजा का खण्डन किया गया है। कानपुर जिलान्तर्गत गौरीलखा ग्राम निवासी पं. सरयूप्रसाद शर्मा ने इस ग्रन्थ का पद्यानुवाद दोहा छन्द में किया था। भारत सुदशा प्रवर्त्तक (फर्रुखाबाद) के नवम्बर 1885 ई. के अंक में यह सरस अनुवाद प्रकाशित हुआ था। अनुवाद की भाषा ब्रज है जो उस काल में काव्य की सर्वमान्य भाषा थी। इस पद्यानुवाद का कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है—

आनन्दे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।
स्थितेऽद्वितीये भावे वै कथं पूजा विधीयते।।

अनुवाद— रूप सच्चिदानन्द सत निर्विकल्प जेहि रूप।
असद्वितीयाभाव में है पूजा न अनूप।।

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्यचासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः।।

अनुवाद– सर्व व्यापक ब्रह्म जो अरु जो सर्व आधार।
ताको आवाहन कहा अरु आसन क्या डार।।

उत्तर रामचरित (भवभूति कृत) का पद्यात्मक रूपान्तर पं. भँवरलाल शर्मा कृत

संस्कृत के नाटकों में महाकवि भवभूति के उत्तर रामचरित का विशिष्ट स्थान है। कवि ने इसमें रामायण के उत्तरार्द्ध की कथा को करुण रस से परिपूरित कर प्रस्तुत किया है। यों तो काव्य-समीक्षकों ने शृंगार को रसराज कहा है, किन्तु भवभूति ने 'एकोरस, करुणमेव निमित्त भेदात्' कहकर करुण रस को ही सर्वोपरि माना है। अयोध्या के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के पश्चात् राम द्वारा प्रति-प्राणा सीता का त्याग रामायण का एक अत्यन्त हृदयद्रावक प्रसंग है। इस प्रसंग की प्रामाणिकता को लेकर रामायण के मर्मज्ञों में चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, यह तो स्वीकार करना ही होगा कि कवियों के लिए तो यह कथांश कमनीय कल्पना तथा रस सृष्टि का उपादान बन गया है। उत्तर रामचरित के संक्षिप्त किन्तु भावपूर्ण काव्यानुवाद का श्रेय फुलेरा (जिला जयपुर) निवासी पं. भँवरलाल शर्मा को है जिन्होंने उत्तर रामचरित के अतिरिक्त कालिदास के 'शाकुन्तल' तथा एक अन्य संस्कृत कृति नलोदय को भी हिन्दी पद्य में ढाला है। संस्कृत के कालजयी काव्यों तथा नाटकों के हिन्दी काव्यानुवाद की समृद्ध परम्परा हिन्दी में रही है। शर्मा जी की आलोच्य कृति भी इसी परम्परा की एक प्रतिनिधि रचना है।

प्रजारंजन को ही राजा का परम कर्तव्य मानने वाले राघव के इस प्रसिद्ध प्रतिज्ञा वाक्य को कवि ने इस रूप में प्रस्तुत किया है–

दया मया सुख-सौख्य स्नेह से जनता का दुख दर्द हरूँगा।
प्रजारंजन ही धर्म है मेरा, मैं जन जन में मोद भरूँगा।।

तेरह वर्ष का वनवास समाप्त कर अयोध्या लौटने तक की घटनाओं को किसी चतुर चित्रकार ने चित्रपट पर अपनी तूलिका से उकेरा है। इन्हीं चित्रों को विगत के स्मरण के रूप में सीता को दिखलाते समय राम अपने हृदय के अनुराग को भी प्रकट करते चलते हैं। कवि के शब्दों में–

सिये, इस चित्र को देख यहाँ अतीत की स्मृति है जागी।
तुममे ही खोई रहती थीं, ये दो अँखिया अनुरागी।।
तब चुम्बकमय आकर्षण सी ये खींच मुझे ले जाती थीं।
मैं होता था आत्मविभोर ये मिलकर जब टकराती थीं।।

आरण्यक निवास के इन चित्रों को देखकर सीता के मन में पुनः वन को

देखने की इच्छा प्रबल हो उठती है। इस समय सीता गर्भवती है इसलिए उसमें दोहद की कामना का जाग्रत होना भी स्वाभाविक है। अतः वह अपने प्रिय से कहती है—

रे राघव, इस चित्र को लख यह दोहद अब मुझको होता।
एक बार फिर वहाँ प्रेम से लगा लूँ भागीरथी में गोता।
उन त्यागी तपसी मुनियों के एक बार फिर दर्शन पाऊँ।
यह इच्छा है मेरे मन की, कमनीय कानन में फिर जाऊँ।।

इस प्रकार संस्कृत की एक कमनीय नाट्य कृति को काव्यमयी अभिव्यक्ति देकर पं. भँवरलाल शर्मा ने अपनी काव्य सर्जन पटुता तथा भाषा पर अपने असाधारण अधिकार का प्रदर्शन किया है।

यतीन्द्रशतकम् का काव्यानुवाद

पं. केवलानन्द शर्मा नामक एक अप्रख्यात संस्कृत कवि ने स्वामी दयानन्द की प्रशस्ति में 'यतीन्द्र शतक' नामक 111 पद्यों के एक संस्कृत काव्य की रचना की थी। इस सुन्दर तथा मनोग्राही काव्य का हिन्दी में स्वतन्त्र पद्यानुवाद प्रो. शंकरसिंह वेदालंकार (1942-1982) ने किया है। कवि का जन्म कानपुर जिले के सरैया नामक ग्राम में हुआ था। इनका अध्ययन गुरुकुल कांगड़ी में हुआ जहाँ से उन्होंने 2021 वि. (1965 ई.) में वेदालंकार की परीक्षा उत्तीर्ण की। कालान्तर में ये डी.ए.वी. कॉलेजों में हिन्दी तथा संस्कृत के प्रवक्ता रहे। अल्पायु में ही इनका निधन 1982 ई. में हो गया।

यतीन्द्रशतक का काव्यानुवाद 'परोपकारी' मासिक के सितम्बर-दिसम्बर 1977 ई. तक के चार अंकों में क्रमशः प्रकाशित हुआ है। इस काव्य के आरम्भ में कवि अपनी काव्य-रचना विषयक अक्षमता तथा अज्ञान का उल्लेख करते हुए लिखता है—

काव्य वीथी का पथिक मैं हूँ अभी अनजान।
मूल की उद्भावना का ही रहा है ध्यान।
क्षम्य हूँ त्रुटि हो कहीं यदि है नहीं अभिमान।
पर कहीं पर हो न पाया वृद्धि का बलिदान।।

कवि का प्रयोजन तो ऋषि चरित्र का गान करना ही है—

अस्तु इस ही दृष्टि से देखें सभी मतिमान्।
ऋषि चरित गाकर रहें सब सौख्य से अम्लान।।

संस्कृत में रचित यतीन्द्रशतक के कवि ने स्वामी दयानन्द की गुणावली का कीर्तन

करने में स्वयं को अक्षम बताते हुए लिखा था–

> मयाऽब्धो प्रारब्धं कर युगल कृत्या नु तरणं
> करेणेष्टा तापात्तरणिदयिता चाम्बर मणेः।
> नलिन्याः किंजलकैजटिल मथ मेहाद्रि खननं
> ह्यचिन्त्यंचागम्यं यतिचरण संवर्णनमिदम्।।

स्वामी जी के चरित का वर्णन करना उतना ही कठिन है, जितना कि दो हाथों से तैर कर समुद्र को पार करना, कोमल करों से सूर्य के प्रचण्ड ताप को रोकना तथा कमलनाल से मेरु पर्वत को खोद डालना तथापि कवि अपने इस कठिन प्रयास से विरत नहीं होता। इसी पद्य के निम्न काव्यानुवाद को देखिए जो मूल के ही तुल्य सरस तथा भावपूर्ण है–

> मैं तेरा वर्ण्य चरित लेकर कर रहा असम्भव एक कार्य।
> दोनों हाथों से तैर रहा, अपर्व तरंगमय मैं अनार्य।।
> निज कर पल्लव से रोक रहा रवि का प्रचण्ड अति प्रखर ताप।
> मैं पद्मनाल के रोमों से खोदता मेरु पर्वत अमाप।।
> पर तेरी महिमा है अगम्य वह है अचिन्त्य अति ही महान्।
> मैं कहाँ रात्रि का तिमिर जाल वह ज्योतिर्मय पावन विहान।।

इस प्रकार संस्कृत की एक जटिल तथा श्लिष्ट शैली की काव्यकृति को पद्यमय शैली में प्रस्तुत कर कवि शंकरसिंह वेदालंकार ने अपनी सर्जन क्षमता को प्रमाणित किया है।

वृक्षों में जीव की सत्ता विषयक शास्त्रार्थ का पद्यानुवाद

वृक्षों में जीव की सत्ता को लेकर आर्यसमाज के विद्वानों में सहमति नहीं है। स्वामी दर्शनानन्द, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय आदि विद्वान् यदि स्थावर में जीवन के अस्तित्व से इन्कार करते हैं तो पं. गणपति शर्मा, स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती आदि अन्य विद्वानों को वृक्षों में जीव का होना स्वीकार है। 1912 ई. में ज्वालापुर महाविद्यालय में इसी विषय पर स्वामी दर्शनानन्द तथा पं. गणपति शर्मा के बीच एक शास्त्रार्थ हुआ था जिसे पं. रलाराम ने उसी समय लिपिबद्ध कर लिया था। कालान्तर में यह महाविद्यालय के मुखपत्र भारतोदय में पं. पद्मसिंह शर्मा लिखित पुरोवाक् के साथ प्रकाशित हुआ था।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के उपाचार्य डा. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' ने इस शास्त्रार्थ को पद्यबद्ध किया है। अपने अप्रकाशित महाकाव्य दर्शनानन्द के नवम सर्ग में 'खण्डन मण्डन' शीर्षक से इस शास्त्रार्थ को काव्य के रूप में प्रस्तुत कर डा. अजेय ने सिद्ध कर दिया है कि शास्त्रों की तर्क शृंखलाबद्ध युक्तियों और प्रमाणों

को भी पद्य शैली में रखा जा सकता है।

शास्त्रार्थ स्थल का सुरम्य चित्र कवि ने इस प्रकार अंकित किया है–

दूर्वादल की दरी बिछी थी, लम्बा चौड़ा था मैदान।
था कुदरती शामियाने सा आसमान का तना वितान।।
वाग्भट्टों का युद्ध देखने हुए सहस्रों नर एकत्र।
पीताम्बर धारी बटु शोभित जैसे उदयोन्मुख नक्षत्र।।

इस शास्त्रार्थ प्रसंग का उपसंहार करता हुआ कवि अजेय लिखता है–

सारस्वत नद में नहा, पाकर हर्ष अपार।
गये दर्शनानन्द पुनि गुरुकुल पोठोहार।।

शास्त्रीय तर्क-वितर्क तथा युक्ति-प्रत्युक्तियों को पद्य की शैली में ढालना कवि अजेय का एक साहसपूर्ण कार्य था।

फारसी के एक ऐतिहासिक दस्तावेज का पद्यानुवाद

मराठा वीर शिवाजी महाराज का जयपुर के राजा जयसिंह के नाम फारसी भाषा में लिखा गया एक पत्र इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। जब बादशाह औरंगजेब की आज्ञा को शिरोधार्य कर महाराजा सवाई जयसिंह शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिए सेनापति के रूप में दक्षिण की ओर आए तो शिवाजी ने उन्हें अपना सहधर्मा तथा देशभक्त जानकर समझाने की दृष्टि से एक नीति पूर्ण पत्र फारसी पद्यो में लिख भेजा। निश्चय ही इस पत्र का लेखक फारसी का कोई अच्छा जानकार रहा होगा। इस प्रकार दो क्षत्रिय राजाओ के बीच आसन्न युद्ध को टालने की दृष्टि से लिखा गया यह पत्र कारगर सिद्ध हुआ और महाराजा जयसिंह बिना लड़े दिल्ली लौट गए। फारसी के मूल पत्र को ढूंढ़ने का श्रेय देश के प्रसिद्ध नेता स्व. भाई परमानन्द को है। उन्होंने इस पत्र को आर्योपदेशक ठाकुर अमरसिंह (संन्यासी रूप में अमर स्वामी) को दे दिया। 91 पद्यों (अशआर) में समाप्त इस पत्र को अमर स्वामी ने उसमें निहित ऐतिहासिकता तथा वीर भावों की पूर्णतः रक्षा करते हुए हिन्दी पद्यों में रूपान्तरित किया है। फारसी के प्रत्येक पद्य (शेर) का अनुवाद दो ही पंक्ति के समश्लोकी हिन्दी पद्य में किया गया है। इसके आरम्भिक अंश को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सम्बोधन का दोहा–

स्वस्ति श्री आमेरपति नृपवृन्दन की लाज।
वीर शिरोमणि कीर्ति निधि राजनपति महाराज।।

पत्र के प्रारम्भ के तीन फारसी पद्यों का रूपान्तर—

हे वयोवृद्ध राजाधिराज जयसिंह मानमय गुणधारी।
श्रीराम वंश अवतंस यशोनिध शत्रु निषूदन बलकारी।
महाराज, आपके गुण गौरव से क्षत्रिय शोभा पाते हैं।
जब नाम आपका आता है तब सिर ऊँचे हो जाते हैं।
पर शोक आपका बल विक्रम निज जाति के काम न आया है।
तुमने अपने बल पौरुष से बाबर का वंश बढ़ाया है।

अनुवाद की यह शैली राधेश्याम रामायण की तर्ज से समता रखती है।

वैदिक संध्या के पद्यानुवाद

आर्यमतावलम्बियों में ईश्वरोपासना के लिए ब्रह्मयज्ञ (संध्या) को प्रमुख साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। मनुस्मृति में प्रत्येक गृहस्थ के लिए पञ्चमहायज्ञों का अनिवार्य विधान है किन्तु संध्योपासना तो चातुर्वणिक है, सभी वर्णों और आश्रम वालों के लिए आवश्यक इति कर्तव्य है। मध्यकाल में संध्योपासना की जो विधियाँ प्रचलित थीं उनमें भस्मधारण, सूर्योपस्थान आदि अनेक अवैदिक एवं अनार्ष कृत्यों का समावेश हो गया था। भारतवासी आर्यों में धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय एकता का सूत्रपात करने वाले स्वामी दयानन्द ने वैदिक संध्या का संकलन सम्पादन कर परमात्मा की उपासना की एक ऐसी विधा हमें दी है, जिसे अपनाकर साधक और उपासक आध्यात्मिक उन्नति के सर्वोच्च सोपान तक सुगमतया पहुँच सकता है।

संध्या में आचमन, इन्द्रिय स्पर्श, मार्जन प्राणायाम, अघमर्षण, मनसा परिक्रमा, उपस्थान, गायत्री जप, नमस्कार आदि की अनेक विधियाँ वेद मन्त्रों के विनियोग के साथ उल्लिखित हैं। प्रायः संध्या को मुद्रित पुस्तकों में इन मन्त्रों के अर्थ भी रहते हैं, जिससे पाठक को मन्त्रगत अभिप्राय का सुगमता से बोध हो सके। विभिन्न विद्वानों ने संध्या के मन्त्रों तथा उन पर आधारित विभिन्न कृत्यों की अनेक विद्वत्तापूर्ण एवं सारगर्भित व्याख्याएँ भी लिखी हैं। गद्य की अपेक्षा पद्य एक ऐसी विधा है जो अपनी कोमल पदावली, भाव सौन्दर्य तथा भाषा को कमनीयता के कारण पाठक वर्ग को सहज आकृष्ट करती है। पद्य रचना के इसी महत्त्व को अनुभव कर आर्यसमाज के कतिपय कवियों ने संध्या के मन्त्रों के विभिन्न पद्यानुवाद प्रस्तुत किए हैं। यहाँ हम संध्या के ऐसे हो पद्यानुवादों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

1. **अमीचन्द मेहता कृत संध्या गान**—स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आकर अपने दुराचारों से मुक्ति पाने वाले और सन्मार्ग पथिक बन जाने वाले अमीचन्द मेहता ने संध्या गान लिख कर इस महायज्ञ के मन्त्रों को पद्यात्मक रूप दिया। मेहता जी ने संध्या के अन्तिम नमस्कार मन्त्र नमः शम्भवाय च (यजुर्वेद 16।31) का पद्यार्थ

इस प्रकार किया है–

नमस्कार कल्याण स्वरूपम्। नमस्कार मंगलमय रूपम्।
नमस्कार कल्याण के कर्ता। नमस्कार सब संकट हर्ता।
नमस्कार मंगल के दाता। नमस्कार सुख रूप विधाता।
नमो नमो शंकर सुखराशी। नमस्कार विज्ञान प्रकाशी।।

यह अनुवाद निगम साहित्य प्रकाशन, पानीपत द्वारा प्रकाशित हुआ है।

2. श्यामकृष्ण सहाय रचित ब्रह्मयज्ञ–रांची (बिहार) के प्रसिद्ध आर्य नेता बैरिस्टर श्यामकृष्ण सहाय अपने नगर की धार्मिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियो के केन्द्र थे। 1963 में उनका निधन हुआ। आपने 1900 ई. मे ब्रह्मयज्ञ शीर्षक पुस्तक में संध्या के मन्त्रों का सुन्दर भावानुवाद किया। 1951 में इसे बजाज चैरिटेबल ट्रस्ट रांची ने पुनः प्रकाशित किया। यह अनुवाद ब्रजभाषा में है तथा कवि ने इसमें प्रधानत. सोरठा तथा दोहा छन्द का प्रयोग किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–
शंन्नो देवी रभिष्टय (यजुर्वेद 36।12) इस आचमन मन्त्र का अनुवाद–

त्रिभुवन व्यापी देवि धर्म नेहरत मोहिकिरि।
मगल दाइ सुसेवि, सुख सिंचन ममहृदय करु।।

'ओभू :' आदि प्राणायाम मन्त्रों का दोहानुवाद–

जगपावन आनन्दमय प्राणस्वरूप महान।
अविनाशी सर्वज्ञ तुम सकल पिता भगवान।।

3. इष्टानन्द सरस्वती कृत संध्या का पद्यानुवाद–सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश के पद्यानुवाद पं. गदाधरप्रसाद इष्ट ने सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् इष्टानन्द सरस्वती नाम ग्रहण किया। संध्या का इनके द्वारा किया गया पद्यानुवाद आर्य आदर्श ग्रन्थ माला लखनऊ से प्रकाशित हुआ। (तृतीय संस्करण 2011 वि.) मनसा परिक्रमा के प्रथम मन्त्र 'प्राची दिगग्निरधिपति' (अथर्ववेद 3।27।1) का 'इष्ट' कृत पद्यानुवाद देखे–

पूर्व की दिशि अग्नि अधिपति है प्रतापी जानिये।
हो उदय जेहि ओर सविता पूर्व दिशि परमानिये।
बंधनों से रहित कर अंधकार से रक्षा करे।
हैं सूर्य किरणें बाण जिनकी तापत्रय क्षण में हरे।।

4. धीरानन्द संन्यासी कृत संध्या का पद्यार्थ–कृष्ण आर्योपदेशक का जन्म अमृतसर जिले के एक ग्राम में 1867 में हुआ। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी से संन्यास

की दीक्षा लेने पर इन्होंने स्वामी धीरानन्द नाम ग्रहण किया। 1941 में लाहौर में इनका निधन हुआ। धीरानन्द, संन्यासी के इस संध्या पद्यानुवाद का प्रकाशन श्रीमती सत्यवती धर्म पत्नी श्री जयदेव, मुख्याध्यापक आर्य हाईस्कूल नवां शहर (पंजाब) ने किया था। उपस्थान के चित्रं देवानां (यजुर्वेद 7।42) मन्त्र का संन्यासी धीरानन्द कृत पद्यानुवाद द्रष्टव्य है–

तू चक्षु है देखनहारा।
विचित्र तू ही पवित्र अपारा।
तेरी चमक से सूर्य चमके।
बिन तेरे न बिजली दमके।
यह जग सारा ज्ञान बतावे।
तेरी महिमा को दरशावे।।

5. मांगी लाल वानप्रस्थी कृत वैदिक संध्या हिन्दी पद्यानुवाद सहित–राजस्थान के नागौर जनपद के नावां कस्बे के निवासी–स्व. मांगी लाल वानप्रस्थी ने संध्या का जो पद्यानुवाद किया था उसे सुजानगढ़ (जिला चूरू) निवासी गंगाबिशन हरिबख्श लाहोटी ने प्रकाशित किया। इसमें मुख्यतः दोहा छन्द ही प्रयुक्त हुआ है।

वानप्रस्थी जी ने 'सूर्याचन्द्रम सौधाता' (ऋग्वेद 10।190।3) इस अघमर्पण मन्त्र का पद्यानुवाद इस प्रकार किया है–

पूर्व कल्प सम रच दिये उसने शशि अरु भान।
जो किरणों से जगत को देते जीवन दान।।
उसी त्रिलोकपति का सदा भजन करे हम लोग।
पातक नाशक जगतपति, दूर करे सब रोग।।

6. डा. सूर्यदेव शर्मा कृत संध्या गान–अजमेर के प्रसिद्ध आर्य लेखक और साहित्यकार डा. सूर्यदेव शर्मा ने संध्या के मन्त्रों का गीतिका तथा छप्पय छन्दों में पद्यानुवाद किया। इसे आर्यप्रेमी कार्यालय अजमेर ने 1963 में प्रकाशित किया था। मनसा परिक्रमा के 'उदीचीदिक्, सोमोऽधिपतिः' (अथर्ववेद 3।27।4) मन्त्र का पद्यानुवाद छप्पय छन्द में इस प्रकार है–

उत्तरदिशि में सोम शान्त अधिपति स्वामी है।
रक्षक सिद्ध सुदेश वज्रवर शरनामी है।
उस अधिपति के लिए नमस्ते बारबार हो।
प्रभु ! इषु रक्षक हेतु हमारा नमस्कार हो।
जिस जन से हम, हमसे तथा जो करता विद्वेष है।
प्रभु न्याय दिष्ट्रि में आपके वह रक्खा सविशेष है।।

7. प्राचार्य मेलाराम बर्क रचित ब्रह्म यज्ञ दोहा अनुवाद–मेलाराम बर्क (1898-1990) का जन्म डिंगा (पाकिस्तान) में हुआ। उन्होंने डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर से बी.ए. किया। देश विभाजन के पश्चात् वे करनाल (हरयाणा) आ गए और कई वर्षों तक वहाँ की डी.ए.वी. हाईस्कूल के मुख्याचार्य रहे। बर्क साहब उर्दू के अच्छे कवि तथा लेखक थे। इनका किया संध्या के आचमन मन्त्र का पद्यानुवाद इस प्रकार है–

सर्व गुणों की खान हो देवी दिव्य स्वरूप।
आपः व्यापक आप हो सकल सृष्टि के भूप।।
मन चाहे सुख के लिए हो मेरा कल्याण।
परमानन्द की प्राप्ति तुझसे हो भगवान।।
वृष्टि सुख की नित करो हम पर चारों ओर।
सात्विक वृत्ति जगाय कर सुख कर दो सब ठौर।।

8. किसी अज्ञात कवि कृत वैदिक संध्या–आर्य वीर दल रोहतक द्वारा प्रकाशित इस वैदिक संध्या में संस्कृत गद्य में प्रस्तुत समर्पण वाक्य–'हे ईश्वर दयानिधे भवत्कृपया' का पद्यानुवाद इस प्रकार अंकित है–

दयानिधे हे ईश्वर प्यारे, जितने है शुभकर्म हमारे।
हों अर्पण वे कर्म तमामी। तेरे शुभ चरणों में स्वामी।।
होवे प्राप्त भक्ति तेरी। सत्य धर्म में प्रीत घनेरी।
धर्म अर्थ अरु काम हमारे। मोक्ष आदि पदारथ चारे।
इनकी सिद्धि प्राप्त होवे। जन्म मरण के कष्ट को खोवे।।

9. स्वामी अमृतानन्द सरस्वती कृत ब्रह्म स्तोत्र–सरगोधा (पाकिस्तान) निवासी श्री ताराचन्द आर्य ने स्वामी आत्मानन्द सरस्वती से दीक्षा लेकर अमृतानन्द सरस्वती नाम ग्रहण किया था। ये सिख मत के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन्होंने सिख मत के मान्य ग्रन्थ जपजी की शैली में संध्या का पद्यानुवाद किया जो स्वामी आत्मानन्द सरस्वती प्रकाशन मन्दिर यमुनानगर से प्रकाशित हुआ है। इसका एक अन्य संस्करण आर्य प्रकाशन दिल्ली ने भी प्रकाशित किया। 'उद्वयं तमसस्परि स्वः' (यजुर्वेद 35।14) उपस्थान के इस मन्त्र का जपजी शैली में अनुवाद इस प्रकार हुआ है–

अंधकार से दूर दयामय ज्ञानवान भण्डार सुखों के।
प्रलय के पीछे भी बाकी नाशरहित हो खान गुणों के।
आत्मदेव ही सकल जगत के आनन्द दाता परम भगत के।
जन्म जगत को देने वाले ज्योतिर्मय हमको अपनाले।।

10. पं. वेदभूषण कृत वैदिक सांध्यगीत–मराठवाड़ा (पूर्व निज़ाम राज्य) के प्रसिद्ध आर्य नेता भाई वंशीलाल जी के पुत्र पं. वेदभूषण ने वैदिक सांध्यगीत लिख कर संध्या मन्त्रों का पद्यानुवाद किया। पुस्तक की सम्पादिका डा. सुनीति के अनुसार इस पद्यानुवाद की यह विशेषता है कि इसमें मन्त्रों के ऋषिसम्मत अर्थों को ही पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया गया है। उपस्थान के प्रथम मन्त्र उद्वयं तमसस्परि स्वः (यजुर्वेद 35/14) का पं. वेदभूषण कृत पद्यार्थ द्रष्टव्य है–

प्रलय रात्रि से पहले भी जो उत्तम ज्योतिस्मान रहे।
देवों का भी देव जिसे श्रुति सुख स्वरूप भगवान कहे।
तेजपुंज हे स्वयं प्रकाशक तेरा ही गुणगान करें।
तुम हो रक्षक प्रभु हमारे, तेरा ही हम ध्यान धरें।।

11. सुन्दरलाल भाटिया लिखित संध्या प्रदीप–राजस्थान के महालेखापाल कार्यालय के सेवा निवृत्त लेखाधिकारी स्व. सुन्दरलाल भाटिया ने उपस्थान के चित्रं देवानां (यजुर्वेद 7।42) मन्त्र का पद्यानुवाद इस प्रकार किया है–

अद्भुत स्वरूप तेरा तेरी अनूप करनी।
हैं आपमें अवस्थित द्यौ अन्तरिक्ष अवनी।
तेरी कृपा से प्रभुवर सच्चा प्रकाश पाया।
श्रद्धा की अंजली ले तेरे समीप आया।।

12. किसी अज्ञात कवि कृत संध्या का पद्यानुवाद–इस अनुवाद में गायत्री मन्त्र (यजुर्वेद 36।3) का पद्य रूपान्तरण इस प्रकार हुआ है–

ओम्कार प्रभु तेरा नाम, गुण गावे संसार तमाम।
प्राणस्वरूप प्राणों से प्यारा। दूर दुखों का करने हारा।
सुखस्वरूप सुखों का दाता, अन्त न कोई तुम्हारा पाता।
सारे जग को पैदा करता, सबसे उत्तम पाप का हर्ता।
हे ईश्वर, हम तुझको ध्यावें, पाप कर्म के पास न जाने।
बुद्धि करो हमारी उज्ज्वल, जीवन हो हमारा निर्मल।।

13. मदनमोहन 'दिव्य' कृत संध्या संगीतिका–गंगाप्रसाद उपाध्याय ट्रैक्ट विभाग आर्यसमाज चौक प्रयाग से प्रकाशित यह अनुवाद प्रसिद्ध विद्वान् पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय द्वारा प्रशंसित हुआ है। नमस्कार मन्त्र (नमः शम्भवायच-यजुर्वेद 16।4) का पद्यानुवाद द्रष्टव्य है–

हे शान्तनिधि हो शान्ति देते नित बचा त्रय ताप से।
आनन्दनिधि, आनन्द देते हो मधुर संलाप से।

हे शिव, सदा कल्याणकर, नित क्लेश का करते शमन।
तुझसा तुहीं कल्याणकर, अतएव शतशत नमन।।

14. **रामनिवास विद्यार्थी प्रणीत संध्या संगीत**—मेरठ जनपद के ग्राम फजलपुर के निवासी रामनिवास विद्यार्थी एक सफल शिक्षक रहे हैं। आपके समग्र सामवेद पद्यानुवाद तथा विभिन्न ऋचाओं के सुन्दर काव्य रूपान्तर 'ऋचाओं की छाया में' की चर्चा अन्यत्र आई है। संध्या संगीत का प्रकाशन 1981 में हुआ। संध्या संगीत की एक विशेषता यह है कि इसमें मन्त्रों का धारावाही पद्यानुवाद तो है ही, गीत रूप में उनका भाव पल्लवन भी किया गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के गीत रूपी भाव पल्लवन की आरम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

चपल मन का प्रभु ध्यान ललाम।
दिशा दिशा मे दिवा निशा में रक्षक वह सुख धाम।।

15. **पं. रामचन्द्र विद्यालंकार रचित वैदिक संध्या गीत**—आर्यसमाज माण्डले (बर्मा) के पूर्व पुरोहित पं. रामचन्द्र विद्यालंकार ने संध्या का जो पद्यानुवाद किया है उसके दो संस्करण (1981 तथा 1987) में प्रकाशित हो चुके हैं। इसमें प्रत्येक मन्त्र का पद्यात्मक पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। आचमन मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार है—

सर्वव्यापक सर्वप्रकाशक आनन्ददायक परमेश्वर।
मन वांछित आनन्द के दाता, पूर्णानन्दहित जगदीश्वर।
परम कृपा कर हम भक्तों पर सुख शान्ति की वृष्टि करें।
सब विधि निज अमृत पुत्रों का करुणाकर कल्याण करें।।

16. **स्वामी आत्मानन्द सरस्वती कृत दैनिक संध्या (कविता गान)**—गुरुकुल पोठोहार चोहा भक्तां (रावलपिण्डी) के आचार्य तथा दर्शनों के अप्रतिम विद्वान् स्वामी आत्मानन्द ने संध्या को काव्यात्मक रूप दिया। मासिक पत्र सुधारक के आत्म तरंग शीर्षक विशेषांक (दिसम्बर 1962) में यह अनुवाद प्रकाशित हुआ था। 'ऋतं च सत्यं च' इस अघमर्षण मन्त्र का अनुवाद निम्न कवित्त में अत्यन्त सटीक हुआ है—

तप के प्रताप से हृदय अणु क्षुब्ध भये,
ऋत अरु सत्य को स्वरूप विकसायो है।
सत्य के प्रभाव से उदार भाव जाग उठे,
दान महिमा को मान हिय में बसायो है।

हृदय जलधि शम जल भरपूर भये,
प्राणिगण हित हिय आसन बिछाई है।
रात अरु दिन सब काल विश्व हेत दियो,
जग हित नयन श्रवण गण भायो है।।

17. धर्मदत्त विद्यालंकार रचित संध्या संगीत–गुरुकुल कांगड़ी से 1917 में विद्यालंकार की उपाधि ग्रहण कर स्नातक बनने वाले पं. धर्मदत्त विद्यालंकार ने संध्या-संगीत की रचना की थी जो 1981 वि. में प्रकाशित हुई। आचमन मन्त्र–शन्नो देवी (यजुर्वेद 36।12) का पद्यार्थ उन्होंने इस प्रकार किया है–

जल सम शीतल दिव्य प्रभु वह हम सबका कल्याण करे।
और हमारी मंगलमय अभिलाषाओं को पूर्ण करे।
मंगलमय हरि हम सबको नित परमानन्द प्रदान करे।
और हमारे ऊपर निशिदिन मंगल की ही वृष्टि करे।।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि आर्य कवियों ने दैनिक उपासना तथा कर्मकाण्ड विषयक अनुष्ठानों को भी पद्य रूप देने का सार्थक प्रयास किया है।

अध्याय-10

आर्य कवियों द्वारा रचित चरित काव्य

यद्यपि आर्य कवियों ने आर्यसमाज के संस्थापक युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द के चरित पर आधारित काव्यों को लिखने को ही वरीयता दी है किन्तु वे अन्यान्य महापुरुषों एवं उदात्त चरित सम्पन्न व्यक्तियों को भी अपने काव्यों का नायक बनाने में पीछे नहीं रहे हैं। ऐसे महापुरुषों में ऋषि दयानन्द के विद्यागुरु दण्डी विरजानन्द, राम, कृष्ण आदि सत्वगुण सम्पन्न महामानव तथा धर्म हेतु जीवन समर्पित करने वाले वीर हकीकतराय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आगे के पृष्ठों में हम ऐसे ही काव्यों का परिचयात्मक विश्लेषण उपस्थित कर रहे हैं।

रामायण और महाभारत को उपजीव्य बनाकर लिखा गया आर्यसमाजी काव्य

स्वामी दयानन्द ने रामायण और महाभारत जैसे आर्य इतिहास युक्त आर्ष काव्यों को प्रशंसा की दृष्टि से देखा था। उनके विचारानुसार राम और कृष्ण आदर्श आर्य पुरुष थे जिन्होंने जन्म से मृत्यु पर्यन्त किसी प्रकार के अन्याय तथा अधर्म का आचरण नहीं किया। उन्होंने इन महापुरुषों को 'आप्त पुरुष' की संज्ञा दी है तथा उनके गुण, कर्म एवं आचरण को मनुष्य मात्र के लिए आचरणीय तथा अनुकरणीय बताया है। इस स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि आर्यसमाजी कवि रामायण तथा महाभारत के कथानक, पात्र, घटनाचक्र आदि को आश्रय बनाकर काव्य रचना करते। वस्तुतः राम, कृष्ण आदि को उपादान बनाकर भारत की सभी भाषाओं में जितना उत्कृष्ट काव्य लिखा गया है, उसे देखकर यह कहना कठिन हो जाता है कि इन विषयों पर अब कुछ नया भी लिखा जा सकता है। तथापि मैथिलीशरण गुप्त की इस उक्ति को ध्यान में रखा ही जाना चाहिए–

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।। (साकेत)

आगे की पक्तियों में हम रामायण और महाभारत को आधार बनाकर लिखे गए आर्यसमाजी काव्य का मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

पं. आर्यमुनि कृत रामायण काव्य

महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि आर्यसमाज के दार्शनिक विद्वानों में अग्रगण्य थे किन्तु यह बहुत कम लोगों को पता है कि वे उच्च कोटि के कवि भी थे। उनकी काव्य प्रतिभा का संकेत इसी बात से मिलता है कि वे अपने दर्शन ग्रन्थों के भाष्यों में भी यत्र-तत्र स्व सिद्धान्त को कविता के माध्यम से प्रस्तुत करते थे। यहाँ हम उनकी उस काव्य कृति की आलोचना करेंगे जो उन्होंने वाल्मीकीय रामायण (द्वितीय भाग) के भूमिका भाग में उद्धृत की है। आर्यमुनि ने वाल्मीकीय रामायण का यह संस्करण प्रक्षिप्त अंशों को छोड़कर संक्षिप्त आकार में सम्पादित किया था। भूमिका का यह भाग आर्यमुनि विरचित रामायण विषयक पद्यों से ही आरम्भ होता है। 16 पृष्ठों में निबद्ध यह काव्यांश गोस्वामी तुलसीदास कृत 'मानस' की दोहा, चौपाई शैली में लिखा गया है। काव्य की भाषा सरल संस्कृतिनिष्ठ अवधी है। वाल्मीकीय रामायण के प्रारम्भ में महामुनि नारद राम के गुणों एवं चरित्र का जिस प्रकार वर्णन करते हैं, उसी शैली में आर्यमुनि ने भी राम के व्यक्तित्व में समाहित गुणों का उल्लेख किया है। प्रासंगिक पंक्तियों द्रष्टव्य हैं–

अम्भोनिधि सम अतल अगाधा। हिमगिरि सम अटल अबाधा।
सौर्यादि गुण गण इमि सोहें। जिमि विधु किरन निखिल मन मोहे।

तुलनीय–समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव–वा.रा. अवतरणिका, बालकाण्ड, प्रथम सर्ग, श्लो. 17।

आर्यमुनि रचित रामायण के ये प्रसंग यत्र-तत्र तुलसीदास के रामचरितमानस से भी प्रभाव ग्रहण करते हैं। इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। सीता को वन में ले चलने में राम की सहमति नहीं है। वे बन के भयावने दृश्यों और वहाँ की कठिनाइयों का उल्लेख कर सीता से कहते हैं–

सरित भयानक जेहि मग मांही। नाना विषधर पथ पथ मांही।।
पथ दुर्गम अति विकट कराला। पद पद भूमि भरे बहुव्याला।।

इन पंक्तियों से तुलसीदास की निम्न पंक्तियाँ तुलनीय हैं–

व्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा।।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

गोस्वामी जी इस सूक्ति में प्रजा को दुखी रखने वाले राजा के नरकगामी होने का विधान करते हैं तो आर्यमुनि ने नीति निपुण राजा का लक्षण बताते हुए लिखा—

जासु राज सुख सम्पति नाना। सो नृप नीति निपुण हम जाना।।

वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड मे एक सुन्दर व रुचिकर प्रसंग आता है जिसमें भरत माता कौसल्या के समक्ष अनेक शपथें खाकर बार-बार इस बात की दुहाई देते हैं कि यदि राम को बन में भेजने में उनकी सहमति रही हो तो उन्हें वह पाप लगे जो अमुक-अमुक दुष्कृत्य करने से लगता है। इस प्रसंग में आदि कवि ने 38 श्लोक लिखे हैं। कहना नहीं होगा कि यह प्रसंग रामायण का एक अत्यन्त मार्मिक, करुण तथा हृदयाद्रावक प्रसंग है। पं. आर्यमुनि ने भी इस प्रसंग को कुछ चौपाइयों में प्रस्तुत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

यदि मम सम्मति से रघुराजा। गये विपन तज सकल समाजा।।
तो मोको अघि जानो ऐसा। मात पिता गुरु हन्ता ऐसा।।
वेद विदूषक जो अघ लागे। जो अघ लगे धर्म के त्यागे।।
अबला बाल वृद्ध के मारे। जो अघ लगे राज हत्यारे।।
सो अघ मोको लगे अति घोरा। राम गमन में यदि मत मोरा।।

तुलसीदास की ही भाँति आर्यमुनि ने भी अयोध्याकाण्ड के इस प्रसंग में भरत के चरित्र को अत्यन्त उदात्त रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार—

भरत प्रीति कवि वाग अतीता। रसिक कवि किमिबरनै गीता।।
प्रेम पयोधि तरंग अपारा। कवि मति उडुप लहे किमि पादा।।
जगत पयोनिधि भरत जहाजा। भवनिध पार भये चढ़ि राजा।।

यह सम्पूर्ण प्रसंग तुलसी के मानस में वर्णित भरत प्रसंग के अनुकरण पर ही लिखा गया है।

आर्यमुनि का रामायण की कथा के प्रति दृष्टिकोण तुलसीदास के दृष्टि बिन्दु से मूलतः भिन्न है। तुलसी की दृष्टि में राम ईश्वर के साक्षात् अवतार हैं जो समय-समय पर धर्म की रक्षा तथा अधर्म के विनाश हेतु जन्म लेते हैं। इसके विपरीत आर्यमुनि के विचारानुसार—

रूप न रेख जासु नहि काया। ब्रह्म नाम ताका श्रुति गाया।।
सो किहिं विध नरतनु धर जन्मा। वेद कहत जिहिं सदा अजन्मा।।

आर्यमुनि अवतारवाद का प्रत्याख्यान करते हुए रामायण के कथानक को

मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का वास्तविक इतिहास बताते हैं। अलंकारों का प्रयोग इस रामायण काव्य में सहज एवं स्वाभाविक रीति से हुआ है। 'रामायण' विषयक साङ्गरूपक को आर्यमुनि निम्न दोहे में प्रस्तुत करते हैं–

रामायण दीपक लखों मध्यवर्ति सिय राम।
भरत स्नेह जामे नहीं सो दीपक किहि काम।।

यहाँ 'वर्ति' तथा 'स्नेह' में श्लेष का सुन्दर प्रयोग हुआ है। अन्यत्र रामचरित का वर्णन कवि ने एक अन्य रूपक के द्वारा किया है। इसमें राम के चरित को कमल, वाल्मीकि को इस कमल को विकसित करने वाला वसन्त तथा गोस्वामी तुलसीदास को रामचरित रूपी कमल रस के लोलुप मधुकर के रूप में उपस्थित किया है–

रामचरित पंकज लखो वाल्मीकि ऋतुराज।
मधुकर तुलसीदास है तामहिं रह्यो विराज।।

वाल्मीकीय रामायण (भाग-2) के भूमिका भाग की समाप्ति में आर्यमुन ने वाल्मीकि कृत षट् ऋतु वर्णन को दोहा-चौपाई शैली में प्रस्तुत किया है। ऋतु वर्णन का यह प्रसंग अपनी सम्पूर्ण मार्मिकता तथा कलात्मकता के साथ अंकित हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

ग्रीष्म-वर्णन–

क्षुद्र सरित सरिताकर सूखे। विषद विपन सब लागत रूखे।
चातक रटत तृषा के मारे। द्विप द्वीपि जल ढूंढत सारे।।

उपमाओं की वास्तविकता तथा मौलिकता दर्शनीय है–

शुष्क नीर भये व्याकुल मीना। बहुपरिवारी जिमि धन हीना।।

ग्रीष्म के अनन्तर वर्षा वर्णन–

हिमगिरि शिखर मेघ नभ छाये। कोटिन कोटि न जात गिनाये।।
मीन मशक नाना भये प्रानी। जिमि सुराज्य पा प्रजा बढ़ानी।।
तृण तरु पल्लव बीरुध जामे। सत पथ समझ परत नहिं तामे।।

वर्षा के व्यतीत होने पर शरद ऋतु का आममन हुआ–

वृद्ध भई वर्षा मनहु गया बुढ़ापा छाय।
काश श्मश्रु श्वेत सम, भये शरद ऋतु पाय।।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यदि महर्षि वाल्मीकि ने अपने आदि

काव्य मे ऋतु वर्णन के व्याज से प्रकृति के नाना सौम्य, मृदु तथा घोर रूपों को अपने काव्य कौशल के द्वारा व्यक्त किया है तो महाकवि आर्यमुनि ने भी आर्ष काव्य के इन्हीं प्रसंगों को अत्यन्त रुचिकर शैली में पद्यबद्ध कर दिया है। रामायण की आर्य टीका की भूमिका के अन्त में कवि ने निम्न दोहों मे देश शासक का उल्लेख करने के साथ-साथ काव्य निर्माण की तिथि एवं वर्ष तथा टीका निर्माण के स्थान का भी उल्लेख कर दिया है–

शासन जारज पंचमा शान्तिमय शुभ देख।
ग्रह रस ग्रह पुनि चन्द्र में लिखा अपूर्व लेख।
श्रावण शुकलार अष्टमी लवपुर कर विश्राम।
आर्यमुनि पूरण कियो रामायण को काम।।

अर्थात् सम्राट जार्ज पंचम के शासन काल में वि. सं. 1969 (1912 ई.) की श्रावण शुक्ला 8 को रामायण की यह टीका लाहौर में लिखी जाकर समाप्त हुई।

महाभारत पर आधारित आख्यानमूलक काव्य

महर्षि कृष्ण द्वैपायन की आर्ष प्रज्ञा से प्रसूत महाभारत संस्कृत साहित्य की एक अद्वितीय कृति है। यह कौरव पाण्डवों की विशद यशोगाथा तो है ही, इसमें धर्म, अध्यात्म, दर्शन तथा नीति की विवेचना के साथ-साथ व्यष्टि और समष्टि के कर्तव्य कर्मो का विशद विवेचन भी हुआ है। इसी अभिप्राय को ध्यान में रखकर स्वय महाभारतकार ने ही लिखा था–

धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

जो कुछ महाभारत में वर्णित और विवेचित हुआ है वही अन्य शास्त्रों और ग्रन्थों में मिलेगा। किन्तु जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं मिलेगा। इस प्रकार पुरुषार्थ चतुष्टय का निरूपण करने वाला यह एक अद्भुत ग्रन्थ है।

कविरत्न प्रकाशचन्द्र ने महाभारत के अनेक प्रसंगों को काव्य रूप दिया है। 1971 में उनको समर्पित अभिनन्दन ग्रन्थ में महाभारत के कुछ ऐसे ही उपाख्यानों का पद्यात्मक रूपान्तर प्रकाशित हुआ है। ये हैं–जरासंध वध प्रसंग में युधिष्ठिर-कृष्ण संवाद, शिशुपाल वध, कीचक वध, अभिमन्यु उत्तरा-संवाद तथा पार्थ प्रतिज्ञा। ये सभी प्रसंग वर्णन प्रधान हैं तथा इनमें मूल कथानक का निर्वाह ही कवि का मुख्य प्रयोजन रहा है। कवि प्रकाशचन्द्र द्वारा प्रस्तुत महाभारत के इन अंशों में नाटकीय तत्त्वों की प्रचुरता है। पात्रों के कथोपकथन का सफल प्रयोग प्रशंसनीय है। शिशुपाल वध के प्रसंग का आरम्भ कवि ने दो दोहों में इस प्रकार किया है–

धर्मराज ने कृष्ण का करने को सम्मान।
सभा मध्य पहले किया सादर अर्घ्य प्रदान।
किन्तु कृष्ण सम्मान को दुष्ट बुद्धि शिशुपाल।
सह न सका अति क्रुद्ध हो बोला यूँ तत्काल।।

अग्र पूजा तथा अर्घ्यदान के लिए भगवान् कृष्ण के नाम को प्रस्थापित करते हुए पितामह भीष्म ने जो कहा उसे कवि ने निम्न कवित्त में प्रस्तुत किया है–

कृष्ण हैं प्रशंसनीय वन्दनीय पूजनीय,
अनुकरणीय, कृष्ण नीति के निधान हैं।
असुर संहारी, दीन हीन हितकारी कृष्ण
राजों के भी महाराज, सर्व गुण खान हैं।
ज्ञानवान प्रीति रीति नीति बुद्धि ऋद्धि सिद्धि
शौर्य तुष्टि पुष्टि, कृष्ण में विद्यमान हैं।
कृष्ण को समझते हैं जो मनुष्य साधारण,
मति के हैं मन्द वे अबोध अनजान हैं।।

कीचक की कामुकता तथा व्यभिचारोन्मुख वृत्ति को लक्षित कर सैरन्ध्री (द्रौपदी) ने भीम के समक्ष अपने दुख और क्षोभ को जिन शब्दों में व्यक्त किया वह निम्न पद्य में द्रष्टव्य है–

कुछ सोचो अजी, इतने तुम क्यों
अब भीरु नपुंसक हो रहे हो।
अपनी कुललाज तो खो ही चुके
मम लाज भी साथ में खो रहे हो।
मिला धूल में क्यों मुझ फूलसी को
अति तीक्ष्ण शूल चुभो रहे हो।
दुखियारी कभी से मैं रो रही हूँ
सुख की निंदिया तुम सो रहे हो।।

चक्रव्यूह का भेदन करने के लिए अभिमन्यु तैयार है। माता सुभद्रा से इस कार्य के लिए उसे आज्ञा भी मिल गई है। अब वह अपनी पत्नी उत्तरा से विदा लेना चाहता है। इस समय अभिमन्यु के मन में कर्तव्य और प्रेम का संघर्ष चल रहा है। कर्तव्य उसे युद्ध में जाने की प्रेरणा देता है। किन्तु नवोढा पत्नी का प्रेम, चाहे उसे कर्तव्य से विमुख नहीं भी करे, मन में एक कठिन अन्तर्द्वन्द्व तो उत्पन्न करता ही है। युवावीर की इसी उद्वेलनपूर्ण स्थिति को कवि ने निम्न पंक्तियों में

विदग्धतापूर्ण शैली में अभिव्यक्ति दी है–

बढ़ रहा यद्यपि आगे को
रथ के सम यह तन मेरा।
होता जा रहा ध्वज सम
पर पीछे को मन मेरा।
इस ओर अग्रहपूर्वक
कर्तव्य पुकार रहा हू।
उस ओर प्रेम प्रेयसि का
उर लहरें मार रहा है।
कर्तव्य प्रेम दोनों में
यह कैसी होड़ लगी है ?

उधर प्राणाधिका पत्नी की व्याकुलता को देखें जो–

रह रह के व्याकुल बाला
खिड़की से झॉक रही थी।
निज हृदय पटल पर
सुन्दर छवि आँक रही थी।
शशि को अवलोकि कुमुदिनी
हो जाती पुलकित जैसे।
प्रिय को विलोक वह बाला
हो गई प्रफुल्लित तैसे।।

अर्जुन और द्रोणाचार्य के युद्ध वर्णन प्रसंग में कवि को वीर रस के चित्रण का अवसर मिला। युद्ध में सुभटों की जयकार तथा रणभूमि में प्रवाहित रक्त धारा–वीर एवं बीभत्स रसों की एक साथ अवतारणा करती है–

रथ को बढ़ाया श्याम ने शकट व्यूह ओर
पाण्डवी सुभट जयकार करने लगे।
छूट के गाण्डीव प्रत्यंचा से पार्थ के विशिख
टिड्डी दल भाँति व्योम में विचरने लगे।
प्राण हरने लगे असंख्य शत्रु सैनिकों के
भीरू डरने लगे उसास भरने लगे।
रक्त की प्रबल धार सरिता समान बही
कच्छ मच्छ तुल्य रुण्ड मुण्ड तरने लगे।।

सन्तलाल दाधिमथ रचित श्रीमद्विरजानन्द दर्शन

स्वामी दयानन्द के दीक्षागुरु स्वामी विरजानन्द के जीवनचरित को आधार बनाकर लिए गए इस काव्य के रचयिता श्री सन्तलाल दाधिमथ व्यवसाय से वैद्य थे और लुधियाना में निवास करते थे। उनके जीवनवृत्त का अधिक विवरण प्राप्त नहीं होता। विरजानन्द दर्शन दस सर्गों में लिखा हुआ एक सुन्दर चरित काव्य है। इसका प्रकाशन 1982 वि. में सरस्वती-सदन लुधियाना से हुआ था।

प्रथम सर्ग में चरितानायक के शैशव का वर्णन हुआ है। कवि ने इस काव्य में सर्वत्र हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'भारतभारती' में इसी छन्द का प्रयोग कर इसे अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया था। विरजानन्द चरित पर भारतभारती का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ—

ऐसे तमोमय काल मे था कौन, जो जाग्रत रहा।
वह दिव्य दृङ्मय देव विरजानन्द था योगी महा।
वह कौन था, जिनके हृदय में वेद का आलोक था।
वह एक ही योगीन्द्र विरजानन्द पुण्यश्लोक था।

'तरुण तपस्वी की ज्ञान पिपासा' शीर्षक द्वितीय सर्ग स्वामी विरजानन्द के तपस्या एवं अध्ययन-काल का विवरण उपस्थित करता है। 'वेदार्थ तालिकाप्ति' शीर्षक तृतीय अध्याय मे विरजानन्द को आर्ष ग्रन्थों का विवेक होने का प्रसंग वर्णित किया गया है। 'महात्मा का महत्त्व' शीर्षक चतुर्थ सर्ग में स्वदेशी राजाओं द्वारा स्वामी विरजानन्द के प्रति सम्मान भाव का वर्णन है।

'पारस स्पर्श' शीर्षक पंचम सर्ग में स्वामी दयानन्द के अध्ययन का प्रसंग आया है। 'अंकुरित विचार बीज' शीर्षक षष्ठ सर्ग में दयानन्द की दीक्षा तथा गुरु द्वारा उनसे धर्म प्रचारार्थ प्रतिज्ञा ग्रहण कराने की घटनाएँ वर्णित हुई हैं। 'कर्मयोगी का शास्त्रार्थ समर' इस ग्रन्थ का सातवाँ सर्ग है। इसमें विरजानन्द द्वारा अनेक विद्वानों से किए गए शास्त्रार्थों का विवरण दिया गया है। अष्टम सर्ग 'विचाविटप के फूल फल' शीर्षक है। इसमें स्वामी दयानन्द द्वारा दण्डीजी की विचार परम्परा को आगे बढ़ाने हेतु किए गए प्रयत्नों का विवरण दिया गया है। नवम सर्ग 'अमृतपद प्राप्ति' शीर्षक है जो स्वामी विरजानन्द के परलोकगमन का प्रसंग वर्णित करता है। 'शिवशासन' शीर्षक अन्तिम सर्ग में कवि ने स्वामी विरजानन्द की शिक्षाओं का उल्लेख कर इस काव्य को निम्न शुभकामनाओं के साथ समाप्त किया है—

भारत नगरमाला सुशोभित गुरुकुलों से तूर्ण हो।
फिर से चतुर्वेदी जनों से आर्य भारत पूर्ण हो।

तज धर्म वैदिक 'सन्त' जन को हो न इच्छा प्राण की।
वर्षा रहे भगवान् भारत में सदा कल्याण की।।

विरजानन्द दर्शन की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। इसमें तत्सम शब्दावली का बाहुल्य है। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

प्रवरा परा-विद्या-विभूषण धार समलंकृत हुआ।
जीवन-विपंची का तरल-तर-तार वह झंकृत हुआ।।
अनुपम-अतुल-उत्कृष्ट-विद्या-बल बटुक को जब मिला।
प्रज्ञान पूषन से अमल-मानस-महोत्पल जब खिला।।

क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का यह प्रयोग हमें महाकवि हरिऔध के महाकाव्य प्रियप्रवास का स्मरण करा देता है।

कवि दाधिमथ को अनुप्रास अलंकार का प्रयोग अत्यन्त प्रिय है। वह अनुप्रास के प्रयोग करने का कोई अवसर नहीं छोड़ता। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

माधुर्य मार्दव मुनमयी मुनिमोहिनी नय रत हुई।

आलोच्य काव्य के अन्तिम सर्ग में जब कवि ने ईश्वर के नाना गुणों का वर्णन शास्त्रीय शब्दावली का प्रयोग करते हुए आरम्भ किया तो उसकी लेखनी से निम्न छन्द प्रसूत हुआ–

आद्यन्त-हीन, अकाय, अव्रण, अमर, अजर, अजय, अभय।
निर्गुण, निपुण, निर्दोष, नीरुज, नित्य, न्याय-निकर, सदय।
सर्वज्ञ, सर्वाधार, श्री सर्वात्मगत, शुचि, शान्त, वर।
सत् चित् तथा आनन्द ज्योतिष्मान ज्ञान-कृपा-निकर।।

यहाँ भी कवि की अनुप्रासप्रियता दर्शनीय है।

निश्चय ही विरजानन्द दर्शन अपने युग की एक उत्कृष्ट काव्य कृति है। इसमें भाषा, शैली तथा कल्पना का बहुरंगी संयोग दृष्टिगोचर होता है।

सन्तलाल दाधिमथ की कुछ स्फुट कविताएँ भी तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित हुई थीं। इनसे उनकी श्रेष्ठ काव्य प्रतिभा का ज्ञान होता है। लाहौर से प्रकाशित होने वाले आर्य प्रतिनिधि-सभा पंजाब के मासिक पत्र 'आर्य' में उन्होंने मासावतरण शीर्षक से कुछ प्राकृतिक सौन्दर्यपरक कविताएँ लिखी थीं। मार्गशीर्ष के आगमन के साथ शीत ऋतु का अवतरण माना जाता है। रात्रि को गिरने वाली ओस का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है–

शर्वरी के, शस्य पर हिमपात ने
वे बना मोती अनोखे से दिये।

बालमन कहता जिन्हें लख, ये बनें।
सत्य मोती, तो हमें क्या चाहिए ? (आर्य-मार्गशीर्ष 1981 वि.)

आश्विन मास में आकाश मेघ शून्य हो जाता है और वर्षा काल के समय प्रायः सुनाई पड़ने वाली मयूर ध्वनि अब विरल हो गई है। आश्विन के नैसर्गिक सौन्दर्य का यह चित्र देखें–

हुई प्रकृति साम्राज्य पर आश्विन में आसीन।
शरद इधर, नभ हो चला निर्मल अभ्रविहीन।
कहीं शस्य श्यामला मही जल बहुल कहीं है।
फिर वह घन स्वन त्रस्त शिखी रव रहा नहीं है।।

दाधिमथ द्वारा किया गया कार्तिक वर्णन वाल्मीकीय रामायण के ऋतु वर्णन से प्रभावित हुआ है। यह निम्न तुलना से स्पष्ट हो जाएगा।

नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामी कृत्वा दिशोदशः।
विमदा इव मातंगाः शान्तवेगाः पयोधराः।। किष्किन्धा काण्ड

रामायण के उक्त श्लोक की छाया दाधिमथ के निम्न दोहे में देखें–

नील कमल दल से असित कर के श्याम दिगन्त।
हुए विमद मातंग से शान्त पयोधर अन्त।। ('आर्य' आश्विन 1981)

विद्याभूषण विभु कृत 'विरजानन्द विजय'

डा. विद्याभूषण विभु (1892-1965) हिन्दी में बाल साहित्य के उत्कृष्ट प्रणेता थे। आपने डी.ए.वी. हाईस्कूल प्रयाग में अध्यापन कार्य किया तथा कानपुर में कुछ समय तक पुस्तक विक्रेता का व्यवसाय भी किया। विभुजी ने स्वामी दयानन्द के विद्यागुरु दण्डी विरजानन्द के जीवन को आधार बनाकर एक सुन्दर चरितकाव्य का निर्माण किया जो 1981 वि. में दयानन्द जन्म शताब्दी सभा मथुरा द्वारा प्रकाशित हुआ था। विरजानन्द विजय सात सर्गों में विभक्त काव्य है जिसमें दण्डी विरजानन्द के जीवन के साथ-साथ स्वामी दयानन्द के विद्या ग्रहण, तदुपरान्त दीक्षा ग्रहण करने की घटनाओं का वर्णन किया गया है। प्रथम सर्ग में चरितनायक दण्डी जी के अवतरण का प्रयोजन बताते हुए कहा गया है कि पाप रूपी अन्धकार का शमन करने के लिए ही इस महापुरुष का जन्म हुआ था–

पाप तिमिर को भानु हुए
कल्मष हेतु कृशानु हुए।

मुनिवर सुषमा कन्द हुए
दण्डी विरजानन्द हुए।।

द्वितीय सर्ग में कवि ने स्वामी विरजानन्द के जन्म तथा उनके बाल्यकाल का वर्णन किया है। तृतीय सर्ग 'ज्ञान की खोज में' स्वामी विरजानन्द के देशाटन का वर्णन उपस्थित करता है। कवि ने यहाँ प्रकृति के कुछ रम्य चित्र भी अंकित किए हैं। उदाहरणार्थ, हृषीकेश के निकटवर्ती वनों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा–

हृषीकेश कान्तार सघन
दिन में भी तम फिर निर्जन।
चित्रक भल्लूक पंचानन।
रव करते डरता सुन मन।।

गंगा के वेगपूर्ण प्रवाह से उत्पन्न होने वाली ध्वनि में कवि को नदी का क्रन्दन सुनाई पड़ता है–

यह कैसा दुख क्रन्दन है।
या भागीरथी स्पन्दन है।
इस कल कल में चैन कहाँ ?
गिरि जीवन संग्राम यहाँ।।

चतुर्थ सर्ग स्वामी विरजानन्द के उस प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का विवरण उपस्थित करता है जिसमें उन्होंने पं. कृष्ण शास्त्री को पराजित किया था। सर्गान्त में कवि ने दण्डीजी की शास्त्रार्थ समर में विजय को निम्न प्रकार चित्रित किया है–

श्रुति रवि आविर्भाव हुआ।
मत तारों का स्राव हुआ।।
अमरों में ज्यों स्कन्द हुए।
विजयी विरजानन्द हुए।।

पंचम सर्ग में स्वामी दयानन्द के अध्ययन का प्रसंग उपस्थित किया गया है। गुरु से आशीर्वाद प्राप्त कर दयानन्द अपने कर्तव्य पथ की ओर प्रयाण करते हैं। कवि के शब्दों में–

गुरु प्रसाद पा हर्षित मन
दयानन्द ने किया गमन।
गुरु का आशीर्वाद चला,
या भारत का भाग्य भला।।

कवि की दृष्टि में दयानन्द क्या है ?

या विधा का विग्रह है।
या ऋषियों का निग्रह है।
या आनन्द दया सागर,
उद्वेलित हो बहा उधर।।

अवशिष्ट सर्गो में विरजानन्द के महाप्रयाण तथा उनके द्वारा प्रदत्त सन्देश का उल्लेख है। विभुजी की इस काव्य कृति में स्वामी दयानन्द के विद्यागुरु दण्डी विरजानन्द के उदात्त चरित्र का मनोज्ञ चित्रण हुआ है।

पं. बाबूराम शर्मा लिखित हकीकतराय चरित्र

पं. बाबूराम शर्मा चंदौसी (मुरादाबाद) के निवासी थे। आपने वीर हकीकतराय का काव्यमय जीवनचरित लिखा है जो 1958 वि. (1901 ई.) में सरस्वती यन्त्रालय इटावा से प्रकाशित हुआ। चरित काव्य की शैली में लिखा गया यह एक लघु ग्रन्थ है जिसमें दोहा, चौपाई तथा सोरठा आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसकी कविता साधारण कोटि की ही है। प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में कवि ने विश्वानिदेव (यजुर्वेद 30 ।3) मन्त्र का कवित्त के रूप में अनुवाद किया है–

त्रिभुवन पति विश्वदेव सर्व उत्पादक एव
अथवा विश्वानि देव सवितर सुवामी है।
पाप दुरितानि त्रय ताप दुर्गुण विलाप
शापहु परासुव विसार अघ खानी है।
अथवा यदभद्र अथ मुक्ति पथ मिति
तन्न नाम ताको प्राप्त आसुव बखानी है।
वेद मिति वाणी बहु मुनिवर प्राणी
निश्रेयः प्रमाणी प्रमाणी निशानी है।।

हकीकतराय चरित्र की कविता के कुछ उद्धरण द्रष्टव्य है–

सत्रह सौ नव्वे विदित साल विक्रमी पाय।
क्षत्री कुल भूषण भयो, जन्म हकीकतराय।।

सोरठा– धन्य बागमल वंश, धन्य मात कौराल कर।
रावी तट कर हंस, जहाँ भयो बलिदान तुव।।

श्री विश्वम्भरसहाय प्रेमी रचित सत्य हरिश्चन्द्र काव्य

मेरठ के प्रख्यात पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता तथा साहित्यकार श्री विश्वम्भरसहाय प्रेमी ने 1988 वि. में 'सत्य हरिश्चन्द्र' शीर्षक एक सुन्दर काव्य की रचना की। इसका प्रकाशन विश्व साहित्य भण्डार मेरठ ने किया था। कवि ने इसे आर्यसमाज के एक अन्य विद्वान् व लेखक पं. घासीरामजी मेरठ निवासी को समर्पित किया है।

आलोच्य काव्य में इक्ष्वाकु वंशज अयोध्या नरेश महाराजा हरिश्चन्द्र की पुराण-प्रसिद्ध कथा इतिवृत्तात्मक शैली में काव्यबद्ध की गई है। कविता का नमूना आरम्भ की चार पंक्तियों में देखा जा सकता है—

धन्य है भारत तुझे तुझ में रतन पैदा हुए।
कारनामे आज तक शिक्षा जिन्हों के दे रहे।।
कर्मपथ से पग नहीं मोड़ा जिन्होंने था कभी।
सैकड़ों कष्टों के पड़ने पर न हारे वे कभी।।

वर्णन प्रधान होने के कारण इस काव्य में किसी विशेष चित्ताकर्षक शैली या भावगत सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते। काव्य में यत्र-तत्र दोहे और गीत भी समाविष्ट किए गए हैं।

ऐसा लगता है कि उस युग में उत्तर भारत की जनता पं. राधेश्याम कथावाचक की गेय रामायण से अत्यन्त प्रभावित थी। आर्यसमाज से जुड़े अनेक कवियों ने भी इसी शैली का अनुकरण करते हुए प्रचुर मात्रा में काव्य रचना की थी। छन्द तथा शैली की दृष्टि से गुप्तजी की भारत भारती का भी प्रायः अनुकरण किया गया था।

पं. सत्यभूषण योगी रचित लेनिन काव्य

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान्, शिक्षाविद् तथा गुरुकुल कांगड़ी के विगत आचार्य प्रो. रामदेव के पुत्र सत्यभूषण योगी का जन्म 1917 में हुआ। गुरुकुल कांगड़ी से वेदालंकार की उपाधि लेकर वे स्नातक बने तथा हिन्दी एवं संस्कृत में एम.ए. करने के पश्चात् दिल्ली के सेंट स्टीफेंस कॉलेज में उन्होंने संस्कृत का अध्यापन किया। वैदिक विद्वान् होने के साथ-साथ श्री योगी सहृदय कवि भी हैं। उनकी अनेक काव्य कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें *योगी का वीर काव्य, योगी की मधुशाला, योगी का सोऽहंकाव्य, योगी बावनी* तथा *लेनिन काव्य* आदि उल्लेखनीय हैं।

रूसी साम्यवाद के भाग्यविधाता लेनिन के प्रति कवि के हृदय में अनन्य आस्था है। योगी की दृष्टि में कार्लमार्क्स तथा उनके अनुयायी लेनिन मानवता के परित्राता महापुरुषों में अग्रगण्य हैं, जिन्होंने मानव का मानव के द्वारा किए जाने वाले शोषण, धर्म के नाम पर किए जाने वाले अनाचार, अत्याचार तथा पूँजीवादी-सामन्तवादी

व्यवस्था से होने वाली हानियों की ओर हमारा न केवल ध्यान ही आकृष्ट किया अपितु विषमता को बढ़ावा देने वाली सभी सड़ी-गली सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने के लिए जिन्होंने क्रान्ति कर उद्घोष किया।

लेनिन काव्य के आरम्भ में लिखे गए श्लोक में कवि ने कार्ल मार्क्स एवं लेनिन का स्तवन करते हुए उन्हें शोषितों के परित्राण हेतु समर्पित तथा रूस में महान् अक्टूबर क्रान्ति के उद्भावक के रूप में स्मरण किया है—

शोषितानां परित्राणे हुतप्राणो महामतिः।
कालामराक्षनामर्षिर्लोके विजयतेतराम्।
असौ रूस महादेशे महाक्रान्तिप्रभोद्भवः।
लयलीनो महावीरः सर्वत्र वर्धतेराम्।।

ध्यातव्य है कि कवि ने कार्ल मार्क्स का संस्कृत रूपान्तरण 'कालामराक्ष' तथा लेनिन का नामकरण 'लयलीन' किया है। आलोच्य काव्य में इन महापुरुषों के लिए यही नाम प्रयुक्त हुए हैं। रूस की राज्यक्रान्ति 1917 में हुई थी। यही वर्ष कवि योगी का जन्म वर्ष भी है। इसे उसने निम्न श्लोक में संकेतित किया है—

ऋषिब्रह्मनिधि गगनभूषिते
रूस देश सुक्रान्ति मण्डिते।
वर्षे लेनिन काव्योद्गाता
सत्यभूषणो योगी जातः।।

लेनिन काव्य के प्रणेता कवि का जन्म 1917 के वर्ष में हुआ जब कि रूस में महान् क्रान्ति हुई और जार के अत्याचारी शासन का खात्मा हुआ।

लेनिन काव्य का आरम्भ कवि ने ऋग्वेद (1.1.2) के मन्त्र 'अग्निपूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरूत। स देवां एहवक्षति' के पद्यानुवाद से किया है। उसकी धारणा है कि—

हर युग में नूतन ऋषि आते
मननीय मन्त्र नूतन रचते।
तम में भटक रही जनता का
सम्यक् मार्ग प्रदर्शन करते।

इसी धारणा के अनुसार कवि ने मार्क्स तथा लेनिन को भी ऋषि संज्ञा से अभिहित किया—

कालामराक्ष (कार्ल मार्क्स) ऋषि के मन्त्रों का
मानव मन ने मनन किया।

लयलीन (लेनिन) वीर ने उन्हें क्रियान्वित
का नूतन युग स्फुरण किया।।

लेनिन काव्य अथ, नास्तिक-आस्तिक, कालामराक्ष-रूसी कृषक संवाद, लयलीन वीर उद्भास, हिन्दू रूसी संवाद तथा उपसंहार इन छः शीर्षकों में लिखा गया है। कवि इस प्रचलित धारणा से अपनी असहमति व्यक्त करता है कि मार्क्स तथा लेनिन जैसे व्यक्तियों को ईश्वर और धर्म के प्रति अनास्था दिखलाने के कारण नास्तिक कह कर पुकारा जाना चाहिए। कवि की दृष्टि में सच्चा आस्तिक वह है जो अशिक्षित तथा दरिद्र किसान में भी परमात्मा का दर्शन करता है तथा शोषण तन्त्र का विरोधी है। ईश्वर का नाम लेकर श्रमिकों को लूटने वाले आस्तिक कैसे कहे जा सकते हैं—

दीन अशिक्षित हलधर में भी
ब्रह्म मौन वह मुसकाता है।
जो सच्चा ईश्वरवादी है
वह सबसे प्यार बढ़ाता है।
जो सबको ब्रह्मरूप देखे
वह शोषण कैसे करे यहाँ।
जो सच्चा ईश्वरवादी है
जन जन को सुख से भरे यहाँ।।

धर्म के नाम पर अबोध जनों को ठगने वालों को आस्तिक कहाना विडम्बना मात्र है—

सब पाप क्षमा करने का वे
ठेका लिए हुए फिरते हैं।
भोली जनता को बहकाते,
बातें बना बना ठगते हैं।
खाते हराम का माल सदा
धोखे की हाट लगाते हैं।
अज्ञान तुला पर स्वर्ग मुक्ति
के नकली बाट चढ़ाते हैं।

धर्म के नाम पर चलने वाले ऐसे ही पाखण्डों और धोखाधड़ी को समाप्त करने का बीड़ा उठाने वाले कार्ल मार्क्स जैसे महान् चिन्तक को साम्यवाद की वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात करना पड़ा और उसी विचारधारा को क्रियात्मक रूप देकर लेनिन ने रूस में जार के साम्राज्यवाद को मटियामेट कर दिया। अतः कवि इन दोनों महापुरुषों

को तथाकथित आस्तिकों से भी बड़ा आस्तिक मानता है। मार्क्स और लेनिन ने साम्यवाद की शोषण मुक्त समाज व्यवस्था को स्थापित करने के जो गुरुतर प्रयास किए उनकी सफलता को कवि ने मानव-जाति की महती उपलब्धि माना है–

कालामराक्ष कवि का सपना
जन जन में साकार हुआ है।
यह लयलीन वीर का तप है
जिससे रस संचार हुआ है।
यह है साम्यवाद की शोभा
सब मानव भाई भाई हैं।
सभी अकल्क श्रमिक हैं, सब में
नवजीवन जागृति आई है।

श्रम का यह मूल्यांकन केवल मार्क्स और लेनिन जैसे अन्य देशस्थ चिन्तकों और कर्मवीरों ने ही किया हो, ऐसी बात नहीं है। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र और रोहित के प्रसंग में 'चरैवेति' जैसे प्रेरक वाक्यों का उल्लेख कर भारतीय ऋषियों ने भी शारीरिक श्रम की महत्ता को उजागर किया है। अतः सत्यभूषण योगी ने लेनिन काव्य के आरम्भ में उक्त ब्राह्मण के इस उपाख्यान को 'कर्मगीत' शीर्षक से पद्यबद्ध किया।

रोहित हम सुनते आए हैं
पुरखों ने तत्त्व बताया है।
श्रम करते जो न थके जन
उसने कभी न श्री को पाया है।
जो श्रम करता है उसकी ही
टाँगें फूल खिलाती चलती।
श्रम करने वाली आत्मा ही
पद पद ज्योति जगाती चलती।।

और भी,

जो सोया जन जग में उसका
भाग्य सदा सोया रहता है।
जो बैठा जन, जग में उसका
भाग्य सदा बैठा रहता है।

लेनिन काव्य की फलश्रुति भी यही है–

न ऋतं श्रान्तस्य सख्याम देवा
सुनो वेद यह कहता है।
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवाः
हरिश्रम सिन्धु में रहता है।।

इस प्रकार श्रम की महत्ता का उद्‌घोष करने वाला लेनिन काव्य एक आर्यसमाजी कवि की विराट् मानसिकता का परिचायक है जो साम्यवादी दर्शन की श्रेष्ठ अवधारणा को स्वीकार करने में भी संकोच नहीं करती।

श्री शम्भुनाथ वियोगी लिखित हकीकत बलिदान

धर्म के लिए आत्मबलिदान करने वाले वीर हकीकतराय के आदर्शजीवन चरित को लेकर बिजनौर जिले के मुहम्मदपुर ग्राम के शम्भुनाथ वियोगी ने छः सर्गों का एक खण्ड काव्य लिखा। इसका प्रकाशन 1978 वि. (1921) में हुआ था। यह असहयोग आन्दोलन का वर्ष था जब महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देशवासी विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने के लिए असहयोग और सत्याग्रह के द्वारा आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे। कवि ने अपनी यह 'क्षुद्र भेंट' उन सत्याग्रही सज्जनों को अर्पित की है जो देश, जाति और धर्म के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने में तत्पर हैं।

'हकीकत बलिदान' मैथिलीशरण गुप्त रचित भारत भारती की शैली पर लिखी गई कृति है। सर्वत्र हरिगीतिका छन्द का प्रयोग करते हुए कवि ने 191 छन्दों में धर्मवीर हकीकतराय के चरित का चित्रण किया है। मंगलाचरण के छन्द में गुप्त जी की काव्य शैली का स्पष्ट अनुकरण दिखाई देता है–

मिलकर सुवाचक वृन्द पहले ईश का वन्दन करो।
फिर प्रिय हकीकतराय का सानन्द अभिनन्दन करो।
धर्मानुरागी वीर ने मुख धर्म से मोड़ा नहीं।
सिर दे दिया सद्धर्म-हित निज धर्म पर छोड़ा नहीं।।

मतान्ध शासक की अदालत में जाते समय हकीकतराय की वीरछवि का यह चित्र देखें–

धर्माभिमानी वीर बालक यह हकीकत जा रहा।
है राजदूतों से घिरा जो मध्य में दिखला रहा।
सुकुमार शिशु है पर बँधा दृढ़ रज्जु बंधन में अहो।
दुर्दैव की दुर्घोषणा का कौन प्रतिवादक कहो।।

कवि की दृष्टि में जीवन धारण की अपेक्षा धर्मपालन के लिए मर जाना अधिक

अच्छा है–

सद्धर्म के हित प्राण हैं नहिं धर्म है हित प्राण के।
यदि धर्म है तो प्राण है नहीं प्राण सम म्रियमाण।।
निज धर्म से होकर पतित नहीं चाहता सम्मान भी।
संसार सुख क्या धर्म से मुझको डिगा सकते कभी।।

धर्म रक्षा के लिए स्वयं का बलिदान करने के लिए तत्पर हकीकत को गीता के उन वाक्यों का स्मरण हो आता है जहाँ कृष्ण ने आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी अकाट्य एवं अवेध बताया है। इन्हीं शास्त्रीय वाक्यों को कवि ने अपने पद्यों में इस प्रकार ढाला है–

देहान्त होने पर न होता अन्त देही का कदा।
तन एक तन को दूसरा तन धारता है सदा।
है आत्मतत्व अचिन्त्य अर्जुन, यह कभी मरता नहीं।
जो कुचाली काल की भी चाल से डरता नहीं।।

बलिदान के समय हकीकतराय तो युवावस्था तक भी नहीं पहुँचा था। उस काल की व्यवस्था के अनुसार उसका विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था। इस सामाजिक कुरीति की ओर कटाक्ष करते हुए कवि कहता है–

हाँ, और जाने भी अभी क्या बाल वनिता यह भला।
जिसने न शिशुता भाव की भी पूर्ण की पहली कला।
हा ! पुष्प खिल पाया नहीं दुर्दैव से शिशु काल का।
दुर्भाग्यवश हा पूर्व ही पाला पड़ा दुष्काल का।।

सरल, परिष्कृत खड़ी बोली में लिखे गए इस काव्य में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। मुसलमान शासक के संवाद में उर्दू के शब्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ। मज़ा, कज़ा, तसलीम, रुतबा, परवरिश, ज़न्नत, जालिम बागवाँ, नसीहत, अज़ल, पिसर जईफी, वालिद जैसे शब्दों में अनेक तो सामान्य पाठक के लिए भी दुर्बोध हैं। निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि हकीकत बलिदान उस युग की एक प्रतिनिधि काव्य रचना है जब देश और धर्म के लिए समर्पित होने वाले वीरों की बलिदान गाथा को गाने में कविगण अपने कृतित्व की सफलता समझते थे।

डा. गोकुलचन्द्र नारंग लिखित धर्मवीर हकीकतराय

पंजाब के सुप्रसिद्ध राजनेता, समाज के अग्रणी कार्यकर्ता तथा सफल लेखक डा. गोकुलचन्द्र नारंग का लेखन प्रधानतः अंग्रेजी में हुआ है। उस युग में पंजाब में हिन्दी

का चलन नगण्य था। शिक्षित लोग उर्दू तथा अंग्रेजी को ही अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त करते थे, जब कि आर्यसमाज द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं में हिन्दी को पठन-पाठन में प्रयुक्त किया जा रहा था। डा. नारंग ने धर्मवीर हकीकतराय के आदर्श जीवन और बलिदान की प्रेरणादायी कथा को एक लम्बी कविता के रूप में लिखा है जिसे हिन्दी कविता की बनिस्पत उर्दू नज्म कहना अधिक उचित है। देखा जाए तो उर्दू भी हिन्दी की एक शैली ही है जिसमें फारसी तथा अरबी शब्दों का बाहुल्य रहता है। पंजाब के आर्यसमाजी लेखकों ने जो उर्दू लिखी, उसमें उन्होंने संस्कृत के शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया। इस कारण वे उर्दू के जानेमाने साहित्यकारों के कोपभाजन भी बने, किन्तु इन लेखकों ने उर्दू को एक नया रूप (हिन्दी, संस्कृत शब्दों से युक्त) अवश्य दिया। डा. नारंग की इस कथा प्रधान काव्य कृति के उपसंहारात्मक पद्य देखें--

अगर हिन्दुओं में है कुछ जान बाकी।
शहीदों बुजुर्गो की कुछ पहचान बाकी।
शहादत हकीकत की मत भूल जाएँ।
श्रद्धा के फूल उस पर अब भी चढ़ाएँ।
कोई यादगार उसकी याँ पर भी बनाएँ।
वहाँ मेला हरसाल फिर से लगाएँ।
शहीदों के दम से ही जीती हैं कौमें।
भरें खूब शहीदों का ही खून इनमें।।

निश्चय ही राम, कृष्ण, विरजानन्द तथा धर्मवीर हकीकत जैसे आदर्श पुरुषों को नायक का रूप देकर लिखे गए उपर्युक्त चरित काव्य आर्य कवियों की सारस्वत-साधना के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं।

कुछ विशिष्ट कवि (अकारादि क्रम से)

1. अखिलेश शर्मा
2. अनूपशर्मा
3. अमीचन्द मेहता
4. आत्मानन्द सरस्वती
5. इन्द्रसेन जेतली
6. उत्तमचन्द शरर
7. ऊमरदान
8. ओउम् प्रेमी (रामनारायण माथुर)
9. ओंकार मिश्र 'प्रणव'
10. कर्ण कवि
1. कालूराम योगी
2. कुंजबिहारी लाल
13. केवल कृष्ण
कृष्णलाल कुसुमाकर
15. कृष्णसिंह बारहट
16. क्षेमचन्द्र सुमन
7. गणेशप्रसाद शर्मा
18. गायत्री देवी
9. चमूपति
20. जेठमल सोढ़ा
21. जोरावरसिंह सिंह कवि
22. देवनारायण भारद्वाज

23. धर्मवीरकुमार शास्त्री
24. नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर'
25. नारायण प्रसाद बेताब
26. नारायण मुनि चतुर्वेदी
27. नारायणानन्द सरस्वती
28. प्रकाशचन्द्र कविरत्न
29. प्रकाशानन्द
30. प्रयाग दत्त अवस्थी
31. फतहकरण उज्ज्वल
32. बदरीदत्त शर्मा
33. बलभद्र मिश्र
34. बाबूराम शर्मा
35. बालकृष्ण सहाय
36. बुद्धदेव विद्यालंकार
37. ब्रजमोहनलाल सक्सेना मोहन
38. भगवती प्रसाद 'अभय'
39. भद्रजित 'भद्र'
40. भीष्म (स्वामी)
41. भूरालाल कथाव्यास
42. मथुराप्रसाद मुंशी
43. मथुराप्रसाद मानव
44. मांगीलाल गुप्त कविकिंकर
45. मुन्नालाल मिश्र
46. मेधाव्रत
47. यशवंतसिंह वर्मा टोहानवी
48. रणंजय सिंह
49. रणवीरसिंह
50. राजेंद्र जिज्ञासु
51. राधेश्याम आर्य
52. रामकृष्ण भारती
53. रामनारायण लाल
54. रामप्रकाश
55. रामप्रसाद बिस्मिल
56. लाखनसिंह भदौरिया 'सौमित्र'

57. वंशीधर विद्यालंकार
58. वागीश्वर विद्यालंकार
59. विक्रमादित्य वसन्त
60. शंकरसिंह वेदालंकार 'सोमेंद्र'
61. श्यामलदास कविराजा
62. स्वरूपानन्द सरस्वती
63. सज्जनसिंह महाराणा
64. सत्यप्रकाश (डॉ.)
65. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'
66. सारस्वतमोहन मनीषी
67. सालिगराम शर्मा
68. सिद्धगोपाल
69. सुखलाल आर्य मुसाफिर
70. सुनीति शर्मा
71. सूर्यदेव शर्मा
72. सुशीला गुप्ता
73. हरिशंकर शर्मा
74. हौलस मस्करी

कुछ उल्लेखनीय आर्य कवि

1. पं. अखिलेश शर्मा

महाकवि भूषण द्वारा प्रयुक्त ओज और तेज भरी काव्य शैली में ऋषि दयानन्द का प्रशस्ति गान करने वाले पं. अखिलेश शर्मा ने सामयिक पत्रों में अन्य विषयों पर भी उत्कृष्ट कविताएँ लिखीं। उनकी ये रचनाएँ आर्य मित्र के कई अंकों में प्रकाशित हुई हैं। 25 जनवरी 1940 के आर्यमित्र में पाँच छप्पयों में समाप्त होने वाली उनकी आर्यसमाज शीर्षक कविता खड़ी बोली की प्रांजल शैली का परिचय देती है—

धर्म प्रेम मन्दार शांति का सुखद सुधाकर।
आदि सभ्यता स्रोत सुशिक्षा का कुसुमाकर।
गो माता का प्राण विश्व विजयी बलिदानी।
सहनशीलता कोष विदित वीरत्व कहानी।
मत मतान्तरों के लिए संक्षोभित यमराज है।
मान्य मनीषी जनों का अथवा आर्यसमाज है।।

स्वामी दयानन्द से भिन्न अन्य हिन्दुत्व निष्ठ महापुरुषों के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यंजित करते हुए कवि अखिलेश ने कुछ सुन्दर रचनाएँ लिखीं। उदाहरणार्थ आर्यमित्र के अप्रैल 1940 के अंक में भाई परमानन्द के प्रति उनके प्रशंसा पूर्ण उद्गार निम्न प्रकार प्रकट हुए—

ओज भट्टी के ज्वलित अंगार,
शिवा गोविन्द रूप धीमान।
वीर बंदा के तुम अवतार,
प्रतापी परशुराम भगवान।

तथा—

स्वर्ग भारत के तुम मन्दार
भक्त कुमुदों के निर्मल चन्द।
सरल गम्भीर सुशील उदार,
जयति जय भाई परमानन्द।।

पुनः 25 अप्रैल 1940 के आर्यमित्र में हिन्दुत्व के प्रबल पोषक वीर सावरकर की स्तुति में उन्होंने लिखा—

आर्य जगत सौभाग्य स्वाभिमानी सुखदायक।
स्वत्व समर के धीर वीर सेनापति लायक।।
जय अनार्य मद मथन सतत शरणागत रक्षक।
जयति दीन जन सेव्य पुष्ट दानव दल भक्षक।।

अखिलेश की कविता में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का भूरिशः प्रयोग उसे किंचित क्लिष्ट तो बना देता है। किन्तु उससे कविता की प्रभाविष्णुता भी बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ—

जय प्रभाव पंचास्य प्रकाण्ड प्रभुत्व प्रसारक।
जयति स्वदेशी वेष विदेशी वैभव नाशक।।
जयति विप्लवी भव्य कीर्ति कौमुदी संवारक।
जयति नाक हिन्दुत्व आर्य सिद्धान्त प्रचारक।।

20 छंदों में समाप्त यह लम्बी कविता अखिलेश रचित वीर काव्य का एक सुन्दर नमूना है।

यदि अखिलेश ने हिन्दुत्व की विचारधारा को प्रधानता देने वाले सावरकर तथा भाई परमानन्द जैसे युग-पुरुषों का कीर्तन किया तो राष्ट्र विधाता गाँधी जैसे सर्ववंद्य

महापुरुष को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने में भी उसने कृपणता नहीं की। 21 मई 1940 के मित्र में उन्होंने बीस छन्दों में गाँधी स्तवन प्रस्तुत किया। यह सम्बोधन शैली में लिखी गई कविता है। ऐसी कुछ अन्य कविताएँ महात्मा जी को सम्बोधित कर राष्ट्रकवि पं. सोहनलाल द्विवेदी द्वारा भी लिखी गई थीं। अखिलेश जी की यह कविता भी संस्कृत के तत्सम शब्दों से लदी है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

तुम बेकारी खग के शचान।
बंदी पीड़ित के अभयदान।।
तुम स्वत्व समर योद्धा महान।
तुम कूटनीति-रिपु तेजवान।।

निश्चय ही अखिलेश की कविता आर्य जाति के गौरवगान तथा महापुरुषों की प्रशस्ति गाथा से समन्वित होने के कारण सांस्कृतिक महत्त्व की है।

2. पं. अनूप शर्मा

द्विवेदी काल के उत्तरवर्ती हिन्दी कवियों में अनूप शर्मा का नाम उल्लेख योग्य है। शर्माजी का जन्म नबीनगर जिला सीतापुर में 1900 ई. में हुआ। इनके पिता का नाम पं. बद्रीप्रसाद त्रिपाठी था। इनका अध्ययन एम.ए.एल.टी. तक हुआ। सीतामऊ (मध्यप्रदेश) के हाई स्कूल में ये प्रधानाध्यापक रहे। कुछ समय तक इन्होंने आकाशवाणी के लखनऊ केंद्र में भी कार्य किया। इनका निधन 1962 ई. में हुआ। अनूप शर्मा आर्यसमाज के प्रति अनन्य आस्था रखते थे। इन्होंने सिद्धार्थ, फेरि मिलिबो, सुनाल, सुमनांजलि आदि काव्य लिखे हैं।

स्वामी दयानन्द की प्रशस्ति में अनूप शर्मा ने कुछ सुन्दर कवित्त लिखे हैं। ऐसे 15 कवित्तों को 'दयानन्द गुणगान' में संगृहीत किया गया है। शर्मा जी की दयानन्द विषयक कविता ओजस्विता से भरपूर है। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है–

प्रकट हुआ जो भारतीय मही मंडल में
    जीवन प्रभात पाके अंश अंशुमाली का।
खो गया महान अंधकार वसुधा से चीर
    हो गया सुकाल कठिन कुचाली का।
पाई पोप राहु ने सुबाहु के समान गति
    देख बाहु वैभव सुधर्म शक्तिशाली का।
वृद्धि हुई ऐसी कि महान तेज पुंज हुआ
    प्रबल प्रताप भानु दीपक दिवाली का।।

महाकवि भूषण ने जिस प्रकार शिवाजी को हिन्दू धर्म और संस्कृति का रक्षक घोपित किया, उसी प्रकार दयानन्द के आर्य सभ्यता के रक्षक रूप का चित्रण करते हुए कवि लिखता है–

होता जो न तू तो इन विपुल विरोधियों की
झोंक घातकारी कहो कैसे सही जाती हाय।।
आर्य सभ्यता की विरुदावली विधर्मियों के
ताप से तो तापित तुरन्त दह जाती हाय।।
मध्यभारतीय इतिहास की इमारत भी
काल के थपेड़े से समूल रुँध जाती हाय।।
कौन अत्रि अंगिरा की चरचा चलाता यहाँ
कपिल कणाद की कहानी रह जाती हाय।।

वस्तुतः अनूप शर्मा की कविता में द्विवेदीकालीन काव्य प्रवृत्तियों के सर्वांगीण दर्शन होते हैं। उनमें हमारे राष्ट्र के नवजागरण की अनुगूँज सुनाई देती है।

सन्दर्भ–दिवंगत हिन्दी सेवी भाग। क्षेमचन्द्र सुमन।

3. अमीचन्द्र मेहता

आर्यसमाज के आद्यकवि और भजनोपदेशक : मानव अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए संगीत जैसे तन-मन को आह्लादित करने वाले तथा स्वल्प समय के लिए ही सही, मनुष्य को लोकोत्तर स्थिति में पहुँचा देने वाले साधन का सहारा सदा से लेता आया है। उल्लास के क्षणों में मानव कण्ठ से संगीत की स्वर लहरी अनायास फूट पड़ती है। आर्यसमाज के गायक कलाकारों ने संगीत के सहारे आर्य सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार किया है। इन गायक-उपदेशकों को प्रायः भजनोपदेशक तथा भजनीक कहा जाता है। यदा-कदा इनके लिए 'प्रचारक' शब्द का भी प्रयोग होता है।

आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द के प्रवचनों के आरम्भ में भी भजन गायन होने के कुछ प्रमाण मिलते हैं। 1882 ई. की प्रथम तिथि (1 जनवरी) से स्वामी जी की एक व्याख्यानमाला बम्बई में आरम्भ हुई। आर्यसमाज बम्बई (काकड़वाड़ी) की पुरानी कार्यवाही पंजिकाओं में यह लिखा मिलता है कि स्वामी जी के प्रवचन से पूर्व किसी गायक के द्वारा गायन प्रस्तुत किया जाता था। निश्चय ही ये गायक आर्यसमाजी विचारधारा में विधिवत् दीक्षित नहीं होते थे। अनुमान होता है कि वे निर्गुण भजन गाते होंगे।

स्वामी दयानन्द जब पंजाब प्रवास के दौरान एक नगर गुजरात (सम्प्रति पाकिस्तान में) पहुँचे तो वहाँ उनकी भेंट मेहता अमीचन्द से हुई। ये महानुभाव उन

दिनों चुंगी के दारोगा के पद पर कार्यरत थे। उनके बारे में नगर के लोगों की यह धारणा थी कि मेहता अमीचन्द दुर्गुणों एवं दुर्व्यसनों के भण्डार हैं तथापि उनकी गायन कुशलता तथा संगीत-मर्मज्ञता से भी वे परिचित थे। मेहता जी के बारे में हमारी जानकारी बहुत अधिक नहीं है। पं. चमूपति के अनुसार उनका जन्म जेहलम जिले की तहसील पिण्डदादनखो के ग्राम हरणपुर में हुआ। वे मोहियाल ब्राह्मणों की 'बाली' उप जाति के थे। बचपन से ही गायन में उनकी विशेष रुचि थी। कदाचित इसी कारण वे मीरासियों और वेश्याओं की संगति में रहने लगे। शीघ्र ही अन्य दुर्गुणों ने भी उन्हें घेर लिया। संगीत का रसिक अब मांसाहारी, मद्यप तथा दुराचारियों की कुसंगत में जा पड़ा।

उस समय के साधारण पठित व्यक्तियों की ही भाँति अमीचन्द उर्दू भाषा ही जानते थे। वे तहसील जेहलम में वासिल बाकीनवीस हो गए। बीस-बाईस वर्ष की सरकारी सेवा के पश्चात् उन्हें चुंगी का दारोगा बना दिया गया और उनके स्थानापन्न नायब तहसीलदार बनने की सम्भावना भी हुई। पं. दौलतराम शास्त्री मेहता अमीचन्द का जन्म स्थान जेहलम जिले की चकवाल तहसील मानते हैं। उनके अनुसार इनके परिवार में जमींदारी थी, 80 ऊँटों की खेती होती थी और ये शुरू से ही सम्पन्न थे। किन्तु चमूपति ने इनकी जीविका के सम्बन्ध में कुछ भिन्न बातें लिखी हैं। उनके अनुसार एक बार एक सेठ के गुमाश्ते के साथ मिलकर इन्होंने वस्तुओं का कृत्रिम भाव लिख दिया जिससे उस गुमाश्ते को सरकार की ओर से उचित से बहुत अधिक रुपया मिलने की सम्भावना थी। भेद खुल जाने पर अमीचन्द और तहसीलदार पर अभियोग चला। तहसीलदार को कारावास का दण्ड मिला और इन्हें त्यागपत्र देने के लिए बाधित किया गया। गुमाश्ते ने इन्हें अपने मूल वेतन चालीस रुपए से बीस रुपए अधिक दिलवाकर अपने सेठ के यहाँ नौकरी दिला दी। इस दौरान वे कलकत्ता आदि दूरवर्ती नगरों में भी रहे और लगभग तीन वर्ष पश्चात् जेहलम लौटे।

स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में मेहता जी कैसे आए इस प्रसंग को पं. दौलतराम शास्त्री ने इस प्रकार वर्णित किया है। "स्वामी दयानन्द जब इधर (पंजाब) आए तो यह (अमीचन्द) उनके व्याख्यान सुनने आते। उनके भाषण से पूर्व स्वयं रचित भजन भी गाते। इनका स्वर अत्यन्त मधुर तथा पद रचना विद्वत्तापूर्ण होती थी। एक दिन जब गा चुके और जनता विसर्जित हो चुकी तो स्वामी जी को किसी सदस्य ने कहा कि महाराज जिसकी प्रशंसा करते आप थकते नहीं, इसमें अमुक दोष है। घरवाली यहाँ रहती नहीं (मेहता अमीचन्द के वेश्या संसर्ग के कारण)। स्वामी जी ने झट कह दिया, "ठीक हो जाएगा, देखो सुधर जाएगा।" दूसरे दिन जब मेहता गा चुके और महाराज का व्याख्यान हो चुका तो ऋषि ने मेहता की पीठ पर हाथ धर कर कहा, "मेहता जी हो तो रत्न (हीरे) परन्तु दलदल (कीचड़) में पड़े हो।"

मेहता जी समझ गए। उत्तर दिया, "महाराज शीघ्र ही दलदल से बाहर हो जाऊँगा।" घर जाते ही कपड़े बदले और स्वयं को भी बदल दिया।

दूसरे दिन ससुराल पहुँचे। अपनी धर्मपत्नी से लगे कहने, "श्रीमती, तैयारी करो अपने घर चलने की। मेहता अब बदल गया है। अपना भवन सँभालो। ऋषि का दर्शन करके जीवन पवित्र करो।" इस प्रकार पत्नी को घर लाकर पुनः गृहिणी का सम्मान दिया। दूसरे दिन मेहता जी एक रचना लिखकर सभा में ले गए। इस भजन में कवि ने ऋषि के दर्शन एवं उपदेश से प्राप्त आत्मिक आनन्द का ही वर्णन किया है। इसमें पश्चात्ताप का स्वर है तो जीवन में अद्भुत परिवर्तन आने का संकेत भी है। प्रासंगिक स्थल इस प्रकार है–

तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया।
वाणी से जावे वह कैसे बताया।।

पुनः कहा–

तुम्हारी कृपा से अजी मेरे भगवन्
मेरी जिन्दगी ने अजब पलटा खाया।।

परमात्म-अनुभूति की अनिर्वचनीयता को कवि ने निम्न प्रकार वर्णित किया–

गूँगे की रसना के सदृश अमीचन्द
कैसे बताए कि क्या रस उड़ाया।।

पं. दौलतराम शास्त्री के अनुसार जीवन में इस परिवर्तन के पश्चात् अमीचन्द ने संस्कृत भाषा और वैदिक ग्रन्थों का यथाशक्य अध्ययन किया जो उनकी रचनाओं में आए सन्दर्भों से ज्ञात होता है।

पं. चमूपति ने ऋषि के सम्पर्क में आने का एक भिन्न विवरण दिया। उनके अनुसार "एक डाक्टर महाशय अमीचन्द को गुजरात (पंजाब) ले गए। वहाँ उसे ऋषि के दर्शन हुए। ऋषि के सामने अमीचन्द ने भजन सुनाया। ऋषि बोल उठे, है तो हीरा परन्तु कीचड़ में पड़ा है। इतने में ही मेहता की आँखें खुल गईं और जो दुर्व्यसनी अमीचन्द था, वही राग विद्या का व्यसनी अमीचन्द सचमुच 'अमीचन्द्र' हो गया और जहाँ-तहाँ अमी रस की वृष्टि करने लगा। वे मेहता जी के जीवन का कुछ और विवरण भी देते हैं। "अमीचन्द पहले ग़ज़लें लिखते थे, अब भजन लिखने लगे। आप ही भजन बनाते और आप ही गाते। आर्यसमाज के सत्संगों और नगरकीर्तनों की शोभा का एक भाग अमीचन्द्र के भजन होते थे। लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर जो प्रांत के समाजों का केंद्र उत्सव होता था, प्रति वर्ष जाते और अपने गान की धूम मचा आते।"

मेहता जी को तहसीलदारी या नायब तहसीलदारी का नियुक्ति पत्र मिला, किन्तु अब उनका मन दासता में नहीं लगा। वे धर्मप्रचार में सरकारी नौकरी को बाधा समझने लगे। इस तथ्य का संकेत उनके निम्न भजन में मिलता है—

दयामय अब मोहि पार उतार।
मनवच कर्म के पाप पुंज सब शीघ्र भस्म कर डार।।
नहीं प्यारी मुझे तहसीलदारी नहीं जज्जी दरकार।
यदि राखो अपनी सेवा में किंकर चौकीदार।।
होऊँ गवर्नर तब क्या बनेगा, जाऊँगा स्वर्ग सिधार।
अभिलाषी हूँ उस पदवी का बना रहूँ लगातार।।

फलतः मेहता जी ने नौकरी छोड़ दी। जेहलम में उनकी ससुराल थी। वहीं जाकर डेरा किया। कुछ भूमि लेकर खेती करने लगे। लगभग दस वर्ष तक वे आर्यसमाज जेहलम के अधिकारी वर्ग में भी रहे। 29 जुलाई 1893 को उनका निधन हो गया। शायद उनके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिए अपने वसीयतनामे में उन्होंने अपनी सम्पत्ति पत्नी को दी और उसके निधन के पश्चात् उसे डी.ए.वी. कालेज लाहौर को देने की बात लिखी, किन्तु इस व्यवस्था के अनुसार कहते हैं कि कार्यवाही नहीं हुई। कारण कुछ भी रहे हों। मेहता अमीचन्द का इतना ही जीवनवृत्त हमें उपलब्ध हो सका। उनके जन्म काल का पता न चलने से उनकी आयु का ज्ञान भी अशक्य है।

अमीचन्द मेहता का रचना संसार : अमीचन्द के भजन संग्रह गत शताब्दी के अंतिम दो दशकों में छपे, किन्तु वे आज हमें उपलब्ध नहीं हैं। हमारे संग्रह में लीथो की छपाई की आर्य भजन संग्रह नामक 36 पृष्ठों की एक पुस्तक है। यह 1889 की छपी है तथा इसमें सरदार कान्हसिंह और अमीचन्द मेहता के भजनों का संग्रह है। ऐसा प्रतीत होता है कि भजन पहले उर्दू लिपि में छपे थे, तत्पश्चात् इस पुस्तक के सम्पादक पं. देवदत्त शर्मा ने इन्हें हिन्दी (नागरी) रूप प्रदान किया। इस संग्रह में अमीचन्द के निम्न शीर्षकों के भजन समाविष्ट हुए हैं—

1. जय जय पिता परम आनन्द दाता।
2. माथे पर टीका नहीं तेरे।
3. पुराणों का भी पुराण तू है।
4. जिस गाड़ी में जाना तुझको।
5. यह उत्सव तुमको सालाना।
6. अगर देशहितैषी हमें न जगाता।
7. आज बनरे घर मंगलाचार।
8. साहब मेरी सुनिये अपील।

9. किस सोच विचार में बैठे हो।

पं. चमूपति ने दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर मेहता जी के भजनों का अमीरस सार नामक एक संक्षिप्त संशोधित संस्करण तैयार किया जिसे राजपाल लाहौर ने प्रकाशित किया। इसमें हिन्दी के तीस तथा पंजाबी के चार भजन हैं। पं. चमूपति ने यत्र-तत्र भजनों की भाषा तथा शब्दावली में यह कहकर संशोधन कर दिया है कि "कहीं कहीं अमीचन्द ने आर्यभाषा के अज्ञान के कारण आर्य भाषा के शब्दों के स्थान में पंजाबी शब्द जड़े हैं..." किन्तु हमारे विचार से किसी कवि के काव्य की भाषा में सम्पादक को परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। पं. चमूपति की इस चेष्टा का एक परिणाम तो यह निकला कि काव्य की भाषा का मूल रूप तिरोहित हो गया। इस प्रकार मूल पाठ के निर्धारण में कठिनाई आ गई।

अमीचन्द अपने भजनों की अन्तिम पंक्ति में कवि छाप के रूप में प्रायः 'अमी', 'अमीचन्द' का प्रयोग करते हैं, कुछ में 'अमीर' का भी उल्लेख हुआ है। इसे ही दृष्टिगत रखकर पं. दौलतराम शास्त्री ने अपने द्वारा सम्पादित भजन संग्रह का नाम 'अमीरसुधा' रक्खा। इसमें मेहता जी की चालीस हिन्दी, पाँच पंजाबी तथा दो उर्दू भजन कृतियाँ एकत्र की गई हैं।

अमीचन्द की कविता में विभिन्न भावों की व्यंजना हुई है किन्तु उसका मूल स्वर भगवद्भक्ति ही है। ऋषि दयानन्द ने उनके मन में आस्तिकता और आध्यात्मिकता की ज्योति जलाई तथा उन्हें व्यसन मुक्त नैतिक जीवन जीने का उपदेश दिया। फलतः कवि की कविता में अपने आराध्य की महिमा, उदारता, शरणागतवत्सलता, भक्त के प्रति असीम करूँणा आदि के भावों का सफल प्रतिफलन हुआ है। साथ ही वह स्वयं के दैन्य, पश्चात्ताप तथा पतित जीवन से उबरने की भावनाओं को भी प्रकट करता चलता है।

अमीचन्द का भक्ति सिद्धान्त : ईश्वर के प्रति परा अनुरक्ति को शास्त्रों में भक्ति कहा गया है।[1] नारद के अनुसार यह प्रेम रूपा तथा अमृत रूपा होती है।[2] अमीचन्द का भक्तिमार्ग वैदिक भक्ति का है जिसका निरूपण ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना प्रकरण तथा आर्याभिविनय में वेद मंत्रों की व्याख्या करते हुए किया है। भक्ति के लिए द्वैत भावना आवश्यक होती है। यही कारण है कि भक्ति मत के आचार्य रामानुज, मध्व, चैतन्य आदि ज्ञानमार्गी शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त से अपना पृथक् मत रखते हैं। द्वैतभाव के बिना उपासना या भक्ति के लिए अवकाश ही नहीं रहता अतः ईश्वर और जीव की पृथकता को स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है। स्वामी दयानन्द भी इस मत

1. सा पराअनुरक्ति ईश्वरे शाण्डिल्य भक्ति सूत्र—1/2
2. सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा, अमृत स्वरूपा च। नारद भक्ति सूत्र 2,3.

को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणाकर है तो जीव अल्पज्ञ, अल्प शक्ति वाला तथा अल्प गुण युक्त है। स्वामी दयानन्द ने जीवेश्वर सम्बन्धों की विवेचना करते हुए इनमें स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा, गुरु-शिष्य, माता-पिता-सन्तान तथा सखा-सखा के भावों को स्वीकार किया है। कवि ने भी अपने पदों में यत्र-तत्र परमात्मा को अपना पिता, माता, बंधु, सखा, स्वामी, शासक आदि माना है। किन्तु उन्होंने अपने कुछ पदों में परमात्मा के प्रति दाम्पत्य रति को भी अभिव्यंजित किया है। कविपय वेद मंत्रों में भी ऐसे भाव लक्षित होते हैं। जहाँ माधुर्य भाव से आप्लावित संकेतों के द्वारा भक्त और भगवान् के सम्बन्धों की विवेचना की गई है। कालान्तर में सूफियों तथा कबीर, मीरा जैसे हिन्दी कवियों ने भी माधुर्य भाव का आश्रय लेकर परमात्मा के प्रति अपने प्रणय को व्यंजित किया। अमीचन्द के निम्न भजनों में हमें मधुर रस का परिपाक मिलता है–

1. सखियो प्राणनाथ से कहियो...
2. क्यों पड़ी है स्वप्न में...
3. उठ री बाले अब तो जाग...
4. वाही के संग खेलूँगी फाग...

ऐसे भजनों में व्यक्त भावना को कान्तासक्ति की संज्ञा दी जा सकती है। यहाँ जीवात्मा उस सुहागिन नारी के तुल्य है जो परमात्मा को स्वपति के रूप में पाकर अपने को बड़भागिनी समझती है तथा उसका सतत सान्निध्य एवं नैकट्य प्राप्त करने के लिए लालायित रहती है। यह ध्यातव्य है कि मधुर भाव की भक्ति के ऐसे पदों की संख्या अधिक नहीं है।

भक्त और आराध्य का सम्बन्ध : अमीचन्द ने अपने से पहले के कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रायः सभी उपमानों को स्वीकार करते हुए भक्त और भगवान् के अन्तर को स्पष्ट किया है। यथा–

> तुम हो प्रभो चाँद मैं हूँ चकोरा।
> तुम हो कमल फूल मैं रस का भौंरा।।
> ज्योति तुम्हारी का मैं हूँ पतंगा।
> आनन्द घन तुम हो मैं बन का मोरा।।

हिन्दी के कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने कुछ इसी प्रकार के भाव अपनी 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में व्यक्त किए हैं–

> "तुम तुंग हिमालय शृंग
> और मैं चंचल गति सुर सरिता" आदि।

कवि का दैन्य और उसकी विपन्नता वहाँ प्रकट हुई है। जहाँ वह दीनवत्सल

भगवान् को अपने उद्धार के लिए पुकारता है।

लीजिए अब मोही तार।...
मन वच कर्म के पाप पुंज मम शीघ्र भस्म कर डार।।

कवि की दुविधा यह है कि अनन्त विभूषित युक्ति, सर्वगुण निधान, भगवान् के समक्ष वह कौन-सी भेंट लेकर जावे, उसकी सेवा में क्या प्रस्तुत करे–

हे जगत स्वामी प्रभुजी भेंट धरूँ क्या मैं तेरी।
माल नहीं मेरे सम्पत नाहीं जिसको कहूँ मैं तेरी।।

जब सब कुछ उसका ही दिया है तो भला हम उसकी वस्तु उसी को ही कैसे अर्पित करें ? हाँ, यह कह कर सन्तोष तो किया जा सकता है–त्वदीयं वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये।

अमीचन्द की भक्ति निर्गुण भाव की है, अतः वह मूर्तियों की षोड्शोपचार पूजा पद्धति का खण्डन करता है–

कैसे अमूरत की मूरत बनावें। सर्वदेशी को एक देशी ठहरावें।
आवाहन करें तो कहाँ से बुलावें। विसर्जन करें तो कहाँ को पठावें।
आसन सिंहासन पै तकिया लगावें। निराधार को किसके आश्रय बिठावें।।

आद्य शंकराचार्य रचित 'परापूजा' में भी इन्हें भावों की अभिव्यक्ति हुई है। यथा–

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ च शुद्धस्याचमनं कुतः।।

तथा–

अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत् आदि।[3]

कवि का आराध्य परमात्मा निर्गुण, निराकार, निरंजन, निर्लेप, अनीह, अकाम तथा अशरीर है। वह मन और वाणी से भी परे है। उपनिषद् उसके लिए यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह जैसे उद्‌गार प्रकट करते हैं। जो अगोचर और अतीत है भला वाणी उसका वर्णन कैसे करे, इसी भाँति वह जिह्वा, घ्राण तथा नेत्रों की पहुँच के भी बाहर है–

---

3. आद्य शंकराचार्य कृत परापूजा श्लोक 2 तथा 7

नहीं है यह वह रस जिसे रसना चाखे।
नहीं रूप इसका कभी दृष्टि आया।
नहीं है यह गुण गंध जो घ्राण चाखे।
त्वचा से न जावे छुआ और छुआया।

ऐसा लगता है मानो कवि ने यहाँ केनोपनिषद् के "न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो" आदि विचारों को ही काव्यबद्ध कर दिया है।

अमीचन्द ने परमात्मा के उसी स्वरूप की व्यंजना और विवेचना की है जो वेद, दर्शन, उपनिषदादि आर्यो के आध्यात्मिक शास्त्रों में वर्णित और विवेचित हैं। जैसा कि हम लिखे चुके हैं ऋषि दयानन्द के सम्पर्क में आने तथा आर्यसमाज के सभासद बन जाने के पश्चात् कवि को वेद तथा अन्य शास्त्र ग्रन्थों का गम्भीर अनुशीलन करने का अवसर मिला था। इन्हीं शास्त्र वर्णित ईश्वर के लक्षणों को उसने बड़ी खूबी के साथ अपने काव्य में सूत्र में मणियों की भाँति पिरो दिया है। उनके अत्यन्त लोकप्रिय भजन—"जय जय पिता परम आनन्द दाता" की कतिपय पंक्तियों की शास्त्रों के समान अभिप्राय वाले वाक्यों से तुलना करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। कवि ने परमानन्ददाता परमात्मा को 'जगदादिकारण' कहा। यह वेदांतदर्शन के सूत्र जन्माद्यस्य यतः (1/1/2) का ही रूपांतर है। यदि अमीचन्द ने परमात्मा को अनादि और अनन्त कहा—

"अनन्त और अनादि विशेषण हैं तेरे।
तू सृष्टि का स्रष्टा तू धर्तासंहर्ता।।"

तो उसने श्वेताश्वतर उपनिषद् के इस भाव को ही ग्रहण किया है—

अनाद्यनंतं कलिलस्य मध्ये।
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।। (5/13)

आगे इसी भजन में जब वह परमात्मा को 'सूक्ष्मातिसूक्ष्म' तथा 'अत्यन्त स्थूल' भी कहता है तो वह उसी उपनिषद् के 'सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये '(4/14) तथा यजुर्वेद के 'एतावानस्य महिमातो' (31/3) में व्यक्त अभिप्राय को ही प्रकट करता है।

जब कवि परमेश्वर और जीव के पिता पुत्र भाव को अभिव्यक्ति देता हुआ—

"मैं लालित व पालित हूँ पितृ स्नेह का
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझ से ताता।"

जैसे भक्ति भावभरित उद्गार व्यक्त करता है तो उसमें हमें ऋग्वेद के 'त्वं हि नः पितो वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अद्याते सुम्रमीमहे।। (ऋग्वेद 8/98/11) मंत्र के दर्शन होते हैं।

परमात्मा से अपनी आत्मा को शुद्ध और निर्मल बनाने की विनय के साथ वह सायं-प्रातः की उपासना की इतिकर्तव्यता को जोड़ कर कहता है–

"करो शुद्ध निर्मल मेरे आत्मा को।
करूँ मैं विनय नित्य सायं व प्राता।।"

ऋग्वेद की 'उपत्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि।।' (1/1/7) इस ऋचा में अग्निदेव की इसी द्विकालिक स्तुति का उल्लेख है।

जब हृदय की अज्ञानरूपी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं और जीव लौकिक कामनाओं से मुक्त हो जाता है तो वह मृत्यु को पीछे छोड़ कर अमृत की ओर बढ़ता है। इसे ही कवि ने आवागमन के भय से मुक्त होना कहा है।

"मिटाओ मेरे भय आवागमन के।
फिरूँ न जन्म पाता औ बिलबिलाता।।"

शंकराचार्य ने अपने 'चर्पट पञ्जरिका स्तोत्र' में जीव की इस निरंतर आवागमन जन्य व्याकुलता और विवशता को–

"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरं शयनम्।।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।।"

कह कर व्यक्त किया। कवि का उपर्युक्त आशय भी इसी शकरोक्ति के अनुकूल है।

वेद ने परमात्मा को बंधु, जनिता और विधाता कहा–(स नो बंधुर्जनिता स विधाता य. 32/10) तो कवि ने इसी स्वर में अपना स्वर मिलाया–

"बिना तेरे है कौन दीनन का बंधु।
कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता।।"

अन्त में कवि की याचना है कि परमात्मा उसे दिव्य अमृत रस का पान कराये ताकि वह सदा सदा के लिए मृत्यु का अतिक्रमण कर ईश्वर के द्विव्यानन्द का पान करे तथा अपने आराध्य की शाश्वत कीर्ति को सदा गाता रहे।

"अमी रस पिलाओ कृपा करके मुझको।
रहूँ सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता।"

परमात्मा के इस अमृतमय स्वरूप को ही शास्त्रों में शतधा सहस्रधा स्पष्ट किया गया है। इसी सोमामृत को पीकर वेद का ऋषि कहता है—अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् (ऋग्वेद 8/48/3)।

अमीचन्द के भजन की निम्न पंक्तियाँ—

अभेद अच्छेद अनन्त अव्रणी अक्षर और अनादि।
अचल अमूरत और अनूपम परिभू सर्व निवासी।।

हमें यजुर्वेद के मंत्र सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू: (40/8) का स्मरण कराती है। राग तैलंग में गाया जाने वाला भजन "ओम्। अकार उकार मकार है त्रिमात्र अक्षर ओंकार" गायत्री मंत्र का सुंदर काव्यानुवाद प्रस्तुत करता है।

भक्त द्वारा आत्मा को प्रबोधन : भक्त अपनी कविता में स्वयं को प्रबोधन भी देता है और अपने मन को ईश्वराराधना में तत्पर होने के लिए प्रेरित करता है। प्रभु के नाम का स्मरण भक्ति का एक अनिवार्य साधन है स्वामी दयानन्द भी योगदर्शन प्रतिपादित ईश्वर के वाचक शब्द—'प्रणव' तथा उसके अर्थपूर्वक जप के प्रबल समर्थक थे।[5] अमीचन्द ने इस विषय में लिखा है—

जप परमेश्वर का मधुर नाम।
कल कल पल पल क्षण क्षण
निशिदिन श्वास श्वास से मधुर नाम।।

ईश्वर के प्रति पिता, स्वामी और सखा भाव की व्यंजना निम्न पंक्तियों में स्पष्ट दिखाई देती है—

कर उपासना प्रेम भक्ति से,
हे उपास्य गाऊँ तब गीत।
करो मुझे सुतवत् आलिंगन
जैसे पिता पुत्र की रीत।।
× × ×
अमीचन्द के प्रभु तुम नायक
तुम्ही सहायक औ तुम मीत।।

अन्यत्र कवि ने स्तोत्र शैली में अपने प्रभु के विविध गुणों का उल्लेख कर उन्हें नमस्कार किया है—

5. केनोपनिषद् 1/3

नमः सृष्टिकर्त्ता नमस्ते नियन्ता।
नमः कष्ट हर्ता नमः पापनाशी।।
नमो दुःख भंजन नमस्ते निरंजन।
नमः मच्चिदानन्द निर्मल प्रकाशी।।

हम अमीचन्द के काव्य मे विद्यमान माधुर्य भावना की चर्चा पहले कर चुके हैं। यह भाव तो उन्हीं पदों में है जहाँ उन्होंने जीवात्मा को परमपुरुष की दासी नारी के रूप में चित्रित किया है, अन्यथा उनकी भक्ति का प्रमुख स्वर तो दैन्य भाव का ही है। कवि सांसारिक विपत्तियों तथा दैहिक पीड़ाओं से त्राण पाने के लिए ईशाशण में जाता है और करुणार्द्र स्वर में पुकार बैठता है–

त्राहि त्राहि रख ले करुणाकर
त्राहि त्राहि रख ले।
सुत दारा सब सुख के साथी,
भागे विपद पड़ी।।

सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमात्मा के स्थान पर लकड़ी पत्थर आदि से निर्मित मूर्तियों से वह किसी सहायता की अपेक्षा नहीं करता–

माला लकड़ी ठाकुर पत्थर
कौन सहाय करे।

उसकी याचना तो प्रभु से ही है–

भिक्षा माँगू केवल तुम से
तुम बिन और न दे।

यहाँ आते-आते उसकी दास्य भक्ति स्पष्ट रूप से मुखर होती है–

दास जान कर करिये पालन।
हैं तब, भले बुरे।।

अमीचन्द के भजनों में आर्य सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति : मेहता अमीचद ने ऋषि दयानन्द के सम्पर्क में आने के पश्चात् आर्य शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था। उन्हें वैदिक सिद्धान्तों का तलस्पर्शी ज्ञान था। उनके भजनों से उनकी एतद्विषयक जानकारी पदे पदे प्रकट होती है। मेहता जी के अधिकांश भजन भक्ति, अध्यात्म तथा आत्मिक उन्नति के दिशा दर्शक हैं। सिद्धान्त निरूपक भजनों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। वेद-प्रशंसा विषयक भजनों में श्रुतिप्रतिपादित ज्ञान, कर्म तथा

उपासना, इस काण्डत्रय का सम्यक् विवेचन हुआ है। वर्णव्यवस्था शीर्षक भजन मन्वादि स्मृतिकारों द्वारा प्रतिपादित वर्ण विधान को सुस्पष्ट करता है। आश्रम व्यवस्था पर उन्होंने पृथक् भजन लिखा।

आर्यसमाज में कवि की अविचल निष्ठा थी। जैसा कि पं. चमूपति ने लिखा है, वे आर्यसमाज जेहलम में किसी पद पर रहे थे। आर्यसमाज लाहौर के उत्सवों में वे प्रायः जाते थे तथा श्रोता समाज को अपनी वचन माधुरी से कृतकृत्य करते थे। आर्यसमाज के एक ऐसे ही वार्षिकोत्सव का रम्य चित्र उन्होंने अपने एक भजन में अंकित किया है।

इनमें उसके लोकोपकार के अनेक कार्य वर्णित हुए हैं। अमीचन्द का प्रसिद्ध भजन 'आज मिल सब गीत गाओ' आर्यसमाज के सत्संगों, उत्सवों तथा अन्य पारिवारिक एवं सामाजिक समारोहों में गाया जाता है।

दयानन्द प्रशस्ति के भजन : जिस महापुरुष ने कवि की जीवनधारा को बदल कर उसे सतपथगामी बनाया, उसके प्रति अपने प्रणत भाव तथा कृतज्ञता को ज्ञापित करना तो स्वाभाविक ही था। कवि ने ऋषि दयानन्द के प्रति जो उद्‌गार व्यक्त किए हैं वे उसके विश्वासी मन से निकले भाव हैं। दयानन्द ने देश में सर्वत्र जिस चैतन्य को जाग्रत किया तथा देशवासियों को स्वधर्म, स्वभाषा, स्वसंस्कृति तथा स्वराष्ट्र के प्रति कर्तव्यारूढ़ किया, उसका जीवंत चित्र उस भजन में मिलता है जो निम्न पंक्तियों से आरम्भ होता है–

अगर देश हितैषी हमें न जगाता।
तो देशोन्नति का किसे ध्यान आता।

अवशिष्ट पंक्तियों में ऋषि द्वारा वेदिकाध्ययन को पुनरुज्जीवित करने, हिन्दी-संस्कृत का प्रचार, वेद-भाष्य लेखन, आर्यसमाज स्थापना, स्वदेशी भावना का प्रचार, आदि के कार्यों का सरस वर्णन किया गया है। कविता की अंतिम पंक्तियों में महर्षि के परलोक गमन तथा उसके सत्संग को पाकर कवि के हृदय परिवर्तन को अत्यन्त मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया गया है–

परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द
पधारा है परलोक डंके बजाता।

यदि कवि को ऋषि का पावन चरण स्पर्श प्राप्त न होता तो क्या होता–

असीरस न पीता कवीश्वर कदाचित्
न सत्संग करता न हर गुण को गाता।।

ऐसे लोक मंगल के लिए समर्पित ऋषि का गुणगान भला वह कैसे नहीं करेगा ?

अमीचन्द के काव्य का कला पक्ष : तथ्य यह है कि अमीचन्द ने न तो विधिवत् काव्य-शास्त्र का अध्ययन ही किया था और न किसी साहित्य मर्मज्ञ गुरु के चरणों में बैठने का उन्हें अवसर ही मिला था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा•उर्दू में ही हुई थी। हिन्दी व संस्कृत का अभ्यास तो उन्होंने सम्भवतः आर्यसमाज में प्रविष्ट होने के बाद ही किया। उनके जीवन का अधिकांश भाग तो पंजाब के माल विभाग और चुंगी की नौकरी में ही बीता। संगीत के प्रति उनकी सहज रुचि थी और काव्य निर्माण की प्रतिभा भी उन्हें निसर्ग से प्राप्त थी। उनकी कविता को यदि शास्त्रीय कसौटी पर कस कर देखें तो उसमें सम्भवतः हमें अनेक स्खलन और न्यूनताएँ दिखाई पड़ेंगी। छंदो भंग यत्र-तत्र हुआ है। स्वेच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार वे ह्रस्व को दीर्घ तथा दीर्घ को ह्रस्व कर लेते हैं। उनकी मातृभाषा पंजाबी थी। यत्र-तत्र उनकी शब्दावली में पंजाबी के शब्द भी आए हैं। तथापि यह स्वीकार करना होगा कि भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है और वे अपनी भावभिव्यक्ति के लिए यथेच्छ शब्द सम्पत्ति का प्रयोग कर लेते हैं।

किन्तु अमीचन्द की काव्य साधना स्वयं को रस सिद्ध कवियों की श्रेणी में स्थापित कराने की दृष्टि से नहीं हुई थी। वे तो सहज, भाव-पेशल शैली में स्व आराध्य के प्रति अपनी भक्ति, प्रणति, आसक्ति तथा प्रपत्ति को शब्द प्रदान कर रहे हैं। अतः कबीर, नानक और दादू की ही भाँति उनका काव्य भी स्वतःस्फूर्त, भक्ति भावापन्न प्रौढ़ एवं प्रांजल है। इस दृष्टि से उनकी कविता के अभिव्यंजना पक्ष की न्यूनताओं की उपेक्षा की जा सकती है।

अमीचन्द मेहता के काव्य में अलंकार विधान : मेहता जी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग सहज रूप में ही हुआ है, किन्तु यत्र-तत्र उन्होंने रूपकों के सायास विधान भी किए हैं। रूपक के प्रति उनका विशेष अनुराग लक्षित होता है। परम्परानुमोदित शैली में वे मानव जीवन को नौका से उपमित करते हैं और जीवन नौका के इसी रूपक को परिपूर्णता देते हैं–

मोरी नैया किसविधि उतरे पार।
आर पार कोउ घाट न सूझत आन पड़ी मँझधार।
बिजली चमके बादल गरजे उलटी चलत बयार।
गहरी नदिया नाव पुरानी नावक है मतवार।
तीक्षण जलधारा दुस्तर उठत तरंग अपार।
अमीचन्द की राखो नावरिया पड़त भ्रमत मँझधार।

एक अन्य पद में वे मन को मदमत्त हाथी के रूप में प्रस्तुत करते हैं–

मन मेरा मदमत्त हाथी की न्याई,
वश में कदापि न आता पापी।

निर्मल नदी को करे है गंधीला,
उजले गंगाजल में नहाता न पापी।।

एक भजन में तो कवि ने अदालती शब्दावली का प्रयोग करते हुए ऐसे विचित्र रूपक को स्थापित किया है, जो राज्य के मालविभाग में काम करने वाले मेहता जी के लिए चाहे कितना ही स्वाभाविक क्यों न रहा हो, किन्तु काव्य-शास्त्र की दृष्टि से तो उसमें अप्रतीतत्व दोष प्रत्यक्ष आरोपित किया जा सकता है। यह दोष किसी शास्त्र विशेष में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट शब्दावली का कविता में निर्बाध प्रयोग करने से उत्पन्न होता है।

एक ऐसा ही अदालतों में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली से युक्त भजन अमीचन्द ने लिखा है। वस्तुतः यह उसकी संसार के सर्वोपरि शासक प्रभु के प्रति एक विनम्र अपील ही है, जिसे वह न्यायशील परमात्मा के समक्ष इस विश्वास के साथ पेश कर रहा है कि उसकी सुनवाई अवश्य और शीघ्र होगी। स्वाभाविक है कि जब जज के आगे कोई फरियादी अपील करेगा तो उसके इस प्रार्थना पत्र (दस्तावेज़) में वकील, अदल (न्याय), जुल्म, मज़लूम (अत्याचार का शिकार), रसूम (अदालत की फीस), तकमील, कानून, मज़मून, तामील, मुकदमा, मुद्दैया, गवाह, मिसल, (कार्यवाही की पंजिका), तहरीर (लिखित सामग्री), हुक्म (आदेश), मुख़्तार (छोटा वकील) जैसी अदालती शब्दावली तो आएगी ही। संक्षेप में कवि की इस अपील का खुलासा इस प्रकार है—

मुस्तबीस (वादी) कवि ने परमात्मा को न्यायाधीश मान कर उसकी अदालत में यह अपील पेश की है। उसका वकील भी उसका अन्तर्यामी ही है। क्योंकि सब घटवासी परमेश्वर के सिवाय उसका शुभचिंतक तथा पक्षपोषक और कोई नहीं है। अपीलकर्ता को इस बात का विश्वास है कि उस आदिल (न्यायी) परमात्मा के समक्ष चींटी और हाथी सब बराबर हैं। उसे इस बात की पीड़ा है कि तृष्णा रूपी दुष्ट वारांगना उसके प्रति अनर्थ करने पर उतारू है। अविद्या इसकी बहिन है और काम, क्रोध, लोभ और अहंकार को उसने अपने गवाहों के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि न्यायाधीश परमात्मा से प्रार्थना करता है कि वह इस मुकदमे की सारी मिसल (फाइल) को विस्तार से देखे। उसे पूरी आशा है कि इस अदालत में उसे पूरा-पूरा न्याय मिलेगा क्योंकि वह अन्तर्यामी तो जजों का जज और वकीलों का वकील है।

अन्यत्र कवि ने संसार की असारता और मानव-जीवन की गतिशीलता को रेल यात्रा से उपमित किया। इस भजन में भी एक रूपक का सांग निर्वाह हुआ है अतः रेल की सीटी यात्री (कवि) को उपदेश सुनाती प्रतीत होती है। यह संसार ही स्टेशन है और सभी जीव इस रेल यात्रा के लिए शरीर रूपी गाड़ी के डिब्बों में चढ़ते और उतरते हैं। जीवन की रेल में दुर्गुण और दुर्व्यसन रूपी चोर उचक्के

और गिरहकट भी बराबर मिलते रहते हैं। जब रेल चल पड़ती है तो मुसाफिर (जीव) अपने पूर्व शरीर रूपी स्टेशन को छूटते देख कर उसके वियोग से दुःख मनाता है। यह यात्रा सर्वथा एकाकी पूरी होती है। इसमें यात्री का कोई संगी-साथी भी नहीं है। और न कोई संग्रह की हुई वस्तु ही उसे सुख तथा सन्तोष प्रदान करती है। यहाँ तो केवल उसके द्वारा आचरण में लाया धर्म ही रेलवे बिल्टी के रूप में उसके साथ जाता है। कवि कहता है कि कुछ ही क्षणों (वर्षों में) में समाप्त हो जाने वाली जीवन रूपी इस रेल में यदि हम निश्चिन्त होकर लम्बी तान कर सो जावें तो इससे बढ़ कर हमारा (जीवात्मा का) प्रमाद और क्या हो सकता है ? भजन की समाप्ति कवि इस प्रकार करता है–

> क्यों लम्बा पाँव पसारा है।
> कुछ क्षण का यहाँ गुजारा है।
> क्यों लड़ता साथ मुसाफिर के
> अमीचन्द बड़ा उत्पाती है।।

अमीचन्द के काव्य में संगीत तत्व : मेहता अमीचन्द उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ महान् संगीतज्ञ भी थे। वस्तुतः उनकी संगीत लहरियों से रसाप्लावित होकर ही ऋषि दयानन्द को उनका परिचय जानने की इच्छा हुई थी। यह ऋषि के महान् क्रांतदर्शी व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि मांसल शृंगार की उद्दाम वासना पंकिल सरिता में आकण्ठ डूबे अमीचन्द का उद्धार भी सम्भव हुआ और पतितपावन दयानन्द के सम्पर्क में आकर उन्हें धर्म का निरापद मार्ग मिला। इस घटना के पहले तक की उनकी संगीत साधना तो दैहिक विषयों को उत्तेजित करने वाली ही थी। जिन लोगों ने अमीचन्द को स्वयं गाते सुना वे ही उसके संगीत के तलस्पर्शी ज्ञान की साक्षी दे सकते थे। उनको शास्त्रीय संगीत का गम्भीर ज्ञान था यह इस बात से भी विदित होता है कि उनके प्रत्येक भजन को विभिन्न राग-रागिनियों में गाया जा सकता है, जिसका संकेत स्वयं कवि ने भजनों के आरम्भ में दे दिया है। पं. दौलतराम शास्त्री उन्हें आर्यसमाज का सूरदास कहते हैं। चाहे सूर और अमीचन्द का भक्ति मार्ग नितान्त भिन्न ही था, किन्तु भावों की गहनता, अपने आराध्य के प्रति समर्पण भावना और पूर्ण तन्मयता तथा भावनाओं की निश्छल अभिव्यक्ति, ये सभी तत्त्व अमीचन्द के काव्य को गुरुता प्रदान करते हैं। उनके काव्य में पाठक और श्रोता को रससिक्त करने, भाव विभोर करने तथा लोकोत्तर भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने की अद्भुत क्षमता है और इसी में कवि की सफलता भी है।

4. स्वामी आत्मानन्द सरस्वती

दार्शनिक तथा कवि हृदय पं. मुक्तिराम उपाध्याय ही संन्यास ग्रहण करने के पश्चात्

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के नाम से जाने गए थे। उनका जन्म 1879 में मेरठ जिले के एक ग्राम में हुआ। अध्ययन समाप्त कर वे पाकिस्तान के नगर रावलपिण्डी के निकट के एक ग्राम चोहा भक्ता स्थित गुरुकुल में अध्यापन हेतु आए और 1947 तक वहीं रहे। तत्पश्चात उन्होंने यमुना नगर (हरयाणा) में वैदिक साधना आश्रम की स्थापना की और धर्मप्रचार के लिए उपदेशक विद्यालय भी चलाया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उन्हें अपने प्रधान पद पर भी निर्वाचित किया और 1956-57 में उन्हीं के नेतृत्व में पंजाब में हिन्दी रक्षा आन्दोलन भी चलाया गया। उनका निधन 1960 में हुआ।

स्वामी आत्मानन्द का काव्य अध्यात्मभावों से परिपूर्ण है। उसमें भक्ति रस की प्रधानता है। ईश्वर स्तुति के अनेक पद तो मध्यकालीन हिन्दी के भक्ति काव्य का स्मरण कराते हैं। यथा–

प्रभु तव परम पावन धाम।
तुम सुने जाते महेश्वर तुम सुखद अभिराम।
तुम निरंजन मोक्षप्रद तुम व्यथित विश्राम।
अजर अमर अपार तुम हो ओम् उत्तम नाम।।

आत्म प्रबोधन तथा नीति विषयक उन्होंने कुछ दोहे भी लिखे हैं। उदाहरणार्थ–

ईश मिलन की चाह में छोड़ दियो घर बार।
तजी न मन की वासना तब कहो सिरजनहार।।
पढ्यो वेद छः शास्त्र भी बैठ्यो आसन मार।
श्रद्धा माता के बिना मिले न जगदाधार।।

सद्गुणों की महिमा निम्न दोहे में बताई गई है–

चन्दन डोंडी पीट कर नाहि बुलावत जाय।
सद्गुण की महिमा बड़ी सांपहु लिपटे आय।।

स्वामी आत्मानन्द ने वेद मंत्रों के पद्यानुवाद करने में भी परिश्रम किया है। ऋषि दयानन्द के अत्यन्त प्रिय वेद मंत्र ...विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रतन्न आसुव (यजु. 30।3) का पद्यानुवाद निम्न पद में अत्यन्त प्रभावशाली रूप में हुआ है–

हे प्रभु कल्याणी मति दीजे।
पाप भावनाएँ सब की सब मेरे मन से छीजे।

इसी शैली में उन्होंने स्वामी दयानंदोपदिष्ट ईश्वर स्तुति-प्रार्थनोपासना के अवशिष्ट

सात मंत्रों की भी पद्यात्मक व्याख्या की है।

इस प्रकरण के अन्तिम मंत्र अग्ने नय सुपथा राये (यजु. 40।16) का अनुवाद निम्न रूप में किया गया है–

हे ज्ञानी शुभ मार्ग दिखाओ। पाप वासनाएँ बिनसाओ।
दुर्भावों से लड़ें शक्ति दो। भूरि विनय सुन लीजे।

स्वामी आत्मानन्द के उपलब्ध काव्यों का संग्रह स्वामी आत्मानन्द लेखमाला भाग-2 के अन्तर्गत किया गया था जो सुधारक मासिक (गुरुकुल झज्जर) के विशेषांक के रूप में 1962 में प्रकाशित हुआ।

5. डा. इन्द्रसेन जेतली

गुरुकुल कांगडी से आयुर्वेदालंकार की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् एलौपेथी पद्धति की एम.बी.बी.एस. परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले सफल चिकित्सक साथ ही कवि हृदय डा इन्द्रसेन जेतली का जन्म 1908 में आज के पश्चिमी पंजाब के भेरा नगर में हुआ। 1928 में वे आयुर्वेदालंकार उपाधि प्राप्त कर स्नातक बने। 1940 में भारतीय सेना में चिकित्सक बने और 1946 तक वहीं रहे। तत्पश्चात् वे पजाब सरकार के चिकित्सा विभाग में प्रविष्ट हुए और 1966 में सेवानिवृत्ति ली। पर्याप्त वृद्ध हो जाने पर भी अध्ययन, शोध और काव्य लेखन में उनकी रुचि पूर्ववत् है। सम्प्रति वे चण्डीगढ़ में रहते हैं।

डा. इन्द्रसेन जेतली के अब तक अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। मनोहर धारा शीर्षक से 1974 में प्रकाशित उनका काव्य ग्रन्थ जेतली के रचना संसार का सम्यक् प्रतिनिधित्व करता है। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. विष्णुदत्त राकेश के अनुसार जेतली की अभिव्यंजना पद्धति ऋजु तथा सपाट है। उन्होंने जीवन के जिस विराट् सत्य को देखा उसे ही कविता के माध्यम से अभिव्यक्त भी किया। मनोहर धारा में संकलित कविताएँ ईश तरंग, शृंगार तरंग, श्याम तरंग, नीति तरंग, विचार तरंग, वैदिक तरंग, ऋतुरंग, तथा वैराग्य तरंग जैसे शीर्षकों के अन्तर्गत संकलित हैं। कवि ने मुख्यतः गीतिका छन्द का प्रयोग किया है। ईश तरंग में परमात्मा विषयक विचारों को काव्यबद्ध किया गया है। शृंगार तरंग में नर-नारी के प्रेम-प्रसंगों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। श्याम तरंग की कविताएँ मुख्यतः कृष्ण के जीवन प्रसंगों पर आधारित हैं। नीति तरंग के अंतर्गत अनेक पद्य ऐसे भी हैं जो हिन्दी के प्रसिद्ध नीतिकार कवियों की सूक्तियों का आधार लेकर लिखे गए हैं। खास तौर से महाकवि बिहारी के नीति परक दोहों को जेतली ने अपनी गीतिकाओं का रूप दिया है। उदाहरणार्थ–

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सुबीति बहार।
अब अलि रही गुलाब कै अपत कटीली डार।।

इस दोहे को जेतली ने निम्न रूप में प्रस्तुत किया—

कुसुम के दिन ना रहे वे ना रही अब वो बहार।
बस गुलाबों में बची है खार वाली अपत डार।।

ऋतु रंग के अन्तर्गत कवि ने वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरत और हेमन्त का मनोहारी चित्रण किया है। यहाँ भी कवि ने बिहारी सतसई के कुछ दोहों को गीतिका का रूप दिया है। यथा—

कहलाते एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत् तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ।।

ग्रीष्म की भीषणता बतलाने वाले इस दोहे का कवि कृत यह रूपान्तरण देखें—

दीर्घ दाघ निदाघ ने है, जग तपोवन सा किया।
बाघ, सांपों, मृग, मयूरों को इकट्ठा कर दिया।

वैदिक तरंग में जो कविताएँ संगृहीत हैं, वे मुख्यतः वेदमंत्रों पर आधारित हैं। ऋग्वेद का वागम्भृणी सूत्र (10।25) तथा इन्द्र सूक्त (2।12) यजुर्वेद का पुरुष सूक्त तथा शिवसंकल्प सूक्त, तथा अथर्ववेद के उद्याने ते पुरुष नाव यानं (8।1।6) प्रियं मा वृणु देवेषु (19।62।1) उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते (19।6।37) आदि अनेक मंत्र कवि द्वारा पद्यबद्ध किए गए हैं। स जात् एव प्रथमो मनस्वान् (ऋग्वेद 2।12।1) इस प्रसिद्ध ऐन्द्र मन्त्र का मुक्त छन्द में यह पद्यानुवाद सारगर्भित तथा प्रभावोत्पादक है—

जो जन्म से ही माना गया है
देवों में सबसे पहला मनस्वी।
वृत्रादिकों का वध कर्म कर कर
देवों को भूषित जिसने किया है।
जिसकी बलबान सैन्यों के डर से
द्यौ और पृथिवी भी काँपते हैं।
उसको ही जानो है इन्द्र वो ही
उसको ही मानो है इन्द्र वो ही।।

इस विवेचन में इन्द्रसेन जेतली की विविध छटा वाली काव्य कृतियों का स्वरूप परिचय मात्र ही दिया गया है।

6. प्रो. उत्तमचन्द शरर

हिन्दी तथा उर्दू दोनों में समानरूप से उत्कृष्ट कविता करने वाले उत्तमचन्द शरर का जन्म 1916 में पाकिस्तान के मुजफ्फरगढ़ जिले के एक ग्राम में हुआ। उनका आरम्भिक अध्ययन पश्चिमी पंजाब में ही हुआ। देश विभाजन के पश्चात् उन्होंने पानीपत, करनाल तथा लुधियाना के डी.ए.वी कालेजों में अध्यापन का कार्य किया। 1978 में वे सेवा निवृत्त हुए। विगत अनेक वर्षो से उपदेशों और व्याख्यानों के द्वारा वे वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न हैं। कवि-सम्मेलनों और मुशायरों में उनकी कविताएँ असंख्य श्रोताओं द्वारा रुचिपूर्वक सुनी जाती हैं।

स्वामी दयानन्द के प्रति अपने श्रद्धा भाव को उन्होंने रामधारीसिंह दिनकर की प्रसिद्ध कविता हिमालय के प्रति की शैली में इस प्रकार व्यक्त किया है–

ओ तुंग हिमालय शृंग तुल्य उज्ज्वल महान्।
गम्भीर परम पावन चरित्र गंगा समान।
ओ ब्रह्मचर्य साकार, दिव्य जीवन अनूप।
पाखण्ड दम्भ के लिए उग्र विद्रोह रूप।
ओ तेजस्वि ओ क्रान्तदर्शी ओ सत्यकाम।
युग पुरुष हमारा युग युग तक तुझको प्रणाम।।

शरर की उर्दू शायरी के बारे में एक उर्दू पत्रकार स्व. रामचन्द्र जावेद की सम्मति उद्धृत करना उपयुक्त है। वे लिखते हैं–"यदि अतिशयोक्ति न समझी जाए तो मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि आर्यसमाज के सभी दौरों में उर्दू भाषा का इतना बुलन्द शायर अब तक कोई दूसरा पैदा नहीं हुआ। उनकी कल्पना की उड़ान, कलाम की पुख्तगी, काव्य-प्रतिभा, उनकी खुदी और खुद्दारी, उनका मन्तक (तर्क), उनकी भावनाएँ, उनका फलसफा यह कहने के लिए मुझे विवश करता है कि वे आर्यसमाज के इकबाल हैं।" यों तो उन्होंने उर्दू में बहुत-कुछ लिखा है, किन्तु आर्य का शिकवा-जवाब शिकवा, उनकी एक जानी-मानी लम्बी कविता है जो विदग्धता तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व के गुणों से परिपूर्ण है। सच्ची आस्तिकता तथा वेदज्ञान के प्रचार में आर्यसमाज के अनुयायियों के पुरुषार्थ को कवि ने वाणी दी है। प्रश्नोत्तर रूप में लिखे इस कविता के दो पद्य यहाँ दिए जा रहे हैं–

तू ही बतला कि तेरी धूम मचाई किसने ?
कब्ले मुलहिद में तेरी आन तनाई किसने ?
बुलकदों में शम्मे तौहीद जलाई किसने ?
चढ़ के मिम्बर पे ऋचा वेद की गाई किसने ?
हम ही दीवाने थे अलमस्त थे सौदाई थे।
और तो पेट के बन्दे थे या तमाशाई थे।।

उत्तर में वेदज्ञान के प्रदाता परमात्मा का कथन–

तुमने चाहा कि मिटे कुछ भी माया भी रहे।
वेद प्रचार भी हो शोहरतो चर्चा भी रहे।
गर बने तालिबे हक तालिबे दुनिया भी रहे।
वेद देखे भी नहीं, वेद के सैदा भी रहे।
तब से हक दिल से पर असनाम की चाहत न गई।
रिंद के रिंद रहे हाथ से जन्नत न गई।।

उर्दू के एक प्रसिद्ध कलाम को किस खूबी से शरर ने अपने इस कलाम की आखिरी पंक्ति में रख दिया है यह काबिले ग़ौर है। कवि सम्मेलनों और मुशायरों में अधिक व्यस्त रहने के कारण उत्तमचन्द शरर अपनी कविता के प्रकाशन के लिए अधिक समय नहीं निकाल सके हैं।

7. कविवर ऊमरदान सामाजिक यथार्थ के चितेरे

कवि अपनी कविता के द्वारा जनसामान्य के भावों तथा विचारों में परिवर्तन लाता है। सामाजिक परिवर्तन में कविता की प्रमुख भूमिका सदा से ही रही है। हिन्दी के निर्गुण कवियों में कबीर धार्मिक तथा सामाजिक रूढ़िवाद, कट्टरता, अंध-विश्वास तथा गतानुगति का विरोध करने वालों में प्रमुख थे। उन्हीं की भाँति धार्मिक तथा समाजगत अंध धारणाओ तथा रूढ़िगत अध विश्वासों का तीव्र एवं प्रखर शैली में खण्डन करने वाले राजस्थानी के कवि ऊमरदान जोधपुर जिले की फलोदी तहसील के गाँव ढाढरवाडा के निवासी थे। वहाँ के एक चारण परिवार में उनका जन्म वैशाख शुक्ला 2 सं. 1908 वि. (1851 ई.) को हुआ। इनके पिता का नाम बारहठ बख्शीराम था। इनके बड़े भाई चारण नवलदान तथा छोटे शोभादान थे। इनके दो पुत्र थे जिनमें से बड़े अग्रदान की मृत्यु मात्र अठारह वर्ष की आयु में हो गई। छोटा पुत्र मीठालाल मारवाड़ राज्य की पुलिस में साधारण पद पर रहा। छठे दशक में वह जोधपुर की आर्यसमाज (रातानाडा) में सेवादार के पद पर था।

कवि ऊमरदान का बाल्यकाल बहुत सुखद नहीं था। अल्पावस्था में ही उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई। बड़े भाई ने उनके प्रति उपेक्षा का व्यवहार किया जिसके कारण वे पारिवारिक स्नेह से वंचित ही रहे। परिजनों के इस उपेक्षा-भाव के कारण अपनी जमीन जायदाद के प्रति उनका मोह भी समाप्त हो गया और चित्त बहुत कुछ वैराग्योन्मुख हो गया। इसी समय वे रामस्नेही सम्प्रदाय के साधुओं के सम्पर्क में आए और नागौर जिले के ग्राम खेड़ाया स्थित इस सम्प्रदाय की शाखा में उन्होंने विधिवत कण्ठी बँधवा कर साम्प्रदायिक दीक्षा ली। किन्तु रामस्नेही सम्प्रदाय के उनके अनुभव भी बहुत उत्साहवर्धक नहीं रहे। इस मत के साधुओं में व्याप्त दुराचार ने

उनके मन को खिन्न कर दिया और वे शीघ्र ही साधुत्व के बाने से मुक्त होकर गृहस्थ बने गए। उनकी शिक्षा साधारण ढग से हुई। इतिहासकार जगदीश सिह गहलोत के अनुसार उन्होंने पर्याप्त देर से, आयु के उन्नीसवें वर्ष में जोधपुर के दरबार स्कूल में प्रवेश लिया। वे मुश्किल से चौथी या पॉचवीं श्रेणी में ही पहुँचे होंगे कि उनका अध्ययन क्रम टूट गया। उन्हें अंग्रेजी का साधारण ज्ञान था। हिन्दी, संस्कृत, डिंगल के काव्य ग्रन्थों तथा काव्य रीति का उन्होंने विधिवत् अध्ययन किया था।

अभी वे 32 वर्ष के थे कि 1883 में स्वामी दयानन्द का जोधपुर आगमन हुआ और ऊमरदान उनके सम्पर्क मे आए। वस्तुतः स्वामी जी को जोधपुर मे आमन्त्रित करने में भी ऊमरदान की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने ही मारवाड़ के तत्कालीन नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के अनुज महाराज प्रतापसिंह को प्रेरित किया कि वे स्वामी जी को जोधपुर आमन्त्रित करें। यह निमन्त्रण पत्र लेकर स्वयं बारहठ ऊमरदान तथा कवि चन्दबरदाई के वंशज पं. नेनूराम ब्रह्मभट्ट शाहपुरा (जिला भीलवाड़ा) गए जहाँ उन दिनों स्वामी दयानन्द शाहपुराधीश नाहरसिंह के अतिथि थे। जोधपुर के निमन्त्रण को स्वीकार कर स्वामी जी मारवाड़ की राजधानी में आए और लगभग साढ़े चार मास तक यहाँ रहे। स्वामी जी से हुए विचारो के आदान-प्रदान के परिमाणस्वरूप ऊमरदान के विचारों में क्रान्तिकारी परिर्वतन हुआ। अब वे धर्म और समाज में व्याप्त रूढियां पाखण्डों तथा कदाचारों के कट्टर आलोचक बन गए। धार्मिक कुरीतियों और अध धारणाओ के प्रति उनका प्रखर आक्रोश उनकी कविताओं में पदे-पदे दिखाई देता है। वे राजस्थानी काव्य में कबीर के स्वर तथा भाव को लेकर आए तथा अत्यन्त तिक्त शैली में उन्होंने साम्प्रदायिक अंधविश्वासों तथा आडम्बरों पर प्रहार वृष्टि की।

सर प्रतापसिंह के प्रति कवि की अपार श्रद्धा थी और वे जानते थे कि महाराजा जसवन्तसिह के राज्यकाल में जो सामाजिक तथा प्रशासनिक सुधार हुए हैं उनका बहुत कुछ श्रेय सर प्रताप तथा स्वामी दयानन्द प्रवर्तित वैदिक विचारधारा को ही है। ऊमरदान का निधन फाल्गुन शुक्ला 13 सं. 1960 (11 मार्च 1903) को जोधपुर में हुआ तथा 'कागा' श्मशान में उनकी अन्त्येष्टि की गई। एक कवि ने उन्हे श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए लिखा–

> हमै निपट अलगो हुवो लालस नेह लगाय।
> कागा बिच डेरा किया जागां अबकी जाय।।
> विधा कविता वीरता ऊमर तो उपदेश।
> एकण हाँ फिर आवज्यो देखै मरुधर देश।।

कवि ऊमरदान की काव्य कृतियाँ : कवि ऊमरदान की कुछ काव्य रचनाएँ तो उनके जीवनकाल में ही प्रकाशित हो गई थीं। जसवन्त जस जलद का प्रकाशन

1952 वि. मे तथा उलोफाष्टक डूंडी का प्रकाशन 1957 वि. में हुआ। उनकी मृत्यु के तीन वर्ष पश्चात् 1963 वि. में उनके समस्त काव्यों को संग्रहित कर मारवाड़ स्टेट प्रेस में मुद्रित उनका ग्रन्थ ऊमर-काव्य प्रकाशित हुआ। इसी का एक अन्य संस्करण सं. 1969 में वैदिक यंत्रालय अजमेर से प्रकाशित हुआ। कालान्तर में प्रसिद्ध इतिहासविद् ठा. जगदीशसिंह गहलोत ने इसका सम्पादित संस्करण तैयार किया जिसमें विस्तृत कवि परिचय, काव्यगत कठिन शब्दों के अर्थ तथा अन्य उपयोगी जानकारी पादटिप्पणियों में दी गई थी। अचल प्रताप न्यायी एण्ड कम्पनी जोधपुर ने इसे प्रकाशित किया। अभी कुछ वर्ष पूर्व जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर के डॉ. शक्तिदान कविया ने इस कवि के व्यक्तित्व तथा काव्य का विस्तृत विश्लेषण अपने एक ग्रन्थ में किया है।

ऊमरदान की समस्त काव्य रचनाओं को धार्मिक तथा आध्यात्मिक, सामाजिक रूढ़िखण्डन, महापुरुष प्रशंसा तथा स्फुट—इन चार श्रेणियों में रक्खा जा सकता है। हम यह देख चुके हैं कि किशोरावस्था में ही कवि रामस्नेही साधुओं के सम्पर्क में आए थे तथा उनमें विद्यमान दुर्व्यसनों को इन्होंने निकटता से देखा था। जब वे स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आए तो उन्हें अनुभव हुआ कि सच्ची धर्मानुभूति तथा ईश्वराराधना बाह्य क्रियाकाण्डों की मोहताज नहीं है। यही कारण है कि उन्होंने जो आध्यात्मिक भावानुभूति का काव्य लिखा वह आत्मा की उदात्तता से अनुप्राणित है। ईश्वरोपासना, भजने की महिमा, चेतावनी आदि शीर्षकों के अन्तर्गत कवि के धार्मिक भावों को देखा जा सकता है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने सन्त-असन्त सार शीर्षक 41 छन्दों की एक लम्बी कविता लिखी है। इसमें उन्होंने भाषा-काव्यों की परिपाटी का निर्वाह करते हुए वास्तविक सन्तों की प्रशंसा तथा असन्तों की निन्दा की है। 'खोटे सन्तों का खुलासा' तथा 'असन्तां री आरसी' शीर्षक कविताओं में उन्होंने सन्त नाम को कलंकित करने वाले असन्तों के दुराचारपूर्ण कृत्यों का भण्डाफोड़ किया है। वे निज के अनुभवों की चर्चा करते हुए लिखते हैं—

> बहु काल रहे तिन बन्धन में।
> हित हानि हुई हद होरन की।
> निकसी वह खान कथीरन की।

अर्थात् जिस रामस्नेही सन्त मण्डली को वे हीरों की खान समझे थे वह अन्ततः कथीर (सीसा) की खान ही निकली।

जैसा कि हम देख चुके हैं ऊमरदान के जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन स्वामी दयानन्द के सम्पर्क के कारण आया था। उनके काव्य का एक बहुत बड़ा अंश स्वामी दयानन्द के प्रति अपने श्रद्धापूर्ण उद्गारों को प्रकट करने के लिए ही लिखा गया है। दयानन्द-वन्दना के आरम्भ में वे स्वामी जी को दिव्य ज्ञान के दाता तथा अभिधर्म

हेतु समर्पित महापुरुष के रूप में स्मरण करते हैं–

मनो स्वामी दयानन्द दिव्य ज्ञान दाता।
आर्य धर्म आप बिना हाथ नहीं आता।।

'दयानन्द की दया' शीर्षक एक अन्य कविता में उन्होंने एक सर्वथा नूतन शैली का प्रयोग किया है। इसमें उन्होंने षड्ऋतु वर्णन का परम्परागत रूपक प्रयुक्त करते हुए भारतीय आकाश में दयानन्द के आगमन को सुखद आषाढ़ मास के तुल्य बताया है। जिस समय देशवासी विभिन्न मत मतान्तररूपी भीषण निदाघ के ताप से त्रस्त एवं व्याकुल हो रहे थे, उस समय दयानन्द रूपी प्रथम मेघ का दर्शन लोगों के लिए कितना उल्लासदायक रहा होगा। कवि लिखता है–

अन्त असाढ़ दयानन्द आयो।
छोणी ज्ञान घुमड़ घण छायो।
सावण हरिकर सुख सरसायो।
भादो अमृत झड़ बरसायो।
बहे व्याख्यान बलोबल बाळा।
नीर निरावण नाल नद नाळा।
पड़े प्रेम घर-घर परनाळा।
जुणती जल मेटी त्रिस ज्वाळा।।

अर्थात् सम्प्रदायवाद की भीषण गर्मी के ताप के पश्चात् दयानन्द रूपी सुहावने आषाढ़ मास का आगमन हुआ। सम्पूर्ण धरती ज्ञान रूपी बादलों से घिर गई। तत्पश्चात् श्रावण में उपदेश रूपी अमृतजल बरसने लगा। वर्षा के इस साङ्ग-रूपक को आगे बढ़ाते हुए कवि ने कहा है कि 'अब व्याख्यान रूपी तीव्र गति युक्त नाले प्रवाहित होने लगे हैं। घर-घर में धर्म-प्रेम के परनाले बह चले हैं'। तर्क एवं युक्ति रूपी जल से लोगों की धर्म तृषा शान्त हो गई है। दयानन्द-दर्शन शीर्षक अन्य कविताओं में कवि ने स्वामी जी के जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन किया है। स्वामी दयानन्द विषयक ऊमरदान के समस्त पद्यों की संख्या 83 है।

महापुरुष-प्रशंसा विषय के अंतर्गत कवि ने जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह, उनके अनुज महाराज प्रतापसिंह तथा बीकानेर राज्यान्तर्गत सींथल ग्राम के सन्त हरिरामदास विषयक प्रशस्तिमूलक पद्य लिखे हैं। 'जसवन्त जस जलद' एक लम्बी रचना है जिसमें 74 दोहे तथा 31 सोरठे हैं। कवि के हृदय में इस महाराजा के प्रति जो प्रशंसा के भाव हैं उनका कारण यही नहीं है कि वे उसके आश्रयदाता हैं अपितु वह इस नरेश में शासन की योग्यता, प्रजा पालन की लगन तथा लोकहित चिन्तन जैसे गुणों को देख कर ही उसकी प्रशस्ति में काव्य लिखने के लिए तत्पर हुए हैं।

इसी प्रकार प्रताप-प्रशंसा शीर्षक एक अन्य कविता में उन्होंने महाराज प्रतापसिंह की निर्भीकता, उदारता, सरल प्रकृति तथा क्षत्रियोचित वीर भावों की प्रशंसा की है। एतद् विषयक निम्न दोहे द्रष्टव्य हैं—

मुरधर में पातल मरद इक्को रतन अमोल।
लोकां नै तो लादी मरियाँ पाछै मोल।
जसपातल रो जगत में ओ भरियो अणपार।
नीपण निज पावे नहीं पोथी लिखियाँ पार।।

कवि ने कुछ ऐतिहासिक प्रसंग भी अपने काव्य के लिए चुने हैं। उदाहरणार्थ, राठौड़ 'दुर्गादासरी औरंगजेब ने अरजी' शीर्षक 45 छंदों की कविता में मारवाड़ को स्वाधीनता के रक्षक तथा महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) के दोनों बालकों अजीतसिंह तथा दलथम्मन को औरंगजेब के कुचक्र से बचाकर सुरक्षित स्वदेश मे ले आने वाले वीर दुर्गादास द्वारा मुगल बादशाह को लिखे ऐतिहासिक पत्र को काव्य रूप दिया गया है। इस कविता की भाषा में शब्द चयन भिन्न प्रकार का है। मुगल सम्राट् को लिखे पत्र में फारसी बहुल भाषा का प्रयोग उचित ही था। यथा—

स्वस्ति श्रीदल्लीपुर सुथान।
सल्तनत मुगल कुल सावधान।
आदाब अर्ज उम्मेदवार।
परवरिश करहु परवरदिगार।।

जैसा कि हम देख चुके हैं, ऊमरदान के काव्य में विषय वैविध्य तो है ही, वर्णन शैली, छन्द प्रयोग तथा शब्द भण्डार की दृष्टि से भी उसे अत्यन्त समृद्ध कहा जा सकता है। आर्य समाज की सुधारवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण कवि ने अनेक सामाजिक बुराइयों—मादक द्रव्य सेवन तथा अन्य दुर्व्यसनों की कटु निंदा की है। कवि को इस बात पर हैरानी होती है कि तम्बाकू जैसी निकृष्ट वस्तु को कुत्ते, ऊँट, गधे, कौए, चूहे तथा सूअर जैसे पशु भी नहीं खाते किन्तु विचारशील कहलाने वाला मनुष्य इसे खाने में संकोच नहीं करता। तम्बाकू री ताड़ना शीर्षक कविता की यह प्रारम्भ की कुण्डलिया इसी तथ्य की ओर संकेत करती है—

समज तमाकू सूग़ली कुत्तो न खावे काग।
ऊट टाय खावे न आ अपणो जाण अभाग।
अपणो जाण अभाग गजब नहीं खाय गधेड़ो।
शूकर भूंडी समज निपट निकलै नहीं नेड़ो।
बुरा पशु बच जाय अहरनिस खाय न आखू।
बड़ा सोच री बात तिका नर खाय तमाकू।।

ऊमरदान की कविता में यथार्थ का संस्पर्श सर्वत्र दिखाई देता है। 1899 वि. (1956 ई.) में न केवल मारवाड़ में, अपितु देश में सर्वत्र भयंकर दुष्काल पड़ा था। लाखों व्यक्ति भूख से पीड़ित होकर मर गए। पशुधन नष्ट हो गया तथा गाँव के गाँव उजड़ गए। 153 पद्यों की एक लम्बी कविता में कवि ने इस भीषण सूखे का वस्तुनिष्ठ वर्णन किया है। अकाल की विभीषिका का मर्मभेदी चित्र उपस्थित करने वाली इस कविता को पढकर यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने लोक-काव्य तथा उसमें व्याप्त अकालजन्य विषाद को कितनी निकटता से देखा था। ऊमर-जीवन मे कवि की जो अन्य रचनाएँ संगृहीत हैं उनमें प्रमुख हैं—अमल रा ओगण, दारू रा दोस, मसकरी री मॉं (इसमें ढूँढाड़ी-जयपुरी-भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है), दासी द्वादशी, उफोल डूंडी आदि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहना उचित होगा कि कवि ऊमरदान का काव्य एक ऐसा उद्यान है जिसमें नाना रसों तथा रंगों वाले लता-द्रुमो का एक उद्‌भुत सभार दिखाई देता है। वीर, शान्त, हास्य, बीभत्स, करुण रसों से युक्त कवि की कविता में शृंगार रस के दर्शन नहीं होते। इसका कारण उनकी स्वामी दयानन्द की नैतिक शिक्षाओं के प्रति आस्था ही है। इस कविता में पाई जाने वाली सामाजिक चेतना तथा अंधपरम्पराओं के प्रति विद्रोही स्वर यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि विगत शताब्दी का राजस्थानी कवि अपने काव्य के द्वारा समाज की दशा में परिवर्तन लाने के लिए कितना उत्सुक था।

महाकवि तुलसीदास की ही शैली का अनुकरण करते हुए कवि ने स्वपरिचय दिया है—

जोगी कहो भव भोगी कहो,
रजरोगी कहो को केसोई है।
न्यायी कहो ओ अन्यायी कहो,
कुकसाई कहो जग जेसोई है।
मीत कहो क अमीत कहो,
ज्युं पलीत कहो, तन तेसोई है।
ऊत कहो अवधूत कहो,
लो कपूत कहो हम हैं सोई है।।

ऊमरदान के काव्य-प्रशंसक एक अन्य कवि ने ठीक ही कहा है—

नर चतुर होय जाणे निपट आशय ऊमरदान को।

अर्थात् अत्यन्त चतुर व्यक्ति ही कवि ऊमरदान के आशय को समझ सकता है।

8. स्वामी ओम् प्रेमी (रामनारायण माथुर)

पेशे से वकील किन्तु कवि सुलभ सहृदयता से भरपूर रामनारायण माथुर का जन्म मध्यप्रदेश के शाजापुर कस्बे मे 1918 में हुआ। इनके पिता का नाम श्री सूर्यप्रसाद था जो संन्यास लेकर स्वामी सूर्यानन्द कहलाए। 1973 तक वकालत करने के पश्चात् श्री माथुर ने संन्यास ले लिया और गुरुकुल होशंगाबाद में रहने लगे। 9 सितम्बर 1990 को उनका देहान्त हो गया।

स्वामी ओम् प्रेमी के अनेक काव्य ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। स्वामी दयानन्द के भक्ति ग्रन्थ आर्याभिविनय के काव्यानुवाद की चर्चा विगत अध्याय में आ चुकी है। 1985 में उनका एक काव्य 'माण्डवी महाशया' नाम से छपा जिसे कवि ने पद्योपन्यास की संज्ञा दी है। पद्यात्मक उपन्यास लिखने की यह एक नई विधा है। प्रसिद्ध समीक्षक तथा प्राध्यापक डा. लक्ष्मी नारायण दुबे ने इस काव्य के सम्बन्ध में लिखा है—"आपके नवीन जी की शैली का सच्चा अनुगमन माण्डवी में किया है। नवीन जी के महाकाव्य उर्मिला से पुनीत प्रेरणा लेकर माण्डवी की सफल सर्जना की है। भरत प्रिया माण्डवी की उपेक्षा का निवारण करके माण्डवी को काव्य की नायिका के पद पर प्रतिष्ठित किया है। यह अत्यन्त सरस, मधुर तथा मौलिक प्रसंगोद्भावना से युक्त है। डा. बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत सन्त' और 'कौशल किशोर' में भरत को तो प्रतिष्ठित कर दिया किन्तु बेचारी माण्डवी फिर भी उपेक्षित ही रही। इस कृति में माण्डवी के व्यक्तित्व और बलिदान के साथ पूर्ण न्याय हुआ है। यह कृति उर्मिला (नवीन) यशोधरा (मैथिलीशरण गुप्त), पाषाणी, कैकेयी तथा निर्वासिता की परम्परा को सम्पुष्ट करती है। इन रचनाओं के माध्यम से हमारी पौराणिक उपेक्षिताओं, विस्मृताओं का सचमुच उद्धार हुआ है।"

तांटक नामक छन्द में लिखा गया यह पद्योपन्यासों तो रामायण की प्रख्यात कथा पर ही आधारित है। तथापि इसमें कई प्रसंग कल्पनाप्रसूत भी हैं। कवि इसे प्रमौलिक पद्योपन्यास कहते हैं। मौलिक के आगे प्र उपसर्ग प्रकर्षता का द्योतक है। उपन्यास की ही भाँति कथावस्तु, पात्र एवं उनका चरित्र चित्रण, संवाद, देशकाल का चित्रण तथा कृति का उद्देश्य आदि सभी औपन्यासिक तत्त्व इसमें मौजूद हैं। रामायणयुगीन परिवेश को तो प्रमुखता दी ही गई है, किन्तु यथाप्रसंग राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, धर्म और कर्मकाण्ड, कृषि, व्यापार, ग्राम्य जीवन आदि अनेक विषयों का भी कवि ने प्रसंगोपात्र विवेचन किया है। माण्डवी महाशया जैसी दीर्घाकार कृति कवि द्वारा कैसे रची गई, इसके विषय में कवि स्वयं कहता है—

> क्यों कैसे रचिता हो पाई माण्डवी अहो, इसके द्वारा।
> आता ही भाव समूह गया किस तरह नवीन तथा न्यारा।

सच जानो इस पर विस्मित है स्वयंमेव ओमृप्रेमी प्रतिपल।
इसने तो मानो भीतर की बातें ही प्रस्तुत कर दीं अविकल।।

अंग्रेजी समीक्षक ने इसी कारण काव्य को शक्तिशाली भावों का स्वतःस्फूर्त प्रवाह कहा है—Poetry is the spontoneous flow of powerful emotions.

24 प्रकरणों में समाप्त यह काव्य कृति कविता की दृष्टि से सर्वथा दोष शून्य ही हो, ऐसी बात नहीं हैं। यत्र-तत्र छन्दो भंग दिखाई पड़ता है तो कहीं-कहीं प्रवाह में शिथिलता भी आ गई है। कथात्मक काव्य में ऐसी त्रुटियों का आ जाना स्वाभाविक है। भरत और माण्डवी के प्रेम को कवि ने अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता से चित्रित किया है। पारिवारिक स्नेह तथा परिवार के लोगों के पारस्परिक हास्य विनोद को दिखाने के लिए कवि ने कई अनूठे प्रसंगों की उद्‌भावना की है। काव्य का अधिकांश संवाद शैली में लिखा गया है, इसलिए वस्तु वर्णन के अवसर कम आए हैं। कवियों द्वारा भरत पत्नी माण्डवी की अब तक की उपेक्षा का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा—

भारत में जितनी सन्नारी प्राचीन काल में प्रकटायी।
उन सब में हमको देवी माण्डवी भक्तिपूर्वक भायी।।
यह अचरज है कि आदि कवि से वे उपेक्षिता सर्वथा रहीं।
परवर्ती कविजन भी उनका वर्णन कर पाये सर्वथा नहीं।।

इस पद्योपन्यास में आई वर्णनात्मक शैली का उदाहरण निम्न पंक्तियाँ हैं—

मिथिला नगरी की छटा न्यारी थी उस काल।
जब विदेह नृपवर जनक थे ज्ञानी क्षितिपाल।।
भौतिक वैभव से अधिक नैतिक था ऐश्वर्य।
राजा सम ही थी प्रजा इसमें क्या आश्चर्य।।

स्वामी ओम् प्रेमी के निधन के कुछ समय पश्चात् उनकी एक अन्य काव्य रचना 'श्रद्धा कल्याणमयी वरदा' का प्रकाशन हुआ। 536 छन्दों में समाप्त यह काव्य दार्शनिक भावों से ओतप्रोत है। कवि ने इसमें श्रद्धा के पवित्र भाव का विवेचन किया है। उसने श्रद्धा को व्यक्तिगत, सामाजिक राष्ट्रीय, सार्वदेशिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा दैवी आदि वर्गों में बाँटा है। उसने अपने विवेचन का आरम्भ इस प्रकार किया है—

श्रत् को जब धा से युक्त करें, तब श्रद्धा शब्द बने प्यारा।
जिस पर स्वतन्त्र मौलिक चिन्तन, अन्तः प्रेरित है विस्तारा।।
श्रद्धा कल्याणमयी वरदा, क्यों रहे नहीं सुखप्रदा सदा।
जिस जीवन में निवास कर ले उस पर सुपुण्य हो क्यों न लदा।।

स्वामी ओम् प्रेमी की उर्दू काव्य लेखन में भी रुचि थी। अपने व्यवसाय वकालत को छोड़ते समय उन्होंने लिखा—

हुई जब कोफ्त सी भीतर वकालत छोड़ दी मैंने
बड़ी राहत मिली मुझको तवालत फोड़ दी मैंने।
किया पैंतीस बरसों तक अगर्चे रोज़ वह पेशा।
मगर खुद को ही छलने की हिमाक़त छोड़ दी मैंने।
बनावट से कहाँ कोई रहा अब वास्ता मेरा।
भली रूहानी पूँजी में सदाक़त जोड़ ली मैंने।
तख़ल्लुस ओम् प्रेमी जो रखा है खूब मस्ती से।
उसे बदनाम करने की रज़ालत छोड़ दी मैंने।।

निश्चय ही आत्म स्वीकृति की शायरी का यह बेहतर नमूना है। उनका लिखा बहुत-सा काव्य तो अप्रकाशित ही है। जिसका प्रकाश में आना आवश्यक है।

9. ओंकार मिश्र प्रणव

खडी बोली में वीर रस की सशक्त कविता करने वाले ओंकार मिश्र प्रणव का जन्म 8 अगस्त 1919 को अलीगढ़ जिले के एक ग्राम में हुआ। देश विभाजन के पहले वे वर्तमान पाकिस्तान के जेहलम नगर के गुरुकुल में अध्यापन करते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने डी.ए.वी. कालेज फीरोजाबाद में संस्कृत के प्रवक्ता तथा उपाचार्य के पदों पर कार्य किया। 1980 में आप सेवा निवृत्त हुए। अध्यापन तथा लेखन में रुचि रखने वाले पं. प्रणव की काव्य रचना में सहज रुचि है। उनके अब तक अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से कुछ की समीक्षा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

बोस बावनी—आज़ाद हिन्द सेना का संगठन कर देश को स्वतन्त्र कराने की योजना बनानेवाले नेताजी सुभाष बोस की प्रशंसा में लिखा गया 52 छन्दों का यह वीर रस पूर्ण काव्य प्रणवजी की प्रतिनिधि रचना है। प्रणव की वीर रस की कविता महाकवि भूषण की कविता से प्रेरणा ग्रहण करती है। 'शिवा बावनी' में जहाँ भूषण ने शिवाजी महाराज की श्रेष्ठता तथा सर्वोपरि शक्तिमत्ता को प्रतिष्ठित करने के लिए 'इन्द्रजिमि 'जम्भ पर बाडव सुअम्ब पर' वाला कवित्त लिखा उसी शैली में प्रणव जी का नेताजी की प्रशंसा में लिखा गया निम्न कवित्त देखें—

ज्ञानी जन पोप पर दानी जिमि लोभ पर,
कायरों के कोष पर मानी अधिराज हैं।
दाम गिरिशृंग पर नकुल भुजंग पर,
प्रणव विहंग पर जैसे खग बाज हैं।

वृक छाग वृंद पर राहुजिमि चन्द पर,
कौरव-गयन्द पर भीम भटराज हैं।
आग जिमि वंश पर सत्य अघ अंश पर
त्यों ब्रिटेन वंश पर वीर बोसराज है।।

बहादुर बावनी–भारत के द्वितीय प्रधानमन्त्री पं. लालबहादुर शास्त्री के प्रेरणादायी व्यक्तित्व तथा 1965 के पाकिस्तान से लड़े गए युद्ध में उनके प्रभावशाली नेतृत्व को लक्ष्य में रखकर प्रणव जी ने बहादुर बावनी की रचना की। इसका प्रकाशन 1969 में हुआ। कवि ने लालबहादुर शास्त्री के उदात्त व्यक्तित्व को अपने काव्य का विषय बनाया है। साथ ही भारतीय सैनिकों तथा सेनापतियों के वीरतापूर्ण कृत्यों की प्रशंसा में भी कुछ कवित्त लिखे हैं। शास्त्री जी का गुणानुवाद करते हुए कवि ने लिखा–

देवता दया का दिव्य देवदूत दुनिया में
दीन दुखियों का एक सबल सहारा सा।
पौरुष प्रतिष्ठा का प्रतीक पुण्य पावन सा,
सुकृति कलाओं का प्रवाह प्राण प्यारे सा।
किसी के दबाव का रुआब नहीं मानता था
लघु, किन्तु गुरु अंश वंश शुद्ध पारे सा।
जनता जहाज को प्रकाश पन्थ देने वाला,
धमका धरा पर था लाल ध्रुवतारे सा।।

कवि को शास्त्रीजी में महामति कौटिल्य, सम्राट् विक्रमादित्य, अग्निमित्र तथा सम्राट हर्ष जैसे महापुरुषों के गुण समष्टि रूप में दिखाई दिए–

कौटिल्य की कूट-कूट कूटनीति भरी हुई।
रीति थी निराली यही मित्र था अमित्र का,
देखने में दुबला बला किन्तु बलियों को,
नया रंगसाज कलाकार राष्ट्र चित्र का।
दूरदर्शिता से भरपूर हर्षवर्धन सा,
विक्रम में विक्रम नमूना अग्निमित्र का,
सर्वत्र मिलेगा नहीं प्रबल पवित्र पूर्ण,
विश्व में अनोखा ऐसा देवता चरित्र का।।

विजय बावनी–बंगला देश द्वारा पाकिस्तान के विरुद्ध लड़े गए 1971 के युद्ध में भारत की निर्णायक भूमिका थी। बंगला देश के इस स्वातन्त्र्य युद्ध के ऐतिहासिक

महत्त्व को ध्यान में रखकर कवि ने विजय बावनी की रचना की है। इसमें प्रणव जी ने वीरता का नया प्रतिमान स्थापित कर पाकिस्तान के बर्बरतापूर्ण कृत्यों का प्रतिकार करने वाले सैनिकों का यशोगान किया है। एक उदाहरण देखें—

रसना हमारी उनके ही गुणगान करे
जो कि गुणगान की परम्पराएँ बो गए।
नेत्र हों अधीर नीरहार उपहार देवें,
कुयश कलंक वीरता का जो कि धो गए।
श्रोग सुनें उनकी कथाएँ सत्यनारायण,
विपुल व्यथाएँ जो कि भारत की खो गए,
उनकी चिताओं पर मेला तो लगाओ वीर
मातृभूमि के लिए शहीद जो कि हो गए।।

घनाक्षरी छन्दों में लिखे गए उपर्युक्त तीनों वीर काव्य प्रणव जी को हिन्दी के आधुनिक वीर रस के कवियों में सम्मानपूर्ण स्थान का अधिकारी बनाते हैं।

ज्वाला—वीररस की यह एक अन्य कृति है जो चार सर्गो में समाप्त हुई है। प्रथम समित्सर्ग में कुल 28 कवित्त हैं। महाकवि भारवि ने अपने काव्य किरातार्जुनीय में द्रौपदी के उन अमर्षपूर्ण वचनों को छन्दोबद्ध किया है जो उसने पाण्डवों के अग्रज युधिष्ठिर को सम्बोधित कर कहे थे। प्रणव जी ने भी 'किरात' के भावों को ही निम्न पद्य में प्रस्तुत किया है—

धीर धर्मराज से पुकार कर द्रौपदी ने कहा,
मेरी बात महाराज ाज ध्यान लाइए।
हो गया विनष्ट सारा विक्रम तुम्हारा जब,
शोक है कि शान्ति सुख साधना समाइए।।
अब भी क्षमा में यदि वैभव विलोकते हो,
मन्त्र ये स्वतन्त्र एक मेरा मान जाइए।।
जाइए बनों में छटा लिए यों तपस्वियों की
जटाधारी बन होम धूनी को रमाइए।।

1962 में पड़ोसी देश चीन द्वारा भारत पर किए गए आक्रमण की स्पष्ट छाया 'ज्वाला' काव्य पर दिखाई देती है। द्वितीय सर्ग के आरम्भ में कवि यह स्पष्ट कर देता है कि अब शृंगार रस से चुहचुहाती, कामोद्दीपन करने वाली कविताएँ लिखने का ज़माना नहीं है और न छायावाद-रहस्यवाद की अस्पष्ट वायवीय अनुभूतियों को व्यक्त करने की ही आवश्यकता है। अब तो जय काव्य लिखा जाना चाहिए और इसके लिए शत्रु-शोणित की ही स्याही बनाना उपयुक्त होगा—

पढ़ो कवि केसरी कड़क कड़खे का राग,
मोह दो बिसार हे, शृंगार के सियार से।
बनो न प्रतीक की लकीर के फकीर आज,
प्रगति सुकीर को न बाँधो किसी तार से।
छाया या रहस्यवाद बाद में ही देख लेना,
अब तो जगाओ वीर छन्द ललकार से!
लिए शत्रु शोणितों की स्याही गिरि शृंगों पर,
जय काव्य लिखने हैं लेखनी कटार से।।

अवशिष्ट दो सर्ग आज्य सर्ग तथा अग्नि सर्ग शीर्षक हैं। इस प्रकार ज्वाला काव्य भी वीररस की सशक्त अभिव्यक्ति करने वाली एक प्रौढ़ कृति है।

अमर ज्योति–स्वामी दयानन्द की नवोन्मेषकारि ी शिक्षाओं से अनुप्राणित होकर कवि प्रणव ने अमर ज्योति काव्य की रचना की जिसका प्रकाशन 2015 वि. में हुआ। इसके प्रथम मयूख की विषय वस्तु मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती के अतीत खण्ड से प्रभावित है। इस काव्य के मगंलाचरण से दोनों काव्यों की समानता की पुष्टि होती है। यह पद्य है–

पाठक प्रथम प्रणवेश प्रभु का ध्यान पावन कीजिए।
हित भावनाएँ भव्य भर कर चित्त निर्मल कीजिए।
सब छोड़कर छल छिद्र नित अघ द्वेष की आराधना।
शुभ सीखिये सज्जन सतत सुख स्नेह की शत साधना।।

अतीत दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया यह सर्ग (मयूख) महाभारत युद्ध के पश्चात् के भारत की पतन कहानी है। महान् आर्यावर्त देश के सार्वत्रिक पराभव तथा अधोगति को कवि ने शब्दबद्ध करते हुए कहा–

उद्यान आर्यावर्त में मत जन्य ज्वाला जल उठी।
या चारुचन्दन कुंज में दावाग्नि माला बल उठी।
घनघोर धूम्र वितान सा आकाश में छाने लगा।
जन विहग मण्डल अंध सम हो भ्रांत अनुलाने लगा।।

द्वितीय मयूख महर्षि दयानन्द के प्रमुख जीवन प्रसंगों के अतिरिक्त सत्यार्थप्रकाश का सार संक्षेप भी पद्यबद्ध किया गया है। स्वामी दयानन्द ने खण्डन-मण्डन करने में अपने हार्दिक अभिप्राय को जिस प्रकार स्पष्ट किया था उसे कवि ने इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है–

इस ग्रन्थ लेखन में रहा मेरा यही ध्रुव ध्येय है !
है सत्य मत संग्राह्य सब मन्तव्य मिथ्या हेय है।
हो असत्य विनाश जग से सत्य का संचार हो।
संसार के जनक्षेत्र में आनन्द का विस्तार हो।।

इस प्रकार अमर ज्योति काव्य के माध्यम से प्रणव जी ने ऋषि दयानन्द के सन्देश को काव्यात्मक व्यंजना प्रदान की है।

मधुमती–कवि ने अपनी दार्शनिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आस्थाओं को प्रकट करने के लिए मधुमती काव्य का प्रणयन किया। इसे 1970 में आर्य युवक समाज ने प्रकाशित किया। वेद मंत्रों में निहित उदात्त भावों को पद्यबद्ध करने का यह एक शालीन प्रयास है। स्तुता मया वरदा वेद माता, द्वा सुपर्णा-सयुजा सखाया जैसे वेद मंत्र इस काव्य में पद्यात्मक रूप में आए हैं।

अमरदीप–इस काव्य का प्रकाशन 1987 में हुआ। हमारे देश के महापुरुषों, देश भक्तों, दुतात्माओं, कवियों और सन्तों को पद्यबद्ध श्रद्धांजलि अर्पित करने की दृष्टि से इस काव्य की रचना की गई है। महापुरुषों के चयन में कवि की दृष्टि उदार तथा विशाल रही है जिसमें राम, हनुमान, कृष्ण, आदि पुराण पुरुषों गॉधी, नेहरू, सरोजिनी नायडू, राजेन्द्र प्रसाद आदि राष्ट्र पुरुषों, बिस्मिल अशफाक आदि शहीदों, तुलसीदास एवं श्रीधर पाठक जैसे कवियों के अतिरिक्त आर्यसमाज के गण्यमान्य नेताओं, विद्वानों तथा महात्माओं की प्रशस्ति में लिखा गया अमरदीप कवि की गुणग्राहकता, तथा पूज्य पुरुषों के प्रति पूज्यभाव का परिचायक है। वस्तुतः प्रणव का काव्य भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा जीवनदर्शन के विराट् फलक को अपने सम्पूर्ण विस्तार तथा गहराई के साथ प्रकट करता है।

10. कर्ण कवि

कर्ण कवि का जन्म अलीगढ़ जिले के चण्डोली ग्राम में 1881 ई. में हुआ। महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा इनके काव्य गुरु थे। आपकी रचनाओं में सुधारवादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। इनकी काव्य कृतियों में सुमनमाला, यमुना-लहरी, अनुराग-वाटिका तथा काव्य-कुसुमोद्यान आदि उल्लेखनीय हैं। 'कर्णामृत' शीर्षक काव्य संग्रह आपकी रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन है। इसमें दोहा, सोरठा, षट्पदी, दुर्मिल सवैया, हरिगीतिका, प्लवंगम, शार्दूल विक्रीड़ित आदि अनेक छन्दों में आपने काव्य रचना की है। कर्ण कवि का निधन 20 जून 1943 को हुआ।

कर्ण कवि की कविता में ईश्वर भक्ति, समाज सुधार, देशभक्ति, कुरीति निवारण आदि विषय प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। कवि की भाषा खड़ी बोली है जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। उनकी कविता का यह उदाहरण

उनकी काव्यगत विशेषताओं का परिचायक है–

जो मन वाणी से न कभी हम दूषित होते।
भव्य भाव भरपूर भद्रकुल भूषित होते।
करणी भी न कदापि हमारी बिगड़ी होती।
दृढ़तापूर्वक चाल धर्म की पकड़ी होती।
तो निश्चय था कवि कर्ण हम दुखी हुए होते नहीं।
सुख पाते, रो रोकर वृथा निज अवसर खोते नहीं।।

उन्होंने भक्तिकाव्य की शैली में पदों की रचना भी की है। इन पदों में मन की उद्बोधन देने के अनेक भावप्रवण प्रसंग वर्णित हुए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

अरे मन मान कही मेरी।
परम पिता परमेश्वर के प्रति रख नित प्रीति घनेरी।
निर्मल ज्ञान प्राप्त कर, खो मत बैठ धर्म धन ढेरी।
नाश करण कर चेत शीघ्रतर, हो न तनिक भी देरी।।

राष्ट्रीय अपकर्ष को कवि ने निम्न दोहों में हृदय की गहनतम व्यथा के साथ प्रकट किया है–

क्या न प्राप्त कर खो चुके धाम धरा धन ग्राम।
'कर्णाधम' हम में न अब है जीवन का नाम।।
क्या न कर्ण हम थे कभी धवल मेदिनीनाथ।
हाय हमीं वह बिक रहे, आज पराये हाथ।।
हाय हमारी शक्ति का हुआ सर्वथा ह्रास।
'कर्णाधम' पाते नहीं तब भी क्या उपहास।।

कर्णकवि की अनेक सुन्दर कविताएँ पं. हरिशंकर शर्मा के सम्पादक काल में आर्यमित्र में प्रकाशित हुई। 23 मार्च 1933 के आर्यमित्र में 'एकान्त के उद्‌गार' शीर्षक उनकी एक लम्बी कविता छपी। कवि ने इस कविता में उस आदर्श जीवन की कल्पना की है जिसे प्राप्त का वह अपने अस्तित्व को धन्य मानेगा। किन्तु इस आदर्श की सिद्धि कब होगी। यह कहना शक्य नहीं है। 18 जनवरी 1940 के आर्यमित्र में 19 पद्यों में समाप्त कर्ण कवि की आत्मकथात्मक काव्य कृति प्रकाशित हुई। कवि अपने जीवन की अब तक की कार्य प्रवृत्तियों की समीक्षा करता है तो देखता है कि उसकी उपलब्धियाँ तो शून्यवत् ही हैं–

अपना परिचय ही क्या है ?
है एक दुःखमय गाथा।

यदि अग्निवश की अगनी
अपने जीवन में होती।
तो आत्मकथा क्यों अपनी
रह जाती प्रायः थोथी।।

कवि को अपने अध्ययन से कोई सन्तोष नहीं मिला–

थोड़े से अक्षर पढ़ कर
समझा अपने को अतिशय
बस इतनी ही साक्षरता
नित करा रही निज परिचय।

कवि को अपना जीवन निष्फल प्रतीत होता है–

दिन गए व्यर्थ ही अपने
रातें भी बीतीं निष्फल।
ठहरा अपना यह जीवन
सब भाँति वस्तुतः अनमिल।

कवि के आत्म सन्ताप की परिणति इस रचना की अन्तिम पंक्तियों में इस प्रकार होती है–

मैं लांछन सा हूँ अपना
अतएव शाप सा अपना।
मैं प्रिय अभाव सा अपना
अथवा विलाप सा अपना।

आत्मकथात्मक शैली की यह कविता उसकी अन्तरात्मा की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

कर्ण कवि के काव्य का प्रकृति चित्रण भी विशिष्टता लिए हुए है। यद्यपि प्रकृति का यह चित्रण इतिवृत्तात्मक है तथापि उसमें वर्णन की सादगी तथा अनलंकृत शैली के दर्शन होते हैं। 'पतझड़ का राज' (आर्यमित्र 1 फरवरी 1940) शीर्षक कविता कवि के सूक्ष्म प्रकृति पर्यवेक्षण की परिचायक है–

पत्र हीन वृक्षों पर बैठे
पाए गए काक महाराज।
अतः उन्हीं का कोमल कलरव
गूँज रहा कानों में आज।

पंखुड़ियों को झड़ते देखा
कुसुमों को हा, मुरझाते।
नन्ही नन्ही सी कलियों को
बिना खिले ही मुरझाते।।

'जीवन का एक सुनहरा पृष्ठ' शीर्षक कविता आर्यमित्र के 31 अगस्त 1933 के अंक में प्रकाशित हुई। कवि ने सरल और वर्णनात्मक शैली में अपने आर्यसामाजिक जीवन की एक झाँकी इसमें प्रस्तुत की है।

कर्ण कवि की आरम्भिक कविताओं के नमूने हमें परोपकारी मासिक (अजमेर) के वर्ष 1907 के अंकों में देखने को मिलते हैं। उनकी काव्य रचना का यह शैशव काल था। उनके कुछ ऐसे ही प्रारम्भिक ईश्वर भक्ति के पद ज्येष्ठ 1964 वि. के परोपकारी में छपे। इनमें दुर्मिल सवैया, त्रोटक, विष्णुपद जैसे हिन्दी तथा रेख़्ता, ग़जल आदि उर्दू के छंदों का प्रयोग हुआ है। भाषा में यद्यपि परिष्कार की कमी है तथापि भक्ति भावना की दृष्टि से इनकी महत्ता निर्विवाद है। ईश्वर भक्ति को लेकर लिखा गया निम्न सवैया देखें–

सब ठौर समाय रह्यो हरि तू
जग वन्दे मनाय मनाय सदा।
श्रुतिशास्त्र सभी गुण गाय रहे
तव नाम जनाय जनाय सदा।
शरणागत को प्रतिपालै तुही
भवदुःख नसाय नसाय सदा।
अब कर्णहु छूट्यो चहै दुख से
अपराध गनाय गनाय सदा।।

परोपकारी के भाद्रपद आश्विन तथा कार्तिक 1964 वि. के अंकों में कर्ण कवि की आनन्दामृत प्रवाहिनी शीर्षक एक लम्बी कविता प्रकाशित हुई है। अध्यात्म तथा भक्ति तत्त्व संवलित इस कृति में आसावरी, कालिंगड़ा, आदि रागों का आश्रय लेते हुए पद्धरी तथा हंसगति छन्दों में ईश्वर के प्रति कवि अपनी भक्ति निवेदन करता है। कविता की भाषा ब्रज का पुट लिए खड़ी बोली है। इसमें सरलता तथा प्रवाह है जिसका उदाहरण निम्न पंक्तियों से मिलता है–

हे सर्व नियन्ता सत्यकाम ! परिपूर्ण सौख्यप्रद मोक्षधाम।
नित गाय रहे गुण गर्व छोड़ यति साधु सन्त कर जोड़ जोड़।।
तुम सर्व काल सबके अधार हरते दरिद्र दाता उदार।
करिए सदैव उर माँहि वास। मिट जाय जौन मम सर्व त्रास।।

11. भक्त कवि महात्मा कालूराम योगी

वर्तमान राजस्थानी तथा उसका प्राचीन रूप डिंगल हिन्दी की ही एक उपभाषा है अतः राजस्थानी काव्य के विवेचन को हिन्दी साहित्य समीक्षा के अन्तर्गत लिया जा सकता है। राजस्थान के सीकर ज़िले के कस्बे रामगढ़ (शेखावाटी) में वि.सं. 1893 को पं. कृष्णदत्त त्रिपाठी के यहाँ एक बालक ने जन्म लिया जो आगे चल कर महात्मा कालूराम के नाम से विख्यात हुआ। तन्द्रावस्था में ही उसने स्वामी दयानन्द के दर्शन किए जो उसके समकालीन थे ! साथ ही उसने प्रणवोपासना का व्रत भी धारण किया। आगे चल कर पं. कालूराम स्वामी जी के सम्पर्क में आए और उन्हीं के बताये मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा की। महात्मा कालूराम ने अपने प्रान्त शेखावाटी के सीकर, झुंझनू तथा समीपवर्ती चूरु और नागौर जिलों में विस्तृत भ्रमण कर वहाँ के ग्रामों एवं नगरों में वैदिक धर्म का प्रचार किया। नारी जागरण, कुरीति खण्डन, नशा निवारण, दलितोद्धार जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों में महात्मा जी की प्रशंसनीय भूमिका रही। 7 जून 1900 को रामगढ़ में ही उनका निधन हो गया।

महात्मा कालूराम ने परम्परागत भजन शैली के द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया है। उनकी कविता की भाषा राजस्थानी (*मारवाड़ी की वह शैली* जो राजस्थान के शेखावाटी अंचल में बोली जाती है) है और उन्होंने भक्त कवियों द्वारा स्वीकृत पद शैली का प्रयोग किया है। उनके ये पद और भजन शेखावाटी क्षेत्र के जनसाधारण में विगत एक शताब्दी से प्रचलित हैं तथा पुरानी पीढ़ी के लोग मीरा और कबीर के पक्षों की भाँति उन्हें गाते हैं। ये पद संगीत की राग रागनियों पर आधारित हैं। 1981 वि. में रामगढ़ निवासी हरदत्तराय सिंहानिया ने महात्मा कालूराम कृत 'भजनोदय' शीर्षक एक भजन संग्रह प्रकाशित किया। इसमें महात्मा जी के 43 भजनों के अतिरिक्त संकलकर्ता के भी कुछ भजन हैं। म. कालूराम अपने पदों की अन्तिम पंक्ति में 'कालूराम के अन्तर्यामी बिहारी' का प्रयोग करते हैं। यह वैसा ही प्रयोग है जैसे मीरा के पद 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' के साथ समाप्त होते हैं।

महात्मा कालूराम के काव्य में ईश्वरानुरक्ति, त्याग, वैराग्य, विनम्रता, अहंकार त्याग जैसे नैतिक भाव सर्वत्र पाए जाते हैं। प्रभु स्मरण को सर्वोपरि मानते हुए वे कहते हैं—

> प्रभु जी ने सुमर मना रे मेरा भाई।
> जो प्रभुजी ने निश्चय जाने झूठ न बोले कोई।
> जनम जनम का सांसा मेरे आप मिले प्रभु दिखाई।
> आछी मंदी किसको कहिये ये दोनों दुखदाई।
> हरिजन हो सो हरि को जाँचे मूढ़ पड़ो अभिमान गल जाई।
> अपना मिंतर कोई नहीं है कोटि करे मितराई।

भीड़ परे पर काम न आवे स्वारथ प्रीति करे अधिकाई।
महर करी सतगुरु मेरे दाता निरगुन ब्रह्म दरशाई।।

सतगुरु ऋषि दयानन्द ने निर्गुण ब्रह्म की शिक्षा देकर शिष्य पर कृपा की, यही उपर्युक्त का भाव है।

भगवद् भक्ति के उदात्त भाव म. कालूराम के निम्न पदों में भी पाए जाते हैं–

प्रभु को नाम सबन सुखदाई।
× × ×
प्रभु को ध्यान धरो रे सुभाजी।

महात्मा कालूराम के आराध्य ईश्वर निराकार, निरंजन, अलक्ष्य, अजर, अविनाशी तथा सृष्टि की स्थिति, पालन और सहार के कारण हैं। उन्होंने अपने काव्य में परम सत्ता के इसी स्वरूप को प्रस्तुत किया है तथा सम्प्रदायनिष्ठा भिन्न-भिन्न पद्धतियों, बदुदेवोपासना, कर्मकाण्ड में जटिलता तथा वैदिकेतर मत पन्थों की आलोचना की है। वे लिखते हैं–

चार धाम वे थे फिर कर देखो, अड़सठ तीरथ सारा जी।
सुमेरुशिखर और मक्का मदीना इन खटकों से न्यारा जी।

घट-घट व्यापी परमात्मा को न तो वे जलमय तीर्थों में सीमित मानते हैं, न सुमेरु पर्वत के शिखर पर और न मक्का मदीना आदि इस्लाम के पावन स्थलों में। शिव और विष्णु के नाम पर प्रचलित मत-सम्प्रदायों तथा योगी, गुसाई आदि साधुओं के भेद-प्रभेद को भी वे धार्मिक एकता का विनाशक मानते हैं–

शिव विष्णु का घाटा भारी बावन द्वार सम्प्रदाचारी जी।
जोगी गुसाईं कूंडा पन्थी भ्रष्ट करे जग सारा जी।।

वे ईसाई, इस्लाम आदि सामी मजहबों की इस धारणा के भी आलोचक हैं कि परमात्मा का ईसा इकलौता बेटा है, अथवा वह अपना कोई दूत या सन्देश वाहक भेजता है। उनका कहना है–

बाइबिल इंजील पढ़ देखो कुरानशरीफ ये सारी जी।
मिन्तर बेटा दूत अगाड़ी नाम खुदा का सारा जी।।

पद्यान्त में कालूराम स्वयं को वेदमतानुयायी कहते हैं और वैदिक धर्म को ही मानवजाति का आदिम पन्थ बताते हैं–

कालूराम का आदू झण्डा वेदपन्थ का प्यारा जी।

कवि का वैदिक एकेश्वरवाद में अटूट विश्वास है। वह वहु देवोपासना को पोपों का पाखण्ड बताता है–

वेद वेदान्ती एक बताये सो ही बात है ढब की।
नाना ईश्वर पोप बतावें नहीं सही है उनकी।।

कवि की भक्ति सेव्य सेवक भाव की है। वे कहते हैं–

जैसा करतब तैसी शोभा भर मन भूलो कोई।
चाकर ठाकर रहो जगत का दूजी कहत न कोई।।

मध्यकाल के कबीर आदि निर्गुण सन्तों की कविता में जिस शब्दावली का प्रयोग हुआ है, म. कालूराम भी प्रायः उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति (तीन अवस्थाएँ), शून्य (सुन्न) अलख पुरुष आदि निर्गुण शब्दावली का प्रचुर प्रयोग यहाँ हुआ है। सूफी सन्तों ने परमात्मा के प्रति भक्त के अलौकिक प्रेम को 'इश्क हक़ीकी' कहा तो निर्गुण सन्तों ने भी स्वयं को 'राम की बहुरिया' कहने में गौरव माना। म. कालूराम की प्रेमानुभूति में भी वैसी ही दिव्यता और अलौकिकता है जो निम्न पंक्तियों में दीख पड़ती है–

उस आशक से लगी आशकी हर्ष भयो है मन में।
ऐसे कहन में छोटो आवे, व्याप रह्यो घट घट में।
उसके वेग का अन्त नहीं ब्रह्माण्ड रचा है पल में।

पद्यान्त में कवि ने प्रणव (ओंकार) के जय की महिमा बताई–

कालूराम जी सतगुरु के सरणे ओम बड़ो जापन में।

धर्म और समाज में प्रचलित पाखण्डों की आलोचना करने में म. कालूराम भी कबीर की भाँति स्पष्टवादिता से काम लेते हैं। ज्योतिष के नाम पर ग्रहों का शुभाशुभ फल बताना, शकुन-विचार आदि को वे निठल्ल और अकर्मण्य लोगों की धन्धेबाजी समझते हैं–

ग्रह सुगन यह ठाला धन्दा निकम भरम करन्दा।
जादू टोना छल छिद्रों से लुच्चा जगत है गंदा।।

जीव और ईश्वर के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना में कवि ने प्रिया और प्रियतम के स्नेह बंधन की समानता देखी है–

तू न्यारी होइ न होवे पिया तेरे संग रहा।
तेरी भूल तुम्हीं नहिं जानी न्यारा किससे कहा।
अलख पुरुष ने तू ही पायो अमर सुहाग भया।।

कवि के विचार से परम्मात्मा का ध्यान करने वाले भाग्यशाली हैं—

प्रभुजी को ध्यान धरो रे सुभागी।
ध्यान धरे से मन की शुद्धि दिल की दुरमति भागी।

अगली पंक्ति में कवि अपने आराध्य को सच्चिदानन्द लक्षण युक्त बताते हुए कहता है—

सत चित आनन्द व्यापक कहिए सुमर सुमर मन इच्छा लागी।
केवल ध्यान प्रभु का धरिये माया ममता त्यागी।।

महात्मा कालूराम के काव्य का एक अन्य आयाम उनके द्वारा किया गया विदुरनीति के कुछ अंशों का पद्यानुवाद है। यह अनुवाद 12 पदों में समाप्त हुआ है। ध्यातव्य है कि स्वामी दयानन्द ने धर्म और नीति की विवेचना करने वाले महाभारत के इस प्रकरण विदुरनीति को पाठ्य ग्रन्थों में सम्मिलित किया है तथा महात्मा विदुर के महाराज धृतराष्ट्र के प्रति कथित उपदेश को आर्य जीवनदर्शन का आदर्श बताया है। अतः यह स्वाभाविक ही था कि महात्मा कालूराम भी इस ग्रन्थ के प्रति आकर्षित होते। इस अनुवाद के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं—महामति विदुर अपने अग्रज धृतराष्ट्र के सारी रात जगे रहने का कारण पूछते हैं—

चक्रवर्ति महाराज आज थें जागत क्यों राई ?
जागे विभचारी विभचारण अपने कुल को नास करावण।
पड़ा बिसन मुसकिल से छूटे सो तो थे नाहीं।

इसके उत्तर में प्रज्ञाचक्षु राजा कहता है—

संजय कियो अपमान विदुर, मोय निद्रा नहीं आई।
संजय कही सुनत घबराया, तद मैं विदुर तुम्हें बुलाया।

इस प्रसंग का समाहार कवि ने इस प्रकार किया—

विदुर प्रजागर यों समझावे चेत ज्ञान ज्यों आवे।
कालूराम समज कर देख्या सुख सम्पति सब पावे।।

विदुर के नीति युक्त उपदेशों के काव्य रूपान्तर के कुछ और उदाहरण देखें—

शठ अभिमानी दोनों राजन डूबेंगे मझधार।
पर सुख हरे आप सुख चाहे डूबे नरक मंझार।
जो शान्ति चाहिए तो को राजा करो लोभ का त्याग।।

विदुर का एक अन्य प्रसिद्ध श्लोक है–

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।। 1/58

इसका म. कालूराम कृत अनुवाद निम्न प्रकार हुआ है

धन सम्पति होय नहिं दाता, होय दरिद्र नहिं तप तापा।
उनके सिला बाँध कर गर में, गेरे जल मंझधार।।

इस काव्यानुवाद में मूल ग्रन्थ के भावों को सुरक्षित रखा गया है।

देखा जाए तो स्वामी दयानन्द के भक्ति, अध्यात्म, धर्म तथा नीति सम्बन्धी विचारों को ही महात्मा कालूराम ने काव्यमयी वाणी प्रदान की है। उनका यह अध्यात्म प्रधान काव्य राजस्थान के उत्तर पश्चिमी जिलों के लोक मानस में गहराई तक पैठ चुका था। यह दूसरी बात है नई पीढ़ी के लोग उनके व्यक्तित्व तथा साधना से अपरिचित हैं।

12. पं. कुंजबिहारीलाल

आर्यसमाज द्वारा उपदिष्ट वैदिक सिद्धान्तों को जनसाधारण तक पहुँचाने में पद्य शैली की उपयोगिता को अनुभव का कानपुर जनपद के दुरौली ग्राम निवासी पं. कुंजबिहारीलाल ने सत्यभास्कर नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। ग्रन्थ रचयिता ने ग्रन्थान्त में कुछ दोहे लिखकर स्वयं का परिचय इस प्रकार दिया है–

शास्त्रार्थ जैसो भयो सो सब लिख्यो बनाय।
चूकि भूल जो होय कछु जाको परै लखाय।।
ज्ञानवान विद्वान् सो सब लौं लेय सुधारि।
तुच्छ ज्ञान विद्या तनक बालक मोहि विचारि।।
ज्येष्ठ कृष्ण तिथि त्रयोदशी शुभ भृगुवार बखान।
युग श्रुति ग्रह अरु ब्रह्ममिलि विक्रम संवत जान।।
विद्यालय विरहर नगर नरवल प्रगण महान।
जिला कानपुर मध्य में पूरन ग्रन्थ सुजान।।

इससे विदित होता है कि इस कृति की रचना 1944 वि. ज्येष्ठ कृष्णा 13 को हुई

थी। कवि कानपुर जिले के विरहर ग्राम की पाठशाला में द्वितीय अध्यापक के पद पर कार्यरत रहे। इस लघु काव्य ग्रन्थ को पं. भीमसेन शर्मा ने संशोधित किया तथा रामलाल नक्शानवीस सदर बोर्ड प्रयाग ने 1933 वि. पौष मास में प्रकाशित किया। कवि का विचार सत्यभास्कर को तीन खण्डों में लिखने का था। यह ज्ञात नहीं होता कि अवशिष्ट दो भाग छपे या नहीं। कवि की धारणा है कि "गद्य भाषा शीघ्र कण्ठस्थ नहीं होती...इस विचार से मैंने यह पुस्तक पद्य रूप में बनाया है।" (पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर छपा विज्ञापन) सत्यभास्कर का आरम्भ 'ओउम् सहनाववतु' इस उपनिषदोक्त मंगलाचरण से होता है। समग्र ग्रन्थ दोहा, चौपाई और सोरठा छन्द में लिखा गया है। कवि ने ग्रन्थारम्भ में निम्न सोरठा लिखकर परमात्मा की वन्दना की है—

> बन्दौ सत्य स्वरूप। परम कृपाल अनन्त अज।
> सकल सृष्टि कर भूप। विद्यानन्त सामर्थ्य युत।।

पुनः कवि आचार्य दयानन्द की वन्दना निम्न चौपाई में करता है—

> बन्दौ दयानन्द के चरणा। वेद भाष्य जिन्ह सुन्दर बरना।
> सत्य धर्म जिन कीन्हों मण्डन। पोपजाल को सब विधि खण्डन।
> पुनि बन्दौ मैं आर्यसमाजा। श्रुति उपदेश देता जो भ्राजा।
> ईश्वरानन्द आदि संन्यासी। पुनः और श्रुति ग्रन्थ प्रकाशी।।

कवि काव्य रचना विषयक अपनी अक्षमता से परिचित है, अतः लिखता है—

> कवि नहिं मैं कुछ पिंगल देखी। पढ़्यो व्याकरण नाहिं विशेषी।
> आर्य बंधु बालक मोहि जानी। क्षमहु चूकलखि अल्प ज्ञानी।।
> सत्यभास्कर पुस्तक नामा। असत निशानाशक परिणामा।।
> सुनै ताहि जो चित्त लगाई। वाहि मूर्तिमत झूठ लखाई।।

सत्य भास्कर में परमात्मा के निराकार स्वरूप की स्थापना करते हुए जड़ पूजा का खण्डन करना ही कवि का उद्देश्य रहा है। कवि ने इसे एक आर्य और पोप (पौराणिक मत समर्थक) के संवाद रूप में लिखा है। इस वार्तालाप की उत्थानिका में कवि ने लिखा—

> एक आर्य शास्त्रार्थ सुठि कियो पोप प्रति जौन।
> मैं वरनत हौं यथाविधि साजि लेखनी तौन।।

सत्यभास्कर का लेखक मूर्तिपूजा के निषेध में स्वामी दयानन्द द्वारा दिए गए शास्त्रीय प्रमाणों से भली भाँति परिचित है। यथा स्थान उसने यजुर्वेद के 'न तस्य प्रतिमाऽसित' तथा 'स पर्यगात्' आदि मंत्रों को उद्धृत कर उनका पद्यार्थ प्रस्तुत किया है।

उदाहरणार्थ–

ईश्वर की प्रतिमा नहीं ब्रह्म महद्‌यश नाम।
व्योम पवन थल नीर में व्याप रह्यो सब ठाम।।

इसी प्रकार केनोपनिषद् के 'यद्वाचानभ्युदितं' आदि पाँच वाक्यों को उद्धृत कर उनके भावार्थ को चौपाई शैली में दिया है। यथा–

वाणी से हो प्रकाश नहिं जासू।
जाकरि कैहो वच परकासू।।
केवल एक ब्रह्म है सोई।
ऐसो और नहीं फिर कोई।।

अन्यत्र भी उपनिषदों के अनेक निराकार प्रतिपादक वाक्यों का कवि ने पद्यात्मक शैली में मनोरम अनुवाद कर दिया है। इस प्रकरण को पढ़ने से विदित होता है कि उसका शास्त्रार्थ अध्ययन पर्याप्त रहा होगा तभी तो उसने अशब्दंमस्पृश्यं, न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य, न तत्र सूर्यो भाति, दिव्योह्यमूर्त, सर्वेन्द्रिय गुणाभासं, न तस्य कार्य करणं, न तस्य कश्चित्पति, वेदाहमेंतमजरं पुराणं आदि उपनिषद् मन्त्रों को उद्धृत कर उनके अभिप्राय को दोहा-चौपाई की काव्य शैली में रख दिया है।

केवल शास्त्रीय प्रमाणों को उद्धृत कर जड़पूजा का निराकरण करना ही कवि का अभीष्ट नहीं है अपितु वह तो सोमनाथ मन्दिर के विध्वंस तथा तत्सदृश ऐतिहासिक प्रसंगों की अवतारणा कर मूर्तिपूजा की हानियों को भी प्रदर्शित करता है। इस प्रसंग में उसने कथात्मक शैली को अपनाते हुए लिखा है–

है गुजरात देश को नामा। जहाँ एक मन्दिर अभिरामा।
सोमनाथ को मन्दिर बाजे। प्रतिमा एक तहाँ तब राजे।।

आदि मूर्तिपूजा के खण्डन में स्वामी दयानन्द ने जो हेतु, तर्क और युक्तियाँ सत्यार्थप्रकाश में दी हैं, प्रायः उन सभी का अनुसरण कवि ने भी किया है। इस प्रकार मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा, जड़ में चेतन की भावना जैन तथा बौद्ध मतों से मूर्ति पूजा का प्रचलन आदि स्फुट विषय भी इस ग्रन्थ में पद्यात्मक शैली में वर्णित हुए हैं।

ग्रन्थान्त में आर्य पोपसंवाद का समापन करते हुए कवि ने लिखा–

पोप सुन्यो जब वचन अस गह्यो सभा विच मौन।
जिमि लज्जित भवनहिं गयो, बरनै अस कवि कौन।।

और ग्रन्थ की फल श्रुति के रूप में उसने यह चौपाई लिखी–

आर्य विजय पोपन पर पाई।
सकल सुजन तब देहि दुहाई।
निज निज भवन लोग सब गयेऊ।
आर्य महासुख पावत भयेऊ।

कवि कुंजबिहारीलाल ने सरल और प्रांजल ब्रजभाषा का प्रयोग कर यह सिद्ध कर दिया है कि इस शैली में भक्तिकाल के कवियों ने चाहे साकारोपासना के सिद्धान्त को निरुपित किया हो, किन्तु भाषा तो विचाराभिव्यक्ति का माध्यम होती है, अतः ब्रजभाषा में भी निराकारोपासना और जड़पूजा निषेध जैसे शास्त्रीय विषयों को भी अभिव्यक्ति दी जा सकती है।

13. मुंशी केवलकृष्ण

सरल उर्दू में काव्य रचना करने वाले मुंशी केवल कृष्ण स्वामी दयानन्द के समकालीन थे। ये उर्दू में अपना उपनाम (तख़ल्लुस) 'उर्फ' तथा हिन्दी में 'केवल' प्रयुक्त करते थे। मुंशी केवलकृष्ण के पूर्वज पटियाला राज्य के छत बिनूड ग्राम के निवासी थे, किन्तु कालान्तर में वे रोहतक में रहने लगे थे। मुंशीजी भटनागर कायस्थ थे और इनके पिता का नाम मुंशी राधाकृष्ण था। मुंशीजी का जन्म आश्विन पूर्णिमा 1885 वि. को हुआ था। स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आने से पूर्व मुंशी केवल कृष्ण में मद्यपान, मांस भक्षण, वेश्या संग आदि अनेक दुर्गुण थे किन्तु आर्यसमाज के संस्थापक की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्होंने अपने अवशिष्ट जीवन को निष्कलुष बना लिया। 1877 ई. में जब स्वामी दयानन्द का पंजाब में आगमन हुआ, उस समय मुंशी केवलकृष्ण शाहपुर में मुंसिफ़ के पद पर आसीन थे।

यों तो मुंशीजी आर्यसमाज के सम्पर्क में आने के पहले से ही प्रचलित परिपाटी के अनुसार उर्दू में शृंगारी रचनाएँ लिखते थे, किन्तु वैदिक धर्म में दीक्षित होने के उपरान्त तो उन्होंने अपनी काव्य परिपाटी को बदल दिया और शान्त रस की कविताएँ लिखने लगे। उनकी काव्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है–

संध्या मंजूम–वैदिक संध्योपासना में प्रयुक्त मंत्रों का यह सरल उर्दू नज्म में रूपान्तरण है। इसका प्रथम संस्करण शालिग्राम ठेकेदार द्वारा 1970 वि. में मुरादाबाद से प्रकाशित हुआ था। कवि ने संध्या के मंत्रों का पद्यानुवाद करते हुए जिस भाषा का प्रयोग किया है उसे हिन्दी कहें या उर्दू, एक नाम देना कठिन है। इस भाषा में संस्कृत शब्दावली का निर्बाध प्रयोग हुआ है तो यत्र-तत्र उर्दू के प्रचलित शब्द भी मिलते हैं। 'शन्नो देवीरभिष्टय' इस आचमन मंत्र का यह अनुवाद मुंशीजी की कविता का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है–

यह मुकद्दस ओम् है परमात्मा का खास नाम।
बरकतें इसमें भरी परमात्मा की हैं तमाम।
सब जगत का जो है प्रकाशक वह है प्रकाश रूप।
जर्रा जर्रा में व्यापक सबका रक्षक है अनूप।
इष्ट सुख की प्राप्ति हो आनन्द की वर्षा करे।।

आर्याभिविनय मंजूम–स्वामी दयानन्द कृत प्रसिद्ध प्रार्थना ग्रन्थ का काव्यानुवाद 1902 ई. में प्रकाशित हुआ।

संगीत सुधारक–हिन्दू और उर्दू भजनों का संग्रह।

भजन मुक्तावली–1901 ई. में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित।

उस्तादे शायरी–उर्दू कविता सीखने के लिए मार्गदर्शक पुस्तक।

15 दिसम्बर 1909 ई. को मुंशीजी का निधन हुआ।

14. स्व. कृष्णलाल कुसुमाकर

खड़ी बोली में घनाक्षरी छन्द की सफल रचना करनेवाले कवि कुसुमाकर का जन्म 1 अक्टूबर 1912 को उत्तरप्रदेश के फीरोज़ाबाद जनपद के ग्राम ढोलपुरा में हुआ। उनकी शिक्षा एम.ए. तक हुई और उन्होंने कई वर्षो तक डी.ए.वी. कालेज फीरोज़ाबाद में अध्यापन किया। 17 नवम्बर 1990 को कुसुमाकर जी का निधन हो गया। 1935 में उन्होंने एक देश भक्त शहीद डा. जीवाराम के बलिदान को लक्ष्य में रख कर 'चिता की चिन्गारी' शीर्षक ओजपूर्ण काव्य लिखा, जिसे ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया। कालान्तर में उनके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। कुसुमाकर जी की कुछ काव्य-कृतियों की समीक्षा यहाँ की जा रही है।

धारणा–इस काव्य संकलन में कुसुमाकर तथा ओंकार मिश्र प्रणव दोनों की काव्य रचनाएँ संगृहीत हैं। कवि कुसुमाकर की मान्यता है कि कविता का प्रयोजन मात्र मनोरंजन ही नहीं है। गुप्त जी के शब्दों में वे कहना चाहते हैं–

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

इसी दृष्टिकोण को स्वीकार कर उन्होंने 'धारणा' काव्य संग्रह की कविताएँ लिखी हैं। 'कवि के प्रति' शीर्षक कविता में कुसुमाकर ने कवि को देश जागरण में उसकी भूमिका के प्रति सचेत किया है। वह कहता है–

कवि गीत अलौकिक छोड़ दे तू
इस लोक के गीत सुनाता नहीं क्यों ?
प्रेमसियों के लिए तो मरता रहा,
दुखियों का कलेजा थमाता नहीं क्यों ?

जोंक सा रक्त पिपासु बना हुआ,
शोषण सिंधु सुखाता नहीं क्यों ?
वाणी के बाण से सोया हुआ,
कुसुमाकर सिंह जगाता नहीं क्यों ?

कुसुमाञ्जलि--इस काव्य संग्रह का प्रकाशन 1982 में हुआ। राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष प्रो. सत्येन्दु ने इस संग्रह की भूमिका में लिखा था, "हिन्दी में एक युग ऐसा भी बीता है जिसमें यह माना जाता था कि घनाक्षरी छन्द खड़ी बोली में नहीं लिखा जा सकता।...कुसुमाकर जी में ऐसी ही काव्य प्रतिभा है कि वे खड़ी बोली में घनाक्षरी की रचना सफलतापूर्वक कर सकते हैं। खड़ी बोली में भी घनाक्षरी उतनी ही प्रिय हो सकती है जितनी ब्रज में। यह कुसुमाकर जी के इस संग्रह से पूर्णतः सिद्ध है।" कुसुमाञ्जलि में विभिन्न विषयों पर लिखे हुए ऐसे अनेक घनाक्षरी छन्द संगृहीत हैं। विषय वैविध्य की जानकारी के लिए कुछ छंदों के शीर्षक देना ही पर्याप्त हैं--बुद्ध, महावीर, दयानन्द, विवेकानन्द, श्रद्धानन्द, गाँधी, बोध रात्रि, स्वतन्त्रता-दिवस आदि। कुछ पद्य हास्य रस का उद्रेक करने में समर्थ हैं। उदाहरणार्थ विजया (भंग की प्रशंसा), ग्रामसिंह (कुत्ता), काव कीर्ति (कौए की प्रशंसा) साइकिल सुयश तथा मच्छर महिमा आदि। कुसुमाकर जी की खड़ी बोली में लिखी घनाक्षरियों ने तो उन्हें यश दिया ही है, यदा-कदा उन्होंने ब्रज भाषा में भी इस छन्द का प्रयोग किया है। वीर अभिमन्यु की अद्‌भुत वीरता का चित्र निम्न घनाक्षरी में साकार हो उठा है--

पारथ के पूत ने सँभारी असि ऐसी हाथ
संगर में शत्रुनि के सोनित सनी रही।
कूदि परयो जंग में लवा पै जनु छूटयो बाज,
चोट ज्यों गयंद पै मयन्द की ठनी रही।
टूटि-टूटि गरब पहार भये छार छार
भोंह वखिण्ड चण्ड ताप सी तनी रही।
द्रोन दल दीरथ के दन्त तोरिबे के काज
अन्त लौं हिए में वीर हौंस सी बनी रही।।

शतदल--इस काव्य संग्रह का प्रकाशन 1983 में हुआ। इस काव्य संग्रह में 21 शीर्षकों के अन्तर्गत 117 सवैये संगृहीत हैं। यद्यपि कवि की मातृभाषा ब्रज है किन्तु खड़ी बोली में इन सवैयों की रचना कर कवि ने सिद्ध कर दिया है कि ब्रजभाषा में सफलतापूर्वक लिखे जाने वाले वर्णिक छन्द खड़ी बोली में भी उतनी ही उत्कृष्टता से रचे जा सकते हैं। आलोच्य संग्रह में मत्तगयन्द, मदिरा, दुर्मिल, सुन्दरी आदि विविध

सवैये लिखे गए हैं। विषयों की विविधता उन शीर्षकों से जानी जा सकती है जिनके अन्तर्गत इन छंदों की रचना हुई है। यथा—अनुनय-विनय (प्रभु प्रार्थना), आत्म-अन्वेषण (जीवात्मा की परोक्षसत्ता), कवि से (कवि को उद्‌बोधन), युग बोध ऋतुदर्शन, प्रेम पीयूष, गाँधी गौरव, महर्षि महिमा, गौ गरिमा, गृहस्थ गौरव, ब्रज माधुरी आदि। परमात्मा की जीव से अत्यन्त समीपता के दार्शनिक मत को कुसुमाकर जी ने निम्न सवैयों में सफलतापूर्वक अंकित किया है—

दृग कज्जल सा वह पास रहे, तब कैसे उसे तुम दूर बताते।
जब बैठा हुआ मन मन्दिर में, मठ मन्दिर में किसे खोजने जाते।
वह साथी सदैव रमा हुआ है प्रिय मित्र को त्याग किसे अपनाते।
भजिए प्रभु के गुण गौरव को चलिए प्रिय प्रेम सुधा बरसाते।।

गो गौरव—भारतीय संस्कृति में गो महिमा को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। वेदों में गाय को अघन्या कह कर उसे अवध्य तथा अहिंसनीय कहा गया है। 'गो गौरव' में कवि की ऐसी ही रचनाओं का संग्रह है जो गाय के महत्त्व तथा गौरव की प्रतीक हैं। इस संग्रह के आरम्भ में कुछ परिचयात्मक पंक्तियाँ पत्रकार प्रवर पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की लेखनी से लिखी गई हैं। इनसे विदित होता है कि कुसुमाकरजी की कविता को स्व. गया प्रसाद शुक्ल सनेही से प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली जब कि स्व. डा. हरिशंकर शर्मा से उन्हें काव्य पथ का पथिक बनने में सतत सहयोग और मार्गदर्शन मिलता रहा। इस संग्रह के आरम्भ में कवि ने अथर्ववेद के दशम काण्ड के सप्तम सूक्त के चार मंत्रों का काव्यानुवाद किया है जो ब्रह्म के लिए भक्त का प्रणाम निवेदन करते हैं।

15. कृष्णसिंह बाहरठ (1849-1907)

चारण कुलोत्पन्न कृष्णसिंह बारहठ डिंगल भाषा के प्रसिद्ध कवि थे। उनका जन्म भूतपूर्व शाहपुरा रियासत (भीलवाड़ा जनपद) के अन्तर्गत देवपुरा ग्राम में 1849 ई. में सौदा गोत्र के अनाड़ जी के यहाँ हुआ। महाराणा सज्जनसिंह, (उदयपुर नरेश) के दरबार में वे सम्मानपूर्ण स्थान रखते थे। स्वामी दयानन्द के उदयपुर आगमन पर उनका युग पुरुष ऋषि से सम्पर्क हुआ और वे उनके भक्त बन गए इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं एक पद्य में इस प्रकार किया है—

तंह मिले मोहि ऋषि दयानन्द।
जो विद्या वारिधि अरु स्वच्छन्द।
जिन ज्ञान देय किय अमर चित्त।
पुनि दियहु सुविधा रूप वित्त।।

अर्थात्—वहाँ (उदयपुर में) मुझे ऋषि दयानन्द मिले जो विद्या के अगाध सागर तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र थे। उन्होंने मुझे ज्ञान देकर विद्या रूप द्रव्य का अधिकारी बना दिया।

स्वामी दयानन्द के निधन पर श्रद्धाञ्जलि रूप में उन्होंने जो कवित्त लिखा, वह उनकी काव्य प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है—

सार षट् शास्त्रन को निगम अधार नित्य,
पार परलोक है असार जग करि गयो।
पिशुनन को पाही कुटिल कुराही दाही,
सत्य को सदा ही साही नाक नेह धरि गयो।
कहे कृष्ण दयानन्द सुमति सुधामी नामी।
वामी क्रूर कामिन को काल रूप टरि गयो।
हाय हित आर्यन को बहि के प्रवाह बीच
आज वेदवारिधि को सेतु सो बिखरि गयो।।

अर्थात् जो ऋषि दयानन्द षट्शास्त्रों के सार का ज्ञाता तथा नित्य ज्ञान वेदों का आधार था, वह आज परलोक सिधार कर इस संसार को निराधार कर गया। वह पिशुन वृत्ति वालों (चुगलखोरों), कुटिल चाल वालों तथा कुमार्ग गामियों के लिए अग्नि के तुल्य दाहक था किन्तु वह सत्य का सदा सहायक था। वही ऋषि आज स्वर्ग से नेह लगा बैठा। सुबुद्धि का धनी, स्वनामधन्य दयानन्द वाममार्गी, क्रूर प्रकृतिवालों तथा कामी पुरुषों का काल था। आज वह स्वयं परलोक सिधार गया है। वेदरूपी समुद्र को पार करने के लिए जो सेतु तुल्य था, आज उसी सेतु के ध्वस्त हो जाने के कारण आर्य जाति का हित और कल्याण मानों जल प्रवाह के बीच बिखर गया। तत्कालीन भारत साम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा में बारहठ जी ने कुछ कवित्त लिखे थे।

16. आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन

कविता, निबन्ध, संस्मरण तथा समीक्षा-साहित्य की इन सभी विधाओं में समानरूप से अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने वाले आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का जन्म गाज़ियाबाद ज़िले के बाबूगढ़ गाँव में 16 सितम्बर 1916 में हुआ। यहीं पर प्रारम्भिक अध्ययन करने के पश्चात् वे गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रविष्ट हुए और 1937 में विद्याभास्कर की उपाधि प्राप्त की। अपने जीवन में सुमन जी मुख्यतः लेखक और पत्रकार ही रहे यद्यपि बीच-बीच में राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण वे सरकार के कोपभाजन भी बने। साहित्य अकादमी दिल्ली में उन्होंने उच्च पद पर कार्य किया तथा 1979 में वहाँ से अवकाश लिया। जीवन के अवशिष्ट वर्षों में वे ई. 1800 के बाद के हजारों दिवंगत हिन्दी सेवियों के जीवन एवं कृतित्व का संग्रह

करने में लगे तथा 'दिवंगत हिन्दी सेवा' शीर्षक वृहद् ग्रन्थ के दो खण्ड प्रकाशित किए। 23 अक्टूबर 1993 को उनका निधन हो गया।

सुम जी को काव्य साधना : सुमन जी के अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें प्रमुख हैं–मल्लिका, बंदी के गान, तथा कारा। उनके काव्य में प्रेम, विरह, रहस्य भावना, देश भक्ति, राष्ट्रीय जागरण, महापुरुषों का गौरव गान आदि अनेक विषयों को अभिव्यक्ति मिली है। देश के स्वाधीनता-संग्राम में सक्रिय भाग लेने वाले क्षेमचन्द्र सुमन के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे स्वदेश भक्ति तथा राष्ट्र-जागरण से जुड़ी कविता लिखते। 'कारा' उनका राजनैतिक खण्ड काव्य है जो इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें कवि ने स्वयं के राजनैतिक बंदी जीवन के अनुभवों को कविता में निबद्ध किया है। आजादी की लड़ाई के दौरान कवि को किन-किन कठिनाइयों से जूझना पड़ा, कैसी-कैसी आर्थिक कठिनाइयाँ उसके समक्ष आई, यह सब विस्तार से उनकी कविताओं में निरूपित हुआ है। खुद के जेल चले जाने पर उनके परिवार की तकलीफें बढ़ीं, इसका चित्रण देखें–

भूखे पेट यहाँ सोते है अरे कुटुम्बी प्राणी मेरे।
कौन समझ पाया कितने दुख नित इनको रहते हैं घेरे।।

इसलिए कवि कहता है–

पूछते हो ऐसी विषमता में व्यर्थ तुम भी।
वह ग़रीबी, देख जिसको काँप जाए क्रूरतम भी।।

तथापि कवि अविचलित भाव से अपनी जीवन नौका को खेता रहा–

किन्तु फिर भी खे रहा हूँ मस्त जीवन यान प्यारा।
कान दे सुन ले जगत, यों कर रहा है कवि गुजारा।।

क्षेमचन्द्र सुमन ने गोस्वामी तुलसीदास ऋषि दयानन्द एवं मैथिलीशरण गुप्त का गुणानुवाद करते हुए कुछ सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। आर्यसमाज स्थापना-शताब्दी के वर्ष (1975) में सुमन जी ने वन्दना के स्वर शीर्षक से हिन्दी के कुछ कवियों की स्वामी दयानन्द विषयक कविताओं का एक सुन्दर संकलन सम्पादित किया। इसमें उनकी कविता देव दयानन्द प्रकाशित हुई है।

17. पं. गणेशप्रसाद शर्मा

आर्यसमाज के प्रारम्भकालीन लेखकों तथा पत्रकारों में भारत सुदशा प्रवर्त्तक मासिक का दीर्घ काल तक सम्पादन करने वाले पं. गणेशप्रसाद शर्मा का नाम उल्लेख योग्य है। शर्मा जी का जन्म फर्रुखाबाद के एक औदीच्य ब्राह्मण परिवार में 1860 ई.

मे हुआ था। स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आने तथा उनके प्रवचन सुनने का अवसर उन्हें एकाधिक बार फर्रुखाबाद में ही मिला। कालान्तर मे वे आर्यसमाज फर्रुखाबाद के माध्यम से धर्म प्रचार तथा साहित्य सेवा करते रहे। उनका निधन मार्च 1932 ई. में हुआ।

शर्मा जी उत्कृष्ट लेखक तथा पत्रकार तो थे ही, उनमें काव्य रचना की मौलिक प्रतिभा भी थी। उन्होंने जिस युग में जन्म लिया था, वह हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु काल के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा कि हिन्दी काव्य की तत्कालीन प्रवृत्तियों को देखने से पता चलता है, उस युग के कवि रीतिकाल की शृंगारोन्मुखी प्रवृत्ति को त्याग कर सामयिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय जीवन से जुड़े हुए यथार्थ प्रसंगों को काव्य का विषय बना रहे थे। आर्यसमाज की उपासनागत विशिष्टताएँ पं. गणेशप्रसाद शर्मा के काव्य में दृष्टिगोचर होती हैं। उनकी कविताएँ भारत सुदशा प्रवर्त्तक में प्रकाशित होती थीं। जिस युग में शर्मा जी काव्य रचना कर रहे थे उस युग में खड़ी बोली काव्य की सामान्य भाषा के रूप में स्वीकृत नहीं हुई थी और ब्रजभाषा को ही प्रायः काव्य के माध्यम के रूप मे अपनाया जाता था। इनके काव्य में परमात्मा की निराकार उपासना को ही प्रभु प्राप्ति का साधन स्वीकार किया गया है। यत्र-तत्र मन को उद्‌बोधन, भक्ति द्वारा जीवन की सार्थकता, काल गति की अनिवार्यता जैसे विषय भी वर्णित हुए हैं। कवि ने मध्यकालीन भक्त कवियों द्वारा स्वीकृत पद शैली को ही अपनाया है। यत्र-तत्र पदों के गायन के लिए संगीत की रागों का भी संकेत दे दिया है।

पं. गणेप्रसाद शर्मा के भक्ति काव्य के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है। अगस्त 1893 के भारत सुदशा प्रवर्त्तक में राग विष्णुपद में लिखा गया उनका निम्नपद परमात्मा के अमित प्रभाव का उल्लेख करता है–

को कहि सके अमित प्रभुताई।
जीव जन्तु मानस बहुत जाती, जलथल नभचर कर समुदाई।
अगनित सृष्टि रची बहु भाँती, गिरिकानन सर सरित सुहाई।

तथा अन्त में–

भट गणेश स्वामी सुख सागर, बहुप्रताप महिमा अधिकाई।।

परमात्मा की अनन्त महिमा का बखान करता है।

मन की कुचालों को पहचान कर उसे चेतावनी देता हुआ कवि कहता है–

मन तुम अजहुँ न आए ठिकाने।
रन बन भटकि नारि तन अटके, सार नहिं कछु जाने।
जिन भोगन बहुबार नसाने तिन मंह फिरि लपटाने।।

कुल की मर्यादा तथा शरीर के स्वभाव को भी त्याग कर यह मन पुनः-पुनः विषयों की ओर उसी प्रकार भागता है, जैसे कामान्ध श्वान वासना प्रेरित होकर कुक्कुरियों का पीछा करता है–

तजि कुल कानि बान निज तन की पर घर नहिं सकुचाने।
जैसे स्वान उरछि स्वानी सन जग बिच नहिं भय माने।।

कवि के अनुसार यौवन रूपी गम्भीर सागर में डूबते हुए भी मनुष्य किंचित मात्र भयभीत नहीं होता, यही खेद की बात है–

यौवन जलधि गम्भीर रूपमंह बूडत नांहि डराने।
भट गणेश बल रूप गमायो फल पायो नहिं आने।।

पुनः काल की प्रबलता का वर्णन करते हुए कवि लिखता है–

काल नहिं टरत नेकहू बारी।
ऋषि मुनीश जोगी जन पंडित धीर वीर सुखकारी।
पशु पंछी जड़ चेतन जैसे क्या नर अरु क्या नारी ?
सब कह आपनि उदरदरी मँहडार पचावत तारी।।
यह जड़ ऊँच नीच नहिं देखत नहिं बालक अरु बूढ़ बिचारी।
अस निर्मोही निठुर निशाचर सब जग कहँ भयकारी।।
अम्बरीष बलि वेनु ययाती नहिं उमरे भये हारी।।

कवि की दृष्टि में भगवद्भजन के बिना जन्म निरर्थक है–

जनम अकारथ है जग माँही।
बिन हरि भजन सुजन सुख नाहीं।

पद के अन्त में कवि चेतावनी देता हुआ कहता है–

तन धन धाम मीत अरु नारी।
थिर नहिं रहहिं सो सम्पद सारी।।
नीच मीच कर डोलत भारी।
भज गणेश प्रभ पद सब ठाँही।।

परन्तु भक्त के हृदय में '..वान् की दयालुता तथा न्यायप्रियता का दृढ़ विश्वास भी है। इसी के आधार पर वह कह उठता है–

तज चिन्ता मन धर जन धीरज किमि गणेश कीन्हीं कदराई।

गर्भ विषय जेहि पालन कीन्हा तन उपजे सुन्दर पय दीन्हा।
सुख सागर नागर परवीना, लखि न परहिं ताकी चतुराई।।

प्रभु के अपार सामर्थ्य तथा उनकी पालक वृत्ति की घोषणा करता हुआ कवि कहता है–

प्रात समय नर उठहिं भुखारे।
अन्न देहिं प्रभु करहि सुखारे।
नहिं सोवहिं कोउ भूख के मारे।
जगपालक कर अस प्रभुताई।।

प्रभु के चरणों की शरण ग्रहण करने से ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, इस विश्वास को कवि ने निम्न पद में व्यक्त किया है–

भजरे जगदीश चरण जाते सुख होई।
तारन संसार बीच दूसरों न कोई।।
मानस तन पाय हाय तृष्णा लपटाई।
सब विहाय जाय शरण लीजिए सुखदाई।।

वह जानता है कि–

ध्यावत सुर नर मुनीश मान मद विहाई
पावत अपवर्ग भोग कह गणेश गाई।।

निश्चय ही कवि ने आर्यसमाज के भक्तिवाद को स्वकाव्य के द्वारा मनोरम अभिव्यक्ति प्रदान की है।

18. श्रीमती गायत्री देवी

ग्राम जलालपुर (जिला अलीगढ़) निवासिनी श्रीमती गायत्री देवी ने 'आदर्श त्यागी लक्ष्मण' शीर्षक एक खण्ड काव्य लिखा था जो 1970 वि. में प्रकाशित हुआ। इसकी पद्य संख्या 121 है। गायत्री देवी की कविता पर महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता का प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। 'वाचक प्रथम सर्वत्र ही जय जानकी जीवन कहो' गुप्त जी द्वारा लिखित भारत भारती के इस मंगलाचरण के ही अनुकरण पर गायत्री देवी ने ईश्वर वन्दना की है–

वाचक प्रथम सर्वेश की कर वन्दना आगे बढ़ो।
पुनि देश के सच्चरित वीरों की महत्ता को पढ़ो।
सोचो विचारो चित्त में सन्मार्ग पर निज पग धारो।
करना उचित जो कार्य हो सत चित्त से उसको करो।।

आलोच्य काव्य में कवयित्री ने भ्रातृप्रेम के आदर्श एव त्याग के प्रतीक रामानुज लक्ष्मण के उदात्त चरित्र का अंकन किया है। अपने चरित नायक के प्रति भावांजलि अर्पित करते हुए कवयित्री लिखती हैं–

जिसने तुम्हें दे जन्म पाला अंक में अनुराग से।
कृत कृत्य वह जननी हुई लक्ष्मण तुम्हारे त्याग से।
था भ्रात हित जीवन तुम्हारा भ्रात हित करते मरे।।
क्या विश्व में ऐसे अनुज अब पुनः होवेंगे हरे।।

द्विवेदी युग के चरित काव्यों में 'आदर्श त्यागी लक्ष्मण' एक विशिष्ट स्थान रखता है।

महाकवि मैथिलीशरण गुप्त रचित काव्य 'भारत भारती' अपने युग की एक अत्यन्त लोकप्रिय कृति थी। पराधीन राष्ट्र के नागरिकों को उद्बोधन देने में भारत भारती की भूमिका उल्लेखनीय मानी जाती है। निश्चय ही भारत भारती में हिन्दू जाति के गौरवपूर्ण अतीत का अत्यन्त ओजस्वी शब्दों में आख्यान करने के साथ-साथ उसकी वर्तमान दयनीय स्थिति का भी तथ्यरक विवरण प्रस्तुत किया गया है। कवि ने यदि भारतीय समाज के एक प्रमुख अंग हिन्दुओं की दीन, हीन एवं पराधीन स्थिति का मर्मवेधी अंकन किया है तो उनके भविष्य के प्रति भी वह निराश नहीं है। वह जानता है कि निश्चय ही एक दिन भारतवासी अपने विगत गौरव को पुनः प्राप्त करने में सफल होंगे। इसी आशावादी स्वर के साथ कवि ने भारत भारती को समाप्त किया था।

गुप्त जी की भारत भारती के ही अनुकरण पर श्रीमती गायत्री देवी ने कारुण्य भारती नामक एक काव्य की रचना की। इसकी प्रकाशन वर्ष 1977 वि. है। गुप्त जी की इस अमर पंक्ति 'यह पुण्यभूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी आर्य हैं' के ही अनुकरण पर कारुण्य भारती की लेखिका ने लिखा–

आर्यवर्त है जग प्रसिद्ध यह देश हमारा।
धन बल विद्या विभव पूर्ण था भारत प्यारा।
इसका कीरति भानु कभी विकसित था जग में।
यद्यपि सहसा अस्त हुआ उन्नति के मग में।।

"हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी" गुप्त जी के इस स्वर में स्वर मिलाकर गायत्री देवी लिखती हैं–

हम क्या से क्या हुए दैव क्या होंगे आगे।
सर्व जगत् जग गया हाय हम अबहुँ न जागे।।

कारुण्य भारती की भाषा व शैली में गुप्त जी की शैली का सा परिष्कार तो नही मिलता तथापि कवयित्री का युग-बोध प्रशंसनीय है।

19. पं. चमूपति

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. चमूपति (1893-1937) का जन्म वहावलपुर (पाकिस्तान) में हुआ था। प्रारम्भ में वे अपने राज्य के स्कूल में अध्यापक रहे, तत्पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की सेवा में आ गए। कालान्तर में इन्हें गुरुकुल कांगड़ी का आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता भी बनाया गया। वे लेखनी के धनी थे। हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी, तीनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। वे उच्चकोटि के कवि भी थे। पं. चमूपति की कविता में रहस्यवादी स्वर की प्रधानता है। क्या भाव और क्या भाषा प्रत्येक दृष्टि से इनकी कविता हिन्दी के उन रहस्यवादी कवियों की कृतियों के निकट है जो सृष्टि की विचित्र दृश्यावली के पीछे किसी अचिन्त्य तथा परोक्ष सत्ता के दर्शन करते हैं। तुलाधार (आर्य लाहौर के अक्टूबर 1933 के अंक में प्रकाशित) शीर्षक कविता में कुछ इसी प्रकार के भाव व्यक्त हुए हैं–

हे दिग्दिगन्त के तुलाधार।
किन पलड़ों में ये लोकधार,
तुम तोल रहे हो विश्वभार,
गरिमा अनन्त महिमा अपार,
हे दिग्दिगन्त के तुलाधार।

सामवेद के पावमान (सोम) पर्व की उन्होंने जो भावपूर्ण व्याख्या सोम सरोवर नामक ग्रन्थ में लिखी है उसमें भी कतिपय मंत्रों को काव्य रूप प्रदान किया है। इस प्रकार वैदिकदर्शन को पद्यबद्ध करने का यह एक अनुपम प्रयास है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

किस अमित ज्योति के अमित खण्ड
बन गए ग्रहोणग्रह प्रचण्ड।
धर फुलझड़ियों में तुलादण्ड
दिग्बालाएँ करतीं विहार। हे दिग् दिगन्त के तुलाधार।।

ऋषि दयानन्द के अनेक जीवन प्रसंगों को चमूपति ने काव्यबद्ध किया है। आर्य मासिक (लाहौर) के ऋष्यंक (फरवरी 1924) में उनकी निम्न कविता छपी थी–

ऋषि वर गंगा नीर नहाते।
बैठे भजन योग्य मद माते।

पुर जन देखें देख रिझाएँ।
उत्तम सीख सीख हर्षाएँ।
कल कल करती गंगा बहती।
ऋषि हँसते सुरसरि सुख लहती।।

मथुरा में दण्डी विरजानन्द की जिस कुटिया (अथवा पाठशाला) में रहकर स्वामी दयानन्द ने अध्ययन किया था, उसकी स्तुति करने में कवि अपने काव्य की सफलता मानता है। 'दण्डी की कुटिया' शीर्षक कविता में वास्तविक दयानन्द को जन्म देनेवाली इसी कुटी का स्तवन है–

जय जय ऋषि प्रसव सुहागिन
कुटि मुनि अनुरागिन, बड़भागिन।
किस शुभ दिन की स्मृति उर धारे
खड़ी वियोग-विकल वैरागिन ?
धर्म मेघ बन वे बरस रहे,
सरित स्नान की तू अनुरागिन।।

पं. चमूपति ने हिन्दी तथा उर्दू में समान रूप से लिखा है। वे सच्चे राष्ट्रवादी थे तथा देश के स्वाधीनता संग्राम में भी उन्होंने भाग लिया था। उनकी राष्ट्रीय कविताएँ प्रमुखतः उर्दू में मिलती हैं जिनके शीर्षक हैं–तिलक का मातम, चरखे का राग, महात्मा गाँधी का खैरमक़दम, वीर लाजपत, दुब्बे वतन, यादे वतन, तिलक की बरसी आदि। पं. चमूपति के उर्दू-हिन्दी काव्य के कुछ उल्लेखनीय अंश प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु ने विंचार वाटिका के द्वितीय खण्ड में सटिप्पण प्रकाशित किए हैं।

20. जेठमल सोढ़ा (युगराज कवि)

आर्यसमाज अजमेर के प्रारम्भिक काल के सभासदों में श्री जेठमल सोढ़ा का नाम उल्लेखनीय है। ये एक अच्छे कवि थे। जिस समय स्वामी दयानन्द विष प्रयोग के कारण जोधपुर में रुग्ण हो गए थे और नानाविध चिकित्सा कराने के पश्चात् भी लाभ नहीं हो रहा था, उस समय सोढ़ा जी किसी कार्यवश वहाँ पहुँचे और स्वामी जी की सेवा में उपस्थित होकर उन्हें अजमेर चलने का आग्रह किया। सोढ़ा जी डाक विभाग में साधारण कर्मचारी (डाकिया) का कार्य करते थे, किन्तु आर्यसमाज के प्रति अनन्य आस्थावान होने के कारण वे अपनी मातृ संस्था की सहायता अपनी शक्ति के बाहर जाकर भी करने के लिए तैयार रहते थे। जिस समय अजमेर में स्वामी दयानन्द के स्मारक रूप में दयानन्द आश्रम के भवन तथा आर्यसमाज अजमेर के मन्दिर का निर्माण हो रहा था, उस समय उन्होंने इस कार्य के लिए 100 रुपयों की सहायता प्रदान की। यह 100 रुपए उन्हें काव्य निर्माण हेतु पुरस्कार रूप में

प्राप्त हुए थे। सहायता की इस राशि को परोपकारिणी सभा के मन्त्री को भेंट करते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा–"मैं जोधपुर गया था। वहाँ मारवाड़ के श्री दरबार ने स्वामी जी महाराज का जीवन चरित (काव्यबद्ध) सुन कर मुझे सौ रुपए प्रदान किए। उनमें से 719 रुपए तो अजमेर समाज के मन्दिर बनाने में और 21 रुपए श्रीमद्दयानन्द आश्रम के चंदे में ज्यों का त्यों भेंट करता हूँ।"

सोढ़ा जी का यह पत्र सभा के चतुर्थ अधिवेशन में पढ़ा गया तथा सभा ने यह निश्चित किया कि जेठमल जैसे एक साधारण आर्य ने इस द्रव्य की कुछ भी लालसा न करके उसे अर्पण कर दिया है, अतएव उसकी सुख्याति की जावे।"[6] सोढ़ा जी को कवि कर्म जन्मजात सुलभ था। कविता में ये अपना नाम 'युगराज' रखते थे। स्वामी दयानन्द के निधन पर इन्होंने एक शोक गीतिका (Elegy) लिखी जो 'दिग्विजयी दयानन्द' नाम से प्रकाशित हुई।[7]

इस काव्य की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

कित गए मोह तजि हा भारत भ्रम नासी।
श्रीमद्दिग्विजयी दयानन्द संन्यासी।।

दोहा–

यजुर्भाष्य पूरण कियउ ऋग किय पौन प्रमान।
द्वादशांग व्याकरण सरल किय भूगोल हित जान।।
रहि साम अथर्वण वेद भाष्य की प्यासी।
श्रीमद्दिग्विजयी दयानन्द संन्यासी।

स्वामीजी के परलोक गमन मे नाना प्रकार के हेतुओं की ऊहात्मक कल्पना करते हुए कवि लिखता है–

काशी के पण्डित बाल शास्त्री नामी।
मत हार मान भये अन्य लोक के वासी।।
तिन प्रचलित किए पुराण को तहाँ स्वामी।
जिनके खण्डन हित बने आप अनुगामी।

शायद पं. बाल शास्त्री ने परलोक में जाकर पुराण मत का प्रचार आरम्भ किया है, अतः उसके खण्डन हेतु आपने भी इस लोक को प्रस्थान किया है अथवा–

या कोई सुर लोक में चली पौत्तलिक रीति।
जिसे जतावन के लिए धाये धर उर प्रीति।।

सम्भवतः देवलोक में भी मूर्तिपूजक का पाखण्ड प्रचलित हो गया है, उसे दूर करने

के लिए ही आप वहाँ पधारे हैं। जेठमल सोढ़ा ने परोपकारिणी सभा की स्थापना तथा उसके तृतीय अधिवेशन के उपलक्ष्य में भी सुन्दर काव्य रचना की थी। इसी प्रकार दयानन्द आश्रम के शिलान्यास पर भी उन्होंने अपने काव्यमय हृदयोद्गार प्रकट किए।

'युगराज विनय'[8] उनकी कविताओं का एक अन्य संग्रह है। इसमें ईश्वर-स्तवन और प्रार्थना के विभिन्न पद संगृहीत हैं। सोढ़ा जी राजस्थानी में भी काव्य रचना करने में समर्थ थे। अजमेर से प्रकाशित होने वाले स्थानीय आर्यसमाज के मुखपत्र 'देश हितैषी' में विभिन्न विषयों में सम्बन्धित उनकी अनेक कविताएँ प्रकाशित हुई। विविध छन्दों में काव्य रचना करने में उन्हें दक्षता प्राप्त थी। श्रावण 1939 के देश हितैषी के अंक में उनकी 'प्रार्थना' शीर्षक कविता लावनी (चाल खड़ी), शैली में प्रकाशित हुई। 'सर्व जन सुख की वृद्धि' शीर्षक उनकी एक अन्य कविता आश्विन 1939 के देश हितैषी में छपी है जिसमें दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय और सवैया छन्द प्रयुक्त हुए हैं। 'गो पुकार' शीर्षक एक अन्य कविता गोवध के कारण होने वाली हानियों का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। यह खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा में लिखी गई है। कुछ पंक्तियाँ उदाहरण रूप में प्रस्तुत है-

> वर्षा ऋतु में गऊ पुकारे। तुम बिन को प्रभु कष्ट निवारे।
> प्रफुलित हरित मही भई हम हित। मन वांछित उपजे तृण स्वादित।
> उपडे डाबर सर सरिसारे। तोऊ हमें जितलित भय भारे।।
> प्रभु सिरजे हम हित सुख नाना। हम नित करत जात कल्याना।
> पर गल कटत हमेश हमारे या अवसर को प्राण उबारे।

माघ 1939 के अंक में प्रकाशित 'अविद्या विलाप' आत्मकथात्मक शैली की कविता है। इसमें कवि ने कल्पना की है कि दयानन्द रूपी दिनकर के उदय हो जाने से भारत में अविद्या का रहना कठिन हो गया है।

21. जोरावरसिंह सिंह कवि

मथुरा जिले के बरसाना ग्राम में जन्म लेने वाले कुं. जोरावरसिंह आर्यसमान के सुप्रसिद्ध प्रचारक थे। इन्होंने स्वदेश तथा विदेशों में सर्वत्र धर्मप्रचार किया है। सिंह कवि के एक काव्य-संग्रह रणभेरी (प्रथम भाग) का प्रकाशन 2012 वि. में हुआ। कवि द्वारा लिखित भूमिका के अनुसार इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ वीररस की हैं। युद्ध प्रयाण गीत भी काव्य की एक पृथक् विधा है। जयशंकर प्रसाद का निम्न प्रयाण गीत कितना उत्साहजनक, बोधप्रद तथा देश के अतीत गौरव का आख्यान करने वाला है, इसे सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढ़े चलो बढ़े चलो।। (चन्द्रगुप्त)

रणभेरी में भी कवि ने कुछ इसी प्रकार के प्रयाणगीत लिखे हैं। ये गीत युवा पीढ़ी के लिए तो प्रेरणादायी हैं ही, देश तथा समाज के लिए त्याग और बलिदान की भावना भी इनमें सर्वत्र भरी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

जो न किसी से रुकने वाली।
जिसने खुद निज राह निकाली।
बन सरिता की गति मतवाली।
अपना मार्ग बनाता चल तू
आगे पैर बढ़ाता चल तू।।

इस श्रेणी के अन्य गीत हैं–

बिना किए विश्राम निरन्तर चले चलो।
देश के बहादुरों बढ़े चलो बढ़े चलो। आदि।।

सिंह कवि की धारणा है कि "किसी भी प्रजा में प्रचलित गीतों से आप उस प्रजा के झुकाव का सहज ही में पता लगा सकते हैं। अपने कर्तव्यो को भूल कर विलासिता में डूबी हुई प्रजायें प्रेमी व प्रेमिका के विरह मिलन से ही राग मिलाया करती हैं तथा वीर जागरूक व उत्थानोन्मुखी प्रजाओं के लोग उच्च आदर्शो युक्त जोशीले गीत गाते हुए देखे जाते हैं। परन्तु प्रजाओं की किसी भी प्रवाह में प्रवाहित कर देने वाले होते हैं उस देश के कवि। कवि को दूसरा विधाता माना गया है जो अपनी कविताओं द्वारा उस देश की प्रजा की विचारधारा की रचना करता है।" इसी धारणा को रखने वाले सिंह कवि ने 'कवि से' शीर्षक गीत में कवि को सम्बोधन कर उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराया है। उसकी मान्यता है कि कवि को प्रणय के स्थान पर क्रान्ति का गीत गाना चाहिए। महाकवि रामधारीसिंह दिनकर ने भी अपनी 'कस्मैदेवाय' शीर्षक कविता में कवि को क्रान्ति का आवाहन करने के लिए कहा था और पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तो स्पष्ट कहते हैं–

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आए,
एक हिलोर उधर से आए।।

सिंह कवि की 'कवि से' शीर्षक कविता भी कुछ ऐसा ही उद्‌बोधन देती है–

कवि ऐसा गीत सुना दे।
जो सबको वीर बना दे।
होके सावधान आज, गाओ दीप राग कवि,
बुझा हुआ दीप फिर, देश का जलाया जाय।
सूखे जीवनों में करे–जीवन संचार नया,
मेघ राग गाके ऐसा मेह बरसाया जाय।।

इनकी एक अन्य काव्यकृति 'देश भक्त प्रताप' 2018 वि. में प्रकाशित हुई। द्विवेदीकाल के कवियों ने भारतीय इतिहास के मध्यकाल के शूरवीर देशभक्तों की गौरव एवं त्यागपूर्ण गाथाओं का प्रायः गुणानुवाद किया था। पं. श्यामनारायण पाण्डेय का 'हल्दीघाटी' महाकाव्य इसी कोटि की कृति है। सिंह कवि ने आलोच्य काव्य में मेवाड़ की स्वाधीनता के मंत्र द्रष्टा महाराणा की यशोगाथा को पद्यबद्ध किया है। महाराणा के जीवन के कुछ पहलुओं को उजागर करने वाले प्रसंगों का निबंधन इस काव्य की विशेषता है। हल्दी घाटी की इतिहास प्रसिद्ध रणभूति का भावस्फूर्त वर्णन इस काव्य का एक मार्मिक स्थल है।

है यह वही हल्दी घाटी।
जहाँ महाराणा प्रताप ने स्वतंत्रता का यज्ञ रचा।
जहाँ विदेशी अत्याचारी मुगलों से संग्राम मचा।
मुट्ठी भर मेवाड़ी सेना जहाँ जान पर खेल अड़ी।
मुगलों और रजपूतों के टिड्डीदल के साथ-साथ लड़ी।
है यह वही हल्दीघाटी।

और भी,

है पीला कर चुकी शत्रु को कभी जहाँ की पीली माटी।
और बनाये रखी तप बलिदान वीरता की परिपाटी।
गाजर मूली सी अरि सेना जहाँ राजपूतों ने काटी।
मिट्टी से जो नहीं, गई है लाशों और रक्त से पाटी।
है यह वही हल्दीघाटी।

कुं. जोरावरसिंह को विशेष ख्याति उनकी रचना 'पाकिस्तान-पच्चीसी' के कारण मिली। हिन्दी में पद्यों की संख्या का संकेत देने वाले शतक, बावनी हजारा, सतसई आदि काव्य विधाओं का पर्याप्त प्रचलन रहा है। पाकिस्तान पच्चीसी में कवि ने 25 पद्य लिखे हैं। पाकिस्तान निर्माण के पूर्व भारत के राजनैतिक क्षितिज पर जो

हलचल मची उसका उल्लेख इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हो चुका है। सभी देश भक्त व्यक्तियों और राजनैतिक दलों ने देश विभाजन का विरोध किया था, किन्तु देश को बाँटकर लँगड़ा स्वराज्य भारतीयों के हवाले कर देने की अंग्रेजी कूटनीति तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता से उत्पन्न हिंसा और द्वेष को सीमातीत अवस्था तक ले जाने वाली मुस्लिम लीग की षड्यन्त्रपूर्ण चालों के परिणामस्वरूप देश के टुकड़े होकर ही रहे। आलोच्यकृति का निर्माण कवि ने देश विभाजन के दिनों में ही किया था। इस लम्बी कविता को कवि ने देश के विभिन्न स्थानों पर सार्वजनिक मंचों से गाया और उसकी श्रोतृ मण्डली में जहाँ जन साधारण रहते थे वहॉ अपने समाज के प्रबुद्धनेता तथा हिन्दुओं के राजनैतिक हितों के संरक्षक हिन्दू महासभाई नेता भी होते थे। वीर सावरकर, डॉ. श्याम प्रसाद मुखर्जी, डा.बी.एस. मुंजे, एल.बी. खोपटकर, बाबा साहब खापडे आदि हिन्दू महासभाई नेताओं तथा महाशय कृष्ण, राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री, कुं. चांदकरण शारदा, महात्मा खुशहालचन्द्र (आनन्द स्वामी) आदि आर्यसमाजी नेताओं ने इस ओजस्वी काव्य को स्वयं कवि से सुनकर उसकी भूयसी प्रशंसा की थी। पाकिस्तान पच्चीसी की लोकप्रियता का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है कि हिन्दी में लिखी इस कविता के उर्दू. मराठी, गुज़राती तथा असमिया लिपियों में विभिन्न संस्करण निकले और स्वल्पकाल में ही इनकी 50 हजार प्रतियाँ छप गई। जैसे लोकप्रिय फिल्मी गीत शीघ्र ही जनता का कण्ठहार बन जाता है उसी प्रकार पाकिस्तान पच्चीसी के पद्यों को भी अनायस ही लोकप्रियता मिल गई।

आलोच्य कविता की गेयता ही उसका प्रमुख गुण है। इसके प्रत्येक पद्य में कवि द्वारा भारत के विगत गौरवपूर्ण अतीत की किसी न किसी भव्य झाँकी को प्रस्तुत किया गया है। पच्चीसी का आरम्भ इस पद्य से होता है–

आर्यावर्त स्वदेश हमारा मानव का आदिम संस्थान।
हम हैं उसके मूल निवासी आर्य पूर्वजों की सन्तान।
आदि सृष्टि में दिया हमें ही प्रभु ने पावन वैदिक ज्ञान।
और हमारी छाया में ही पाया जगने जीवन दल।
किसी भी तरह भी हम अपना खो सकते वो सम्मान नहीं।
अखण्ड हिन्दुस्तान कभी बन सकता पाकिस्तान नहीं।।

अवशिष्ट पद्यों में कृष्ण, महावीर, बुद्ध, चन्द्रगुप्त, अशोक, प्रताप, शिवाजी, बंदा वैरागी, लक्ष्मीबाई, हकीकत राय, दयानन्द, श्रद्धानन्द आदि लोकपूज्य महापुरुषों के महत्त्वपूर्ण कार्यो तथा देशहित के लिए किए गए उनके बलिदानों का वर्णन किया गया है। कवि तो जनजागरण का वैतालिक होता है। देशहित के लिए नागरिकों को कर्तव्य प्रेरित करना तथा आने वाले संघर्ष के लिए उन्हें सन्नद्ध करने की प्रेरणा

देना ही उसका प्रमुख लक्ष्य रहता है। राजनैतिक दुरभिसन्धियों के परिणामस्वरूप पाकिस्तान जब एक जीते जागते तथा के रूप में भारतीय उपद्वीप के मानचित्र पर आकार ग्रहण कर चुका तब भी कवि ने अपने आशावादी स्वर को नहीं छोड़ा। अब उसने पाकिस्तान-पच्चीसी को अखण्ड भारत पच्चीसी के नाम से संशोधित कर प्रकाशित किया। निश्चय ही सिंह कवि के काव्य में वीर भावनाएँ साकार हुई हैं तथा समसामयिक प्रश्नों को उन्होंने अपने काव्य में मुखरित किया है।

22. देवनारायण भारद्वाज

सुकवि भारद्वाज का जन्म शाहजहाँपुर जिले के ग्राम कील्हापुर में श्रावण शुक्ला 5 सं. 1994 वि. (1937) को श्री प्रभुदयाल भारद्वाज के यहाँ हुआ। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से कृषि में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की तथा गोविन्द वल्लभ पन्त कृषि विश्वविद्यालय से मृदा विज्ञान में विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त किया। उत्तर प्रदेश के कृषि विभाग में कार्य करने के उपरान्त अब वे सेवा निवृत्त हो चुके हैं। भारद्वाज जी विगत अनेक वर्षों से काव्य रचना में संलग्न हैं और अब तक उनकी निम्न काव्य कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं—श्रुतिशाला (1986), बिन्दुबिन्दुबोध (1988), बोधयामिनी (1990) तथा ज्योति के फूल 160 पद्यों में समाप्त 'श्रुतिशाला' का प्रकाशन महर्षि सन्देश मासिक (गाजियाबाद) के विशेषांक के रूप में हुआ। हरिवंशराय बच्चन की प्रसिद्ध रचना मधुशाला की शैली पर लिखी गई श्रुतिशाला वेदोक्त दार्शनिक सिद्धान्तों, तथा आर्य जाति के धार्मिक-सामाजिक मन्तव्यों को काव्य रूप में प्रस्तुत करती है। ध्यातव्य है कि बच्चन की मधुशाला में प्रतीक रूप में आए हाला, प्याला, मधुशाला तथा मधुबाला जैसे अनेक शब्दों को कतिपय लोगों ने शराब तथा तत्सम्बन्धी पदार्थों का वाचक समझ लिया था। फलतः अनेक कवियों ने उसके प्रतिवाद रूप में अपनी पवित्रतावादी दृष्टि को उजागर करते हुए उसी छंद और शैली में कुछ उपदेशात्मक रचनाएँ लिखी थीं। भारद्वाज की श्रुतिशाला को भी इसी कोटि का काव्य समझना चाहिए।

सृष्टि की रचना प्रक्रिया को श्रुतिशाला का कवि निम्न पद्य में प्रस्तुत करता है—

> पूर्व सृष्टि के प्रलयकाल में केवल होत तम तोम कराला।
> आकाश मध्य परमाणु प्रकृति बस पुरुष ईश रहने वाला।
> आकाश वायु फिर अग्नि तोम पृथिवी औषधि फिर अन्न तोय।
> वीर्य रचे फिर देह जीव की सतसृष्टि सृजत यों श्रुतिशाला।।

जीव और ईश्वर की स्थिति तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना निम्न पद्य में दृष्टिगोचर होती है—

परमात्मा आत्मा में स्थित है पर उससे है भिन्न निराला।
मूढ़ आत्मा नहीं जानता प्रभु मुझमें है व्यापक आला।
रहे जीव जैसे शरीर में वैसे जीवों में ईश रहे।
प्रभु पाप पुण्य का द्रष्टा है, दे जीव कर्म फल श्रुतिशाला।।

2045 वि. में प्रकाशित 'बिन्दु बिन्दु बोध' में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय के पद्यात्मक विवेचन के साथ कुछ वेदमन्त्रों के भावार्थ भी काव्य बद्ध किए गए हैं।

मधुवाता कतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।

माध्वीर्नः सन्नवोष धी।। ऋग्वेद-1।90।6 को कवि ने इस प्रकार काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी है–

माधुर्य मोद संचार करें।
माधुर्य युक्त व्यवहार करें।
वायु मधुरता लाती है, सरिता रस मधुर मिलाती है।
प्रिय प्रकृति मधुर वर्षा करती जो जीवन ज्योति जगाती है।

इस सग्रह में कवि ने कहीं कहीं तो शास्त्रीय उक्तियों को ही काव्य सूक्ति का रूप दे दिया है। मनु के 'अभिवादन शीलस्य'[9] तथा 'न तेन वृद्धो भवति'[10] इन श्लोकों को निम्न रूप में पेश किया है–

जो है अभिवादन शील मनुज, सेवा वृद्धों की करता है।
हो आयु ज्ञान यश का भागी, वैभव उसका बढ़ता है।।

तथा

श्वेत केश के होने से कोई तो वृद्ध नहीं होता।
हो भले युवा विद्वान् हुआ, देवोपम वृद्ध वही होता।।

'बोधयामिनी' में कवि ने भारत के कुछ इतिहास-पुरुषों से जुड़े प्रेरणादायी प्रसंगों को पद्यबद्ध किया है। इनमें ऋषि दधीचि, महाराजा भोज, महाराजा छत्रसाल, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा पं. गुरुदत्त विद्यार्थी आदि प्राचीन एवं अर्वाचीन पुरुषों के आदर्श जीवन प्रसंग चर्चित हुए हैं। भारद्वाज जी की काव्य यात्रा अभी जारी है।

23. पं. धर्मवीर कुमार शास्त्री

सुकवि धर्मवीर कुमार शास्त्री का जन्म 27 जुलाई 1826 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले के एक ग्राम में हुआ। उनका अध्ययन गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में हुआ। वे शिक्षक रहे तथा सेवा से अवकाश लेने के पश्चात् अपना समय साहित्य प्रणयन में व्यतीत किया। उनके द्वारा रचित जय बांगला, पथ की खोज, त्रेता के प्रवासी, ऊर्जा के स्वर तथा शतपर्णा शीर्षक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

ऋषि दयानन्द और आर्य समाज की सुधारवादी तथा राष्ट्रीयता से ओतप्रोत विचारधारा से प्रभावित कवि 'कुमार' की कविता में राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक उत्थान तथा सामाजिक चेतना के स्वर प्रमुख रूप से उभरे हैं। भारत की चिर पुरातन संस्कृति में उनकी अनन्य निष्ठा है। इस सांस्कृतिक गंगा की अविरल अप्रतिहत धारा को उन्होंने निम्न कविता में व्यक्त किया है–

मैं संस्कृति गंगा सी अमन्द बहती हूँ।
आते हैं पथ में शैल गर्त भी गहरे,
पर निमिष न मेरे चरण कहीं भी ठहरे।
मुझे को आता पाषाणों से टकराना,
निज अशनि साध से उनको रेणु बनाना।
चल रहे प्रभंजन के मतवाले झोंके,
कवलित कर पाई नहीं काल की हुंकृति।
हूँ मृदु प्रसून सी, लौह सुदृढ़ भी संस्कृति।।

कवि ने देश भक्ति पूर्ण गीत प्रचुर संख्या में लिखे हैं। प्यारा भारत देश, हे मातृभूमि, जय-मातृभूमि, आदि शीर्षकों की कविताएँ कवि के स्वदेश-प्रेम की स्वच्छ अभिव्यक्ति हैं। शतपर्ण काव्य संग्रह की आरम्भिक 27 कवितायें ऋषि रमानन्द के जीवन का क्रमबद्ध चित्रण करती हैं उनके विभिन्न जीवन प्रसंगों को भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत मनोज्ञ शैली में प्रस्तुत करने में कवि को प्रर्याप्त सफलता मिली है। 1869 का 'काशीशास्त्रार्थ' ऋषि दयानन्द की कार्य योजना को नई दिशा देने में मील के पत्थर के तुल्य था। इस शास्त्र चर्चा में उस एकाकी अवधूत ने काशी के पं. ताराचरण तर्करत्न स्वामी विशुद्धानन्द तथा पं. बाल शास्त्री जैसे विद्वानों को अपनी युक्ति प्रवणता शास्त्रदर्शिता तथा वाक् चातुरी से अवाक् कर दिया था। कवि ने इस रोचक प्रसंग को अत्यन्त विदग्धतापूर्वक चित्रित किया है। एक उदाहरण देखें–

ताराचरण नामक नैयायिक काशी का विख्यात।
सबसे पहले भिड़ा समर में स्वामी जी के साथ।
दे न सका वह प्रतिमार्चन पर कुछ भी वेद प्रयाण।

नैया डुबा हुआ चुप दम्भी नैयायिक विद्वान्।
मन में ब्रह्मबुद्धि का लेकर शास्त्रोदित आधार।
बढ़े विशुद्धानन्द मुनीश्वर से भिड़ने इस बार।।

कवि ने मूलशंकर के गृह त्याग को राजकुमार सिद्धार्थ के महाभिनिष्करण की उपमा दी है–

दुख का मूल ध्वस्त कर, करने मानवजीवन कृतार्थ।
स्वेच्छा से बन गया रंक था एक और सिद्धार्थ।।

प्रज्ञाचक्षु दण्डी विरजानन्द की सेवा में उपस्थित होकर अंध संन्यासी से प्रज्ञा के नेत्रों की याचना एक अद्भुत दृश्य उपस्थित करती है–

अहो अंध से माँग रहा था आँखों वाला आँख।
बिना एक ज्ञानाक्षि व्यर्थ है बाहर वाली लाख।।

अतुकान्त छंदों में कुछ सुन्दर कविताएँ लिखकर कवि ने इस शैली का भी सफल प्रयोग किया है। 'यूक्लिप्टिस के महातरु' को सम्बोधित कर वह लिखता है–

सीधा
सपाट
नभचुम्बी
यूक्लिप्टिस का महातरु
उन्नत आकांक्षाओं का प्रतीक
निस्संग निर्विकार
उद्यान के विजन का
सहज शृंगार
खड़ा है
एकान्त साधक की भाँति।

देशवासियों को उद्बोधन देने वाली कविताएँ लिखकर कवि ने यह सिद्ध कर दिया है कि समष्टि चेतना को जाग्रत करने में कविता का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण होता है। 'चलो कुछ कदम' 'जागे राष्ट्र हमारा' 'तस्वीर बनाई तुमने' शीर्षक कविताएँ इसी कोटि की हैं।

'व्यामोह और उसका निराकरण' शीर्षक कविता में कवि ने गीता के अर्जुन विषाद के प्रसंग को काव्यमयी अभिव्यक्ति दी है 'क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ (2/3)

गीता में कृष्ण की इस उत्साह प्रदान करने वाली उक्ति का भाव कवि ने किस प्रकार व्यक्त किया है, यह देखें–

> कार्यकाल में तुम्हें पार्थ ! वैराग्य सुहाया।
> यह अनार्य अस्वर्ग्य भाव कैसे उग आया।
> कठि समय में कायरता का भाव न लाओ।
> उचित किसी भी तरह क्लीवता तनिक बताओ।।

'सरमा सुत' जैसी कविताओं में कवि ने हास्य और व्यंग्य के माध्यम से मानव जीवन की कुछ विडम्बनाओं को उजागर किया है।

> हे सेवक धर्म के आचार्य
> क्या ये तुम्हारे ही संस्कार
> उनमें संक्रमित नहीं हुए ?
> तुम रोटी के टुकड़ों पर
> गली मोहल्ले की पहरेदारी करते हो
> और वे तुम्हारे मानस पुत्र
> इने गिने रजत खण्डों पर
> अपने स्वामी की सारहीन सराहना में
> जय शब्द की अनवरत परम्परा से
> दिगंगनाओं के कान फोड़ डालते हैं।

24. महाकवि नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर'

हिन्दी के रससिद्ध कवि पं. नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' की विचारधारा महर्षि दयानन्द तथा उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज से पूर्णतया अनुप्राणित थी। यही कारण है कि महर्षि के विचारों से विरोध रखने वाले अनेक मत्सर ग्रस्त आलोचकों ने तो उनकी कविता को रस शून्य, रूक्ष तथा उपदेशात्मक कहकर साहित्य के इतिहास में उसकी प्रायः उपेक्षा ही की। किन्तु निष्पक्ष साहित्य विवेचकों ने शंकर की कविता को सहृदयता की कसौटी पर खरा पाया तथा उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। हिन्दी के विख्यात समालोचक डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में "कवि शंकर भारतेन्दु युग की छाया में अपना साहित्यिक जीवन आरम्भ करते हैं, द्विवेदी युग में उनका विकास होता है, छायावाद के अभ्युदयकाल में वे निराला के वरिष्ठ सहयोगी के रूप में दिखाई देते हैं। आर्यसमाज के प्रसार के साथ जिस तार्किक विवेकशीलता ने बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया, उसके वे प्रतिनिधि कवि हैं। सामाजिक रूढ़ियों के विरोध के साथ नवीन देश भक्ति की भावना उनके काव्य में प्रतिबिम्बित हुई है। व्यंग्य के

अस्त्र का उपयोग उन्होंने बड़े कारगर ढंग से किया है। नागरिक परिष्कार की चिन्ता न करके वे अपनी रचनाओं को लोक-संस्कृति के बहुत नज़दीक रखते हैं।"

शंकर के काव्य का वास्तव में यही आकलन सही तथा तथ्यपरक है। उससे पाठकों का मनोरंजन, उनकी भावनाओं का परिष्कार तथा रसोपलब्धि तो होती ही है, वह 'कान्तासम्मित उपदेश' भी प्रदान करता है जो काव्य का परम प्रयोजन माना गया है। शंकर जी का जन्म चैत्र शुक्ला पंचमी सं. 1916 वि. को अलीगढ़ जिले के हरदुआगंज नामक कस्बे में पं. रूपराम शर्मा के यहाँ हुआ। स्वामी दयानन्द के व्याख्यान सुनने का प्रत्यक्ष अवसर उन्हें कानपुर में मिला। वे स्वामी जी के विचारों से प्रभावित हुए और उनके अनुयायी बन गए। वार्तालाप के प्रसंग में शंकर जी कहा करते थे कि उनके जीवन का प्रथम फल यह है कि युग पुरुष महर्षि दयानन्द के दर्शनों का लाभ उन्हें मिला। अपने जीवन की दूसरी उपलब्धि वे स्वयं की काव्य रचनाशक्ति को मानते थे। समकालीन कवियों, लेखकों तथा समीक्षा कर्मियों से उनका निकट का सम्बन्ध था। डॉ. ग्रियर्सन जैसे प्रख्यात् भाषाविद् को शंकर जी की कविताएँ पढ़कर अपनी यह सम्मति बदलनी पड़ी थी कि खड़ी बोली में सरस काव्य रचना सम्भव नहीं है। उनका प्रथम काव्य संग्रह अनुराग रत्न था जिसे उन्होंने तुलात्मक समीक्षा के पुरस्कर्ता पं. पद्मसिंह शर्मा को समर्पित किया था।

शंकर के काव्य में शृंगार, शान्त, हास्य आदि विभिन्न रसों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से वे सरस्वती में प्रकाशित होने वाले राजा रविवर्मा के विश्व प्रसिद्ध चित्रों का काव्यमय परिचय दिया करते थे। इसी प्रसंग में उनकी कुछ अत्यन्त सुन्दर कविताएँ प्रकाशित हुई थीं। मृच्छकटिक की नायिका सुन्दरी वसन्तसेना की माँग कर वर्णन कवि ने सन्देहालंकार की लड़ी में उपमानों के मोतियों को पिरोकर जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त मनमोहक है—

> कज्जल के कूट पर दीपशिखा सोती है कि,
> श्याम घन मण्डल में दामिनी की धारा है।
> यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि,
> राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है।
> शंकर कसौटी पर कंचन की लीक है कि
> तेज में तिमिर के हिये में तीर मारा है।
> काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि
> ढाल पर खांडा कामदेव का दुधारा है।

शंकर के काव्य में आर्यसमाज की दार्शनिक तथा सामाजिक विचारधारा सर्वत्र प्रतिबिम्बित हुई है। वे जीव और ईश्वर के भेद को स्वीकार करते हुए लिखते हैं—

शकर स्वामी और है सेवक शंकर और।
भेद भावना में भरें नाम रूप सब ठौर।।

अनुराग रत्न की कविताओं के बीच-बीच में जो दोहे कवि ने लिखे हैं वे वैदिक ईश्वरवाद के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन करते हैं। वैदिक ज्ञान ईश्वर प्रोक्त है, इसे निम्न दोहे में देखा जा सकता है–

ज्ञान गम्य सर्वज्ञ है शंकर तुही स्वतन्त्र।
तेरे ही उपदेश हैं विश्रुत वैदिक मंत्र।।

संसार की समस्त चेष्टाएँ परमात्मा से ही प्रेरित हैं–

तेरी शुभ सत्ता बिना हे प्रभु मंगल मूल।
पत्ता भी हिलता नहीं खिलता कहीं न फूल।।

परमात्मा एक है किन्तु उसके नाम अनेक हैं–

शंकर स्वामी के सुने शंकर नाम अनेक।
मुख्य सर्वतोभद्र है मंगलमय ओमेक।।

योगदर्शन में ओम् (प्रणव) के जय का जो महत्त्व बताया गया, उसे कवि ने इस प्रकार निर्दिष्ट किया–

मुख्य नाम है ईश का ओमनुभूत प्रसिद्ध।
योगी जपते हैं सदा सुनते हैं सब सिद्ध।।

आगे चल कर शंकर ने 'महेश नामावली' शीर्षक से परमात्मा के अनेक नामों की चर्चा इस प्रकार की–

भज भगवान के हैं मंगलमूल नाम ये सारे।
ओम द्वैत अनादि अजन्मा ईश असीम असग।
एक अखण्ड अर्यमा अत्ता अखिलाधार अनंग।
सत्य सच्चिदानन्द स्वयंभू सद्गुण ज्ञान गणेश।
सिद्धोपास्य सनातन स्वामी मायिक मुक्त महेश।।

आर्य समाज ने जिस सनातन वैदिक धर्म को मनुष्य का नैसर्गिक धर्म माना है, उसका वर्णन कवि निम्न प्रकार से करता है–

शुभ सत्य सनातन धर्म वही जिसमें मत पन्थ अनेक नहीं।
बल वर्धक वेद वही जिसमें उपदेश अनर्थक एक नहीं।

अविकल्प समाधि वही जिसमें सुख संकट का व्यतिरेक नहीं।
कवि शंकर बुद्ध विशुद्ध वही जिसके मन में अविवेक नहीं।।

इसी पावन वैदिक धर्म के विश्वव्यापी प्रचार की कामना करते हुए कवि ने उस प्रसिद्ध सवैये की रचना की जो कालान्तर में अनेक गायकों का कण्ठहार बन गया था—

द्विज वेद पढ़ें सुविचार बढ़ें बल पाय चढ़ें सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहें ऋजु पन्थ गहें परिवार कहें वसुधा भर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता कर दे कविता कवि शंकर को।।

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य पालन पर सर्वाधिक जोर दिया था। वे स्वयं भी आदित्य ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य के महत्त्व का वर्णन करते हुए शंकर ने परशुराम, हनुमान, भीष्म तथा स्वामी दयानन्द की प्रशंसा की है। अखण्ड ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द के विषय में वे लिखते हैं—

विज्ञान पाठ वेद पढ़ों को पढ़ा गया।
विद्या विलास विज्ञवरों का बढ़ा गया।
सारे असार पन्थ मतों को हिला गया।
आनन्द सुधा सार दया कर पिला गया।
अब कौन दयानन्द यती के समान है।
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान है।।

अपने आचार्य तथा पथ दर्शक ऋषि दयानन्द की प्रशसा में शंकर ने अनेक उत्कृष्ट पद्यों की रचना की है। उनका निम्न छप्पय अत्यन्त प्रसिद्ध है—

जो न हटा मुख फेर बढ़ा जीवन भर आगे।
जिसका साहस देख विघ्न भय संकट भागे।
सत्य सुभट की हार अनृत की जीत न होगी।
ऐसे अटल विचार सहित विचरा जो योगी।
उस दयानन्द मुनिराज का प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभुशंकर आर्यसमाज का वैदिक बल गौरव बढ़े।।

आर्यसमाज की स्थापना के पूर्व देश की दुर्दशा का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया—

ऊँचे पद से गिरा गौरव रहा न सग।
प्यारे भारतवर्ष का हाय हुआ रस भंग।।

वैदिक धर्म का त्याग ही आर्यावर्त की दुर्गति का कारण बना—

> शंकर से न्यारे रहे वैदिक धर्म विसार।
> होडा होडी हम गिरे पाप प्रमाद प्रसार।।

आर्यसमाज ने धर्म के नाम पर प्रचलित पाखण्डों का तीव्र खण्डन किया था। शंकर की कविता भी इस प्रकार के सभी आडम्बरों, मिथ्या विश्वासों तथा कुप्रथाओं पर तीव्र प्रहार करती है। ब्राह्मणों की दानग्रहण वृत्ति भिखमंगेपन का निकृष्ट रूप धारण कर चुकी है। बालक के जन्म से लेकर मनुष्य की मृत्यु तक पालन की जाने वाली रस्मों और रिवाजों में ब्राह्मण भोजन का प्रावधान रहता है। द्विज वर्ग की इसी भुक्खड़ वृत्ति पर कटाक्ष करते हुए कवि ने लिखा—

> जन्म की बधाई धर नाम की धराई पूजा
> मुण्डन की और कर्ण वेधन की पावेंगे।
> ब्रह्मदण्ड देंगे लेंगे चरण पुजाई आगे,
> ब्याह के अनेक नेग चौगुने चुकावेंगे।
> लेते ही रहेंगे दानदक्षिणा पुरोहितजी,
> रोगी यजमान से दुधार धेनु लावेंगे।
> शंकर मरे पै माल मारेंगे त्रयोदशी का
> छोड़ेंगे न बरसी कनागत भी खावेंगे।।

आर्यसमाज सामाजिक सुधारों का प्रबल पोषक रहा है। उसकी यह धारणा है कि हमारे पर्व, त्यौहार, उत्सव आदि अत्यन्त सात्विक तथा आदर्श रूप में मनाएं जाने चाहिए। आजकल होली के पर्व को जिस अशिष्ट, फूहड़ तथा असभ्य ढंग से मनाया जाता है, उसकी आलोचना करते हुए कवि ने लिखा—

> होली के हुरदंग ने धार कुमति का रंग।
> छोड़ी लाज समाज का कर डाला रस भंग।।
> होली का हुल्लड़ मचा ऊलें उचवक ऊत।
> भूखे भारत पै चढ़ा भक्षक भ्रम का भूत।।

शंकर को स्वदेश भक्ति की शिक्षा आर्यसमाज से ही मिली थी। उन्होंने देश की दुर्दशा के लिए उसकी पराधीनता को उत्तरदायी ठहराया था। समस्यापूर्ति के उस युग में महाकवि ने ऐसी अनेक काव्य रचनाएँ लिखीं, जिनमें देश की सार्वत्रिक अधोगति का ज्वलन्त चित्र खींचा गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

नौकरों की शाही सभ्यता का गला काटती है,
गाँधी के संघाती अँखियों में खटकत हैं।
भारत को लूट कूटनीति की उजाड़ रही,
न्याय के भिखारी ठौर ठौर भरकत हैं।
जेलों में स्वदेश भक्त हिंसा हीन सज्जनों को
पेट पाल पातकी पिशाच पटकत हैं।
कौन पै पुकारें अब शंकर बचा लें हमें।
गोरे और गोरों के गुलाम अरकट हैं।।

शंकर ने अंग्रेज कलेक्टर एफ.एस. ग्राउस की उपस्थिति में एक बार विधि भाल लिखी लिपि को सकटार, इस समस्या की पूर्ति में निम्न छन्द पढ़ कर सुनाया–

शंकर देसन को सिरताज अधोमुख आज बिना अधिकार।
भौ पर दास न मोद विलास धरा धन पास न त्रास अपार।
श्रीहत अंग, न गौरव संग दुखी चित भंग रहै मन मार।
हा, बनि भारत की बिगरी विधि भाल लिखी को सकटरार।।

ध्यातव्य है कि गुलामी के उस शीर्ष काल में अंग्रेज प्रशासक के सामने उसी की कोठी पर ऐसी कविता पढ़ने का साहस शंकर जैसा देशभक्त कवि ही जुटा सकता था।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महाकवि शंकर की खड़ी बोली की कविताओं का महत्त्व स्वीकार किया है तथा उनके छंदो विधान तथा अनूठी उद्‌भावना प्रणाली की भी प्रशंसा की है, किन्तु वे यह भी लिखने से नहीं चूके कि "उनकी पदावली कुछ उद्दण्डता लिए होती थी। कारण कि उनका सम्बन्ध आर्यसमाज से रहा जिसमें अंधविश्वास और सामाजिक कुरीतियों के उग्र विरोध की प्रवृत्ति बहुत दिनों तक जाग्रत रही।" शुक्लजी के इसी आक्षेप का सटीक उत्तर हिन्दी के प्रगतिशील समीक्षक डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने इस प्रकार दिया है– "क्या सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों का उग्र विरोध गलत है ? क्या विरोध की उग्रता से उपजी काव्य भाषा की तलखी को उद्दण्डता कहना उचित है ? अगर सोये हुए समाज को जगाने के लिए तीखी भाषा में कड़वा सच कहना उद्दण्डता है, तो यह उद्दण्डता केवल शंकर में ही नहीं है, अपितु कबीर से लेकर धूमिल तक की हिन्दी काव्य परम्परा में ऐसी उद्दण्डता बहुत है।"[11]

शंकर का काव्य रचना काल 1881 से आरम्भ होता है। उनकी प्रथम प्रकाशित काव्य कृति सुन्दरी स्वप्न प्रकाश 1890 में छपी। उनके जीवनकाल में उनकी कविताओं के दो प्रमुख संकलन प्रकाशित हुए–शंकर सरोज 1905 तथा अनुराग रत्न 1913।

शंकर सरोज मे राष्ट्र प्रेम, समाज सुधार तथा प्रकृति प्रेम की सुन्दर रचनाएँ सकलित हैं जब कि अनुराग-रत्न में इन विषयों के अतिरिक्त धार्मिक तथा दार्शनिक विषयों को लेकर लिखे गए काव्य का भी संकलन है। 'गर्भरण्डा रहस्य' का प्रकाशन 1919 में हुआ। इसमें हिन्दू विधवा की करुण कथा को व्यंग्यात्मक शैली में चित्रित किया गया है। 'वायस विजय' संस्कृत के प्रसिद्ध नीति ग्रन्थ काकोलूकीय का पद्यानुवाद है। यह भी 1919 में ही प्रकाशित हुआ था। कालान्तर में शंकर जी की उत्कृष्ट काव्य रचनाओं का एक प्रतिनिधि संकलन डॉ. हरिशंकर शर्मा ने 'शंकर सर्वस्व' शीर्षक से किया। वस्तुतः शंकर का काव्य भाषा और भाव अभिव्यक्ति और विषय विधान, प्रत्येक दृष्टि से इतना विशद, व्यापक तथा बहुआयामी है कि संक्षेप में उसका विवेचन करना अशक्य ही है। अनेक शोधकर्त्ताओं ने शंकर की काव्य प्रतिभा का मूल्यांकन अपने शोध प्रबंधों में किया है। उनका निधन 1932 में हुआ।

25. पं नारायण प्रसाद बेताब

'अजब हैरान हूँ भगवन् तुम्हें क्यों कर रिझाऊ मैं' जैसे लोकप्रिय, निराकार ईश्वर प्रतिपादक भजन के रचयिता का जन्म 1872 में बुलंदशहर ज़िले के औरंगाबाद कस्बे में हुआ। उनकी शिक्षा तो सामान्य स्तर की ही थी, किन्तु तुकबंदी करने तथा उर्दू में गज़लें लिखने का शौक उन्हें बचपन से ही था। आगे चलकर वे पारसी नाटक-कम्पनियों के लिए नाटक लिखने लगे आर्यसमाज में उनकी निष्ठा आरम्भ से ही रही, इसलिए उन्होंने अपने नाटकों के कथानकों तथा उनमें प्रयुक्त कविताओं में वैदिक मन्तव्यों को प्रस्तुत करने का सदा ध्यान रखा। अपने प्रसिद्ध नाटक महाभारत के मंगलाचरण में उन्होंने सूत्रधार से निम्न प्रार्थना का उच्चारण करवाया—

> प्रथम ओम् करो उच्चार।
> जो है आनन्द रूप सत चित नित निर्विकार।
> विश्व सकल नाटक सम जीव हैं सब नाट्यकार।
> रूप कोई लेत नाहिं, अलग रहत ज्यों सूत्रधार।

उनका निधन 15 सितम्बर 1945 को मुम्बई में हुआ।

बेताब कवि के रूप में : एक सफल नाटककार होने के साथ-साथ पं. नारायण प्रसाद बेताब उच्चकोटि के कवि तथा काव्य-समीक्षक भी थे। उनकी काव्य-रचना हिन्दी तथा उर्दू दोनों शैलियों में मिलती हैं। उनकी कुछ ऐसी ही काव्यकृतियों का समीक्षण किया जाना आवश्यक है।

नारायण शतक : एक सौ दोहों का यह शतक नीति-विषयक कविता का श्रेष्ठ नमूना है। इनमें लोकव्यवहार, वैयक्तिक और सामाजिक आचरण आदि विषयों का निरूपण किया गया है। शतक का आरम्भ कवि ओंकार-महिमा से करता है—

ओम् उच्चारण होत ही टिके न विघ्न-विषाद।
स्यार भागते हैं यथा सुन केहरि को नाद।।

यत्र तत्र कवि ने संस्कृत सूक्तियों को दोहा रूप दिया है। यथा—'न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम्।' (चाणक्यनीतिदर्पण 11।8)

इस चाणक्य की सूक्ति को कवि ने निम्न रूप में प्रस्तुत किया—

गुण जाने बिन गुणिन को होत नहीं सत्कार।
गजमुक्ता तज भिल्लनी धारत गुंजा हार।।

इस शतक के रचना-काल का उल्लेख कवि ने चित्रकाव्य शैली में इस प्रकार किया है—

प्राण द्वीप निधि मेदिनी विक्रम संवत् जान।
श्रावण शुक्ला द्वादशी भयो शतक अवसान।।

अङ्कानां वामतो गतिः के नियमानुसार काव्यलेखन काल प्राण (7) द्वीप (7) निधि (9) मेदिनी (1) अर्थात् 1977 वि. की श्रावण शुक्ला 12 ज्ञात हुआ।

बेताब ने महर्षि दयानन्द के गुरु दण्डी विरजानन्द, स्वयं महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज के महान् नेता स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन-प्रसंगों को लेकर उत्कृष्ट काव्य रचना की है। विरजानन्द की ज्योतिहीन आँखों को सम्बोधित करते हुए कवि ने 'ऑखें' शीर्षक कविता लिखी। इसमें कवि की मनोज्ञ कल्पना देखने योग्य है—

पाई नहीं बला से, तुम ने असार ऑखें।
पर दिव्य दृष्टि वाली थीं, निर्विकार ऑखें।।
अंधे हैं हिये के, अंधा तुम्हें कहेंगे।
कुरबान इन गढ़ों पर, उनकी हजार आँखें।।
भारत की दुर्दशा को, देखा गया न उनसे।
पर्दे में इसलिए थीं, वो बेकरार आँखें।।
भारत की दुर्दशा को, देखा गया न तुम से।
आखिर बना के छोड़ीं, दो की हजार आँखें।।
लोगों के चर्म-चक्षु किस तरह देख सकते।
थीं चक्षुहीन द्रष्टा, से नित्य चार आँखें।।
आँखों का बन्द होना, था भेद से न खाली।
विषयों के दाखिले को, है मुख्य द्वारा ऑखें।।
पाये थे ज्ञानचक्षु अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी।
दो किस सुमार हैं, थीं बेशुमार आँखें।।

दो खिड़कियाँ खुली हैं, चलते हुए मकां में।
बेताब की हों वैसी, दीवारे दार आँखें।।

(डॉ. केशवदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित मासिक आर्यकुमार के ऋषिबोधांक (माघ 1980 वि.) में प्रकाशित, पृ. 210)

बेताब ने ऋषि दयानन्द के विविध जीवन-प्रसंगों को लेकर उर्दू की मुसद्दस शैली में चार लघु काव्यों की रचना की। मुसद्दस उर्दू का एक छन्द है जिसमें छः पंक्तियाँ होती हैं। ये चारों मुसद्दस लाहौर से प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र प्रकाश (महाशय कृष्ण द्वारा सम्पादित) साप्ताहिक में छपे थे और विद्वानों की एक समिति ने इनके काव्य गुणों को परख कर कवि को पुरस्कृत भी किया था। कालान्तर में स्वयं बेताब ने ही इन्हें दयानन्द-दिग्दर्शन शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित किया था। नागरी लिपि में इन्हें प्रकाशित किए जाने पर काव्य में प्रयुक्त कतिपय कठिन शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणियों में स्वयं कवि ने दे दिए थे। फलतः हिन्दी पाठकों के लिए यह रोचक काव्य दुर्बोध नहीं रहा। छन्दविषयक नियमों के पालनार्थ इन मुसद्दसों में ऋषि, मुनि जैसे संस्कृत शब्दों को दीर्घ ईकारान्त ऋषी, मुनी तथा गुरु को दीर्घ ऊकारान्त कर देने की विवशता कवि ने अपनी प्रस्तावना में स्पष्ट की है। छंदों के नियमों के पालन में ऐसे परिवर्तन स्वीकार होते हैं।

प्रथम मुसद्दस का शीर्षक है 'बुतपरस्ती का शुक्रिया' (मूर्तिपूजा को धन्यवाद)। इसकी रचना नवम्बर 1912 में हुई थी। इस कविता में शिवरात्रि-प्रसंग तथा बालक मूलशंकर के बोधोदय को रोचक तथा विदग्धतापूर्ण शैली में वर्णित किया गया है। भाषा की सरलता तथा कलाम की साफगोई काबिले तारीफ है। यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है—

जो उपवास होता न शिवरात्रि का।
न होती जो मन्दिर में शिवलिंग पूजा।।
न पूजा में फल फूल चढ़ता चढ़ावा।
निकलता न वह चाट खाने को चूहा।।
किया जिस ने साबित सरे लिंग चढ़ कर।
खुदा को खुदा और पत्थर को पत्थर।।

दूसरा मुसद्दस 'स्वामी का समावर्तन संस्कार' शीर्षक है। यह अक्टूबर 1913 में लिखा गया था। कवि ने इसमें दण्डी विरजानन्द की पाठशाला में अपनी शिक्षा समाप्त हो जाने के पश्चात् स्वामी दयानन्द द्वारा गुरुचरणों में कुछ लौंगें अर्पित करने के मार्मिक प्रसंग को चित्रित किया है। इस मुसद्दस की भाषा में संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है जो विषय की दृष्टि से उपयुक्त है। एक उदाहरण देखें—

ऋषि के नयन भर आए गुरु जी के वचन सुन कर।
समाया जब न दिल में आ गया वो प्रेम पलकों पर।।
बड़ी भक्ति से जोड़े हाथ चरणों में झुकाया सिर।
निवेदन किया फिर हे मान्यवर, हे पूज्य विद्याधर।।
अदा यह कर्ज सारी उम्र कर सकता नहीं हरगिज।
गुरु की देन है यह जो उतर सकती नहीं हरगिज।।

तीसरा काव्य 'ऋषि की जिन्दगी बख्श मौत' अक्टूबर 1916 में लिखा गया। इसमें कवि ने स्वामी दयानन्द के परलोकगमन का हृदयद्रावक तथा करुणाजनक चित्रण किया है। कवि स्वीकार करता है कि उसकी कविता में न तो किसी प्रकार का काव्य कौशल है और न कल्पना विलास। इसका छंदोविधान भी सर्वथा अपूर्व नहीं है। इस कविता की भाषा को क्या कहें—उर्दू या हिन्दी, इसमें भी उसे संकोच है। यदि उसे किसी बात का सन्तोष है तो बस इसी का कि उसने अपने आचार्य के प्रति अपनी श्रद्धा को प्रकट करने के लिए ही इस काव्य की रचना की है—

सखुन बेताब का रंगे-सखुनगोई से खाली है।
न मजमूं आफरीनी है न कुछ नाजुक खयाली है।।
न किस्सा ही निराला है न बंदिश ही निराली है।
न उर्दू है न हिन्दी है जबां की पायमाली है।।
बस अब खामोश हो लिखने की शक्ति देख ली तेरी।
ऋषि-भक्ति का था इजहार भक्ति देख ली तेरी।।

दयानन्द-दर्शन में संगृहीत चौथा मुसद्दस 'शास्त्र और शस्त्र दोनों बस में हैं' शीर्षक वाला है। इसमें बरौली (जिला बुलन्दशहर) के अहंकारी राव कर्णसिंह द्वारा स्वामी दयानन्द के प्रति प्रदर्शित उद्दण्डता तथा बदले में ऋषि द्वारा दिखाई गई उदारता तथा उसे क्षमा करने वाला मार्मिक प्रसंग वर्णित है। इस कविता का आरम्भ एक रुबाई से इस प्रकार होता है—

बढ़ता है जो क्रोध अक्ल घट जाती है।
फिर ज्ञान की काया ही पलट जाती है।।
शमशीरे गजब को है अजब ढाल क्षमा।
इस ढाल से तलवार भी कट जाती है।।

बेताब के ये मुसद्दस अत्यन्त लोकप्रिय हुए थे। इसका एक कारण था इनमें पाया जाने वाला हास्य व्यंग्य और विनोद। कवि ने अपनी सहज शैली में धार्मिक अंधविश्वासों और पाखण्डपूर्ण क्रियाओं पर जो कटाक्ष किए, उनके कारण उस युग

के पाठकों ने इन्हें रुचिपूर्वक पढ़ा था। मृतकों के किए जाने वाले श्राद्ध पर तीखा कटाक्ष करते हुए कवि ने बताया कि यह विचार सर्वथा मिथ्या ही है कि श्राद्ध कर्म से दिवंगत पितरों की तृप्ति होती है।

'बुतपरस्ती का शुक्रिया' शीर्षक मुसद्दस की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

यहॉं तक थे हम होशियारे जमाना।
कि भिजवाते रहते थे मुर्दों को खाना।।
बड़े पेट थे या बड़ा डाकखाना।
किए पार्सल अक्सर उनसे रवाना।।
जरा देखिये डाकियों का कलेजा।
जमीं का पुलिन्दा फलक पर भी भेजा।।
रसीद आज तक भी किसी की न आई।
वह शय पाने वालों ने पाई न पाई।।
बहुत खो चुके जब कि अपनी कमाई।
ऋषि ने बताया कि है यह ठगाई।।
गया पार्सल यह तसल्ली है झूटी।
लुटेरों ने यह डाक रस्ते में लूटी।।

बेताब के चारों मुसद्दस हिन्दी-उर्दू की मिली-जुली शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

पिस्तौल का पश्चात्ताप : स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान से उद्वेलित होकर बेताब ने 'पिस्तौल का पश्चात्ताप' शीर्षक एक लम्बी कविता लिखी। इसकी भाषा तो उर्दू ही है किन्तु विषय के महत्त्व तथा भाषा की रवानगी से प्रभावित होकर कलकत्ता के प्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक 'मतवाला' ने इसे 1 जनवरी 1927 के अंक में संक्षिप्त रूप से प्रकाशित किया था। जिस पिस्तौल से स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या की गई वह हत्यारे के इस पाशविक, बर्बर कृत्य की निंदा करते हुए कहती है–

करेगा कौन ऐसी बुजदिली दगाबाजी।
अरे कम्बख्त तू तो हीजड़ों से ले गया बाजी।।

कवि ने उसी पिस्तौल के मनोभाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है–

तुझे मालूम है उस वक्त क्या पिस्तौल कहती थी।
अरे शैतान तेरे मुँह पे वो लाहौल कहती थी।।
उसे अफसोस था मैं पंजये नापाक में आई।
मुकामे शर्म है छुप कर मैं जिस पोशाक में आई।।

चला करती हूँ मैं मूँजी-शरीरों के शरीरों पर।
अधर्मी ने चलाया हाथ पीरों पर फकीरों पर।।

निश्चय ही बेताब की यह कविता विषय और अभिव्यक्ति, दोनों दृष्टि से एक अनुपम रचना है।

बेताब—काव्य समीक्षक के रूप में : पं. नारायणप्रसाद बेताब श्रेष्ठ कवि तथा नाटककार तो थे ही, उन्हें कविता की परख भी थी। वे काव्य के तत्त्वों के परीक्षक तथा समीक्षक भी थे। उन्होंने काव्य रचना करने वालों के मार्ग दर्शन के लिए कवि-शिक्षा के अनेक ग्रन्थ लिखे थे। अलंकार तथा छन्द शास्त्र की उन्हें प्रामाणिक जानकारी थी। इस प्रकार वे कवि तथा आचार्य दोनों ही थे। काव्य, विवेचना-विषयक उनके निम्न ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे--

प्रास-पुञ्ज : तुकान्त-कविता लिखने वालों के लिए समस्यापूर्ति करने का कौशल एक अनिवार्य शर्त है। 1920 में प्रकाशित इस ग्रन्थ में इसी विषय से सम्बन्ध रखने वाली उपयोगी जानकारी और सुझाव दिए गए हैं।

पद्य-परीक्षा : अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामचरित उपाध्याय, श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शंकर शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबंधु, लाला भगवानदीन, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही (त्रिशूल) तथा पं. रूपनारायण पाण्डेय जैसे द्विवेदी काल के कवियों के छंदोविधान की पिंगल शास्त्र के आधार पर बेलाग समालोचना की गई है।

पिंगल-सार : 1920 में बेताब ने पिंगल पाठावली नाम से एक मासिक पत्र निकाला था। उसे ही पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। इसमें हिन्दी छंदःशास्त्र के साथ-साथ उर्दू अरज को भी प्रस्तुत किया गया है।

26. नारायण मुनि चतुर्वेद

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के दिवंगत आचार्य और हिन्दी तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् पं. लक्ष्मीनारायण शास्त्री (अपर नाम नारायण मुनि) ने संस्कृत और हिन्दी काव्य में प्रचलित शतक परम्परा के अनुकरण पर 'मुक्तकशतक' की रचना की है। उनकी कतिपय प्रकीर्ण काव्य रचनाओं सहित यह शतक 1982 में प्रकाशित हुआ है।

आलोच्य काव्य के सम्बन्ध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए डा. विष्णुदत्त 'राकेश' ने हिन्दी काव्य की शतक परम्परा का रोचक इतिवृत्त प्रस्तुत करने के पश्चात् मुक्तकशतक के कथ्य और शैली का सम्यक् विवेचन किया है। इस शतक में प्रभु महिमा, प्रकृति वर्णन तथा अन्योक्ति गर्भित सुभाषित कथन के पश्चात् अष्टांग योग, ज्ञान विवेक, यज्ञ, भव बंधन मुक्ति, सन्त असन्त विवेक जैसे विषयों पर उत्तम दोहे

लिखे गए हैं। मनुष्य के लिए हानिकर कामक्रोधादि षड्रिपु, भ्रष्टाचार, दुश्शासन, आदि सामाजिक बुराइयों तथा अवतारवाद, मूर्तिपूजादि धार्मिक अंधविश्वासों के खण्डन में भी कुछ दोहे अत्यन्त सटीक तथा व्यंजनात्मक बन पड़े हैं।

हिन्दी के दोहा छन्द की प्रमुख विशेषता है अनति विस्तार करते हुए सारगर्भित ढंग से अपने वक्तव्य को प्रस्तुत करना। यही कारण है कि दोहों में वचन चातुरी तथा विदग्धता के लिए पूर्ण अवकाश रहता है।

मुक्तक शतक विभिन्न अलंकारों से परिपूर्ण है। प्रत्येक दोहे का सरल भावार्थ देते समय स्वयं कवि ने ही इन अलंकारों को निदर्शन कर दिया है। अनुप्रास, यमक और श्लेष जैसे शब्दालंकारों के अतिरिक्त अन्योक्ति, समासोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति जैसे अर्थालंकारों के अनूठे प्रयोग ने इस काव्य को श्रेष्ठ कविता की श्रेणी में रख दिया है। अनुप्रास का उदाहरण निम्न दोहे में देखें—

दुर्गति, दारुण, दीनता, द्रोह, दोष विद्वेष।
देश दशा दूषित दिशा, निर्देशक निर्देश।।

कवि की मूर्तिपूजा के अनौचित्य में कही गई निम्न उक्ति कितनी मार्मिक तथा सटीक है—

पूज रहा पाषाण तू प्रतिभा मान महान्।
लगता भूतल का मुझे कण कण ही भगवान।।

इस काव्य में प्रसाद गुण सर्वत्र दिखाई पड़ता है। एक उदाहरण देखें—

विषय वासना से नहीं जिसका आहत मर्म।
सच्चा शोभित हो रहा, वही वीरता धर्म।।

शासकों द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी की अवहेलना से व्यथित कवि का हृदय पुकार उठता है—

भारत माँ के भाल की बिन्दी हिन्दी आज।
हन्त मिटाता जा रहा, शासक सभ्य समाज।।

सरित् प्रवाह तथा खग कुल की कलित काकली में कवि को मधुर संगीत सुनाई देता है—

स्रोत सरित खगकुल कलित गाते सुन्दर गीत।
ललित काकली स्वर मिलित साध रहे संगीत।।

यत्र-तत्र कवि ने कूट पद्य शैली को अपनाया है। यहाँ उसकी कविता में अद्भुत

चमत्कार उत्पन्न हो गया है। मुक्तकशतक का 80वाँ दोहा द्रष्टव्य है–

> नभ तारक तारक नहीं, भव तारक तू, देख।
> निज तारक पढ़ते रहे, मिले न तारक लेख।।

कवि श्लिष्ट शब्द का प्रयोग करते हुए कहता है कि हे मनुष्य ये आकाश के तारे किसी के तारक (उद्धारक) नहीं हैं, तू तो संसार से पार लगाने वाले प्रभु को देख। यह सुन कर स्वयं को ही तारक मानने वाले तो अपना भाग्य लेख पढ़ते ही रह गए किन्तु उन्हें स्वयं का उद्धार करने वाला कोई लेख नहीं मिला। निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वर्तमान हिन्दी काव्य में सरल खड़ी बोली में ऐसा अर्थगर्भित शतक काव्य अन्य किसी कवि ने शायद ही लिखा होगा।

परिशिष्ट में संगृहीत नारायण मुनि की कविताओं में कुछ गीतों के अतिरिक्त ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के प्रथम मंत्र, यजुर्वेद के बसन्त वर्णन परक मंत्र (22. 23) तथा अथर्ववेद के उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते (10.60) आदि, मंत्रों का काव्यानुवाद भी कवि की काव्य रचना विषयक क्षमता के परिचायक हैं।

27. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

'लावणी' काव्य की एक विशिष्ट शैली है। लावणी का इतिहास लिखने वाले नारायणनन्द सरस्वती का जन्म वैशाख शुक्ला 12 सं. 1940 वि. को उत्तर प्रदेश के पीलीभीत नगर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम पं. श्रीकृष्ण तिवारी था। इनका स्वयं का नाम लक्ष्मीनारायण था। स्वाध्याय के बल पर इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। पन्द्रह वर्ष की आयु में वे काव्य रचना करने लगे थे। अट्ठाईस वर्ष की आयु में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया और नारायणानन्द नाम धारण कर लिया। जब 1920 में महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन चलाया तो स्वामी नारायणानन्द देश की पुकार की अनदेखी नहीं कर सके। उन्होंने काषाय वस्त्रों के स्थान पर सफेद खादी का परिधान धारण कर लिया और स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। विचारों की दृष्टि से उनकी आर्यसमाज में आस्था थी और वे गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से यावज्जीवन जुड़े रहे। 1923 में स्वामी जी ने कानपुर में सर्वप्रथम अखिल भारतीय स्तर पर कवि सम्मेलन का आयोजन किया। इसकी अध्यक्षता आधुनिक युग में ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने की थी। इसके बाद ही, देश में कवि-सम्मेलनों की परम्परा चली। 1981 वि. में उन्होंने कानपुर से एक कविता प्रधान मासिक 'कवीन्द्र' निकाला। इसके सहायक सम्पादक पं. अनूप शर्मा थे जो स्वामी जी को अपना साहित्यिक गुरु मानते थे। 1930 के सत्याग्रह में स्वामी जी को कारावास का दण्ड मिला। 11 नवम्बर 1954 को पीलीभीत में ही स्वामी जी का निधन हुआ। इनकी रचनाओं के

नाम हैं—लावण्य लता, गायत्री उपास प्रकाश, तरानेहिन्द, असहयोग का अगड़नम, सरयूरहस्य, सन्तोषी सुदामा, लावनी का इतिहास।

स्वामी नारायणानन्द की कविता के कुछ नमूने यहाँ दिए जा रहे है—:

जिसने पा नर जन्म जगत् में काव्य सुधा रस दिया नहीं।
लिया नहीं हरिनाम और जिसने कर से कुछ दिया नहीं।
देश धर्म पर जिसने निज तन मन धन अर्पण किया नहीं।
जीवित नहीं मृतक है वह नर जिया भी तो कुछ जिया नहीं।।

वेद ज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता–

जो आज भारतवासियों में यथार्थ वेदों का ज्ञान होता।
और अपने गौरव का ध्यान होता, तो सर्व देशों में मान होता।
कृपा से ईश्वर की ब्राह्मणों को जो ब्रह्मविद्या का भान होता।
सदा ही यजु साम गान होता यह देश अपना सुजान होता।
जगत् में सत्योपदेश द्वारा जो यज्ञविधि का विधान होता।
जो अपने गौरव का ध्यान होता तो सर्व देशों में मान होता।

प्रणव जप का महत्त्व

थका न अब तक विषय भोग से
तृष्णा वश बहु किए अनर्थ।
थिर मन कर जप ओम् मन्द अब,
दिवस रत्न क्यों खोवे व्यर्थ।।

मन मधुकर की रूपक योजना

सुख सुगन्ध लोभी मन मधुकर काम कमल पर जा बैठा।
प्रेम पांखुरी में फँस कर अपने को आप गवाँ बैठा।।

स्वामी नारायणानन्द के ब्रजभाषा काव्य का उदाहरण—

सुखमानत ये जग जीव सबै पिए मोहमयी मद के मटके हैं।
मतवारे मतग की भांति भ्रमै मनमाया मतंगिनी सौ अटके हैं।
फल चाहत स्वादु सुधा सो सन्यो विषवृक्ष की डार गहे लटके हैं।
भगवान ही पार लगावै उन्हें भव में यह भूले भ्रमे भटके हैं।।

स्वामी जी की 'स्वदेशी गान' तथा 'आजादी या मौत' शीर्षक रचनाएँ 1930 में अंग्रेज सरकार द्वारा ज़ब्त कर ली गई थीं। स्वदेशी गान की आरम्भ इन पंक्तियों

से हुआ था—

जियें तो बदन पर स्वदेशी वसन हो।
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो।।

28. पं. प्रकाशचन्द्र कविरत्न

आर्यसमाज के विख्यात कवि तथा गायक-उपदेशक प्रकाशचन्द्र कविरत्न का जन्म 1960 वि. (1903) मे अजमेर के एक पुराण मतावलम्बी ब्राह्मण पं. बिहारीलाल के यहाँ हुआ। राजस्थान के प्रसिद्ध आर्य उपदेशक पं. रामसहाय शर्मा के सम्पर्क में आकर वे आर्यसमाजी बन गए। काव्य रचना के तत्व तो उनमें प्रारम्भ से ही थे किन्तु जब वे आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान में उपदेशक के पद पर कार्य करने लगे तो उनकी प्रतिमा को अधिकाधिक प्रस्फुटित होने का अवसर मिला। 1925 में ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी के समारोह में जब उन्होंने अपना प्रसिद्ध गीत 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया देव दयानन्द ने' गाया तो वे अल्प काल में ही देशव्यापी ख्याति अर्जित कर सके। मथुरा में उनकी भेंट कविता कामिनी कान्त पं. नाथूराम शंकर शर्मा से हुई जिन्हें वे अपना काव्य गुरु मानते थे। शंकर के काव्य से ही उन्हें कविता लिखने की प्रेरणा मिली थी। उन्होंने अपने इस काव्य गुरु के प्रति श्रद्धा-प्रसून समर्पित करते हुए लिखा था—

शंकर सरोज सुललित मृदु मकरंद
पान जिसने भी किया वो निहाल हो गया।
अनुराग रत्न की अनूप आभा अवलोक
अनुराग से विभोर अन्तराल हो गया।
गुरुदेव शंकर कृपा से मैं प्रकाश तुच्छ
आज जनगण मन मंजु मराल हो गया।
अथवा यूँ कहूँ कबीर के वचन भाँति
लाली देखने चला था मैं भी लाल हो गया।।

1930 के सत्याग्रह में प्रकाश जी ने एक राष्ट्रकर्मी के रूप में भाग लिया तथा जेल गए। वहाँ की कठिन जीवनचर्या का यथार्थ वर्णन उन्होंने निम्न घनाक्षरी में किया है—

नंगी देह पै उड़ाते चाबुक थे अधिकारी
किन्तु हमारे लिए फूल की सी छड़ियाँ।
स्वाद आता था सुधा सा रूखी सूखी रोटियों में,
मारे भूख जब सूख जाती थीं अंतड़ियाँ।।
गाते थे तराने देश प्रेम के दीवाने बन,

तसले की ताल पै बजा के हथकड़ियाँ।
था हर्षोन्माद न था किंचित् विषाद अहा!
आती हैं वो याद जेल जीवन की घड़ियाँ।।

उनके अनेक काव्य तथा भजन संग्रह छप चुके हैं। उनकी कविता के भाव पक्ष तथा अभिव्यंजना पक्ष में सतत विकास तथा सन्तुलन के दर्शन होते हैं। 'राष्ट्र 'जागरण गीत' नामक उनके काव्य का प्रकाशन 2019 वि. में हुआ जब इस देश ने पड़ोसी चीन के निष्ठुर आक्रमण का वीरतापूर्वक मुकाबिला किया था। सीमा की रक्षा में अपने प्राणों की बलि देने वाले भारत के वीर सैनिकों की वीर भावनाओं को उत्तेजित करने वाला यह काव्य वीर रस की सशक्त अभिव्यक्ति है। कवि ने अपनी आकांक्षा को इस प्रकार व्यक्त किया है–

हम यही चाहते आज।
बच्चा बच्चा, हो रणबंका देश भक्त बलशाली।
कटि में बंधी भुजाली कांधे हो बंदूक दुनाली।
गद्दारों के गर्व चूर हों काँपे क्रूर कुचाली।
तन मन धन से मातृभूमि की करें सभी रखवाली।
अपना सब कुछ लुटे रहे भारत माता की लाज।।

पं माखन लाल चतुर्वेदी की प्रसिद्ध कविता 'एक पुष्प की अभिलाषा' के अनुकरण पर लिखी प्रकाश जी की निम्न कविता भी कमनीयता में न्यून नहीं है–

नहीं चाहता मैं किसी राजा या सुन्दरी के अभिसार का फूल बनूँ।
नहीं चाहता मैं अति उत्तम व्यञ्जन भोग के देह से स्थूल बनूँ।
नहीं चाह प्रकाश प्रतिष्ठित पूज्य बड़े पद के अनुकूल बनूँ।
जिस पन्थ से देश के प्रेमी चलें उस पावन पन्थ की धूल बनूँ।

'प्रकाश तरंगिणी' उनकी एक अन्य काव्य कृति है जिसमें आध्यात्मिक भावों की गहराई के साथ-साथ कल्पना की ऊँची उड़ान भी दिखाई देती है। अपने आराध्य के प्रति कवि का श्रद्धा एवं विश्वास का भाव गहन गम्भीर है–

कण्टक वन भी नन्दन वन है
जब तू समीप जीवन धन है।
तेरी छाया हे करुणा धन
भर देती जड़ता में जीवन।
तेरे ही क्षणिक हास से
मुझ में प्रकाश नित नूतन है।।

महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय रचित 'चुभते चौपदे' तथा 'चोखे चौपदे' की शैली में प्रकाश जी ने 'कहावत कवितावली' की रचना की इसमें 101 पद्यों को संगृहीत किया गया है। प्रत्येक पद्य की अन्तिम पंक्ति किसी न किसी कहावत या लोकोक्ति के रूप में आई है और सम्पूर्ण पद्य उसी कहावत की व्याख्या या भाव पल्लवन प्रतीत होता है। 'जहाँ चाह वहाँ राह' इस कहावत के लिए कवि ने निम्न घनाक्षरी लिखी–

शैल कारा तोड़ तुच्छ जल स्रोत होता मुक्त,
बढ़ता कहाता शुचि सरिता प्रवाह है।
एक तू मनुज अरे निपट उदास बैठा,
हाथ पर हाथ धरे रञ्जना उछाह है।
स्वयं विधाता है तू निज भाग्य का प्रकाश,
क्यों तू लेता ज्योतिषी से शकुन सलाह है।
सच्चा स्नेह है तो सिद्धि स्वयं समीप होगी।
भूलो न यह मंत्र जहाँ चाह वहाँ राह है।

निश्चय ही प्रकाश जी के काव्य में धर्म, नीति, अध्यात्म, राष्ट्रप्रेम आदि के विषय सुन्दर तथा प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत किए गए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-प्रकाश अभिनन्दन ग्रन्थ-प्रकाशचन्द्र कविरत्न अभिनन्दन समारोह समिति अजमेर द्वारा 1971 में प्रकाशित।

29. स्वामी प्रकाशानन्द

विगत शताब्दी के अन्तिम दशक में जोधपुर की आर्यसमाज को अपना केन्द्र बनाकर अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों को जारी रखने वाले स्वामी प्रकाशानन्द के बारे में हमारी जानकारी अधिक नहीं है। इतना ही पता चलता है कि वे जोधपुर आर्यसमाज के तत्कालीन प्रधान तथा रियासत के मुख्य प्रशासक महाराज प्रतापसिंह के गुरु तथा कृपापात्र थे। स्वामी प्रकाशानन्द ने ईश्वर भक्ति, जीवन की नश्वरता, वासनाओं से निवृत्ति जैसे भावों को लेकर संगीत की भिन्न-भिन्न राग-रागनियों में सुन्दर उपदेशात्मक काव्य का सृजन किया है। उनके दो ग्रन्थ उपदेश प्रस्रवणम् तथा प्रार्थना प्रस्रवणम् प्रकाशित हुए थे। इन्हीं में स्वामी प्रकाशानन्द की उपदेश प्रधान कविताएँ प्रकाशित हुई थीं। सीधी सरल भाषा में लिखी यह कविता नीति, भगवद्भक्ति तथा वैराग्यादि के भावों से गुंफित है। हम यहाँ कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं–

जग से प्रीत करो मत कोई।
जोई करे सोई पीछे रोई।
मीन पतंग भ्रमर को देखो।

मत्त मतंग कुरंग को देखो।
विषय वशी दुःख पावें जैसे।
मोहवशी नर पावें तैसे।।

स्वामी प्रकाशानन्द के उपर्युक्त ग्रन्थ लगभग लुप्त हो चुके थे। इनकी कुछ जीर्णशीर्ण प्रतियाँ जसवन्त कालेज जोधपुर के रसायन विभाग में पडी थीं। 1959 में इस ग्रन्थ के लेखक के अनुज प्रो. नवलकिशोर माथुर ने जब अपने विभाग के स्टोर रूम में इन अलभ्य ग्रन्थों को दुखास्था में पड़ा देखा तो उन्होने इनकी सभी प्रतियॉ मुझे लाकर दीं। तभी स्वामी प्रकाशानन्द रचित ये ग्रन्थ प्रकाश में आए। प्रार्थन प्रस्रवण तथा उपदेश प्रस्रवण का प्रकाशनकाल 1955 वि. है तथा इन्हें महाराजा प्रतापसिंह की अनुज्ञा से मारवाड़ स्टेट प्रेस से मुद्रित किया गया था।

30. पं. प्रयागदत्त अवस्थी

आप आर्यसमाज के प्रारम्भिक काल के उपदेशक थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवध के उपदेशक के रूप में आपने धर्म प्रचार किया। अवस्थी जी का भक्ति काव्य सरल ब्रजभाषा में लिखा गया है। इसमें ईश्वर भक्ति, मन को उद्‌बोधन, व्यसन-त्याग, ब्रह्मचर्य धारण जैसे प्रेरणादायी विषय वर्णित हुए हैं। इनकी एक ऐसी ही भक्ति-रचना का उदाहरण देना उपयुक्त होगा--

भजु मन ब्रह्म सकल घर बासी।
निराकार निर्वैर निरंजन अजर अमर अविनाशी।
सूर्य चन्द्र तारा नक्षत्र अरु विद्युत अग्नि प्रकाशी।
उत्पत्ति पालन प्रलै करै जो आनन्द घन सुख राशी।

एक अन्य पद के रूप में प्रयागदत्तजी ने गोस्वामी तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' के प्रसिद्ध पद 'अब लौं नसानी अब न नसैहों' के ही अनुकरण पर निम्न भाव पूर्ण रचना लिखी है--

अब लौ नसानी अब ना नसैहों।
ईश्वर विमुख पुरातन पापी उर तन मैं न चितेहों।
धरिहीं ध्यान नित ओमकार को इन्द्रिय विषै हटैहों।
कामी कुटिल मलीन आत्मा उन ढिग कबहुन जैहों।
धर्मपालि तजि राग द्वेष को आत्मिक बल को बढैहों।
प्रागदत्त वेदानुकूल चलि भवसागर तरि जैहों।।

इनके अनेक पद धार्मिक रूढ़ियों तथा सामाजिक कुरीतियों के खण्डन में भी

लिखे गए हैं।

31. फतहकरण (जयकरण) उज्ज्वल

डिंगल (पुरानी राजस्थानी) के रस सिद्ध कवि फतहकरण उज्ज्वल का जन्म मारवाड़ (जोधपुर) राज्य के ऊजला ग्राम में 1852 में हुआ। इन्होंने व्याकरण, काव्य, ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र आदि अनेक शास्त्रों का विशद अध्ययन किया था। जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के आप प्रीति पात्र रहे। जीवन के उत्तरकाल में वे मेवाड़ की राजधानी उदयपुर चले गए और वहाँ के शासक महाराणा सज्जनसिंह के कृपा-पात्र बने। यहीं पर आपकी स्वामी दयानन्द से भेंट हुई। उनसे ही आपने संस्कृत का विशेष अध्ययन किया तथा स्वामी जी की प्रेरणा से अपना नाम फतहकरण से बदल कर 'जयकरण' रख लिया। डिंगल भाषा और साहित्य पर उनका असाधारण अधिकार था। महाकवि सूर्यमल के प्रसिद्ध ग्रन्थ वंश भास्कर पर उन्होंने एक टीका लिखी थी।

फतहकरण उज्ज्वल ने स्वामी दयानन्द के निधन पर श्रद्धांजलिपरक कुछ भावपूर्ण पद्य लिखे थे जो अप्रैल 1885 के भारत सुदशा प्रवर्त्तक मासिक (फर्रुखाबाद) में प्रकाशित हुए। इनसे उज्ज्वल की काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है। निम्न कवित्त उक्त प्रसंग का है–

योग को अधार गिरधार दृढ़ आसन को,
शिक्षक महीपन को त्रिदिवस सिधायेगो।
कुटिल कुराहिन को वाम मत चाहिन को
हाय पशु हायन को इष्ट दिन आयेगो।।
कहै जयकरण चार वरण के विवरण को
धर्म निधि दयानन्द परम गति पायगो।
तीन वेद शासन को सुमति प्रकाशन को,
आज सत्य भाषण को वासन विलायगो।।

इस पद्य में महर्षि दयानन्द को महान् योगी, राजाओं का उपदेष्टा, धर्म का भण्डार, वेदों का अनुशास्ता, सद्बुद्धि का प्रकाश कर्त्ता तथा सत्योपदेश कर्त्ता बताया गया है। साथ ही उनके दिवंगत होने पर कुटिल, कुपथगामी, वाममार्गी तथा धर्म के नाम पर पशु बलि देने वालों के अभीष्ट दिन आने का भी संकेत है।

32. पं. बदरीदत्त शर्मा

नैनीताल जिले के काशीपुर में जन्मे पं. बदरीदत्त शर्मा (1866 ई.-1949 ई.) आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक, लेखक तथा पत्रकार थे। आपने आर्यसमाज मुरादाबाद के मुखपत्र

आर्य विनय का सम्पादन किया। कालान्तर में आप कानपुर, अजमेर, इलाहाबाद, ज्वालापुर आदि स्थानों में रहे तथा इन स्थानों में आपने विभिन्न सामाजिक एवं साहित्यिक कार्य किए। आपका निधन मुरादाबाद में हुआ। शर्मा जी ने खड़ी बोली हिन्दी में उपदेशात्मक काव्य लिखा है जो मानस विनोद (प्रथम भाग) शीर्षक से आर्यसमाज मुरादाबाद द्वारा 1947 वि. में प्रकाशित हुआ। इसमें लावनी, होली आदि लोक काव्य की शैली में सुन्दर पद लिखे गए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

आर्यो ने कैसी होली रचाई
देश में धूम मचाई।
विद्या की पिचकारी बना कर धर्म की डण्डी लगाई।
सत के रंग में भरभर मारे, वेद के शब्द सुनाई।
रंगहु आत्मा को भाई।
आर्यो ने देखो, कैसी होली रचाई।।

शर्मा जी की लावनियों में देश दशा, गोरक्षा, आर्यसमाज प्रशंसा, नवीन वेदान्तियों की लीला, भारत का अभाग्योदय, आर्यावर्त का पूर्व गौरव जैसे विविध विषयों का वर्णन हुआ है। लावनी गेय शैली की रचना है अतः उसकी सामाजिक उपयोगिता को सभी ने स्वीकार किया है। इस संग्रह की लावनी संख्या 10 में कवि ने 'आर्यसमाज और पोप समाज का मिलान' शीर्षक के अन्तर्गत विचारधारा तथा रूढ़िवादी प्रणाली की रोचक तुलना की है। कहना नहीं होगा कि आर्यसमाज के प्रारम्भ में इस श्रेणी की कविताओं की कैसी उपयोगिता थी। लोक भाषा में लिखी गई तथा जन समाज में स्वीकृत शैली का अनुकरण करने वाली कविता ही किसी विचारधारा के प्रसार का सशक्त साधन बनती है।

33. पं. बलभद्र मिश्र

पं. बलभद्र मिश्र लखनऊ के निवासी तथा स्वामी दयानन्द के समकालीन थे। लखनऊ आर्यसमाज की स्थापना के साथ ही ये उसके सदस्य बने। मिश्रा जी 1882 से 1886 ई. तक उक्त आर्यसमाज के उपमन्त्री भी रहे। इन्होंने स्वामी दयानन्द के निधन पर दस शिखरिणी छन्द लिखे जो शाहजहांपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'शुभचिन्तक' से छपे। इन्हें आर्यसमाज गणेशगंज लखनऊ के इतिहास (1905 ई. में प्रकाशित) तथा दयानन्द दिग्विजयार्क (खण्ड 3) में भी उद्धृत किया गया है। इनके द्वारा स्वामी दयानन्द का पद्यमय जीवनचरित लिखे जाने का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त 'देशोपकारक व्याख्यान' तथा 'सत्य सिन्धु' शीर्षक दो अन्य काव्यकृतियों का भी नामोल्लेख आर्यसमाज का इतिहास (साहित्य खण्ड) में हुआ है।

पं. बलभद्र मिश्र ने आर्यसमाज के नियमों का भी पद्यानुवाद किया था। ब्रजभाषा

में निबद्ध ये नियम आर्यसमाज गणेशगंज लखनऊ के इतिहास में प्रकाशित हुए थे। इनसे इस कवि की काव्य क्षमता का पता चलता है। आर्यसमाज के संस्थापक की वन्दना करता हुआ कवि लिखता है--

बंदो विद्या भानु कलितम नाशक गुण मयन।
दयानन्द शुभ नाम, परोपकार जिन चित दियो।।

आर्यसमाज के प्रथम नियम को निम्न दोहे में प्रस्तुत किया गया है–

सब सद्विधा तासु जो जो पदार्थ कुछ आहि।
तासु मूल परमेश्वर या में संशय नाहि।।

तृतीय और चतुर्थ नियम को मिश्रजी ने चौपाइयों में अनूदित किया--

सद्‌विद्या की पुस्तक वेदा।
पढ़ऊ सकल सोई तजि तजि खेदा।।
तजहुं असत्य गहहु सब सत्या।
उद्यत रहहु धर्म को नित्या।।

अन्त में इन नियमों को पालने के माहात्म्य को एक सवैया छन्द में लिख कर कवि ने इस प्रकरण को समाप्त किया है।

34. पं. बाबूराम शर्मा

'आल्हा' शैली में उत्तम काव्य रचना करने वाले पं. बाबूराम शर्मा ग्राम इन्द्रावसी जिला इटावा के निवासी थे। इनकी उपलब्ध काव्य कृतियों का विवरण इस प्रकार है–

1. धर्म बलिदान (पथिक वियोग) : यह लघु काव्य रचना आर्यसमाज के प्रसिद्ध धर्म प्रचारक तथा हुतात्मा पं. लेखराम के जीवन तथा बलिदान का ओजस्विनी भाषा और शैली में निरूपण करती है। हिंन्दी के प्रसिद्ध वीर काव्य आल्हा (लेखक : जगनिक भाट) की शैली में यह कृति लिखी गई है। इसका प्रथम प्रकाशन श्रावण 1955 वि. में सरस्वती प्रेस इटावा से हुआ। 371 छन्दों में समाप्त इस काव्य में प्रथम मंगलाचरण के रूप में ओंकार का स्तवन किया गया–

ओंकार की स्तुति करियशे जो है सकल सृष्टि आधार।
सुरमुनि जाको ध्यान लगावै महिमा जाकी अपरम्पार।।
जागे सुमिरे जग सुख पावे, तीन ताप सब मिटें कलेश।
परमानन्द परम पद पावै, पावै परम धाम परमेश।।

भारतवर्ष की संक्षिप्त महिमा का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा—

रही भूमि प्रसिद्ध जगत में अचल कोष माया भण्डार।
पारस मणि जा भूमि देश की कथन करै सारा संसार।।
लोहरूप कंगाल विदेशी, छुअतई हुए गये मालामाल।
काल चक्र के हेर फेर सों रातदिना अब पड़े अकाल।।

निश्चय ही स्वदेश के अतीत कालीन वैभव का उपर्युक्त प्रकार से चित्रण करते समय कवि के हृदय में सत्यार्थप्रकाश की वे पंक्तियाँ विद्यमान रही होंगी, जिनमें स्वामी दयानन्द ने भारत भूमि को स्वर्ण भूमि के तुल्य बताया है और कहा है कि इसी पारस मणि के तुल्य आर्यावर्त को छूते ही लोहे रूपी दरिद्र विदेशी स्वर्ण अर्थात धनाढ्य हो जाते हैं।

इस प्रकार देश-दशा का वर्णन करने के पश्चात् कवि अपने चरितनायक की कथा की ओर उन्मुख होता है—

हिंया की बातें हिंया ही रह गई, अब आगे का सुनो विचार।
अब वर्णन है धर्म वीर का साखो सुनो आर्यन क्यार।।
जो कोई जाको ध्यान से सुनि हैं नर वैकुण्ठ धाम को जाय।
शूरवीर धर्मज्ञ कहावे अन्त धर्मवीर कहलाय।।

इस प्रकार पं. लेखराम के धर्म प्रचार हेतु गृह त्याग, मुसलमान मौलवियों से शास्त्रार्थ तथा अन्य घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत कर कवि पाठकों को आश्वस्त करता है कि यह महारानी (विक्टोरिया) का धर्म राज्य है, जिसमें कोई किसी पर अत्याचार नहीं कर सकता—

धर्म राज्य है महारानी को हिलमिल रहे सिंह अरु गाय।
जुल्म करे सो दुःख उठाये काटे उमर जेल में जाय।।

तथापि साम्प्रदायिक विद्वेष से ग्रस्त एक मुसलमान आततायी ने पं. लेखराम को शहादत का जाम पिला ही दिया। इकलौते पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर पं. लेखराम की माता का करुण विलाप पत्थरों को भी पिघलाने लगा—

नेक तो बेटा मुख से बोलो कछु माता को देव जवाब।
काम महर्षि को पड़ो अधूरो ईसा मूसा करे खराब।।
हाय पूत, हा प्राण पियारे, तुम तो चल भये संग छुड़ाय।
कौन को करके हमको छोड़ो सांची सांची देव बताय।।

अन्त में कवि 'लेखराम वेद प्रचार फण्ड' में मुक्त हस्त होकर दान देने की अपील

अपने पाठकों से करता है—

भरे नवरिया में जो पानी अरु घर तो बाढे दाम।
दोनों हाथ उलीचो भाई पूरण करे धर्म के काम।।

2. सजीवन बूटी : बाल विवाह के प्रचलन से देशवासियों में बल, वीर्य और पुरुषार्थ का जो शोचनीय ह्रास हुआ, उसे देखकर कवि ने 'सजीवन बूटी' शीर्षक एक अन्य काव्य आल्हा शैली में लिखा। इसका प्रथम प्रकाशन 1896 ई. के सितम्बर मास में हुआ। इस कृति की लोकप्रियता इसी बात से झलकती है कि संवत् 1966 वि. तक इसके 12 संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। कवि ने मंगलाचरण मे परब्रह्म को नमस्कार करते हुए उसके मुख्य नाम ओंकार का स्मरण मानव के पारमार्थिक हित के लिए आवश्यक बताया है—

ओंकार का सुमिरन करिये जो है मुख्य ईश का नाम।
जाके सुमिरे गति हुयी जावै पावे स्वर्ग लोक के धाम।।
वेद आदि जाके गुण गावे उपनिषदहु पुन करे विचार।
ऋषी मुनीश्वर ध्यान लगावे योगी रटें श्री ओंकार।।

वस्तुनः सजीवन बूटी वीर्य रक्षा और ब्रह्मचर्य के आदर्श की स्थापना करने वाला काव्य है। इसमें मानव शरीर में बीर्योत्पत्ति, वीर्य वृद्धि आदि शरीर शास्त्र से सम्बन्धित आयुर्वेदोक्त बातें बताने के पश्चात् वीर्य हानि के कारणभूत बालविवाह की भयंकर प्रथा का हृदय दहलाने वाला वर्णन किया है। ब्रह्मचर्य नाशक अन्य कारणों का विचार करने के पश्चात् कवि अपने पाठकों को प्रेरणा देता है—

ब्रह्मचर्य मर्याद चलावो बिगड़े आश्रम लेवसुधार।
निज सन्तति को वेद पढ़ाओ जासों होय जगत् उपकार।।
अन्तिम विनती यही है सबसे पीजो दूध बढैयो वीर।
शर्मा ऋषि आज्ञा शिर धर के ब्रह्मचर्य की कर तदबीर।।

आलोच्यकाव्य की सम्पूर्ण पद्य संख्या 571 है तथा प्रमुख छन्द आल्हा के अतिरिक्त कवित्त, सवैया आदि भी प्रयुक्त हुए हैं।

3. वेश्यालीला : आर्यसमाज के प्रारम्भकालीन लेखकों और कवियों ने सामाजिक कुरीतियों की आलोचना करते हुए अनेक रचनाएँ लिखीं। बाबूराम शर्मा रचित वेश्यालीला भी इसी कोटि की कृति है। दोहा, चौपाई और कवित्त शैली में लिखा गया यह काव्य वेश्यागामियों पर तीखा प्रहार करता है। इस काव्य के निम्न उदाहरण इस कथन की पुष्टि करते हैं—

कुलटा ज्वाला काम को ईधन तहाँ स्वरूप।
कामी हवन करे जहाँ धन यौवन सुअनूप।
जे कुपन्थ पग धरे नरशे/रहे न तेज बुद्धिबल लेशा।।
नर तन पाय विषय मन देहीं। पलट सुधा तें विष शठ लेहीं।।
बडेक भाग मानुष तन पावा। तिहि शव विषयन मांहि गबावा।।
इहि तनकर फल विषय न भाई। स्वर्गहु अल्प अन्त दुखदाई।।

35. बालकृष्ण सहाय (1882-1913)

रांची (बिहार) के विख्यात आर्यसमाज नेता और कार्यकर्ता श्री बालकृष्ण सहाय पेशे से वकील थे। वे बंगाल की धारसभा के सदस्य भी रहे। उस समय राजनैतिक दृष्टि से बिहार बंगाल प्रान्त के अन्तर्गत था। अंग्रेजी में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना करने के साथ-साथ श्री सहाय की काव्य लेखन में भी रुचि थी। 1896 में 'संगीत सुधाकर' के नाम से उन्होंने हिन्दी के प्रमुख भक्त कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन किया था। इसमें सूरदास, तुलसीदास, नानक और कबीर की चुनी हुई भक्तिनिष्ठ कृतियों का संग्रह बालकृष्ण सहाय के भाई वैरिस्टर श्याम कृष्ण सहाय ने इसे 1987 में प्रकाशित किया था।

संगीत सुधाकर में 150 भजनों को संकलित किया गया है। सूर और तुलसी के भी उन्हीं पदों को इसमें स्थान मिला है जो ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और शरणागत भाव को दर्शाने वाले हैं। अवतारवाद और साकारोपासना वाले पदों को इस संग्रह में स्थान नहीं मिला है। श्री सहाय ने स्वरचित कुछ पद भी इसमें सम्मिलित किए हैं। इन्हीं से उनकी भक्ति भावना और काव्य शक्ति का परिचय मिलता है। बालकृष्ण सहाय की इन भक्ति भावापन्न रचाओं में भक्त की दैन्य भावना सर्वत्र दिखाई देती है। सूरदास के प्रारम्भिक पदों की भाँति कवि सहाय अपने दोषों और दुरितों को व्यक्त करने में संकोच नहीं करता–

हे दुखहरण दया अब कीजे।
पापी लम्पट अतिकामी नहिं विद्या कछु जानौं।
सदा अधर्म अरु मिथ्यावादी सत्य कहों सुनि लीजे।।

अपने आराध्य से सहायता की याचना करता हुआ कवि कहता है–

हे प्रभु मोपर होहु सहाई।
मैं अति दीन हीन नहिं जानों विद्या भजन उपाई।
मिथ्या जाल भरो है तन में कौन उपाय तरन के भाई।।

शरीर की नश्वरता तथा सगे-सम्बन्धियों की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति को लक्ष्य में रखकर

वह कहता है—

जेहि तन के तुम करत भरोसा माटी में मिल जाई।
सुत दारा परिवार सहोदर अन्त समय कोई काम न आई।।

बार-बार शिक्षित करने पर भी चंचल मन नहीं मानता—

मन तोहि कोटि सिखावन दीन्हो।
संयम नियम सदा तोहि राखों कबहु कुपन्थ न कीन्हो।
तदापि न काम क्रोध मद त्यागो जग में अपयश लीन्हो।

परमात्मा की रचना चातुरी को देखकर कवि विस्मय-विमुग्ध हो उठता है—

तुम्हारी प्रभु रचना अगम अपार।
भाँति अनेक जगत विस्तारा कैसे कोई पावत पार।
कोटिन चन्द्र सूर तारागण असंख्य ब्रह्माण्ड विस्तार।
नाना रूप जग जीव प्रगट कियो जिनको नाहि शुमार।

कवि परमात्मा के उस रूप का ध्यान करता है जिसका उल्लेख वेद, उपनिषदादि ग्रन्थों में पाया जाता है। परमेश्वर के वे दिव्य गुण, कर्म तथा नाम इस प्रकार वर्णित किए गए हैं—

अमर अनीह अनादि एक वर, पातक पावन दुष्ट संहारक।
अन्तर्यामी निर्मल व्यापक, निराकार साम्राज्य प्रसारक।
मोक्षप्रद निरुपद्रव स्वामी, अर्थ सुसाधक नाश निवारक।
दीन दयाकर नायक शर्मद, सच्चे भक्त जनन हितकारक।।

कवि के ईश्वर के प्रति किए गए इन सम्बोधनों पर स्वामी दयानन्द के आर्याभिविनय ग्रन्थ का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। ब्रजभाषा में लिखा गया बालकृष्ण सहाय का यह सरस भक्ति काव्य हिन्दी के भक्तिकालीन काव्य का स्मरण कराता है।

36. पं. बुद्धदेव विद्यालंकार

विख्यात वैदिक विद्वान्, अद्भुत वाग्मी तथा शास्त्रों के मर्मज्ञ पं. बुद्धदेव विद्यालंकार जहाँ वैदिक विचारधारा के समर्थ व्याख्याता तथा शास्त्रीय रहस्यों को खोलने में विचित्र विलक्षणता रखते थे व वहाँ उन्हें सरस काव्य रचना का सहज वरदान भी प्राप्त था। 1972 वि. (1916 ई.) में उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी से स्नातक बनकर विद्यालंकार की उपाधि ग्रहण की। कुछ काल तक गुरुकुल में ही अध्यापन करने के पश्चात् वे आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के वरिष्ठ उपदेशक बनकर धर्मप्रचार के क्षेत्र में आए।

उन दिनों उनका कार्यक्षेत्र अविभाजित पंजाब तथा मुख्यालय लाहौर था। देश विभाजन के पश्चात् उनका प्रचार क्षेत्र और व्यापक हो गया और वे विभिन्न प्रांतों में प्रचारार्थ जाते थे। वे आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान और गुरुकुल कांगड़ी के कुलपति बने। 1968 में उनका दिल्ली में निधन हो गया।

विद्यालंकार जी के दो काव्यसंग्रह 'बिखरे फूल' तथा 'उसकी राह पर' प्रकाशित हुए हैं। इनकी कविता आर्यसमाज की भावधारा से ओत-प्रोत है। जो लोग आर्यसमाजी कविता को शुष्क, भावनाशून्य तथा शब्दाडम्बर मात्र कहकर उसकी गर्हा करते रहे हैं, उनके इस विचार का निरसन बुद्धदेव जी की कविता को पढ़ने से ही हो जाता है। वस्तुतः इनके काव्य में भक्ति की सरस धारा, रहस्यवादी उक्तियों का प्राचुर्य तथा अभिव्यक्ति का कौशल पदे-पदे दिखाई देता है। 'उसकी राह पर' में 38 कविताएँ संगृहीत हैं जो भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से मार्मिक तथा मनोजज्ञा हैं।

कवि को हिन्दी के भक्ति काव्य ने प्रभावित किया है किन्तु उसकी भक्तिभावना सूर, तुलसी आदि वैष्णव भक्त कवियों की भाँति अवतारों के प्रति समर्पित भक्ति के उद्गारों का अनुकरण नहीं करती। महर्षि शांडिल्य कृत भक्तिसूत्र में ईश्वर के प्रतिपरा अनुरक्ति को ही भक्ति कहा गया है।[12] अतः तथाकथित साकार भगवान् के प्रति ही भक्ति के उद्गार प्रकट किए जा सकते हैं, भक्ति की यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। अनन्य आस्था, अविचल प्रेम तथा समर्पण का भाव ही भक्ति के प्रमुख तत्त्व हैं। कवि बुद्धदेव की कविता में भी उपास्य प्रभु के प्रति ऐसा ही प्रणत भाव दृष्टिगोचर होता है। शैली की दृष्टि से उन्होंने मध्यकालीन सूर, मीरा आदि की शैली को स्वीकार किया है और इसके माध्यम से अपने भक्ति के उद्गारों को प्रकट किया है। निम्न पद पर विचार करें—

अंखियाँ उन दर्शन की प्यासी।
देखन चाहत उन रसनिधि को निशि दिन रहत उदासी।
पात-पात में जिनकी लीला भक्त हृदय के वासी।
जिनके प्रेम फंद में फँस कर छूट जाय सब फाँसी।।

हिन्दी के भक्तिकाव्य की परम्परागत प्रणाली पर लिखा गया यह पद अपने आराध्य की छवि को राम या कृष्ण जैसे व्यक्ति विशेष की बाह्याकृति में देखने की बात नहीं करता, अपितु कवि को पात-पात में उस सर्वव्यापक की छवि को देखना चाहता है। उसका उपास्य देव भक्तों के मन-मन्दिर में निवास करता है, वह अयोध्या या मथुरा निवासी नहीं है। पद की अन्तिम पंक्ति में एक मनोरम विरोधाभास के दर्शन होते हैं जिनकी व्यंजना का सौन्दर्य सहृदयगण ही अनुभव कर सकते हैं। जो परमात्मा के प्रेमपाश में बँधा, वह सांसारिक द्वन्द्वपाशों से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

निर्गुण भक्ति के उद्गारों को प्रकट करने में कवि बुद्धदेव को पराकाष्ठा की

सफलता मिली है। कवि अपनी करनी को देखकर लज्जित है। उसने तो कोई ऐसा सत्-कर्म या पुण्य नहीं किया जिसके कारण स्वयं उसके प्रभु आकर उसकी अकिंचन कुटिया को पवित्र करे, किन्तु उसको इस बात का विश्वास है कि परमपिता परम दयालु भी हैं और पतितों का उद्धार करना उनका सहज स्वभाव है। इन्हीं भावों की निम्न पद में अभिव्यक्ति मिली है—

लाज को लाज लगे।
× × ×
ना जाने मेरी कुटिया के कैसे भाग जगे।
दयाधनी तुम मेरे स्वामी आय रहे उमगे।
पतित जान मोहि आए उबारन नित ही प्रेम पगे।।

भक्ति का पावन तत्त्व कवि में नाना भावों और मनोविकारों को उत्पन्न करता है। तभी तो वह भगवान् की भक्ति-वत्सलता और मृदुलता को देखने के साथ-साथ स्वयं की धृष्टता पर भी दृष्टिपात करता है—तेरी मृदुलता मेरी ढिठाई। प्रकृति का यह विचित्र और आकर्षक संसार उसे प्रभु की लीलाओं का व्यक्त विलास दिखाई देता है—पवन का प्रवाह, और पादप पल्लवों की मर्मर ध्वनि उसे जगज्जननी द्वारा गाई गई मधुर लोरी प्रतीत होती है। उषा और संध्या की लालिमा आराध्य देव की नीराजना का चमकता थाल दिखाई देता है।

भगवान् अपने भक्त पर अनुकम्पा के रसकणों की वर्षा कर रहे हैं और उस विराट् प्रभु की कृपा के इन कणों को प्राप्त कर वह अपने आराध्य पर बलि जाता है—

मैया बरस-बरस रस बारी।
बूँद-बूँद पर वारी जाऊँ बार-बार बलिहारी।

परम्परागत भक्ति कविता में भी वर्षा का यह रूपक अनेक रूपों में आया है। कवि को इस बात का दुःख है कि उसका प्यारा प्रभु जब अपने आशीर्वाद की वृष्टि कर नदी, सागर, सरोवर आदि सभी जलाशयों को तो भर रहा है फिर उसका हृदयांगण ही उसके इस करुणा वारि से वंचित क्यों है ?

नदी सरोवर सागर बरसे लागी झरियाँ भारी।
मोरे अंगना क्यों ना बरसे, मैं क्या बात बिगारी।।

यदि प्रभु की कृपावृष्टि हो जाए तो भक्त जी भर कर उसमें स्नान करें। यही उसके जीवन की कृतकृत्यता और सार्थकता है—

तू बरसे मैं जी भर न्हऊँ, दोनों भुजा पसारी।
नयन मूँद कर नाचूँ अपना आप बिसारी।।

संसार सागर के तैरने वाली भक्त की जीवन नौका कैसे पार लगेगी ? मैं ना जानूँ मोरी नाव लगी कैसे छोर। कवि ने तो कोई ऐसे सत्कर्म भी नहीं किए, बल्कि उसके दुष्कर्म रूपी पत्थरों ने इस नौका के बोझ को बढ़ाया ही है। उधर आपद-विपद की घोर घटाएँ घिर आई हैं और प्रतिकूल परिस्थितियों के झंझावात ने स्थिति को और गम्भीर बना दिया है, किन्तु परमात्मारूपी केवट भला भक्त की जीवन नैया को असहाय अवस्था में क्योंकर छोड़ने लगा ? यही भाव इस पद की अवशिष्ट पंक्तियों में देखिए--

मैं तो भर-भर पाथर लादी घटा घिरी घनघोर।
आँधी उठी कौन से कारन तुम नहिं छोड़ी डोर।।

परमात्मा के दर्शन की व्याकुलता कवि को वैसी ही है जैसी स्वाति नक्षत्र में बरसने वाली वर्षा के लिए पपीहा को प्रतीक्षा रहती है। वह देखता है कि इधर तो भरपूर वृष्टि के कारण कास के फूल फूल गए हैं, पपीहे की प्यास भी बुझी है, किन्तु भक्त को अपने प्रियतम के दर्शनों की प्यास सता रही है, उसे बुझाने का क्या उपाय है ?

मोरी कौन बुझावे प्यास।
बरस गई झरियाँ सावन की फूलन आए कास।
स्वाति की बूँद बिना पपिहा के गल लौ आए साँस।।

कबीर ने माया को ठगिनी बताया था और उसे चुनौती देते हुए कहा कि वह व्यर्थ में ही आँखें मटकाकर भक्त को आकर्षित करने की चेष्टा कर रही है।[13] भक्त कबीर उसके फंदे में आने वाला नहीं है। बुद्धदेव जी भी माया के आकर्षण से मुक्त हो चुके हैं क्योंकि अब तो वे संसार की पालककर्त्री पराशक्ति जगदम्बा की गोद में बैठ गए हैं। यह दूसरी बात है कि भक्त तटस्थ भाव से माया के खेलों को देखता रहेगा क्योंकि वह समझ चुका है कि परमात्मा की वात्सल्यमयी गोद में बैठने के बाद भला वह माया के लुभावने दृश्यों से क्यों प्रभावित होगा ? यही भावसरणि निम्न पद्य में व्यक्त हुई है--

राह चलो अब माया रानी।
बहुत दिनों तक तेरे पथ की धूली हमने भर-भर छानी।
नैन सैन किसको दिखलावे,
चाल चले मस्तानी,

जगदम्बा की गोद बैठकर
सुध हमने बिसरानी।
चेरी बनकर नाचन चाहे कुछ न हमारी हानी।

भक्त अब माया के फंदे में फँसने वाला नहीं है। प्रकृति (माया) जीव की दासी बन भले ही जाए, उसकी स्वामिनी नहीं होगी। कवि ने प्रकृति को गति देने वाले तथा उसके सभी क्रिया-कलाप के संचालक परमात्मा को 'नटराज' से उपमित किया है। इस अद्‌भुत नर्तक के ताल और स्वर पर ही ब्रह्माण्ड रूपी मंच पर प्रकृति नटी भी अपना आकर्षक नृत्य करती है–

गूजत नाद अनन्त नाचत नट राजा।
नीला मंडप विशाल,
नारामणि खचित भाल।
पवन संग देता ताल,
तकल जगत बाजा।

अगणित उर्मियों वाला सागर और उसकी इन लहरों से उत्पन्न ध्वनि इस अद्‌भुत नृत्य के समय बजने वाली मृदंग ध्सनि है, विविध पत्र पुष्पों की साज-सज्जा ने ब्रह्माण्ड के इस सुन्दर मंच को विचित्र प्रकार से सजाया है–

अगणित उमड़त तरंग,
बाजत जलनिधि मृदंग।
पत्र पुष्प विविध रंग,
भाँति भाँति साजा।

किन्तु परमात्मा रूपी नटराज के इस नृत्य गान को सुनने की सामर्थ्य सामान्य व्यक्ति में तो नहीं होती, उस पराशक्ति से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेने वाला भक्त ही अपने कानों को मूँदकर अनहद नाद को सुन सकता है। इस लुभावने नृत्य विलास को देखकर भक्त अपनी सुध-बुध भुला बैठता है और उस नटराज के नृत्य में खुद भी शामिल हो जाता है। यही उसके जीवन की पूर्णता है, यही उसकी सर्वोपरि उपलब्धि है। इस स्थिति को पाकर उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। और वह परासिद्धि को प्राप्त कर लेता है–कविता का अन्तिम पद इसी भाव को व्यक्त करता है–

कान मूँद सुनत गान,
तिनकी हो एक तान।
नाचत तज आत्म भान,
साधत सब काजा।।

कवि का परमात्म-चिन्तन और उसकी आध्यात्मिक साधना लोकहित की भावना से सर्वथा विरहित नहीं हैं। वह अपने मन को प्रबोधन देता हुआ स्पष्ट कह देता है कि अब उसे विषयों के आकर्षण से स्वयं को मुक्त करना होगा तथा इन्द्रियों को लुब्ध करने वाले पदार्थों के प्रति अपना मोह त्यागना होगा।

सुन मन हित की बता बताऊँ।

कवि का चंचल मन अब तक खाने, पीने, देखने, सूँघने, स्पर्श करने के प्रलोभन से नहीं बच सका, किन्तु उसने स्वयं को लोकमंगल के लिए समर्पित करने की बात कभी नहीं सोची। यही भाव इस पद की अवशिष्ट पंक्तियों में देखा जा सकता है—

कभी न सोचा मूरख तूने काम किसके आऊँ।
इन हाथों से किसी दुःखी का कुछ तो दर्द मिटाऊँ।

क्षत्रिय की भाँति उसने कभी युद्ध में अपना रण-कौशल भी तो नहीं दिखलाया—

ले कृपाण रणसाज सँवारूँ कुछ जौहर दिखलाऊँ।
और नहीं तो आँसू तक ही पोंछ किसी के जाऊँ।।

कवि को इस बात की ग्लानि है कि मनुष्य का चर्म तो जूता बनाने के काम में भी नहीं आता, जब कि पशु के चमड़े का तो फिर भी उपयोग हो ही जाता है। तब उसका इतराना क्या व्यर्थ नहीं है—

ढोर मरे सोचे बन जूता जग के पैर बचाऊँ।
टुक विचार अपनी चमड़ी पर मैं क्योंकर इतराऊँ।

निराकार परमात्मा का चाहे चाक्षुष प्रत्यक्ष न किया जा सके किन्तु भक्त अपने हृदय की आँखों से उस दिव्य शक्ति के अलौकिक सौन्दर्य को तो निहार ही सकता है। पुनः प्रश्न होता है—उस अपूर्व रूपराशि को हृदय चक्षुओं से देखने के पश्चात् क्या उसका सौन्दर्य वर्णन करना सहज है। जिसे तुलसी ने 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' कहा, उसे बुद्धदेव जी ने निम्न प्रकार वर्णित किया—

उस छवि के क्या गीत सुनाऊँ।
जब देखी तब नयन नहीं थे नयन हुवे तब छवि नहिं पाऊँ।

कवि बुद्धदेव की भक्ति भावना वेदोक्त उपासना सिद्धान्त के अनुरूप है। वेदों में परमात्मा और जीव का सम्बन्ध पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक एवं गुरु-शिष्य का बताया गया है। किन्तु जिस प्रकार कपूत बेटे को अपने पिता का नाम लेने में भी

लज्जा का अनुभव होता है, उसी प्रकार यह कवि भी संसार के समक्ष परम उदार, कृपालु तथा वत्सल पिता का नाम धाम और अपने से सम्बन्ध की घोषणा कैसे करे ? यही जटिल समस्या उसके सम्मुख है–

> यह उलझन किस विध सुलझाऊँ।
> सब जग पूछे पिता कौन है,
> कैसे नाम बताऊँ ?

नाम बताए बिना काम भी नहीं चलता किन्तु नाम लेने में कवि को संकोच भी होता है–

> नाम लिए बिन काम चलै ना नाम लेत सकुचाऊँ।

उस ज्योतिपुंज परमात्मा को सांसारिक विषय-वासना की कालिख से पुता जीव भला कैसे देखे--

> ज्योति रूप है नाम तुम्हारा दरपन जो लिख पाऊँ।
> कारिख रूप देख अपने को आँचल में छिप जाऊँ।

चराचर विश्व के अधिपति के समक्ष अल्पज्ञ जीव की हस्ती ही क्या ? जिसने 'द्यावा पृथिवी' को स्वसामर्थ्य से साधारण कर रखा है, उसका पुत्र कहलाने में गौरव तो है किन्तु कवि स्वयं को उसका पात्र कैसे समझे ? इन्हीं भावों की मनोरम व्यंजना निम्न पंक्तियों में देखिए–

> विश्व चराचर के तुम स्वामी तुमरी थाह न पाऊँ।
> मैं अधिपति हूँ पाप पुंडाका कैसे लाज लगाऊँ।
> द्यावा पृथिवी को तुम धारे क्या तब पुत्र कहाऊँ
> मुझसे अपना आप न सँभले यही देख घबराऊँ।।

पं. बुद्धदेव विद्यालंकार का दयानन्द विषयक काव्य : ऋषि दयानन्द के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं को लेकर लिखे गए उनके कुछ गीत अपनी व्यंजनात्मक शैली तथा विदग्धतापूर्ण उक्तियों के कारण उत्कृष्ट काव्य की कोटि में परिगणित किए जा सकते हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लाहौर से प्रकाशित होने वाले मासिक मुखपत्र आर्य के माघ (1990 वि.) फरवरी 1924 के अंक में पं. बुद्धदेव विद्यालंकार (उनकी कविताएँ उन दिनों 'मराल' के नाम से छपती थीं) की एक ऐसी ही कविता प्रकाशित हुई जो हरिद्वार के 1924 वि. के कुम्भ में स्वामी दयानन्द द्वारा पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड़ने और तत्पश्चात् समस्त मतमतान्तरों एवं सम्प्रदायों के पाखण्डों को चुनौती देने के प्रसंग को चित्रित करती है। कविता का शीर्षक है

'दुंदुंभि बाज गई।' यहाँ इस लघु आकार की कविता का मूल पाठ देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

दुंदुभि बाज गई।
गूँज उठे गिरि कानन सारे पल गति और भई।
चौंक पड्योदल दम्भराज को सुन ललकार नई।
आज के बानक हैं अलबेले अद्‌भुत खेल ये झण्डा खेले।
लख 'मराल' के हिय विस्मय की छाया आन छई।।
ज्यों ज्यों झण्डा लहरें खावे लर्ज दम्भ की दूर भगावे।
दण्ड गडा लख शत्रु सैन्य ने घर की राह लई।।
हिमगिरि से गंगा बहती है सब दुनिया यों ही कहती है।
आज किसी ने हरिद्वार में गंगा उलटि दई।।

दयानन्द की धर्म क्रान्ति का यह जयघोष सुनकर दम्भराज के दल का चौंक पड़ना, गिरि कानन में सर्वत्र इस विजय दुर्दुभि का तुमुल नाद गूँज उठना चित्रमयी शैली में प्रस्तुत किया गया है। पाखण्ड खण्डनी पताका का आकाश में उड़ना ही दम्भ और पाखण्ड को दूर भगाने के लिए काफी है। जब अवधूत दयानन्द ने इस ध्वजा के दण्ड को धरती में गहरा रोप दिया तो मत सम्प्रदायों की सेना स्वतः ही परास्त हो गई और वह युद्ध से मुँह मोड़कर अपने घर की ओर प्रस्थान कर गई। कविता का अन्त तो कवि ने अत्यन्त चमत्कारपूर्ण ढंग से किया है। यह तो एक स्वीकृत तथ्य है कि गंगा हिमालय से निकलकर बहती है, किन्तु आज इस निर्भीक संन्यासी ने तो मत सम्प्रदायों के गढ़ हरिद्वार में आकर पाखण्ड और आडम्बर के विरोध में जैसा रणघोष किया है, उसे देखकर तो यही कहना होगा कि हरिद्वार में गंगा उलटकर बहने लगी।

स्वामी दयानन्द का दण्डी विरजानन्द की पाठशाला में अध्ययनार्थ उपस्थित होना और वहाँ किसी समय स्वामी जी को पाठ उपस्थित न होने पर गुरु जी द्वारा दण्डित किया जाना 'दण्ड की रीत' शीर्षक एक अन्य कविता में बुद्धदेव 'मराल' ने अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। आलोच्य कविता आर्य के माघ 1981 वि. (फरवरी 1925) के अंक में प्रकाशित हुई। स्मर्तव्य है कि यह 1925 ऋषि दयानन्द के जन्म की शताब्दी का वर्ष था। हमारे लिए इस कविता का मूल पाठ देने का लोभ संवरण करना भी कठिन है।

दण्ड की रीति निराली।
प्रीत की रीत निराली रटते कविजन जीभ थकाली।
आज हमारे मुख से सुनिये दयानन्द विरुदावली।।

प्रेमपगी उजियाली।
अद्‌भुत गुरु की लगी कचहरी दण्ड छुड़ावन वाली,
व्याकुल चेला कहे दण्ड हित मैंने झोली डाली।
मैं बिरवा यह माली।
ऐसे लाल को सान चढ़ाया विरजानन्द टकसाली !
तम हट छिटकी पूरब दिशि में तरुण अरुण रवि लाली।
झूमत डाली डाली।
विनय धनी कब ऐसे गुरुवर पाऊँ कौतुकशाली।
कहे दण्ड ले प्रभो मारिये चोट लगे कर खाली।
देह लोह की ढाली।।
कह मराल लख ऐसे बानक नाच उठी पुलकाली।
करन अर्चना लई प्रेम के मोतिन की भर थाली।
हिय रस लेत उछाली।।

इस कविता का आरम्भ ही विरोधाभासपूर्ण कथन के चमत्कार से होता है जब कवि कहता कि हम तो अब तक यही सुनते आए हैं कि प्रेम की रीत निराली होती है, किन्तु यहाँ दण्डी गुरु विरजानन्द और शिष्य दयानन्द के प्रसंग में तो दण्ड की निराली रीत की बात कहनी है। जब दण्डी जी ने स्वामी दयानन्द को पाठ स्मरण न होने के कारण शारीरिक दण्ड दिया तो जीवनचरितों में आता है कि स्वामी दयानन्द के शुभ चिन्तक नयन सुख जड़िया ने प्रज्ञाचक्षु महाराज से कहा कि प्रथम तो दयानन्द संन्यासी हैं और प्रौढ़ावस्था वाले हैं अतः वे दण्डार्ह नहीं हैं। इसी अभिप्राय को व्यजित करते हुए कवि मराल ने कहा कि एक ओर तो दयानन्द को दण्ड से मुक्त कराने के लिए गुरु महाराज की कचहरी (विचार सभा) जुड़ी किन्तु उधर चेला तो दयालु गुरु से दण्ड देने की ही याचना करता है। वह जानता है कि प्रज्ञाचक्षु महाराज तो उस माली की तरह हैं जिनका वात्सल्यपूर्ण लालन इस दयानन्द रूपी बिरवे को एक महान् पादप का रूप प्रदान करेगा। अतः उसके द्वारा दिए जाने वाले इस दण्ड में भी दण्डदाता के हृदय में विद्यमान स्नेह और हित भावना ही प्रधान है।

वस्तुतः दण्डी जी ने अपने शिष्य को दण्ड देकर खरे सोने की तरह प्रकाशमान बना दिया। उसी ने अज्ञान की तमस रात्रि को छिन्न-भिन्न कर ज्ञान के तरुण अरुण सूर्य को प्रकाशित किया जिससे सन्त समाज उषा काल में प्रफुल्लित डालियों की भाँति झूम उठा। यह शिष्य तो इतना विनीत है कि आगे होकर दण्ड की याचना करता है और कहता है कि मेरी देह तो वज्र के तुल्य कठोर है। इस अद्‌भुत दृश्य को देख कर जब प्रकृति भी रोमांचित है तो कवि का हर्ष पुलक से आन्दोलित होना कदापि आश्चर्यकारक नहीं है। कवि इस प्रसंग की अनन्य रमणीयता को देखकर

थाल भर-भर मुक्ता लुटाता है।

37. ब्रजमोहनलाल सक्सेना 'मोहन'

हिन्दी तथा सरल उर्दू में समान रूप से प्रसादपूर्ण काव्य रचना करने वाले ब्रजमोहनलाल सक्सेना का जन्म 21 अप्रैल 1891 को फर्रुखाबाद जिले के एक ग्राम में मुंशी राजकुमार के यहाँ हुआ। आपने कोटा राज्य के बारां कस्बे में काफी समय तक वकालत की। 1933 में वे कानपुर आ गए तथा विभिन्न स्थानों पर आजीविका हेतु पुरुषार्थ करते रहे। उनका निधन 18 मार्च 1968 को कानपुर में हुआ। 'मोहन' उपनाम से काव्य रचना करने वाले ब्रजमोहनलाल ने रामनवमी, रक्षाबंधन, जन्माष्टमी, विजयदशमी, दीपावली, होली, शिवरात्रि आदि पर्वो पर उर्दू की मुसद्दस शैली में भावपूर्ण काव्य रचना की है। शिवरात्रि प्रसंग में वे बालक मूलशंकर की शिव विषयक जिज्ञासा को निम्न पंक्तियों में व्यक्त करते हैं—

इसी दिन बात मन में मूलशंकर के यह आई थी।
कणिक चावल की जब चुहिया ने चढ़कर सर पै खाई थी।
कि यह वैसे हैं शिव जिनने न गर्दन तक हिलाई थी।
न खाई भेंट ही वह कुछ जो भक्तों ने चढ़ाई थी।
इसी चिन्ता से चिन्तित होके सुध बुध भूल कर तन की।
लगाने को पता शिव शक्ति का ली राह थी बन की।।

दीपावली के प्रसंग में कवि को दयानन्द के महाप्रस्थान का स्मरण हो आता है—

यह दीवाली हमारी कौम के अभिमान का दिन है।
सकल संसार में आदर्श और सम्मान का दिन है।
यह निर्धन का भी है केवल न यह धनवान का दिन है।
इसे गौरव है यह भी यह ऋषी निर्वाण का दिन है।
परस्पर इसलिए मिलकर मनाओ ऐसी दीवाली।
दिलों में रोशनी मोहन हो घर घर जिसमें उजियाली।।

ब्रजमोहनलाल 'मोहन' सच्चे राष्ट्रवादी थे। स्वाधीनता संग्राम के सेनानी महात्मा गाँधी तथा जवाहरलाल नेहरू के त्याग और बलिदान की प्रशंसा में उन्होंने अच्छी कविताएँ लिखी हैं।

सरल उर्दू में उन्होंने जो मुसद्दस (लम्बी कविता) लिखे उनमें मुसद्दस हालाते हिन्द, मुसद्दस पैग़ामे नेहरू मुसद्दस मौसमे बसन्त, मुसद्दस ज़माना लड़कपन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतवासियों को अधिकाधिक सेवावृत्ति (नौकरी) पर निर्भर रहना कवि को अखरता है। अतः वह देश के युवकों को व्यापार व्यवसाय में लगने

की प्रेरणा देता हुआ कहता है–

ए नौकरी के बन्दो अपना ख्याल बदलो।
दुनिया की चाल देखो और अपनी चाल बदलो।
सीखो फने तिज़ारत और अपनी चाल बदलो।
अब और ही करो कुछ इसका सवाल बदलो।
महाराज गाँधी जी तुमको बता रहे हैं।
आज़ादिए वतन का रस्ता दिखा रहे हैं।।

उनके द्वारा लिखी ग़ज़लें तथा रुबाइयाँ युगीन भावनाओं को व्यक्त करती हैं। भगवद्गीता को सार रूप में उन्होंने पद्यबद्ध किया है। उनका समग्र काव्य 'मोहन शती' पुस्तक में संगृहीत किया गया है।

38. पं. अभयप्रसाद 'अभय' (अभय मुनि वानप्रस्थ)

राजस्थानी तथा हिन्दी में समान रूप से सफल काव्य रचना करने वाले पं. भगवती प्रसाद अभय का जन्म ज्येष्ठ शुक्ला 15 सं. 1962 वि. को राजस्थान के इतिहास प्रसिद्ध नागौर शहर में एक कट्टर रूढ़िवादी पुष्करण ब्राह्मण परिवार में पं. उदयकृष्ण व्यास के यहाँ हुआ। इनके पिता वल्लभमत के अनुयायी पुष्टिमार्गीय वैष्णव थे, किन्तु अभयजी की रुचि शिव पूजा में भी। इन्हें व्यवस्थित रूप से शिक्षा प्राप्त करने के अवसर तो मिले ही नहीं, किन्तु स्वरुचि से ही अभय जी ने साधारण हिन्दी, गणित तथा फलित ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया। इनकी रुचि संगीत तथा भजन गायन में प्रारम्भ से ही रही जो आगे चलकर भजनोपदेशक के रूप में उनकी जीवन यात्रा का सम्बल बनी। इसी बीच इनकी भेंट आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उपदेशक प. रामसहाय शर्मा से हुई और उन्हीं की प्रेरणा से वे उक्त सभा में भजनोपदेशक बन कर धर्म प्रचारार्थ भ्रमण करने लगे। 1974 तक अभय जी ने देश में सर्वत्र घूमकर धर्म की धूम मचाई। 21 सितम्बर 1995 को उनका निधन हो गया।

अभय जी की अनेक काव्यकृतियाँ प्रकाशित हुई हैं जिनमें से प्रमुख हैं–वसन्त विहार (तीन भाग), फागुन-सुधार भजन, होली रो हेलो, धरती रो हेलो, अभय-भजनावली (चार भाग), अभय गीतांजलि (तीन भाग), राजस्थानी-रसधारा, श्रीकृष्ण सुदामा चरित, कथा कुंज, नागौर नगरदर्शन आदि। अभय जी की काव्य धारा बहुमुखी होकर प्रवाहित हुई है। एक ओर उन्होंने भक्ति, अध्यात्म और धर्म जैसे अनुभूति प्रधान विषयों को अपने काव्य में समाविष्ट किया है तो दूसरी ओर समाज सुधार, कुरीति-निवारण, राष्ट्र निर्माण, देश भक्ति तथा महापुरुषों के पावन चरितों की गाथाओं को भी स्वर दिया है। 'कथा कुंज' में उन्होंने कृष्ण सुदामा की मैत्री कथा, दानवीर कर्ण के भारत कथित उपाख्यान तथा गुजरात की एक लोककथा

पर आधारित जसमा ओडन की सतीत्व रक्षा के प्रसंग को काव्य रूप प्रदान किया है। प्रसिद्ध कवि नरोत्तमदास कृत सुदामा चरित ब्रजभाषा की एक कमनीय काव्य कृति है। इसी से प्रेरणा लेकर अभय जी ने राजस्थानी में इस पौराणिक उपाख्यान को प्रस्तुत किया है। सख्य भाव की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति देने वाले इस खण्ड काव्य की सरसता को अनुभव करने के लिए निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

सेवक रा मुख सूं सुण्यो विप्र सुदामा नाम।
मित्र प्रेम में मगन हो बोल्या श्री घनश्याम।।
प्यासे मित्र प्यारो सखा विप्र सुदामा राय।
धन्य घड़ी आयो अठे उठ्या श्याम हरषाय।।

द्वारिकाधीश कृष्ण से मिलते समय सुदामा के संकोच को कवि ने इस प्रकार अभिव्यक्ति दी–

मन में सोच्यो विप्र यूँ सुण गिरधर री बात।
इणरे लायक है नहीं चावल री सौगात।।

जब कृष्ण ने सुदामा द्वारा भेंट में लाए गए चावलों की दो मुट्ठियाँ चबा डालीं तो राजमहिषी रुक्मणी ने तीसरी मुट्ठी भरकर चावल फाँकने से उन्हें रोका। कवि नरोत्तदास ने इस भावपूर्ण प्रसंग को इस प्रकार व्यक्त किया था–

मुठि तीसरी भरत ही रुक्मणी पकड़ी बाँह।
नाथ तुम्हें कैसे भई सम्पति सों अनचाह।।

कवि अभय ने इस प्रसंग को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

दो मुट्ठी भर खा गए चावल श्री यदुनाथ।
तीजी मुट्ठी जद भरी रुक्मणी पकड़्यो हाथ।।

राजस्थानी रसधारा (प्रथम भाग) में कवि ने धार के राजा मुंज और उसके भतीजे भोज की इतिहास प्रसिद्ध कथा को काव्य का रूप दिया है। राज्य के लोभ में आकर मुंज ने भोज को मरवाने का षड्यन्त्र किया था किन्तु मन्त्री के चातुर्य से राजकुमार भोज के प्राण बच गए। इस प्रसंग को लेकर संस्कृत की निम्न सूक्ति प्रसिद्ध है–

मान्धता च महीपति कृतयुगालंकारभूतो गतः।
सेतुर्पेन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।।
अन्ये चापि युधिष्ठिर प्रभृतयो यातादिवं भूपते।
नैकेनापिसमं गता वसुमति, मुञ्ज त्वया यास्यति।।

अभय ने इस संस्कृत पद्य का राजस्थानी रूपान्तरण इस प्रकार कि है–

सतयुग में हुआ चक्रवर्ती नृप मानधाता बलशाली।
धनराज खजानो अठे छोड़ गया धरती साथ ना चाली।
समंदर माथे पुल बॉध्यो मारयो रावण दुखदाई।
श्रीराम की विजय पताका दुनिया में फहराई।
सारा जग ने जीतणवाला वीर मौत सूं हाररया।
राजपाट धन धरती तजकर खाली हाथ सिधार्‍या।

अब भोज की अन्तिम व्यंग्यात्मक उक्ति देखें–

पण चाचाजी आपरे साथे आ धरती जावे ली।
अभय आपरा यश ने सारी दुनिया ही गावे ली।।

दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर अभय भजनावली का प्रकाशन हुआ। इसमें कव्वाली, लावणी, भजन आदि काव्य-रूपों के अतिरिक्त सवैया जैसे शास्त्रीय छन्दों का भी प्रयोग किया गया। आर्यसमाज के महत्त्व का निरूपण उन्होंने निम्न सवैया में किया है–

उस तनकी कौन बड़ाई करे जिस तन से किया शुभ काज नहीं।
वह नारी है निंदा के योग्य सदा, जिस नारी के नैनों में लाज नहीं।
समझो उस देश को नरक अभय जिस देश में राज सुराज नहीं।
उस नगरी की शोभा फीकी है जिस नगरी में आर्यसमाज नहीं।

अभय जी के खड़ी बोली काव्य में ईश्वर भक्ति, देश के अतीत गौरव का गान, भारतीय संस्कृति के प्रतिष्ठाता महापुरुषों की कीर्ति गाथा, समाज सुधार तथा स्वदेशोत्थान आदि अनेक विषय आए हैं। उनके भक्ति काव्य में भक्त की दैन्य भावना तथा प्रभु के करुणामय स्वरूप की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इसका उदाहरण है अभय जी का निम्न पद–

नाथ अब तो न देर लगाओ।
दीनबंधु करुणा के सागर दया दृष्टि दिखलाओ।
बढ़ते जाते हैं अन्यायी धर्म न जाता कहीं दिखाई।
दुख की घोर घटाएँ छाई शान्ति सुधा बरसाओ।।

'नागौर नगर दर्शन' अभय जी की एक वर्णन प्रधान रचना है। इसमें इतिहास प्रसिद्ध नागौर नगर का हृदयग्राही चित्रण हुआ है। कवि स्वयं इस नगर कर निवासी है, इसलिए उसका नागौर के प्रति विशेष स्नेह है। इस लघु काव्य में अभय जी

ने नगर की प्राचीन और वर्तमान स्थिति, वहाँ के दर्शनीय स्थानों का चित्ताकर्षक वर्णन किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

खरो नगीनो ज्यू नागीणो चमक रयो जग मॉई।
नागीणो नित को भलो कह कविजन महिमा गाई।।

तथा–

नागीणा की धरती नामी नर रत्नां री खान।
जनम्यां है कई सन्त सूरमा देश भक्त विद्वान्।।
वीर शिरोमणि रणबंका राठौड़ अमर सरदार।
मुगलां को दरबार धुजायो चमकी अमर कटार।।

वस्तुतः अभय जी के काव्य में राजधानी की रत्नगर्भा धरती की सौंधी सुवास दिखाई पड़ती है। उनकी कविता में जो स्थानीय रंग उभरे हैं उन्हीं के कारण यह काव्य लोकप्रियता की कसौटी पर खरा उतरा है। होली के अवसर पर गाए जाने वाले मारवाड़ के प्रसिद्ध लोकगीत 'धूंसो बजे रे' की तर्ज पर अभय जी के गीत की पंक्तियाँ इसकी साक्षी हैं।

39. भद्रजित 'भद्र'

छायावादी शैली में सुन्दर भावपूर्ण काव्य रचना करने वाले भद्रजित भद्र की शिक्षा गुरुकुल वृन्दावन में हुई थी। उन्होंने आयुर्वेद का विशद अध्ययन किया और आयुर्वेद शिरोमणि तथा आयुर्वेदाचार्य की उपाधियाँ प्राप्त कीं। उन्होंने गुरुकुल चित्तौड़ में अध्यापन कार्य किया था। जब पं. हरिशंकर शर्मा आर्यमित्र के सम्पादक थे तो वे प्रायः भद्रजी की कविताएँ इस पत्र में प्रकाशित करते थे।

15 जून 1933 के मित्र में भद्रजित भद्र की 'चिन्तन' शीर्षक एक सुन्दर कविता प्रकाशित हुई। प्रकृति के लीला विलास तथा निसर्ग के सौन्दर्य के पीछे कौन-सी अदृश्य शक्ति है ? पुष्पों को यह सौन्दर्य किसने दिया, आकाश को असीमता कहाँ से प्राप्त हुई, इन और ऐसे ही प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने का कवि का प्रयास उसे छायावादी कवियों की श्रेणी में ला बिठाता है।

इन छोटे-छोटे फूलों ने यह प्रियतम रूप कहाँ पाया ?
जिसमें कि अनन्त समाया है आकाश हृदय किससे लाया ?

कवि ने स्वयं ही इन प्रश्नों का उत्तर दिया है–

निश्चय ही इन सबके पीछे कोई महान है निहित हुआ।
वह मधुमय गन्ध न छिप पाया चाहे कितना ही पिहित हुआ।

20 अप्रैल 1933 के आर्यमित्र ने भद्र की एक अन्य कविता 'जीवन की सार्थकता' शीर्षक से प्रकाशित की। कवि ने वंशी को सम्बोधित कर कहा कि बाँसुरी में छिद्रों का होना कोई अनुताप की बात नहीं है। यदि ये छिद्र ही न रहें तो भला इस वंशी से वह मधुर स्वर लहरी कैसे गूँज उठेगी जो श्रोता समाज को आनन्दमग्न करने की क्षमता रखती है। उपस्थिति में तो बाँसुरी मात्र बाँस का टुकड़ा ही रह जाएगी—

वंशी कर न वृथा अनुताप।
सरले, जिन छिद्रों के कारण तू करती है खेद।
यदि वे बन्द कर दिये जावें तब जानेगी भेद।
मधुर मोहिनी स्वर लहरी का रह न जाएगा लेश।
तू बस एक बाँस की टुकड़ी रह जाएगी शेष।।

बाँसुरी के व्याज से कवि ने जीवात्मा को भी प्रबोधित किया है। उस विश्वकर्मा ने ही जीवात्मा को यह शरीर प्रदान किया है। बाँसुरी के छिद्रों के ही तुल्य इस शरीर की इन्द्रियाँ भी असंयत हैं किन्तु उनका संयम ही जीवात्मा की उपलब्धि है—

उस सर्वज्ञ विश्वकर्मा की कृति अपने को मान।
त्रुटिमय, व्यर्थ न जिसका भव में होता कभी विधान।
छिद्र असंयत इन्द्रियगण हैं विषमय शाप समान।
इनका संयम ही तुझको हो जावेगा वरदान।।

इस प्रकार अन्योक्ति शैली का सहारा लेकर कवि ने एक अनूठा भाव विधान प्रस्तुत किये है।

18 मई 1933 के आर्यमित्र में भद्र की 'एकान्त स्मृति' शीर्षक एक अन्य भावपूर्ण रचना प्रकाशित हुई। चित्तौड़ के समीप प्रवाहित होने वाली गम्भीरी नदी के तट पर बैठा हुआ कवि सांध्य समीर का सुखद आलिंगन प्राप्त करता है। सांसारिक कोलाहल से क्षणभर के लिए अवकाश लेकर जब कवि सरिता तट पर पहुँचा तो यहाँ के शान्त एकान्त ने उसके भावों को उद्वेलित किया और वह अपने विगत का पुनरावलोकन कर सका—

गम्भीरी के वक्षस्थल से लहरें जो उठती हैं प्रतिपल।
वे तट की ओर दौड़ती सी कहती हैं तू भी तट पर चल।
यह सांध्य समीर सुखद शीतल, करता है जब जब स्पर्श उदार।
होता है हृदय समुत्कण्ठित, जगने से कोई विस्मृत प्यार।।

यदि भद्रजित भद्र का समग्र काव्य मिल पाता तो छायावादी शैली के इस उत्कृष्ट आर्य कवि की काव्य शक्ति का समुचित समीक्षण सम्भव होता।

40. स्वामी भीष्म

आर्यसमाज की प्रचार प्रणाली में संगीतमय भजनों के साथ उपदेश देने का प्रचलन आरम्भ से ही रहा है। गायन के माध्यम से जो धर्मोपदेश आर्य प्रचारक विगत एक शताब्दी से देते रहे हैं उससे जन साधारण ने अपनी धार्मिक निष्ठा को कायम ही नहीं रखा, समाज तथा राष्ट्र के प्रति उनकी जागरूकता भी निरन्तर बढ़ी है। ऐसे ही एक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय भजनोपदेशक थे स्वामी भीष्म जो सुदीर्घ काल तक अपनी ओजस्विनी वाणी तथा प्रेरणादायी भजनों से उत्तरभारत के जनमानस को आन्दोलित एवं प्रभावित करते रहे। उनका निधन लगभग सौ वर्ष की आयु में हुआ।

स्वामी भीष्म की कविता बहुरंगी है। धर्म, अध्यात्म, दर्शन, समाज सुधार, कुरीति निवारण, राष्ट्र प्रेम, महापुरुषों का गौरवगान आदि नाना विषय उनके काव्य में समाविष्ट हैं। आध्यात्मिक विषयों में उन्होंने ईश्वर का स्वरूप निरूपण, योग द्वारा परमात्मा की प्राप्ति, ओम नाम का महत्त्व जैसे सन्दर्भों की विवेचना की है। दार्शनिक प्रकरणों की चर्चा करते हुए वे ईश्वर जीव तथा प्रकृति की अनादिता, मायावाद का खण्डन जैसे विषयों को सरल और रोचक पद्य शैली में प्रस्तुत करते हैं। ऋषि दयानन्द की महिमा का वर्णन करने में तो उनकी लेखनी स्वतः स्फूर्त हो उठती है। आचार्य प्रवर के प्रति अपने भाव-कुसुमों को समर्पित करते हुए वे लिखते हैं—

देश में अन्धकार देख दीन दुखी ख्वार देख,
करने को उद्धार देख, प्रकट आनन्द कन्द थे।
वेदाज्ञा भंग देख, गौकन्या अपंग देख,
भाई भाई में जंग देख, चमके पूर्ण चन्द थे।
सुख और सम्पत्ति त्याग घर से निकले थे भाग,
बढ़ सत्य मार्ग पर सबके काटे फन्द थें।
सबको वैदिक ज्ञान दे सत्यासत्य पहचान दे,
भीष्म जी तू ध्यान दे ऐसे स्वामी दयानन्द थे।।

पुनः लोक प्रचलित गायन शैली में उनकी निम्न पंक्तियाँ देखें—

एजी एजी कवि के हैं कितने अहसान।
विद्वानों को मालूम है कोई क्या जाने नादान।। आदि

आर्यसमाज के सिद्धान्तों की भजन काव्य के माध्यम से व्याख्या प्रस्तुत करने में कवि भीष्म जी को पूर्ण सफलता मिली है। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश महिमा, वेदों

का महत्त्व, यज्ञ महिमा, ब्रह्मचर्य प्रशंसा, गोमहिमा, पाखण्ड खण्डन, मांसाहार निषेध, मद्यपान खण्डन आदि विषयों पर पर्याप्त लिखा है। स्वदेश भक्ति, राष्ट्रीय एकता जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के साथ-साथ देश विभाजन की विभीषिका चीन और पाकिस्तान के आक्रमण आदि सामयिक समस्याओं पर भी उन्होंने स्वरचित भजनों के द्वारा श्रोताओं को जागरूक किया। कवि भीष्म ने भारतीय इतिहास के गौरवमय प्रसंगों, अतीत के महापुरुषों तथा सन्नारियों के अनुकरणीय इतिहास को भी अपने भजनों के द्वारा पाठकों तक पहुँचाया है। दिल्ली का अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज, गुरु गोविन्दसिंह, पन्नाधाय का बलिदान, हाडा रानी का आत्म त्याग, बंदा वैरागी की वीरता जैसे इतिहास के ज्वलन्त प्रसंग भीष्म जी की कविताओं के विषय बने हैं। भीष्म रचित इस भजन साहित्य की सूची काफी लम्बी है। भीष्म अभिनन्दन ग्रन्थ में दिए गए विवरण के अनुसार उनके काव्य ग्रन्थों तथा इतिहास शैली के भजन संग्रहों की कुल संख्या 109 है।

सन्दर्भ : स्वामी भीष्म अभिनन्दन ग्रन्थ स्वामी भीष्म अभिनन्दन समारोह समिति द्वारा 1981 में प्रकाशित।

41. पं. भूरालाल कथाव्यास

कवि और व्यंग्यकार पं. भूरालाल कथाव्यास का जन्म 1939 वि. (1882 ई.) में राजस्थान के भीलवाड़ा जिलान्तर्गत शाहपुरा कस्बे में श्री रामपाल व्यास के यहाँ हुआ। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उपदेशक रहकर आपने धर्म प्रचार में अपना योगदान दिया। वे शाहपुरा राज्य में कथावाचक के पद पर भी रहे फलतः कथा व्यास कहलाए। इनकी स्फुट कविताएँ आर्यमार्तण्ड, महिला, सुकवि आदि पत्रों में प्रकाशित होती रहीं। सन्तान के अभाव में इन्होंने अपने परिवार के एक युवक नरेन्द्र को अपने दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। इनका निधन आषाढ़ कृष्णा 2 सं. 1997 वि. (1940 ई.) को हुआ।

'भारतीय गीत' तथा 'काव्य कुंज' इनकी काव्यकृतियाँ हैं। शाहपुरा स्थित रामस्नेही सम्प्रदाय के आचार्य निर्भयराम जी की प्रशंसा में इन्होंने 'निर्भयरामाष्टक' शीर्षक काव्य की रचना भी की थी।

कथाव्यास जी का काव्य अनेक धार्मिक तथा सामाजिक विषयों को लेकर लिखा गया है। दलितोद्धार, शुद्धि एवं संगठन जैसे सामाजिक प्रश्नों से सम्बन्धित इनकी रचनाएँ अत्यन्त सशक्त तथा प्राणवान् हैं। उनमें व्यंग्य, विनोद तथा चुभन है। सरल भाषा के माध्यम से ये अपनी बात को प्रभावशाली शैली में कहने में सर्वथा सफल हुए हैं।

काव्य कुंज में संगृहीत कविताएँ दलितोद्धार, हिन्दू संगठन, हास्य और व्यंग्य तथा स्फुट पद्य शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकाशित हुई हैं। 'हर हर गंगा' शीर्षक व्यंग्यात्मक

कविता हमारी सामाजिक बुराइयों पर तीव्र कटाक्ष करती हैं–

बाल ब्याह की पकड़ी टेक।
विधवा ब्याह करो मत एक।
तनिक बात में जूझें भट्ट।
जातिच्युत कर देवें झट्ट।
लेकर रांड भगे हुरदंगा।
बोलो भाई हर हर गंगा।।

कवि ने मयूर, शूकर, बादल, उलूक, हंस तथा पतंग को सम्बोधित कर अनेक सुन्दर अन्योक्तिपूर्ण कविताएँ भी लिखी हैं। इन अन्योक्तियों के द्वारा वाचक समुदाय को प्रेरणाप्रद उपदेश दिए गए हैं। पतंग विषयक निम्न अन्योक्ति में ईर्ष्या त्याग की प्रेरणा की गई है–

दीप पर पड़ क्यों मरे पतंग ?
ईर्ष्यावश अति क्षुभित हुआ तू देख दीप का रंग।
पर वह अपने पद पर दृढ़ है तू क्यों जारे अंग ?

पं. भूरालाल ने अपनी मातृभाषा राजस्थानी में भी कुछ मार्मिक कविताएँ लिखी थीं। इनमें 'पाप छोड़बा पुष्कर चछलो' शीर्षक विशिष्ट महत्त्वपूर्ण है। तीर्थगुरु पुष्कर में कार्तिकी पूर्णिमा पर आयोजित मेले में सम्मिलित होने के लिए तत्पर एक धर्मभीरू यात्री का यह आत्मकथन कवि द्वारा अत्यन्त मनोरंजक, किन्तु व्यंग्य प्रधान शैली में लिखा गया है। तीर्थों पर भरने वाले मेलों के अवसर पर भी आर्यसमाज के उपदेशक अपनी कथा वार्ताओं द्वारा श्रोताओं को सन्मार्ग का पथिक बनने की प्रेरणा देते हैं, किन्तु केवल जलाशयों में स्नान करने से ही पुण्यार्जन करने वाला श्रद्धालु भक्त भला इन उपेदशों को क्यों सुनने लगा ? तभी तो वह इन छद्मभक्तों के प्रति अपनी झुँझलाहट व्यक्त करता हुआ कहता है–

ए कुण है ? उपदेशक आया, है सब म्हांका सुण्यां सुणाया।
अठे घड़ी आराम नहीं है, यौंके कुछ भी काम नहीं है।
बंके बावलो बैठो ठालो, पाप छोडवा पुश्कर चालो।।

निश्चय ही पं. भूरालाल का काव्य समाज सुधार के प्रति कवि की प्रतिबद्धता का सूचक है।

42. मुंशी मथुराप्रसाद

'सत्यदर्प' शीर्षक काव्य के रचयिता मुंशी मथुराप्रसाद के पिता का नाम मुंशी गंगादीन

था। ये भारद्वाज गोत्रीय कायस्थ थे और उत्तर प्रदेश के जिले सीतापुर के ग्राम बाड़ी के निवासी थे। सत्यदर्पण की भूमिका से विदित होता है कि इसका रचना काल 1899 ई. है। इसका द्वितीय संस्करण 1960 वि. (1903 ई.) में प्रकाशित हुआ। समग्र ग्रन्थ पाँच अध्यायों में विभक्त है। इनमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं—प्रथम अध्याय में ईश्वरप्रार्थना के अनन्तर कवि ने परमात्मा के अनेक नामों की व्याख्या करते हुए आर्यावर्त देश के अतीत तथा वर्तमान की दशा का वर्णन किया है। यजुर्वेद पर लिख गए आचार्य महीधर के भाष्य की आलोचना भी इस अध्याय में उपलब्ध होती है तथा प्रजापति एवं उसकी दुहिता के वैदिक अलंकार को भी स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय अध्याय में पुराणों की परस्पर विरुद्ध बातों का विवेचन करते हुए वेद वर्णित जगदुत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। तृतीय अध्याय में गंगा, यमुना, प्रयाग आदि तीर्थ समझे जाने जलाशयों की वास्तविकता निरूपित की गई है। चतुर्थ अध्याय में ईश्वर, जीवन तथा प्रकृति की भिन्नता बताते हुए त्रैतवाद की सिद्धि की गई है। अंतिम अध्याय में वर्णाश्रम व्यवस्था का निरूपण किया गया है।

दोहा तथा चौपाई छन्दों में रचित इस काव्य में कहीं-कहीं मनहरण कवित्त, मालती सवैया तथा सोरठा आदि छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। कविता की भाषा ब्रजमिश्रित खड़ी बोली है। कविता के बीच-बीच में संस्कृत के शास्त्र ग्रन्थों के उद्धरण भी दिए गए हैं। कविता में प्रासादिकता तो है ही, कहीं-कहीं अनुप्रास का चमत्कारपूर्ण प्रयोग भी मिलता है। उदाहरणार्थ मंगलाचरण का प्रथम पद्य अवलोकनीय है—

पर्वत पषाण पौन पंकज पीपल पीन
पादपन पात पात पल्लव लतान में।
दशहुं दिसानन मैं द्रुम बेलि कानन में
पुष्पन में पानन में जल कृशान में।
मथुराप्रसाद कहि कहा लौं बखान करो।
व्योम विदिशान अन्तरिक्ष शशि भान में।
घट घट वासी अविनाशी सुख राशी प्रभु।
पूरन पुरुष परिपूरन जहान में।।

43. डॉ. मथुराप्रसाद मानव

डी. ए. वी. कॉलेज फीरोजाबाद के प्रधानाचार्य पद से सेवानिवृत्त डा. मथुराप्रसाद 'मानव' एक सफल कवि हैं। उनका जन्म 17 सितम्बर 1916 को मैनपुरी जिले के देवीनगर ग्राम में हुआ। उन्होंने स्वाध्याय के बल पर एम. ए. किया तथा आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि भी ग्रहण की। प्रसिद्ध पत्रकार पं. बनारसीदास

चतुर्वेदी के सान्निध्य में रहने के कारण उनकी लेखकीय तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों का निरन्तर विकास होता रहा। उनकी अनेक काव्य कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें मुख्य हैं—साधना शतक, जीवन के गीत, प्रमोद पर्जन्य, जीवन-ज्योति, प्रमोद प्रत्यूष, आलोकनाद तथा ओज की गंगा।

'मानव' की कविता में शैली सौन्दर्य, शब्द-लालित्य, भाव प्रवणता तथा परिमार्जित भाषा के गुण पाए जाते हैं। साधना शतक में घनाक्षरी छन्द को अपनाया गया है। घनाक्षरी लिखने में मानव जी को व्युत्पन्नता प्राप्त है। खड़ी बोली में ऐसी फड़कती घनाक्षरियाँ बहुत कम लिखी गई हैं। 'जीवन के गीत' जैसा कि नाम से ही विदित होता है, गीतों का संग्रह है। इन गीतों में कवि का जीवन-दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। कवि की दृष्टि में संघर्ष ही जीवन का दूसरा नाम है। यह कुसुम कोमल शैया नहीं है। साहस, शौर्य और बाधाओं पर विजय पाने का नाम ही जीवन है। उनके काव्य का सौन्दर्य निम्न घनाक्षरी में स्पष्ट अभिव्यक्त हुआ है—

भावना खिलाती है फबीले फूल मानस में,
भावना बनाती जग जीवन लुभावना।
भावना विहीन जन मानस मरुस्थल है,
भावना बसन्त पतझार में सुहावना।
भावना बयार है मलय मृदु गंध युक्त,
भावना पयोद प्यार वारि बरसावना।
भावना है सुखद अधार जगजीवन का,
भावना सितार भारती का मनभावना।।

44. मांगीलाल गुप्त कविकिंकर

कवि, लेखक तथा पत्रकार सेठ मांगीलाल गुप्त कविकिंकर का जन्म मध्यप्रदेश के नीमच (छावनी) नगर में 2 मई 1858 ई. को एक अग्रवाल वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम श्री लादूराम था। प्रारम्भिक शिक्षण नीमच में हुआ। तदनन्तर इन्होंने स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। शीघ्र ही आप आर्यसमाज के सम्पर्क में आए और 1906 ई. में वैदिकधर्म प्रचारिणी सभा की स्थापना की। 1910 ई. में नीमच में आर्यसमाज की स्थापना भी इन्हीं के पुरुषार्थ से हुई। दयानन्द अनाथालय अजमेर के मासिक पत्र अनाथरक्षक के ये अनेक वर्षों तक सम्पादक भी रहे। कविकिंकर के नाम से इनकी अनेक काव्य रचनाएँ समसामयिक पत्रों में प्रकाशित हुईं। 1 अप्रैल 1918 को इनका निधन हो गया।

इनके निम्न काव्य संग्रह प्रकाशित हुए—

भक्त मन रंजन—भजनों का यह संग्रह 1899 ई. में प्रकाशित हुआ।

कला में किंकर (काव्य संग्रह)

गाने की चंद चीजें—चार भागों में लावनी संग्रह।

कविकिंकर की अधिकांश कविता लावनी छन्द में लिखी गई है। इन्होंने लावनी का प्रयोग पुरातन उपाख्यानों, सामाजिक समस्याओं तथा उपदेश पूर्ण प्रसंगों के निबंधन में किया है। कहीं-कहीं इनकी कविता में चमत्कार प्रदर्शन की धुन दिखाई पड़ती है। ऐसी स्थिति में कविता प्रासादिकता खोकर तमाशा बन कर रह गई है। लावनी संग्रह के चतुर्थ भाग में कविता के नाम पर की गई एक ऐसी ही कसरत को देखिए—

क्षिति पर कमल कमल पर काला, काले पर कमला के कान्त।
कमलापति के कर में पंकज, पंकज पर कमलासन शान्त।
कमलासन के कर में कागज, कागज में कर्मों का काल।
कलुषित कर्म काटने वाली कामदेव पितु की करवाल।
कमलासन पर कलित कमण्डलु कलित कमल के कण सुन्दर।।

किन्तु ऐतिहासिक तथा सामाजिक विषयों को लेकर लिखी गई इनकी लावनियाँ अधिक सरस तथा भावपूर्ण हैं।

भाषा श्रुतबोध—छन्दों का ज्ञान कराने वाला ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न संस्कृत वर्णवृत्तों के लक्षण तथा उदाहरण पृथक्-पृथक् पद्यों में प्रस्तुत किए गए हैं। काव्योपवन सुमन (पुष्पांजलि) में कविकिंकर ने संस्कृत तथा हिन्दी के कतिपय रससिक्त पद्यों को पाठकों के मनोरंजनार्थ एकत्र किया है।

आख्यान प्रधान काव्य लिखने में कविकिंकर को विशेष नैपुण्य प्राप्त था। परोपकारी मासिक के 1964 वि. के अंकों में प्रकाशित धारावाही सज्जनचरित (उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह शीर्षक विस्तृत जीवनीपरक निबन्ध) में कवि ने स्वामी दयानन्द के उदयपुर आगमन तथा दीर्घकालीन प्रवास का काव्यात्मक वर्णन किया है। इसी प्रकार महाभारत वर्णित विदुलोपाख्यान को भी 'प्राचीन स्त्रीजगत्' शीर्षक से कवि ने काव्यबद्ध किया है। वीर नारी विदुला के उद्गारों को कवि ने अत्यन्त ओजस्वी शब्दों में इस प्रकार वर्णित किया है—

सदा क्षमा ही करत जो क्रोध नहीं जिस पासं
पुरुष नहीं वह जानिए उसे नपुंसक दास।।
दया और उद्योग तज जो रहते भयभीत।
धन बिनाशकारी वही, यह मेरी परतीत।।

45. मुन्नालाल मिश्र (जन्म 22 अप्रैल 1907)

हैदराबाद (आंध्रप्रदेश) निवासी पं. मुन्नालाल मिश्र पं. रामचन्द्र देहलवी के व्याख्यानों को सुनकर आर्यसमाजी बने। वे हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह में जेल गए तथा उन्होंने पंजाब के हिन्दी सत्याग्रह तथा गोरक्षा आन्दोलन में भी भाग लिया। मिश्र जी की कविता उपदेश प्रधान है। इसमें धर्म, अध्यात्म, नीति-उपदेश जैसे विषय वर्णित हुए हैं। इनके दो काव्य ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। प्रथम मिश्र पद्यांजली का प्रकाशन 1978 में हुआ। उपनिषदों की प्रसिद्ध प्रार्थना 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिगर्मय, मृत्योर्मामृतं गमय' का आधार लेकर लिखा गया उनका निम्न पद नितान्त भावपूर्ण है–

> असत तज सत की ओर चलें।
> करिये दया दयामय ऐसी कभी न हम पिघलें।
> अंधकार से हट कर जायें हम प्रकाश की ओर।
> निकल मृत्यु से प्राप्त करें हम प्रभो अमृत का छोर।।
> सदा हम फूलें और फलें।

कुण्डलिया छन्द लिखने में मिश्र जी सिद्धहस्त हैं। वैदिक कुण्डलिया (प्रकाशन 1978) में 312 कुण्डलिया छन्द हैं। हिन्दी काव्य के इतिहास में गिरिधर कविराय तथा दीनयाल गिरि जैसे प्रख्यात कवियों ने कुण्डलिया छन्द का सफल प्रयोग किया था। मिश्र जी के इस कुण्डलिया संग्रह की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें वैदिक धर्म की दार्शनिक मान्यताओं तथा इनसे सम्बद्ध अनेक प्रकार के वाद-विवादों एवं शास्त्रार्थ विषयक सूक्ष्म अवधारणाओं को छन्दोबद्ध किया गया है। जो लोग संसार को मिथ्या मानते हैं, उनकी तथ्य रहित युक्तियों का सटीक खण्डन निम्न छन्द में देखें–

> मिथ्या जग से आपका मिथ्या बना शरीर।
> मिथ्या भोजन कर दिया मिथ्या तुमने नीर।
> मिथ्या पीकर नीर बोलते मिथ्या वाणी।
> मिथ्या है सब कार्य सभी हैं मिथ्या प्राणी।
> सत्य मात्र है ब्रह्म मिश्र यह सिद्ध कीजिए।
> मिथ्या जो है उसका मत आधार लीजिए।।

प्रकृति तथा परमात्मा के नियम अटल हैं जब कि मानव अपने आचरण में सर्वत्र अनुशासनहीनता बरत कर स्वेचच्छाचरिता का परिचय देता है। इस दार्शनिक सत्य को मिश्र जी ने इस प्रकार उजागर किया है–

ईश्वर तो चलता नहीं कभी नियम को छोड़।
और प्रकृति चलती नहीं कभी नियम को तोड़।
कभी नियम को तोड़ चलेगा तो यह मानव।
कभी देवता कभी बनेगा पशु औ दानव।
रहना कभी नहीं चाहेगा अनुशासन में।
उठा करेगी मिश्र तरंगें इसके मन में।

ऋषि दयानन्द की दृष्टि में किसी व्यक्ति का यथायोग्य सत्कार और किसी पदार्थ का यथायोग्य व्यवहार 'पूजा' कहलाती है। इसी अभिप्राय को निम्न कुण्डलिया में कवि ने सफलतापूर्वक दर्शाया है–

पूजा के भावार्थ को मन में लीजे धार।
सबका करना चाहिए यथा योग्य सत्कार।
यथायोग्य सत्कार साथ व्यावहारिकता के।
पूजा वैसी करो योग्य हो जिस पूजा के।
पूजा करने से पहले उसको पहचानो।
मिश्र ठीक पूजा उसकी करने की ठानो।।

इस प्रकार नाना विषयों को कुण्डलिया छन्द में अभिव्यक्ति देने वाले कवि मुन्नालाल मिश्र ने गिरिधर कविराय की परम्परा को नया जीवन दिया है।

46. पं. मेधाव्रत कविरत्न कृत गिरिराज गौरव

संस्कृति के महाकवि पं. मेधाव्रत ने हिन्दी में भी उत्कृष्ट काव्य रचना की है। प्रकृति सौन्दर्य के चित्रों से भरपूर उसका लघु काव्य गिरिराज गौरव 1989 वि. में प्रकाशित हुआ। कविरत्न जी ने स्वयं पर्वतराज हिमालय का अनेक बार पर्यटन किया था तथा उसकी नैसर्गिक सुषमा का अवलोकन किया था। गिरिराज गौरव की सम्पूर्ण छन्द संख्या 103 है जिनमें वसन्ततिलका, मालिनी, वंशस्थ, द्रुतवलम्बित, शार्दूलविक्रीड़ित आदि संस्कृत वर्ण वृत्त प्रमुखता से प्रयुक्त किए गए हैं। आलोच्य काव्य की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। इन छन्दों में कवि का वर्णन कौशल सर्वत्र दीख पड़ता है। नगराज की महिमा का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं–

है शैलराज यह भारत दण्ड धारी।
ब्रह्मर्षि योगिगण का भव चक्रहारी।
कैलास शृंग पर शंकर भस्मधारी।
त्यागी जहाँ विचरते पर दुःखहारी।।

हिमालय की उपत्यकाओं, शिखरों तथा उसके तटवर्ती प्रदेशों में बसे नैनीताल, शिमला, काश्मीर, नेपाल आदि नगरों व प्रदेशों का वर्णन कवि ने अत्यन्त तन्मयता से किया है। भारत की संस्कृति के निर्माण एवं विकास में हिमालय का जो योगदान रहा है, उसे भी कवि विस्मृत नहीं करता। वह कहता है–

देखे गिरीन्द्र तुमने सुकलाभिराम,
विख्यात वे गुरुकुलाश्रम दिव्यधाम।
देते व्रतीन्द्रगण को गुरु सच्चरित्र,
आदर्श शिक्षण जहाँ श्रुति का पवित्र।

इसी ऐश्वर्यशाली गिरिवर के वर्णन से कवि अपनी वाणी को धन्य मानता है–

शोभा तेरी निरख अतुला दिव्य ऐश्वर्यशाली।
आँखें मेरी गिरिवर हुई आज सौभाग्यशाली।
वाणी ने भी कथन करके स्वीय साफल्य माना।
आत्मा ने तो अनुपम अहा, दिव्य आनन्द जाना।।

47. सरदार यशवन्तसिंह वर्मा टोहानवी

पारसी शैली के नाटकों का भी एक ज़माना था जब मुख्यतः पारसियों द्वारा संचालित नाटक कम्पनियाँ इन नाटकों का मंचन कर दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करती थीं। टोहाना (जिला हिसार) निवासी सरदार यशवन्तसिंह ने पारसी नाटकों की शैली में अनेक नाटक लिखे जो न केवल रंगमंच पर अभिनीत किए गए, अपितु जिनके द्वारा स्वामी दयानन्द की वैदिक विचारधारा का जनसाधारण में प्रचार भी हुआ। 1881 में सरदार कपूरसिंह के यहाँ जन्मे जसवन्तसिंह की शिक्षा तो साधारण स्तर की ही थी, किन्तु नाटक-लेखन में उन्हें शीघ्र ही महारत हासिल हो गई। उन्होंने रामायण, तथा महाभारत के कथानकों के अतिरिक्त सत्यवादी हरिश्चन्द्र, पृथ्वीराज चौहान, वीर हकीकतराय तथा ऋषि दयानन्द जैसे महापुरुषों को लेकर संगीत प्रधान शैली में नाटक लिखे। मूलतः ये नाटक उर्दू में लिखे गए थे। कालान्तर में इन्हें नागरी लिपि में भी प्रकाशित किया गया। इन नाटकों की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से होता है कि इनमें से अनेक के संस्करणों की संख्या 46 तक पहुँची थी। 'आर्य भजन दीपिका' तथा 'आर्य भजन सागर' इनकी आरम्भिक कृतियाँ हैं जिनमें ईश्वर भक्ति, देशप्रेम, समाज सुधार, कुरीति निवारण जैसे विषय भजनों के माध्यम से प्रस्तुत किए गए हैं।

पारसी शैली के नाटकों में जो पद्य प्रयुक्त होते थे उनकी कतिपय विशेषताएँ निम्न थीं–

1. ये पद्य या गीत पात्रों के संवादों के बीच-बीच में विशिष्ट भावों यथा करुणा, रोष, हास्य, शृंगार आदि को उद्दीप्त करने की दृष्टि से लिखे जाते थे।

2. इनकी भाषा संस्कृत प्रधान न होकर आम बोलचाल की, बल्कि कभी-कभी तो उर्दू-फ़ारसी की शब्दावली से लदी रहती थी।

3. ये पद्य प्रायः गीतात्मक अथवा भजन शैली के होते थे। नाटक के आरम्भ में नान्दी पाठ (मंगलाचरण) अनिवार्यतः ईश वन्दना अथवा देव स्तुति विषयक पद्य के द्वारा होता था।

टोहानवी के प्रसिद्ध नाटक 'संगीत ऋषि दयानन्द' में प्रयुक्त उनके कुछ ऐसे पद्यों से कवि की काव्य प्रणयन क्षमता का अनुमान लगाया जा सकता है।

मूलशंकर द्वारा शिव प्रतिमा के ईश्वर न होने की शंका जताने पर पिता द्वारा तर्जना करने के प्रसंग देखें—

कर बंद तू अपनी बकवास
नहीं तो सख़्त सजा पायेगा।
बता सच किसने तुझे सिखाया
नास्तिक किसने तुझे बनाया।
अब भी बाज़ नहीं गर आया।
बदन की खाल उतरवाएगा।

मूलशंकर का पिता को उत्तर—

यह दो अनमेल बातें दिल नहीं मंजूर कर सकता।
न बुत पाषाण का मेरे संदेह को दूर कर सकता।
मुझे है खोज उसकी मैं उसी शिव का हूँ मुतलाशी।
जो है घर घर में व्यापक शुद्ध चैतन्य औ अविनाशी।
वह शिव न कैलाश पर है और न तीर्थ के तट में।
अगर होंगे कभी दर्शन तो होंगे अपने ही घट में।।

किसी विद्वेषी व्यक्ति द्वारा स्वामी दयानन्द को पान में विष दिया गया तो नाटककार ने विषदाता के भाव को इस प्रकार व्यक्त किया—

प्रेम यह पान है प्रेम से लगाया हुआ,
प्रेम में बसाया हुआ प्रेम ही फैलायेगा।
प्रेमी के हैं हाथ और प्रेमी का मुखारबिंद।
प्रेमी उसे खाए और प्रेमी ही खिलाएगा।
बढ़ेगा प्रेम मेरा आपसे प्रेमी संगी।

दोनों का प्रेम एक अजीब रंग लाएगा।
तुच्छ सी है भेंट स्वीकार यदि करें आप,
पान का यह पत्ता मेरे मान को बढ़ायगा।।

महाराजा यशवन्तसिंह द्वारा अपनी प्रेयसी नन्ही का तिरस्कार—

चल दूर हो यां से कुतिया अभी
हाथ चरणों के मेरे लगावे न तू।
बड़ी मुश्किल से निकला हूँ जिस नर्क से
फिर दुबारा उसी में गिरोवेन तू।।

राजा से तिरस्कृत हुई नन्ही का पश्चात्ताप

अर्श पे चढ़के गिरी फर्श पर किस्मत मेरी।
मिल गई ख़ाक में सब शान औ शौकत मेरी।
बात भी आज नहीं पूछता मेरी कोई।
मेरी गर्दिश ने बना दी है क्या हालत मेरी।।

इस पद्यांश में उर्दू बहुल भाषा का प्रयोग विशेष पारसी शैली के नाटकों की एक मुख्य प्रवृत्ति थी।

अभिनेयता के तत्त्व को महत्त्व देने के कारण पारसी नाटकों के संवादों में जहाँ अतिनाटकीयता रहती थी, उसी प्रकार उनके संवादों के बीच-बीच में प्रयुक्त पद्य भी यत्र-तत्र स्वाभाविकता से हटे से लगते थे। कारण स्पष्ट है। सभी प्रकार के भावों को प्रकट करने के लिए नाटककार गीतों, गानों और चमत्कार युक्त संवादों वाले पद्यों का ही प्रयोग करता था। फलतः मथुरा में विद्याध्ययन के लिए आए दयानन्द अपने हार्दिक भावों को गाने के माध्यम से ही व्यक्त करते हैं तो उत्तर में वयोवृद्ध प्रज्ञाचक्षु गुरु स्वामी विरजानन्द भी गीत गाकर ही उसे शास्त्रों का अध्ययन कराने का वचन देते हैं। इस प्रकार नाटकों में पद्यों के प्रयोग की युग जन्य इस विवशता को यदि हम थोड़ी देर के लिए नजरअंदाज़ कर दें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यशवन्तसिंह टोहानवी काव्य प्रतिभा के धनी थे और समय, स्थिति तथा वातावरण के अनुकूल चुटीले संवादात्मक पद्य लिखने की शक्ति उन्हें प्राप्त थी।

48. राजा रणंजयसिंह

उत्तरप्रदेश के सुलतानपुर जिले में अमेठी-राज्य के राजा रणंजयसिंह का जन्म महाराज भगवान बख्शसिंह के तृतीय पुत्र के रूप में 29 अप्रैल 1901 को हुआ। अग्रज राजकुमार रणवीर सिंह के साथ आपका अध्ययन काल्विन तालुकेदार कालेज लखनऊ में हुआ।

देश भक्त, धर्मप्रेम, राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति अनन्य आस्था, सदाचार एवं सच्चरित्रता से स्वाभाविक स्नेह जैसे गुण आपको ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज की शिक्षाओं से प्राप्त हुए। आप लोकसभा तथा उत्तरप्रदेश की विधान सभा के सदस्य रहे तथा राष्ट्रीय नेताओं से आपको सदा सम्मान प्राप्त होता रहा। अगस्त 1988 को आपका निधन हो गया। राजा रणंजयसिंह की कविताओं का संग्रह उनके ही द्वारा सम्पादित 'कविता के कोष' में हुआ है। 1979 में जब राजा साहब को अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पित किया गया तो इसके अन्तिम खण्ड में उनकी प्रतिनिधि कविताओं को भी संगृहीत किया गया।

रणंजयसिंह की कविता सरल तथा प्रसादपूर्ण खड़ी बोली में लिखी गई है। उन्होंने जन्माष्टमी, विजयदशमी, दीपमालिका, होली आदि सांस्कृतिक पर्वों तथा भारत के गणतन्त्र दिवस, स्वतन्त्रता दिवस आदि राष्ट्रीय त्योहारों के महत्त्व का निरूपण करने वाली सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। इसी प्रकार ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा नारायण स्वामी जैसे आर्य महात्माओं तथा पं. नेहरू, लालबहादुर शास्त्री सरोजिनी नायडू, शरतचन्द्र वसु आदि राष्ट्र पुरुषों को भी कवि ने अपनी काव्यमयी श्रद्धांजली अर्पित की है। महर्षि वन्दना के लिए उन्होंने निम्न छप्पय लिखा–

वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक महा सुधारक।
ब्रह्मचर्य की मूर्ति अहिंसा धर्म प्रचारक।
विश्व प्रेम से ओत प्रोत निष्पक्ष विचारक।
सुधी बली निर्भय संन्यासी जगदुपकारक।
श्री दयानन्द ऋषिराज का अति कृतज्ञ संसार है।
वे अद्वितीय वेदज्ञ थे नमस्कार शत शत बार है।।

उनकी कवितव में यत्र-तत्र व्यंग्योक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई हैं। भारत की संविधान सभा में जब राजभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने का प्रश्न आया तो उस समय दक्षिण भारत के कतिपय दुराग्रही लोगों का विसंवादी स्वर उभरा। वे हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी को भी राजभाषा का पद देने का आग्रह करने लगे और अन्ततः विजय भी उनकी ही हुई। राष्ट्रभाषा के प्रबल समर्थक राजा रणंजयसिंह ने भाषा विषयक इस विवाद को निम्न घनाक्षरी कवित्त में अत्यन्त हृदयग्राही शैली में वर्णित किया है–

दिल्ली में भाषा पर विचार हुआ तीन दिन,
किन्तु कुकुटी की तीन टांग परिणाम में।
उत्तर प्रत्युत्तर में उत्तर के हारे नहीं,
जीते हैं दक्षिण के द्रविड़ प्राणायाम में।

उर्दू हिन्दुस्तानी दोनों ही सुरधाम गई,
रही अंग्रेजी, हिन्दी साथ लेकर काम में।
बचपन में पड़ रहा, अब प्रत्यक्ष हुआ,
गर्दभ आजाद हो दहाड़े व्याघ्र चाम में।।

कवि रणंजयसिंह ने समस्या पूर्ति शैली में भी कुछ सुन्दर कविताएँ लिखी हैं 'मांग है' इस समस्या की पूर्ति में कवि ने आज की चुनाव प्रधान राजनीति पर तीखा व्यंग्य किया है—

विद्या से विहीन और मन का मलीन धूर्त,
कार्य नहीं करता अड़ाता बस टाँग है।
भोले भाले भाइयों को ठगने को स्वार्थवश,
नेता बन कृत्रिम रचाया बड़ा स्वाँग है।
चाहे कोई जाने वा उसको पहचाने नहीं,
किन्तु निज पहुँच की भरता छलाँग है।
आता है चुनाव तब यद्यपि प्रभाव नहीं,
फिर भी टिकट की करता सदा माँग है।।

प्रायः यह समझा जाता है कि दोहा ब्रजभाषा तथा अवधी का अपना छन्द है, किन्तु राजा रणंजयसिंह ने खड़ी बोली में सुन्दर दोहों की रचना कर इस धारणा को असत्य सिद्ध कर दिया है। सत्कवि, भारतीय जनतन्त्र, कृषि कर्म, धर्मभावाभाव, ध्रुव ध्येय आदि विभिन्न शीर्षकों पर उन्होंने सुन्दर दोहे लिखे हैं।

राजा रणंजयसिंह उर्दू को हिन्दी की एक शैली ही मानते थे। इसलिए उन्होंने उर्दू में भी काव्य रचना की। असाम्प्रदायिक मनोवृत्ति रखने वाले भारतीय नेताओं में स्व. रफी अहमद किदवई का शीर्षस्थ स्थान रहा है। उसी श्रद्धेय महापुरुष को कवि ने निम्न प्रकार श्रद्धांजलि अर्पित की है—

मुल्क की ख़िदमत में ज़िन्दगी गुजारी सारी,
फलके सियासत में चमकता सितारा था।
हिन्दू मुसलमान ईसाई में न फर्क किया,
रहनुमा एक सा सबके लिए न्यारा था।
अमीरो गरीब चाहे जिसकी मुसीबत हो,
उसे रफा करने में वाकई सहारा था।
ऐसे रफी अहमद किदवई साहब को,
ले लिया खुदा ने क्योंकि उसको भी प्यारा था।

निश्चय राजा साहब की कविता को विविध रंग-बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित वाटिका से उपमा देना समीचीन है।

संदर्भ : राजा रणंजयसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ।

49. राजकुमार रणवीरसिंह

उत्तरप्रदेश के सुलतानपुर जनपद में अमेठी एक प्रसिद्ध रियासत है। यहाँ के राजा महाराज भगवान बख्श सिंह के द्वितीय पुत्र राजकुमार रणवीरसिंह हिन्दी गद्य एवं पद्य के सुलेखक थे। उनका जन्म 21 जुलाई 1899 को हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा काल्विन तालुकेदार कालेज लखनऊ में हुई। तत्पश्चात् विशिष्ट योग्यता वाले अध्यापकों से उन्होंने संस्कृत तथा अंग्रेजी का विशद अध्ययन किया। बचपन से ही उनकी ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज के प्रति अनन्य निष्ठा थी। 11-12 वर्ष की अल्पायु में आपने लेखन कार्य आरम्भ किया। खेद है कि इस होनहार साहित्यिक अभिरुचि सम्पन्न युवक का मात्र 21 वर्ष की आयु में 2 फरवरी 1921 को निधन हो गया।

राजकुमार रणवीरसिंह की काव्य प्रतिभा बहुमुखी थी। वे संस्कृत तथा हिन्दी में समान रूप से काव्य रचना करते थे। उनकी स्फुट कविताओं को उनके अनुज राजा रणंजयसिंह ने 'काव्य के कोष' नामक ग्रन्थ में संगृहीत किया है। रणवीरसिंह ने दोहा, सवैया, हरिगीतिका, रोला, छप्पय आदि छन्दों में सफल काव्य रचना की है। उनके काव्य में शृंगार रस का नितान्त अभाव है। एक घनाक्षरी में कवि स्वयं का परिचय निम्न प्रकार से देता है–

राजा का द्वितीय पुत्र मैं हूँ रणवीर सिंह,
मेरा नाम है, अभी तलक ब्रह्मचारी हूँ।
छात्र हूँ अवस्था मेरी उन्निस बरस की है,
हिन्दी का अनन्य भक्त और हितकारी हूँ।
भारत का भक्त आर्य धर्म अनुरक्त और
धृष्टता क्षमा हो, शुद्ध वीर रक्त धारी हूँ।
कविता का सेवक व प्रेमी हूँ दृढार्य हूँ मैं,
सूर्यवंशी क्षत्रिय निरामिष आहारी हूँ।।

रणवीरसिंह की कुछ कविताएँ संस्कृत वर्णवृत्तों में भी उपलब्ध होती हैं। उन्होंने अपनी कविता में द्रुतविलम्बित, मालिनी, वसन्ततिलका, शिखरिणी, स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीड़ित जैसे छन्द प्रयुक्त किए हैं। रणवीरसिंह की कविता नाना विषयों से विभूषित है। वे यदि ऋषि दयानन्द, लोकमान्य तिलक जैसे भारत भक्त महापुरुषों का गुणगान करते हैं तो राम, कृष्ण आदि पुराकालीन महात्माओं का भी अपने काव्य में प्रशस्ति पाठ करते हैं। प्रकृति के नाना दृश्यों को सजीव भाषा में चित्रित करने

में उन्हें अद्‌भुत सफलता मिली है। 'वारिविदारक विनय' शीर्षक पद्यों में उन्होंने अतिवृष्टि से होने वाली हानियों का वास्तविक चित्रण चित्ताकर्षक शैली में किया है। निम्न घनाक्षरी इसी प्रसंग को उपस्थित करती है जिसमें कवि परमात्मा से अतिवृष्टि का निवारण करने की प्रार्थना करता है—

> अशरण शरण दयानिधान जगदीश।
> कृपया उदक वृष्टि तुरत निवारिये।
> त्राहि मची चारों ओर नेकु तो अनुग्रह हो
> शरण तुम्हारी आये हमहिं न टारिये।
> प्रखर दिनेश की प्रचण्ड रश्मि भूतल पै,
> अति द्रुतमेव सर्व भाँति से पसारिये।
> सादर निवेदन करत रणवीर सिंह,
> वेगि व्योम मण्डल से वारिद विदारिये।।

उक्त पद्य की अन्तिम पंक्ति में अनुप्रास का सौन्दर्य दर्शनीय है।

क्लिष्ट तथा संस्कृत की तत्सम शब्द बहुला भाषा में कवि ने दयानन्द प्रशस्ति का गान किया है—

> त्यों ही मौर्य मेघमाला मण्डित स्वदेश पर,
> झंझानिल झूठ की चली अघाम्बु वृष्टि थी।
> कैसा था अविद्या अन्धकार घोर चारों ओर,
> कालिमानुलेपित प्रतीत होती सृष्टि थी।
> यात्री सम धर्म सर्वनाश कूप के था पास,
> मार्ग देखने में असमर्थ हुई दृष्टि थी।
> सावधान घोप कर चंचला प्रभा सम
> प्रादुर्भूत हुआ दयानन्द तब दृष्टि थी।।

रणवीरसिंह वीर भावों के कवि हैं। हिन्दू पद-पादशाही के स्वप्नद्रष्टा मराठा वीर शिवाजी कवि के आदर्श तथा आराध्य है। भूषण जैसे वीर रस के अप्रतिम कवि उनके प्रेरणा स्रोत हैं। महाकवि भूषण की ही शैली में राजकुमार रणवीरसिंह ने 'शिवयुद्ध वर्णन' शीर्षक कतिपय घनाक्षरियाँ लिखी हैं। यदि इनमें कवि अपने नाम की छाप नहीं रखता तो सामान्य पाठक तो शायद इसी भ्रम में ही पड़ा रहता कि वस्तुतः ये पद्य 'शिवा बावनी' से ही लिए गए हैं। शिवाजी के दुर्जय पराक्रम तथा उनकी सेना के अदम्य प्रवाह का जीवन्त चित्र निम्न कवित्त में देखें—

घटा घोर घेरी घनी घूमै चहुं हाथिन की,
चंचला से घोड़े मानो आई बरसात है।
वायु बहै बाणन की बर्छिन की खेती लसै,
रुधिर से सींची भूमि हीय हरसात है।
चैतमास माँहि महायुद्ध होत बीजापुर
चातकी भी देखि स्वातिका को तरसात है।
'रणवीर' शिवाजू के दल मांहि गाजै मेघा
दांय दांय दगत दुनाली दरसात है।

काश, कवि को कुछ अधिक आयु मिलती तो वह कविता के भण्डार को कुछ अधिक मूल्यवान् काव्य मुक्ताएँ प्रदान करता।

50. प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु

आर्यसमाज के इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् तथा अनुसंधाता राजेन्द्र जिज्ञासु ने सहृदय कवि का सरस व्यक्तित्व भी पाया है। जिज्ञासु जी का जन्म 28 मई 1932 को स्यालकोट (पाकिस्तान) जिले के मालोमेह नामक ग्राम में महाशय जीवनमल नामक एक आर्य महानुभाव के यहाँ हुआ। इन्होंने इतिहास में एम. ए. किया तथा डी. ए. वी. कालेज शोलापुर और डी. ए. वी. कालेज अबोहर में वर्षो तक इसी विषय का अध्यापन किया। आपके काव्य संग्रह हृदय तन्त्री (दो भाग) तथा तरंगित हृदय प्रकाशित हो चुके हैं। आजेस्वी तथा वीरतापूर्ण भावों को व्यक्त करने में जिज्ञासुजी को विशेप सफलता मिली है। इनके काव्य में उपदेशात्मकता की प्रधानता है। वे ऋषि दयानन्द तथा उनके अनुवर्ती महापुरुषों, संन्यासी महात्माओं तथा विद्वानों के महान् व्यक्तित्व से प्रेरणा लेकर काव्य रचना करते हैं। आर्यसमाजों के उत्सवों पर आयोजित कवि सम्मेलनों में उनका काव्य पाठ श्रोताओं द्वारा प्रशंसित हुआ है। 'वह कौन था' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ स्वामी श्रद्धानन्द के देश हितैषी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करती है—

वह कौन था जो जान देश पर लुटा गया।
वह कौन था जो अन्धकार को मिटा गया।
वह कौन था जो छूत छानत को मिटा गया।
वह कौन था जो पीड़ देश की घटा गया।
वह श्रद्धानन्द सन्त देश का महान था।
वह श्रद्धानन्द पीड़ितों का प्राण त्राण था।

आर्यो के मुर्झाये दिलों में नवस्फूर्ति का संचार करने वाले जिज्ञासु जी की

कविताएँ पाठकों को धर्मप्रेम तथा देशभक्ति का संदेश देती हैं।

51. राधेश्याम आर्य

श्री राधेश्याम धर्म (जन्म 14 फरवरी 1949) व्यवसाय से वकील हैं किन्तु उन्होंने सहृदय कवि के रूप में अपनी ख्याति साहित्य जगत् में अर्जित की है। सम्प्रति वे मुसाफिर खाना (सुलतानपुर जनपद) में रह कर रश्मिरथी नामक कविता प्रधान द्विमासिक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। उनके भरतभूमि, हिमालय, विश्वबंधु बापू, श्रद्धा के फूल, नया सवेरा लायें आदि अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'भरतभूमि' वर्णनप्रधान एक लम्बी कविता है जिसमें कवि ने भारतमाता का काव्यमय स्तवन किया है। निश्चय ही इस काव्य की रचना के पीछे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती की प्रेरणा रही है। मातृभूमि का महिमा गान ही कवि को इष्ट है। 'भरतभूमि' में देश के गौरवमय अतीत, उसकी स्वर्णिम संस्कृति तथा इस देश की धरती पर जन्म लेकर अपनी प्रोज्ज्वल कीर्ति को चतुर्दिक प्रसरित करने वाले अनेक पुण्यश्लोक महापुरुषों का प्रशस्तिपाठ किया गया है। सरल तथा प्रसादपूर्ण शैली में लिखा गया यह काव्य कवि की साधना का प्रशस्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक उदाहरण देना यहाँ अभीष्ट होगा—

जिसके प्रांगण में गुंजित था
सामवेद का मधुमय गान।
जहाँ चढ़ा था निर्भय होकर
उन्नत शिखरों पर विज्ञान।
तान सुनाया करती कोकिल
मृदुल जहाँ उद्यानों में।
स्वर्ण सुधा की वर्षा होती
खेतों में खलिहानों में।
मानवता के पदचिन्हों का
होता जहाँ नवल उन्मेष
देवों की जो पुण्यभूमि है—
वही हमारा भारत देश।।

भरतभूमि की ही भांति 'हिमालय' भी उस पर्वतराज हिमगिरि के नैसर्गिक सौन्दर्य का आख्यान करता है। जो शताब्दियों से भारत का उत्तरवर्ती प्रहरी बन कर सतत सावधानी से देश की पहरेदारी कर रहा है। कवि ने हिमालय को भारत की पुराणतम संस्कृति का निर्माता कहा है—

भारत की पावन संस्कृति का
यह हिमगिरि निर्माता है।
परम पुण्य पृष्ठों के स्वर का
हिमगिरि ही उद्गाता है।

हिमालय के शिखरों, उपत्यकाओं तथा गुहा कन्दराओं में निवास करने वाले तपस्वी ऋषियों ने ही अदृश्य का दर्शन किया था तथा जगत् स्रष्टा के रहस्य को तलाशा था–

प्राप्त हुए उत्तरित यहीं पर,
ईश्वर जीव प्रकृति विषयक।
तुंग हिमालय शृंग ढूँढ़ता
समाधान युग से अपलक।

श्री आर्य की स्फुट कविताओं का संग्रह नया सवेरा लाएँ (प्रकाशन 1992) उनकी राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, उद्बोधन प्रधान स्फूर्तिमयी रचनाओं का संकलन है। इसमें देश भक्ति, स्वदेश गौरव, महापुरुषों का अभिनन्दन, राष्ट्रभाषा की महत्ता, गणतन्त्र का स्वागत जैसे अनेक विषयों को समाविष्ट किया गया है। वस्तुतः राधेश्याम आर्य आर्यसमाज की युवापीढ़ी के उन कवियों में अग्रणी हैं जिन्होंने सच्चे अर्थो में ऋषि दयानन्द की राष्ट्रीयता से ओतप्रोत सांस्कृतिक स्वर को काव्यमयी वाणी दी है। आर्य समाज के सभी पत्रों में सामयिक विषयों से सम्बन्धित उनकी कविताएं प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं।

52. रामकृष्ण भारती

कवि भारती का जन्म 12 नवम्बर 1917 को पाकिस्तान के जिला मुजफ्फरगढ़ के एक ग्राम में हुआ। दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय लाहौर से उन्होंने विद्यावाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। देश विभाजन के पश्चात् वे दिल्ली आए और एम.ए. किया। भारत सरकार के गृह विभाग के राजभाषा प्रकोष्ठ में वे राजपत्रित अधिकारी रहे। भगवद्गीता तथा आर्याभिविनय के पद्यानुवाद के अतिरिक्त उन्होंने ऋग्वेद के लगभग 1000 मन्त्रों को भी पद्य में रूपान्तरित किया है। 'निर्झर' शीर्षक उनका एक काव्य संग्रह 1940 में लाहौर से प्रकाशित हुआ। प्रसिद्ध साहित्यकार पं. उदयशंकर भट्ट ने इसका प्राक्कथन लिखा था तथा महाकवि हरिऔध ने भी भारती जी के काव्य को आशीर्वाद प्रदान किया था। 30 जून 1978 को इनका निधन हो गया।

भारती की कविता पर छायावाद तथा प्रगतिवाद की कविता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने पन्त तथा बच्चन जैसे कवियों से प्रेरणा ग्रहण की है।

निर्झर में संगृहीत कविताओं को कवि ने आह्वान, भावलोक, जीवनदर्शन, युगवाणी, सामयिक तथा विविध शीर्षकों में रखा है।

'लक्ष्य' शीर्षक कविता उस बटोही को सम्बोधित कर लिखी गई है जो विजय पराजय की भावना से ऊपर उठकर लक्ष्य की ओर चलने में ही अपने जीवन की सफलता समझता है–

> चलते चलो पथिक, अपने पथ, तुमको विजय पराजय से क्या ?
> चलना ही है काम तुम्हारा,
> चलता ही रहता जग सारा,
> क्यों फिर तुमने साहस हारा,
> गहो निराशा का न सहारा।

'दीपक' शीर्षक कविता महादेवी की 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल' कविता से पर्याप्त प्रभावित है–

> दीपक तू हरदम जलता जा।
> जल कर आलोकित कर जग को, दूर अँधेरे को करता जा।
> जलना ही है काम दीप का,
> सहना ही है काम दीप का,
> तुझ पर शत शत शलभ निछावर उनकी स्मृति में तू जलता जा।।

इस संग्रह की अनेक कविताएँ बच्चन के काव्य संग्रह 'निशा निमन्त्रण' की रचनाओं से प्रभावित हैं। निराला ने भी कवि भारती को प्रभावित किया है। 'भारती जय विजय करे' की ही शैली में रामकृष्ण भारती की 'विश्व ज्योति चमके' शीर्षक कविता लिखी गई है। निराला की प्रसिद्ध कविता 'तुम और मैं' की छाया भारती की निम्न काव्य पंक्तियों में स्पष्ट दिखाई देती है–

> तुम राग औ मैं रागिनी,
> तुम चन्द्र औ मैं यामिनी।
> तुम मान मैं अभिमानिनी।
> तुम लक्ष्य मैं संधानिनी।
> तुम शब्द हो मैं भावना,
> तुम मन्त्र हो मैं कामना।
> तुम स्फूर्ति हो मैं धारणा।
> तुम मन्त्र हो मैं तारणा।।

'युगवाणी' शीर्षक कविताएँ प्रगतिशीलता का स्वर लिए हुए हैं। मज़दूर, नया

विकास चाहिए, कुटी और महल, प्रगति की ओर आदि कविताएँ श्रमिक के शोषण, आर्थिक विषमता, विकास और प्रगति की आवश्यकता को लेकर लिखी गई हैं। सामयिक-कविताएँ विभिन्न पैर्वो, तत्योहारों तथा महापुरुषों के स्मृति दिवसों को लेकर लिखी गई हैं। महात्मा बुद्ध, महात्मा गाँधी, रवि ठाकुर, सरदार पटेल, महाकवि निराला आदि महापुरुषों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जो कविताएँ समय-समय पर लिखी गई, उन्हें भी इस संग्रह में स्थान मिला है। निर्झर के द्वितीय संस्करण में कवि की उन कविताओं को भी स्थान मिला है जो 1947 के बाद की हैं। उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि भारती की कविता हिन्दी कविता की आधुनिक प्रवृत्तियों से निरन्तर प्रभाव ग्रहण करती रही है।

53. रामनारायण लाल

संस्कृत में 'सहस्र नाम' शीर्षक स्तोत्रों का बाहुल्य है। महाभारतान्तर्गत विष्णु-सहस्रनाम तो प्रसिद्ध ही है। शिव सहस्रनाम, देवी सहस्रनाम, गोपाल सहस्रनाम तथा गणेश सहस्रनाम जैसे साम्प्रदायिक 'सहस्रनाम' स्तोत्र भी समय-समय पर लिखे जाते रहे तथा सम्प्रदानिष्ठ व्यक्तियों द्वारा भक्तिपूर्वक पढ़े जाते रहे। हिन्दी में 'ब्रह्म सहस्रनाम' शीर्षक एक ऐसा ही काव्यात्मक स्तोत्र 107 पद्यों में बाबू रामनारायणलाल गवर्नमेंट पेंशनर ने लिखा था। इसे लेखक ने ही 'सर्व सज्जन भजनानन्दी महाशयों के हितार्थ और शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा के वास्तविक नामों के बोध के निमित्त' प्रकाशित किया। इसका प्रकाशन काल 1916 ई. है।

काव्य के प्रारम्भ में कवि ने मंगलाचरण रूप में निम्न दोहे लिख कर ग्रन्थ रचना का प्रयोजन भी स्पष्ट किया—

जगत् पिता को ध्यान धर ब्रह्म सहस्सर नाम।
पाठ करो मन वचन से, पूरण हों सब काम।।
ब्रह्म जगत् को मूल है ब्रह्म जगत पितु मात।
ब्रह्म जगत गुरु बंधु है ब्रह्म जगत् को भ्रात।।

ब्रह्मसहस्र नाम का छन्द हरिगीतिका हैं। प्रारम्भ के पद्य इस प्रकार हैं।

ओइम् अगोचर अलख अजोनी अद्भुत रूप अनन्ता।
अजर अमर अविगति अविनाशी अपरम्पार अचिन्ता।
ईश्वर अभय एकरस उत्तम आतम अन्तरयामी।
उत्पादक अच्युत और अक्षर अनुपम अव्य अकामी।।

ग्रन्थान्त में 'सहस्रनाम' की फलश्रुति का निर्देश करते हुए कवि ने लिखा है—

इति श्री पोथी अमित ब्रह्म सहस्सर नाम।
रामनरायनलाल ने लिखी अलीगढ़ धाम।।
जो नर करि हैं पाठ यह हिरदय ध्यान लगाय।
निश्चय यह मन जान लें भर्म अविद्या जाय।।

पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति को ही इस स्तोत्र के पाठ और मनन का फल बताया है—

जब लग जीवैं जगत् में धर्म अर्थ और काम।
लहैं अन्त निर्वान पद, जहाँ सदा विश्राम।।

यों तो कवि ने ब्रह्म के सहस्र पर्यायों का उल्लेख करते हुए प्रायः उन्हीं नामों का संकलन किया है जो वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित हैं, किन्तु राम, गोविन्द, माधव, मुरारि, मुकुन्द आदि कतिपय पुराण वर्णित राम, कृष्ण के पर्यायवाची नामों को भी उसने अपने स्तोत्र में संकलित किया है। परन्तु इन नामों के साकारवादी अर्थों से भिन्न अर्थ पादटिप्पणी में देकर उसने इन्हें अपने मन्तव्य के अनुकूल बना लिया है।

54. कवि रामप्रकाश

स्वामी दयानन्द विषयक स्फुट प्रशस्ति काव्य की चर्चा के प्रसंग में हमने रामप्रकाश नामक एक कवि का उल्लेख किया है। इनकी भक्ति प्रधान रचनाओं को रांची के बैरिस्टर बालकृष्ण सहाय ने अपने 'संगीत सुधाकर' नामक संग्रह ग्रन्थ में स्थान दिया है। रामप्रकाश सम्भवतः उत्तर प्रदेश या बिहार के रहने वाले थे, किन्तु उनका विस्तृत परिचय हमें नहीं मिलता। इस संकलन में रामप्रकाश के 10 उत्कृष्ट भक्तिरस समन्वित पद दिए गए हैं। प्रत्येक पद के आरम्भ में उन रागों का संकेत है जिनमें इन्हें गाया जा सकता है। राग भैरवी के एक पद में परमात्मा के सच्चिदानन्दादि गुणों व लक्षणों का उल्लेख कर उसके अन्य दिव्य गुण कर्मों का उल्लेख हुआ है।
यथा—

है सच्चिदानन्द लक्षण युत, रूप रेख नहिं काया।
है अति सूक्ष्म आकाश ताहू में, है वह ईश समाया।।
है वह अविकृत परे प्रकृति से तेज रूप जग छाया।
बाहर भीतर पूर्ण एक रस ताते पुरुष कहाया।।

कहना नहीं होगा कि उपुर्यक्त पद में परमात्मा के वे ही लक्षण और गुण, कर्म वर्णित हुए हैं जिन्हें उपनिषदादि ब्रह्मविद्या के शास्त्रों में शताब्दियों पूर्व उल्लिखित किया था।

कवि संसारी जीवों को ईश्वर की भक्ति की ओर प्रेरित करता है तथा उसके वेदादि शास्त्रों में प्रतिपादित निर्गुण, निराकार, निर्विकार तथा निरंजन रूप का ही ध्यान करने के लिए कहता है–

भज मन अलख अभय अविनाशी।
शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अज अमर अजर सुखराशी।
निराकार अविकार निरंजन भंजन दुख चौरासी।
अनघ अनन्त अनादि नित्य प्रभु परम विवेक विकासी।

आर्यसमाज की सुधारवादी विचारधारा के प्रति समर्पित कवि रामप्रकाश इस तथ्य से पूर्णतया सचेत है कि आज का संसार वेद ज्ञान को विस्मृत कर अज्ञान और अधर्म के माया पाश में पूर्णतया जकड़ा जा चुका है। जब तक लोग इन पाखण्ड पूर्ण अनाचारों से मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक उनके कष्टों का भी अन्त होने वाला नहीं है। राग केदारा में लिखा उसका यह भजन इन्हीं भावनाओं का प्रदर्शक है–

भज मन ब्रह्म सकल जग स्वामी।
वेदशास्त्र की रीति त्याग द्विज भये पखण्ड अनुगामी।
जो जग रवि श्रुति ज्ञान दान कियो तेहि तज करत हरामी।
करि कुकर्म धन धर्म खोय सब लेत शीश बदनामी।।

अकर्मण्य कलियुगी गुरुओं द्वारा मूढ शिष्यों को मूंड़ने को दोषावह मानते हुए कवि ने लिखा–

लोभी लम्पट कपट रूप धरि, मूंडत शिष्य निकामी।
मिथ्या जाल डाल सब जग पर ठगत फिरत खुद कामी।।

कवि को इस बात का दुख है कि इन व्यर्थ के मायाजालों में फँसा हुआ मूढ मनुष्य अन्तर्यामी परमात्मा का भजन नहीं करता।

जड़ भजि व्यर्थ सदा दिन खोअत, भजत न अन्तरजामी।

उपर्युक्त विवेचन से रामप्रकाश की उस कविता का परिचय मिल जाता है जो वैदिक भक्तिवाद के प्रोज्ज्वल रूप की स्वच्छ अभिव्यक्ति है।

55. शहीद रामप्रसाद बिस्मिल

मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने के लिए फाँसी के फंदे को चूमने वाले अमर हुतात्मा रामप्रसाद बिस्मिल के त्याग, तपस्या और बलिदान से अधिकांश देशवासी परिचित

हैं, किन्तु बहुत कम लोगों को पता है कि बिस्मिल एक अच्छे कवि भी थे और देश भक्ति से ओतप्रोत उत्कृष्ट काव्य उनकी लेखनी से निकला है। रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म 1897 में हुआ और मात्र तीस वर्ष की आयु में 19 दिसम्बर 1927 को गोरखपुर जेल में उन्हें फाँसी दे दी गई। 1977 वि. (1920) में 'मन की लहर' शीर्षक उनका एक काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें कुछ कविताएँ तो बिस्मिल रचित ही थीं जबकि अन्य कवियों की रचनाएँ भी उसमें संगृहीत थीं जो बिस्मिल की पसन्द की थीं तथा उन्हें कण्ठस्थ भी थीं। इस काव्य संग्रह की भूमिका (निवेदन) में बिस्मिल ने लिखा था—"मुझे कविता से कुछ प्राकृतिक प्रेम है। अतएव नए कवियों की रचना को देखने में मुझे आनन्द प्राप्त होता है।...मेरे मन में जब भी कोई भाव उमड़े हैं तो मैंने उन्हें कुछ शब्दों में गूँथने का प्रयास किया है। उनमें से दो एक आपके सामने है। प्रिय पाठक, उनकी त्रुटियों पर कुछ ध्यान न दीजिए क्योंकि मैं कोई कवि नहीं और न कविताओं के मर्म को जानता हूँ।"

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि बिस्मिल कविता प्रेमी तो थे ही, स्वयं भी काव्य चिना में उनकी रुचि थी। 'मन की लहर' का दूसरा संस्करण 1984 में विरजानन्द दैवकरिण द्वारा सम्पादित होकर हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर से छप चुका है। हमारे विचार से इस संग्रह की प्रथम दो कविताएँ तो निश्चित रूप से बिस्मिल रचित ही हैं। इनके शीर्षक हैं—स्वतन्त्रता का आवाहन तथा आर्यभू क्यों दुखी है ? मातृभूमि की दुर्दशा को देखकर कवि का हृदय आर्त हो उठता है और उसकी पीड़ा इस प्रकार व्यक्त होती है—

यातना यम की नरक निवास, नहीं क्या क्या कह डाला हाय।
घोर दारिद्र्य कठिन उपवास, किन्तु मुँह से न निकला हाय।
करो अब दया देखकर दीन, बढ़ाओ माँ करुणा का हाथ।
बिना जल कैसे जीवे मीन, देवि अब आओ करो सनाथ।।

स्वदेश की शान्तिदायी गोद से वंचित कवि आर्यभूमि आर्यावर्त से पूछता है—

आर्य भू, तब शान्तिजा वह रमणीयता है कहाँ ?
क्यों म्लान है तेरा बदन यह दीनता कैसी यहाँ ?
क्या अग्निवर्षक धुन्धकर ज्वालामुखी पर्वत फटा।
जिससे विकृत है आज तेरी नैसर्गिक छटा।।

देश की सार्वत्रिक अधोगति का कारण कवि की दृष्टि में पराधीनता ही है। परतन्त्रता के पाशों में बँधे भारतवासी आज अपनी वाणी को स्वतन्त्र रूप से प्रकट भी नहीं कर सकते—

रो नहीं सकते बिचारे बोलना अपराध है।
मेरे यहाँ पर जन्म लेना आज पाप अगाध है।।

माता के गर्भ से ही गुलाम रूप में जन्म लेने वाले भारतीय भला मातृभूमि का क्या हित करेंगे ?

गर्भ के ही दैन्य के संस्कार जिनको घेरते।
देखे नहीं वे पुत्र माता के दिनों को फेरते।।

भारतवासियों के भाग्य में तो मानो शर्तबंद कुली बनना ही लिखा है–

परदेश के सब द्वार उनके हेतु बिलकुल बन्द हैं।
जा सकेंगे तो कुली बन भाग्य उनके बन्द हैं।।

काकोरी षड्यन्त्र (रेल डकैती काण्ड) के प्रमुख अभियुक्त के रूप में जब बिस्मिल को कारागार की काल कोठरी में रखा गया तो उन्होंने लिखा–

हथकड़ी बेड़ी दिवालें जेल की,
दीर्घ पिंजरे कट घरे भी हैं खड़ें।
और जितनी रोक थी सम्भव हुई,
फाटकों पर शस्त्रधर रक्षक अड़े।।

कारागार के कैदी बिस्मिल को चाहे कितनी ही यातनाएँ दी गई, उसकी अमर आत्मा ने इन शारीरिक कष्टों की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। वह तो आत्मा के अमरत्व के उस सिद्धान्त का विश्वासी है जिसे भगवान् कृष्ण द्वारा गीता में प्रतिपादित किया गया था। अतः वह कहता है–

तोष करने के लिए इस देह को
काट दो, जल में बहा दो, दो जला।
तीर गोली तोप संगीनें चलें,
फट पड़े मुझ पर संसार की बला।
देह का तुम नाश कर सकते सही,
किन्तु फिर भी मैं अमर ही रह गया।
कष्ट तुम जितना मुझे देते रहो,
ठीक उतना मैं सदा बढ़ता रहा।।

निश्चय ही शहीद की कलम से लिखी गई ये कविताएँ भारत के स्वाधीनता यज्ञ से निकली चिनगारियाँ ही थीं, जिन्होंने पराधीनता रूपी भूसे को जलाकर भस्म कर दिया।

संदर्भ—रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा

56. लाखनसिंह भदौरिया सौमित्र

ऋषि दयानन्द की शिक्षाओं और सिद्धान्तों से प्रेरणा प्राप्त कर काव्य रचना करने वाले लाखनसिंह भदौरिया का जन्म इटावा जिले के बरौली ग्राम में 3 अगस्त 1928 को हुआ। इनकी शिक्षा दयानन्द विद्यालय मैनपुरी में हुई। 11वीं कक्षा तक अध्ययन करने के पश्चात् ये प्रेम-पाठशाला मैनपुरी में अध्यापक बन गए। तत्पश्चात् उन्होंने एम.ए. और साहित्य रत्न की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आपके अनेक काव्य ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें माटी और मुक्तक, अपना दीप जलाओ तथा ज्योति के फूल मुख्य हैं।

'ज्योति के फूल' में कवि की धार्मिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर लिखी गई काव्य रचनाओं का संग्रह है। ऋषि दयानन्द से, महर्षि महिमा, स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति, कृष्णजन्म पर, गुरु विरजानन्द सन्त कबीर के प्रति, महामना मालवीय जी के प्रति आदि वे कृतियाँ हैं जिनमें कवि ने भारतीय संस्कृति के उन्नायक महापुरुषों के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं। कवि में शब्द योजना के द्वारा अपने आराध्य महापुरुष का काव्यमय चित्र अंकित कर देने की पूर्ण क्षमता है। निम्न पंक्तियों में कवि ने ऋषि दयानन्द के धीर-गम्भीर प्रशान्त व्यक्तित्व को इसी प्रकार उभारा है—

श्वेताभ हिम शिखर शीश उठा कर ऊपर।
गर्वोन्नत उन्नत भाल, छू रहा अम्बर।
लगता समाधि में लीन युगों से यतिवर।
निर्झर का मुखर निनाद, शान्त वन प्रान्तर।
है प्रकृति मुदित उल्लसित हरित तृण तरुवर।
अपलक विमुग्ध छवि निरख रहा नीलाम्बर।
हिम रजत कान्ति नग स्मित सी फैली है।
दिव्यता जहाँ छवि धर कर गले मिलती है।।

कवि ने जहाँ एक ओर हमारी संस्कृति के प्रतिष्ठाता महापुरुषों को काव्यमयी श्रद्धांजलि अर्पित की, तो दूसरी ओर उसकी अनेक कविताओं में धर्म के नाम पर पाखण्ड तथा शोषण के प्रति विद्रोह के स्वर भी प्रकट हुए हैं। 'पाषाण यहाँ पूजे जाते' शीर्षक कविता में कवि ने जहाँ धर्म के नाम पर पलने वाले पाखण्डों और अंधविश्वासों पर तीव्र प्रहार किया है, वहाँ उसके काव्य में उन दरिद्र देशवासियों के प्रति करुणा का भाव भी प्रकट हुआ है जो अपना समस्त जीवन अभावों में ही व्यतीत कर देते हैं। प्रस्तुत कविता की निम्न पंक्तियाँ शोषण और अत्याचार

के विरुद्ध कवि के स्वर को मुखर करती हैं–

वह देखो जीर्ण झोंपड़ी में भगवान् आज भूखा बैठा।
है पेट पीठ से लगा हुआ कंकाल लिए सूखा बैठा।
जिसमें श्वासें ही शेष रहीं जठरानल जिसका है धधक रहा।
वह आज पुजापा पाने को भगवान् तुम्हारा ललक रहा।।

कवि सौमित्र की दृष्टि में कविता का प्रयोजन पीड़ित, शोषित और त्रस्त मानवता के प्रति सहानुभूति जाग्रत करना, नव निर्माण का स्वागत करना तथा अन्याय एवं अत्याचार का विरोध करना है। 'कवि के प्रति' शीर्षक में कवि ने अपने इसी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है।

57. पं. वंशीधर विद्यालंकार

गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक तथा शिक्षा शास्त्री पं. वंशीधर विद्यालंकार (1900-1966) ने विद्यालंकार की उपाधि ग्रहण करने के पश्चात् गुरुकुल सूपा (गुजरात) में आचार्य पद पर कार्य किया। कालान्तर में आप जामिया मिल्लिया में अध्यापक रहे। तत्पश्चात् उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष पद पर भी रहे। आप एक सहृदय कवि थे। 'मेरे फूल' शीर्षक आपकी एक काव्यकृति प्रकाशित हो चुकी है।

स्वामी दयानन्द के बोध (शिवरात्रि की घटना) का दृश्य कवि ने मुक्त छन्द (Blank Vebe) की शैली में अत्यन्त निपुणता से चित्रित किया है।

मेरी आँखों के आगे,
चित्र खिंचा है
चित्रित सी हो।
खिंची हुई हैं दोनों आँखें।
कलम लिए बैठा मैं सोचूँ।
कैसे खींचूँ कैसे खींचूँ।
तेरी उस निस्तब्ध मूर्ति को।
अपने दिव्य नयन को खोले,
बाल्यकाल की चंचलता को।
उत्सुकता में लिए हुए जब
बैठा था तू स्तब्ध रात्रि में–
शंकर के दर्शन करने को
शंकर की प्रतिमा के आगे।

वायु सुप्त था श्वास गूँजता–
था सोने वालों का पर तू
किस चैतन्य दीप्ति से जलती
निर्निमेष आँखों को खोले,
करता था आवाहन प्रभु का
भक्ति पूर्ण बालक के दिल से।
गज़र बज उठा घोर तिमिर में
ज्ञान सूर्य की मधुर उषा में
हृदय पद्म खिल गया–आ गये
सन्मुख निर्निमेष आँखों के
निराकार चेतनमय शंकर
सुप्त भाग्य जागे भारत के।

यह कविता 'आर्य' मासिक लाहौर के माघ 1982 वि. (फरवरी 1926 ई.) के अंक में प्रकाशित हुई थी।

यहाँ यह भी स्मारणीय है कि आर्यसमाज में प्रचलित 'दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे' से प्रारम्भ होने वाला अत्यन्त लोक प्रिय प्रयाण गीत भी वंशीधर विद्यालंकार ने ही लिखा था। यह 'आर्य' के फरवरी 1924 के अंक में प्रकाशित हुआ था।

आर्य की ही भाँति पं. वशीधर 'अलंकार' मासिक में भी प्रायः अपनी कविताएँ प्रकाशनार्थ भेजते थे। इस पत्र के दयानन्द जन्म शताब्दी विशेषांक में उनकी 'प्रकाश की प्रतीक्षा' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई। जब वंशीधर जी अपनी काव्य रचना कर रहे थे उस समय हिन्दी में छायावाद का बोलबाला था। प्रकृति के सौन्दर्य को कविगण अत्यन्त सुकुमारता से चित्रित करते थे। निसर्ग का यह सौन्दर्य कवियों में आशा और उमंग का संचार करता था। कुछ-कुछ ऐसे ही भाव उक्त कविता में भी प्रकट हुए हैं–

विस्तृत नील गगन, धरती मिल अपना रूप दिखाये।
देख देखकर जिसको सीमित मन असीम हो जाये।।

महादेवी वर्मा का छायावादी मानस जैसे अपने प्रियतम से मिलने के लिए व्याकुल है, वे जैसे अपने प्रिय के गले में डालने के लिए पुष्पहार लिए बैठी हैं, लगभग उसी मनःस्थिति को वंशीधर जी ने '*मेरी मालाएँ*' शीर्षक कविता (अलंकार मई 1925 में प्रकाशित) में देखा जा सकता है–

कम्पित हाथों से मैं जाकर
ये मालाएँ उन्हें पिन्हा कर

नूतन छवि को, उनकी देखूँ
देखूँ देखूँ बैठी देखूँ।
इससे बड़े भाग्य क्या होंगे
वे हों आगे इन आँखों के।।

छायावादी काव्य की चिरपरिचित प्रेमाभिव्यक्ति वंशीधर जी की 'तुम क्या जानो ?' (अलंकार अप्रैल 1926) शीर्षक कविता में देखी जा सकती है–

किन शब्दों में किन भावों में किन व्याकुलता के गानों में।
करती हूँ मैं याद तुम्हें तुम क्या जानो, तुम क्या जानो।।

और भी,

किन रंगभरी आशाओं की रेखाओं में चित्रित करती।
बीती सुखमय उन स्मृतियों को तुम क्या जानो तुम क्या जानो।।

छायावादी कवियों की भाँति प. वंशीधर ने नवीन छन्दों का भी प्रयोग किया है। अंग्रेजी छन्द सॉनेट में लिखी उनकी कविताएँ अलंकार अगस्त-नवम्बर 1925 में छपी हैं। 'मेरे नीरव उद्गार' शीर्षक इस सॉनेट का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा था–यह कविता 16 मात्रा छन्द की है किन्तु अमित्राक्षरों (Blank Verse) में लिखी गई है। यह 14 पंक्तियों का सॉनेट है। 'एक बार तो' शीर्षक सॉनेट का पूरा पाठ यहाँ दिया जा रहा है–

इस श्रावण को अर्धरात्रि में
ढाँप दिया है जब मेघों ने–
सारे इस तारामण्डल को।
भारी होकर, पवन बह रहा
बज उठ हे बाँसुरिया मेरी–
एक बारे तो। अपनी अनुपम
स्वर लहरी से कर दे चंचल
यह निस्तब्ध विश्व। बह निकले
रस धारा अपार धारा में–
सान्द्र घनों से। हों आपवित
भर भर कर सरिताएँ जल से–
उछल उछल कर लिपट लिपटकर
ऊँची ऊँची उत्तालों में
लहराएँ लहरें नदियों की।

निश्चय ही वंशीधर जी की कविताएँ भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से आकर्षक, भावपूर्ण तथा बहुरंगी हैं। देश के स्वतन्त्र होने से पूर्व ही आर्यसमाज के कवि और लेखक स्वाधीनता के स्वप्न द्रष्टा बन चुके थे। वे न केवल भारत देश को ही विदेशियों की दासता से मुक्त देखना चाहते थे, उनकी दृष्टि में स्वतन्त्रता प्रत्येक देश का स्वाभाविक अधिकार होता है। पं. वंशीधर विद्यालंकार का एक प्रसिद्ध गीत अकसर आर्यसमाजों में गाया जाता था, जिसकी आरंभिक पंक्ति थी–

प्रभो वेद वीणा बजे विश्व भर में
सुनें मन्त्र झंकार प्रत्येक घर में।

इसी गीत के आगे की पंक्ति इस प्रकार थी–

"सभी राष्ट्र होंवे स्वराज्याधिकारी"

गीत के लेखक का वैश्विक चिन्तन तथा मानवीय भाव उक्त पंक्ति में साकार हुआ है।

58. पं. वागीश्वर विद्यालंकार

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक कवियों में पं. वागीश्वर विद्यालंकार का नाम सर्वोपरि उल्लेखनीय है। इनका जन्म 13 मई 1896 ई. को बिजनौर जिले के ग्राम जलालाबाद में हुआ था। 1975 वि. में ये गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक हुए। आपने कुरुकुल कांगड़ी में ही संस्कृत विभाग के अध्यक्ष, कुलसचिव, पुस्तकालयाध्यक्ष आदि विभिन्न पदों पर कार्य किया। पं. वागीश्वर हिन्दी के सिद्धहस्त कवि थे। आपका निधन 30 मई 1976 को हुआ था।

आपकी 'गोरखधंधा' शीर्षक कविता आर्य (लाहौर) के माघ 1982 वि. (फरवरी 1926) के अंक में प्रकाशित हुई थी। इसमें कवि ने संसार के विचित्र व्यवहार का उल्लेख करते हुए इस सृष्टि को परमात्मा का एक आश्चर्यजनक गोरखधंधा बताया है–

साधु जन जहाँ रहे दुख भोग,
मौज है लूट रहे खल लोग।
शम्भु कर रहे जहाँ विष पान,
राहु ले रहे सुधा का दान।
न्यायमय हे अनाथ के नाथ,
वहीं है छुपा तुम्हारा हाथ।
धर्म के धनी जहाँ हैं दीन,

फूल फल रहे कर्म से हीन।
कमल है जहाँ कीच के बीच,
बाग में सत्यानाश नीच।
सर्वदा अटल नियम के साथ,
वहीं है छुपा तुम्हारा हाथ।
सत्य से जहाँ कट रहे सीस,
झूठ के हित हैं बिस्वे बीस।
जहाँ बिंध बँधे चमेली फूल,
ईश सिर रहे धतूरे झूल,
गा सके कौन नाथ गुण गाथ,
वहीं है छुपा तुम्हारा हाथ।।

गुरुकुल कांगड़ी से 1924 में 'अलंकार तथा गुरुकुल-समाचार' शीर्षक एक उच्च कोटि का मासिक पत्र पं. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के सम्पादन में निकलने लगा था। पं. वागीश्वर की कुछ अच्छी कविताएँ इस पत्र में प्रकाशित हुई। अलंकार के जन्म शताब्दी अंक (पौष-माघ-फाल्गुन 1981 वि.) में इनकी प्रार्थना शीर्षक एक कविता छपी। इसमें कवि ने परमात्मा को क्रमशः निदाघ (ग्रीष्म), पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त बनकर आने तथा उसी क्रम में कुटिल कामलताओं को झुलसाने, मधुर नेह की वर्षा करने, विमल विवेक को विकसित करने, मोहमयी कमलावली को जलाने,. मान और मद की द्रुमावली को उड़ाने तथा नष्टप्राय जीवन उपवन को पुनः पुष्पित करने की विनय की है। कविता का अन्तिम पद इस प्रकार है–

अशेष सौन्दर्य लुट गया जो।
उजाड़ वन सा बना हो जीवन।
अमन्द आनन्द कन्द भगवन्
वसन्त बन कर इसे खिलाओ।।

अलंकार के मई 1925 के अंक में 'वीरप्रोत्साहन' शीर्षक वीर भावों को उत्तेजित करने वाली उनकी एक कविता छपी। वीर पुरुष शत्रु दल का विनाश करने के लिए जब उद्यत होते हैं तो उनका आचरण किसके तुल्य हो, यह कवि ने निम्न प्रकार दर्शाया है–

रिपु हैं मृग तो तुम केसरि हो यदि वे तम हैं तुम दिनमणि हो।
तृण हैं यदि वे प्रलयानिल हो, यदि मेंढ़क वे तुम भी फणि हो।
इनको अब शीघ्र हताश करो, वह गर्व अखर्व विनाश करो।
कुछ खेल नहीं तुमसे भिड़ना, जग में यह आज प्रकाश करो।

ईशोपनिपद् में परमात्मा का वर्णन करते हुए उसे 'तद् दूरे त द्वन्तिके' (दूर भी और समीप भी) बताया है। इसी विरोधाभासी कथन को कवि ने निम्न गीत में प्रस्तुत किया—

दूर से दूर पास से पास।
बाहर भीतर जगह जगह पर प्रभु है तेरा ही वास।।

पदान्त में उसने कहा—

तुहिनाचल के तुहिन पटल में अतल जलधि मुक्ताफल में।
प्रकृति नटी के रूप रूप में, तेरा है स्वच्छन्द विलास।।
(अलंकार जून 1925)

पं. वागीश्वर ने खड़ी बोली की भाँति ब्रजभाषा में भी काव्य रचना की है। अलंकार के सितम्बर 1925 के अंक में समस्यापूर्ति शैली मे लिखी उनकी एक ऐसी ही कविता छपी। दुष्कर्मो की ओर प्रवृत्त होने वाले मन को चेतावनी देता हुआ कवि लिखता है—

मनमूरख औरन को दुख दे
तुम चाहत हो जग में सुख पाया।
चढि पाथर नाव अपार पयोनिधि
पार विचारत हो पुनि जाया।
बलिहारि अहो गहि व्याल कराल,
चहो तिहि गल में हार बनाया।
द्रुम आपहि काटि के वे अब लों,
अवलोकत होकर शीतल छाया।।

उपर्युक्त विवेचन से पं. वागीश्वर की काव्य सृष्टि की गुरुता का अनुमान लगाना कठिन नहीं है।

59. विक्रमादित्य वसन्त

लखनऊ के निवासी विक्रमादित्य वसन्त ने आर्यमित्र साप्ताहिक का कुछ काल तक सम्पादन किया था। उन्हें भक्त का हृदय प्राप्त हुआ था, अतः वेदमन्त्रों के भक्ति-भाव परक व्याख्यान युक्त काव्यानुवाद करने में उनकी विशेष रुचि रही। उनके इसी प्रकार के भक्तिपूर्ण गीतों का संग्रह 'आराध्य देव—ध्यान तेरी ओर' वेद संस्थान लखनऊ से प्रकाशित हुआ है। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र (अग्निमीड़े पुरोहितम्) की पद्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत करने के पश्चात् ईश्वरोपासना विषयक कुछ अन्य पद संगृहीत हैं।

'प्रभो तेरी लगन लगाऊँ', 'करले करले प्रभु से प्रीत', 'प्रभु जी तेरा दर्शन पाया' शीर्षक उनके भक्ति पद आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण हैं। अन्य पदों में मन को उद्बोधन देने, जीवन को यज्ञमय बनाने, स्वप्न में परमात्मा की अनुभूति, वेदमन्त्रों का अर्थ चिन्तन आदि के दिव्य भाव भी अभिव्यक्त हुए हैं। 'मन तू काहे घबराए', 'हम जीवन यज्ञ रचाएँ,' 'स्वप्नों में प्रभु आता है तथा निशदिन वेद की वीणा बजाऊँ' आदि शीर्षकों वाले पदों में भाव गाम्भीर्य तथा उदात्त जीवन दर्शन प्रतिबिम्बित हुआ है। वसन्त जी के भक्ति काव्य की गम्भीरता तथा उनकी तन्मय भावना का निदर्शन 'ध्यान तेरी ओर ओर' शीर्षक पद की निम्न पंक्तियों से कराया जा सकता है--

ध्यान मेरा तेरी ओर।
हे मेरे आराध्य देव, तुम परम और मैं किशोर।
चाहे जागूँ चाहे सोऊँ चाहे हँसूँ चाहे रोऊँ।
चाहे काटूँ चाहे बोऊँ चाहे पाऊँ चाहे खोऊँ।
पल भर भी तो भूलूँ नाहीं है अटूट मेरी प्रेम डोर।।

60. शंकरसिंह वेदालंकार 'सोमेन्द्र'

अल्पायु भोग कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर देने वाले प्रतिभाशाली लेखक और कवि शंकरसिंह वेदालंकार का जन्म 6 जून 1942 को कानुपर जिले के सरैयां ग्राम में श्री मंगलसिंह के यहाँ हुआ। 2021 वि. (1965) में गुरुकुल कांगड़ी से वेदालंकार उपाधि ग्रहण कर ये स्नातक बने। तदुपरान्त संस्कृत एवं हिन्दी में एम.ए. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय हिसार में भी आपका अध्ययन हुआ और वहाँ से 'विद्यानिधि' की उपाधि प्राप्त की। प्रारम्भ में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के निर्देशन में प्रचार कार्य किया। पुनः डी.ए.वी. कॉलेज की सेवा में आए और अम्बाला शहर तथा सढौरा (हरयाणा) के कालेजों में संस्कृत के प्रवक्ता रहे। इनका निधन 28 फरवरी 1982 को गाजियाबाद में हुआ।

आपका एक लघु काव्य संग्रह 'एक महर्षि एक समाज' शीर्षक पवमान प्रकाशन अम्बाला नगर से 1975 में प्रकाशित हुआ। श्री शंकरसिंह ने प्रसिद्ध अमेरिकन योगी और चिन्तक ए.जे. डेविस के स्वामी दयानन्द विषयक उस मार्मिक उद्गार को काव्य रूप दिया है जो उसने महर्षि की मृत्यु के कुछ काल पश्चात् ही लिखा था। इसमें दयानन्द के तेजस्वी व्यक्तित्व और उसके द्वारा स्थापित आर्यसमाज का अत्यन्त ओजस्विनी शैली में वर्णन किया गया है। 'दयानन्दाग्नि' शीर्षक कविता डेविस के उक्त लेख का ही सफल काव्यानुवाद है, जिसमें मूल लेखक के भावों को पूर्ण सफलता के साथ सुरक्षित रखा गया है।

पाठकों को सोमेन्द्र की काव्य शक्ति से परिचित कराने के लिए इस कविता

के आद्यन्त के छन्द उद्धृत किए जा रहे हैं–

ये असंख्य हृत्कुण्ड अग्नि किसकी जलती है।
है वैश्वानर कौन भभक कर जो बलती है।
इन ज्वालाओं में किसके संगीत भरे हैं।
अरुण वर्ण अभिराम ज्योति के गीत गिरे हैं।।

तथा–

इसके मूलोद्गम में किसका तपः प्रखर है।
वही दया आनन्द जो कि जग का अघहर है।
हम भी उसकी ज्वाल हृदय में नित्य जलायें।
तजें त्याज्य, कर ग्रहण ग्राह्य श्रुति पथ अपनायें।

इसी संग्रह में 'तुम' तथा 'जागृति का देवदूत दयानन्द' शीर्षक दो अन्य कविताएँ भी ऋषि दयानन्द के माहात्म्य वर्णन में ही लिखी गई हैं। 12 पद्यों की 'सत्यार्थप्रकाश' शीर्षक कविता भी सोमेन्द्र के काव्य का एक उत्कृष्ट नमूना है जिसमें दयानन्द के इस अमर ग्रन्थ को निम्न प्रकार स्मरण किया गया है–

सत्य का सूर्य, समुज्ज्वल रत्न,
समुल्लासों का सौम्य विकास।
आर्यता का अखण्ड उद्घोष
सनातन शुचि सत्यार्थप्रकाश।।

सोमेन्द्र की 'आर्यसमाज' शीर्षक एक अन्य कविता दयानन्द के स्वप्नों को मूर्त रूप देने हेतु स्थापित उस संगठन की ओजस्वी परिभाषा है जिसे कवि ने अत्यन्त सशक्त तथा अर्थगर्भित शब्दावली में प्रस्तुत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

दयानन्द के शुभ स्वप्नों की जलने वाली ज्वाला।
तिमिर वंश विजयी विराट् नव प्रमोदगारिणी माला।
कण्टक पथ में स्वतः शक्ति से आगे बढ़ने वाली।
नीरक्षीर निर्णय पटु मधुरा मानस रमी मराली।।

काश, कवि सोमेन्द्र को कुछ अधिक आयु मिलती तो उनकी कविता के जौहर और अधिक देखने को मिलते।

61. कविराजा श्यामलदास

स्वामी दयानन्द के भक्त और कृपापात्र तथा मेवाड़ दरबार के प्रतिष्ठित दरबारी कविराजा श्यामलदास का जन्म 1836 में जोधपुर राज्य के एक ग्राम में चारण वंश में हुआ था। हिन्दी, संस्कृत, डिंगल, उर्दू तथा फारसी आदि भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार था। ये उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह के यहाँ प्रतिष्ठापात्र सरदार के रूप में रहे। 1888 में अंग्रेज सरकार ने उन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि प्रदान की। कविराजा जी स्वामी दयानन्द के परम विश्वासभाजन थे। इसी कारण उन्हें स्वामी जी ने अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का सभासद तथा मन्त्री नियुक्त किया। मेवाड़ के इतिहास पर लिखी उनकी 'वीर विनोद' एक कालजयी कृति है। ऋषि के निधन पर उन्होंने निम्न पद्य लिख कर अपने श्रद्धेय स्वामी के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित किए–

क्षीरनीर आरस अनारस मिलान भये,
पूरन परीक्षा पार क्यों न भिन्न करतो।
विधि से विवेकी बुध संशय विधा के बीच,
धार धन्य उत्तर हिय में सार भरतो।
चारवाक हिंसक चबाय चुं चुं चुंगल में
दयानन्द द्वन्द फन्द कबहूं न परसो।
रहते धरे न मोती मन्त्र वेद वारिधि के,
राजहंस आज हंस मण्डल न तरतो।।

उक्त कवित्त में कवि श्यामलदास ने ऋषि दयानन्द को नीरक्षीर में विवेक करने वाले उस राजहंस के तुल्य बताया है जो आर्ष तथा अनार्ष ग्रन्थों के भेद को बतलाने में समर्थ है। उनके अनुसार यदि दयानन्द रूपी वेद विद्या के वारिधि का अवतरण नहीं होता तो चार्वाक आदि नास्तिक मतों को अपना द्वन्द्वजाल फैलाने में अवश्य सफलता मिल जाती। वास्तव में वेद रूपी समुद्र से मन्त्र रूपी मुक्ताओं को चुगने में दयानन्द रूपी राजहंस ही समर्थ था।

62. स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती (त्रिलोकचन्द राघव)

पूर्वाश्रम में त्रिलोकचन्द राघव के नाम से प्रसिद्ध स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती का जन्म आषाढ़ी पूर्णिमा 1977 वि. को मथुरा जिले के ग्राम गिडोह में हुआ। वे कई वर्षों तक महर्षि दयानन्द स्मारक न्यास टंकारा के तत्त्वावधान में धर्म प्रचार करते रहे। 26 दिसम्बर 1976 को उन्होंने संन्यास की दीक्षा ली। स्वामी स्वरूपानन्द को काव्य रचना का गुण नैसर्गिक रूप में प्राप्त हुआ है। अब तक उनके अनेक काव्य

संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

आर्यसमाज के उपदेशक होने के नाते स्वामी जी की कविता में धर्म, अध्यात्म, भगवद्भक्ति, समाज सुधार, देश-प्रेम और राष्ट्रीयता, महापुरुषों का कीर्तिगान जैसे अनेक विषय समाविष्ट हुए हैं। स्वामी जी की मातृभाषा ब्रज है अतः उन्होंने ब्रज में कुछ अत्यन्त सुन्दर भक्ति पदों की रचना भी की है। मन को उद्बोधन देने वाला उनका निम्न पद हिन्दी के किसी भी भक्त-कवि के काव्य की तुलना में रखा जा सकता है–

रे मन अजहुँ समझन पायो।
विषय वासना के मन माँही ऐसो मन भटकायो।
मति मलीन भई लक्ष्य बिसार्‌यो सतमग पग न बढ़ायो।
तृष्णा के गहरे सागर में गोता खूब लगायो।
विषय कीच के कुंजर के सम अपने आप फँसायो।
केश भये सब श्वेत मृत्यु को जनु संदेश सुनायो।
देह भई सब खेह गेह को नेह न रंच हटायो।
अजहुँ चेत राघव क्यों नाहक मानुष जन्म गँवायो।
सब तज भज अज अमर ईश को जिसने जगत रचायो।।

ऋषि दयानन्द की प्रशंसा में स्वामी स्वरूपानन्द ने अनेक सुन्दर कवित्त लिखे हैं। खड़ी बोली में इस प्रकार के सफल कवित्तों की रचना करना उनके काव्य कौशल का स्पष्ट उदाहरण है। इस तथ्य की पुष्टि निम्न पद्य से होती है–

शंकर ने बताया नारी नरक का दरवाजा, जिसे
विद्या पढ़ने पढ़ाने का कोई अधिकार ना।
तुलसीदास गोस्वामी ने नारी का अपमान किया,
कहा इसे कूट कूट डंडे दे दे मारना।
कहते थे कबीरदास नारी विष की बेल है,
सूरदास कहते इसका चित्र ना निहारना।
बिना दयानन्द मातृशक्ति को उठाता कौन,
करते गर जगत् में आप वेदों का प्रचार ना।।

स्वामी स्वरूपानन्द की कविता भाव पक्ष की दृष्टि से तो समृद्ध है ही, उसमें वर्ण्य विषयों तथा शैलियों की भी विविधता है। उन्होंने मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अनेक गौरवमय आख्यानों को काव्यबद्ध किया है। 'ठुकराया वीर' एक ऐसी ही मार्मिक ऐतिहासिक कथा है जिसमें बूंदी के राजकुमार श्यामसिंह की वीरतापूर्ण जीवनगाथा को पद्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'आदर्श बालक भोज' भी

इसी कोटि की रचना है।

स्वामी स्वरूपानन्द की कविता का एक नया आयाम उनकी 'हँसता चल हँसाता चल' शीर्षक कृति में उभरा है। आज कल के कवि सम्मेलनों में जब कोई कविता पाठ करने के लिए मंच पर आता है तो अपनी रचना को प्रस्तुत करने के पहले वह श्रोताओं का मनोरंजन करने के लिए एक-दो हास्यरस के चुटकुले, व्यंग्यात्मक मुक्तक अथवा रुबाई अवश्य पेश करता है। स्वामी जी ने इस प्रकार के चुटकुलों को सुन्दर पद्यों में रूपान्तरित किया है। उनका यह प्रयास मात्र पाठकों अथवा श्रोताओं के मनोरंजन अथवा हँसी-दिल्लगी के लिए ही नहीं है। उनकी ऐसी कविताओं में हमारी सामाजिक विसंगतियों तथा आचरणगत विडम्बनाओं पर तीव्र प्रहार किए गए हैं। इस दृष्टि से इन कविताओं में आर्यसमाज का सुधारवादी स्वर ही मुखर हुआ। 'कैसे नाम कैसे काम' शीर्षक मुक्तक में आचरण के प्रतिकूल व्यक्ति के नामों की विषमता को दर्शाया गया है—

नाम रखा सरदासिंह मिल में चौकीदार।
भगतराम घूमा करे नित शृंगार बजार।
नित शृंगार बजार सुशीला देती गाली।
नाम है कूड़ेराम रहे बागों के माली।
कंगाली से दुखी बड़ी तंगी में माया।
होय तकाजा रोज सूद तक रहे बकाया।।

स्वामी स्वरूपानन्द को कुण्डलिया छन्द लिखने में विशेष नैपुण्य प्राप्त है। शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर (अथर्ववेद-3/24/15) इस अथर्ववेदीय सूक्ति को स्वामी जी ने निम्न प्रकार कुण्डलिया का रूप दिया है—

सौ हाथों से कमाओ करे वेद उपदेश।
सहस्र करों से दान भी करते रहो हमेश।।
करते रहो हमेशा दानदाता कहलाओ।
दीन गरीब अनाथें के दुख दर्द मिटाओ।
जग में कोई न काम कठिन हो ऐसा वैसा।
मिले सफलता निश्चय पास में यदि हो पैसा।

उनके प्रकाशित काव्य ग्रन्थों में राघव गीत उद्यान, संगीत महोदधि, राघव पुष्पांजलि, हँसता चल हँसाता चल, राघव गीतांजलि आदि प्रधान हैं। जैसे संस्कृत आयुर्वेद, ज्योतिष जैसे विज्ञानपरक विषयों के ग्रन्थ भी श्लोकबद्ध हैं, उसी प्रकार स्वामी स्वरूपानन्द ने चिकित्सा विषयक अपना ग्रन्थ सरल चिकित्सा भी पद्य शैली में लिखा है।

63. महाराणा सज्जनसिंह

उदयपुर (मेवाड़) नरेश महाराणा सज्जनसिंह जहाँ एक कुशल प्रशासक, प्रजापालक राजा तथा स्वधर्म एवं स्व संस्कृति के प्रति प्रीति रखने वाले उदारचरित सम्पन्न व्यक्ति थे वहाँ उनमें काव्य रचनाचातुरी भी, थी। उनका जन्म 8 जुलाई 1959 को महाराजा शक्तिसिंह के यहाँ हुआ और अपने चचेरे भाई मेवाड़ के महाराणा शम्भुसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी बनकर 15 वर्ष की आयु में 7 अक्टूबर 1874 को वे उदयपुर के राजसिंहासन पर विराजमान हुए। ऋषि दयानन्द से उनकी प्रथम भेंट 1881 ई. में चित्तौड़ में उस समय हुई जब तत्कालीन वायसराय लार्ड रिपन ने महाराणा को जी.सी.एस.आई. की उपाधि प्रदान की और इस उपलक्ष्य में चित्तौड़ में एक बहुत बड़े दरबार का आयोजन किया गया था। उस समय तो महाराणा स्वामी जी से धार्मिक विषयों पर स्वल्प विचार-विमर्श ही कर पाए थे किन्तु 1882-83 में उन्हें उदयपुर में ही स्वामी जी का लगभग 6 मास तक दीर्घकालिक सत्संग प्राप्त हुआ। इसका लाभ उठाकर युवक महाराणा ने स्वामी जी से संस्कृत भाषा का सामान्य अभ्यास तो किया ही, उनसे न्याय, वैशेषिक तथा योगदर्शन के चुने हुए प्रकरण पढ़े तथा मनुस्मृति के राजधर्म प्रतिपादक अध्यायों का भी विशद अध्ययन किया। स्वामी दयानन्द कृत वेद भाष्य के लिए उन्होंने 1200 रुपए भेंट स्वरूप प्रदान किए तथा अपनी राजधानी से महाराज को विदा करते समय एक प्रशस्तिपत्र प्रदान किया। महाराणा में जहाँ अनेक गुण थे, वहाँ वे विद्या प्रेमी तथा काव्य रसिक भी थे। उनका निधन 1884 में मात्र पच्चीस वर्ष की अल्पायु में हो गया।

महाराणा जी ब्रजभाषा में अच्छी कविता लिख लेते थे। ऋषि दयानन्द के निधन पर उन्होंने एक दोहा तथा एक मनहरण कवित्त लिखकर अपने गुरु के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की थी। इसे फर्रुखावाद से प्रकाशित होने वाले भारत सुदशा प्रवर्त्तक मासिक ने अपने अप्रैल 1885 के अंक में प्रकाशित किया था। शोकांजलि निदर्शक उनके ये पद्य निम्न थे—

दोहा—

नभ चव ग्रह शशि दीप दिन दयानन्द सह सत्व।
वय उनसठ वत्सर विच भयो तन पंचत्व।।

इस दोहे में स्वामी जी महाराज के निर्वाण के वर्ष 1940 वि. का संकेत चित्र काव्य की शैली के अनुसार दिया गया है। यहाँ नभ शून्य (0) का वाचक है, चव चार का प्रतीक है तथा ग्रह और शशि क्रमशः 9 एवं 1 के सूचक हैं। अंकानां वामतो गतिः के नियमानुसार 1940 वि. की दीपावली के लिए ऋषि दयानन्द ने 59 वर्ष की आयु में पंचत्व प्राप्त किया। दोहे के अनन्तर जो मनहरण कवित्त महाराणा की

लेखनी से प्रसूत हुआ वह तो काव्य सौन्दर्य तथा शोक व्यंजना की दृष्टि से अद्वितीय एवं अनुपम ही है। प्रासंगिक कवित्त यहाँ दिया जा रहा है–

जाके जीह जोर ते प्रचण्ड फिलासफिन को,
अस्त सो समस्त आर्यमण्डल तें मान्यों मैं।
वेद के विरुद्धी बुद्धि सत्य के निरुद्धी सदा,
भद्र मन्द्र आद्रि पै सिंह अनुमान्यो मैं।
ज्ञाता षट शास्त्रन को वेद को प्रणेता जेता
आर्य विद्या अर्कगत अस्तचल जान्यो मैं।
स्वामी दयानन्द जू के विष्णु पद प्राप्त हू ते
पारिजात को सो आज पतन पर मान्यो मैं।।

आलोच्य पद में स्वामी दयानन्द के प्रचण्ड बुद्धि-वैभव, उनके अनूठे वाक् कौशल, अपार शास्त्र ज्ञान का उल्लेख तो है ही, उनके निधन को आर्य विद्या रूपी सूर्य का अस्ताचल की ओर जाकर अस्तंगत होना तथा स्वर्ग के पारिजात वृक्ष के पतन से उपमित किया गया है।

64. डा. सत्यप्रकाश

दार्शनिक संन्यासी और वैदिक साहित्य के उत्कृष्ट विद्वान् स्वामी सत्यप्रकाश ने अपनी युवावस्था में सुन्दर एवं मनोग्राही काव्य की रचना कर प्रयाग के साहित्यिक वातावरण को अपनी कविता सुरभि से सुगन्धित कर दिया था। उनका 'प्रतिबिम्ब' शीर्षक 36 कविताओं का एक काव्य संग्रह 1984 वि. में कला कार्यालय, प्रयाग से छपा। वह युग हिन्दी में छायावादी काव्य के उत्कर्ष का काल था। प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी के रहस्यवाद-छायावाद की हिन्दी में धूम थी और पाठक द्विवेदी कालीन काव्य की स्थूल इतिवृत्तात्मकता से ऊब उठे थे। छायावादी कविता को स्थूलता के प्रति सूक्ष्मता के विद्रोह की संज्ञा दी गई और प्रकृति के मनोज्ञ, सूक्ष्म एवं कल्पना-बहुल चित्रण पर जोर दिया गया। नर-नारी प्रेम की रीतिकालीन वासना प्रधान स्थूल अभिव्यक्ति से लोगों को विरक्ति अनुभव होने लगी और मानवी संवेदनाओं के सूक्ष्म चित्रण पर बल दिया जाने लगा।

छायावादी कविता के इसी उन्मुक्त वातावरण में श्री सत्यप्रकाश का प्रतिबिम्ब काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। इस कविता संग्रह की भूमिका स्वयं कवि ने लिखी है और आश्चर्य है कि वह अंग्रेजी में है। अपने इस वक्तव्य के आरम्भ में उन्होंने यह माना है कि वर्तमान में भक्ति काव्य और देव, बिहारी तथा केशव की शृंगारी कविता अप्रासंगिक हो चुके हैं। वे अपनी कविता को छायावाद से प्रभावित तो मानते हैं किन्तु इसे उन्होंने नव छायावाद (Neo My sticism) का नाम दिया है। प्रकृति

के बारे में उनका निजी दृष्टिकोण है जिसे उन्होंने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। इसी भूमिका में आगे चल कर उन्होंने वस्तु, चित्र बिम्ब, और छाया को स्पष्ट किया और हिन्दी काव्य में उनके प्रयोग का विवेचन किया। तदनन्तर वे अलंकार और छन्द विषयक कवियों में प्रचलित धारणाओं की चर्चा करते हैं और आधुनिक कविता में उनके बदलते प्रतिमानों का उल्लेख करते हैं। प्रतिबिम्ब काव्य संग्रह को समझने के लिए इस भूमिका का अध्ययन आवश्यक है।

श्री सत्यप्रकाश के इस काव्य में आध्यात्मिक, प्रकृति सौन्दर्य परक, मानव जीवन की नश्वरता को उजागर करने वाली तथा इसी प्रकार के कुछ अन्य विषयों से सम्बद्ध अनुभूति-प्रधान कविताएँ संगृहीत हुई हैं। उनकी अध्यात्मक भावापन्न कविता का एक उदाहरण देखिए—

कर में एक मुकुर ले करके
कर लो अपना ही दर्शन।
आनन के प्रतिबिम्बों में तुम
छिप जाओ हे प्यारे मन।
अपने नयनों से देखो तुम
अपना ही वह मुसकाना,
जिसके कारण तुम्हें जगत् में,
बार बार होता आना।।

महादेवी वर्मा की प्रसिद्ध कविता 'टूट गया वह दर्पण निर्मम' से सत्यप्रकाश की इन पंक्तियों को मिलाएँ।

मुझे न डर कुछ भी दर्पण के
चूर चूर हो जाने का।
ध्यान मुझे इन प्रतिबिम्बों के
है केवल खो जाने का।।

'अभिवादन' शीर्षक कविता में कवि प्रकृति को देवी, सखी, प्रिया, सुता, सजनी, माया, माधुनी और जननी जैसे सम्बोधनों से सम्बोधित करता है। इसमें जहाँ कवि की प्रकृति से आत्मीयता लक्षित होती है वहाँ उसका प्रकृति के प्रति विस्मय का भाव भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हुआ है। उदाहरण देखिए—

इन्द्र का चाप बना कर सेतु
धरा से स्वर्ग ओर प्रस्थान।
प्रिये करती जब तू चुपचाप
मुझे क्यों तजती यों अनजान।

प्रकृति रूपी सुन्दरी का लजाना और मान करना भी कवि की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ है—

सजनि जब उदयित होता चन्द्र
कहो, क्यों उससे करती मान।
झिलमिलाते जब तारक वृन्द
लजाती जाती गाती गान।

प्रकृति नायिका का पल में छिपना और दूसरे क्षण प्रकट होना भी कवि जानता है—

घटा जब लेती नभ को घेर।
किधर तुम छिप कर जाती भाग।
अँधेरे में फिर दामिनि रूप।
दमकती आती गा गा राग।।

प्रकृति चाहे जो रूप धारण करे, कवि उसका सतत अभिवादन और अभिनन्दन ही करेगा—

धरे जो चाहो आओ रूप
सदा अभिवादन को तैयार।
अगर तुम आओ मेरे द्वार
भेंट दूँगा तण्डुल दो चार।।

छायावादी कविता में आस्तिकता की धारणा सर्वत्र मुखर हुई है। कवि अपने आराध्य को अपने निकट आया जानकर भी उन्हें नहीं पहचान सका। परिणाम हुआ पश्चात्ताप—

मेरे आए प्रिय भगवान
मैंने उन्हें नहीं पहचाना।
पड़ा बाद को फिर पछताना।

किन्तु कवि के उपास्य ईश्वर भक्तिकाल के कवियों के आराध्य राम या कृष्ण की भाँति अवतार लेकर नहीं आते। वे तो उसे दीन, हीन, रोगी, अंधे, अपाहिज व्यक्ति अथवा सरलता और भोलेपन की प्रतिमा रूप बाल शिशु के रूप में दिखाई पड़ते हैं—

रंक पटल धारण करके वे
आये मेरे पास।

नहीं सका मैं उनको जान।
कभी कभी आये वे बन कर
दीनों के उच्छ्वास।

अथवा—

शैशवता धारण कर आए।
हँसते हँसते घर पर आए।
मधुर तोतले बयनों में था
उनका प्रत्याभास।
नहीं सका पर मैं पहचान।

कवि की कुछ अन्य कविताएँ भी भावनाप्रवण शैली में लिखी गई हैं। इनमें कल्पना, शिशु, अवधूत तथा सरल तरंग आदि विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। इनमें सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य का प्रभाव भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर होता है। शिशु की सरलता ने कवि को अभिभूत कर दिया है। वह लिखता है—

मेरे घर के हँसते फूल
शैशवता के मृदु शृंगार।
तप्त हृदय की शीतल धार।
वक्षस्थल के सुरभित हार।।

कवि बाल शिशु को विरक्त अवधूत से कथामपि न्यनू नहीं मानता—

जगत् पिता के आँगन में हैं कितने तुमसे लाल
कितने तुम से हैं अवधूत।
सब मिल कर जब हँसते होंगे
लाखों तुमसे बाल।

'सलिल सरंग' तो सुमित्रानन्दन पन्त की नौका विहार कविता से अत्यधिक समानता रखती है—

श्री यमुना के वक्षस्थल पर ले कर नाव
संध्या समय चले हम कुछ जन हो तैयार।
गगन लोक में नाच रहा था शुभ मार्तण्ड
दिखा रहा था दिवस सफलता के उद्गार।

जिस प्रकार पन्त का नौका विहार उसे शाश्वत जीवन का आभास देता है उसी प्रकार

यमुना पर कवि सत्यप्रकाश का नौका आरोहण भी कम स्फूर्ति और प्रेरणादायक नहीं है।

आशा पूरित आती जाती और निराश
देखा गया सभी के जीवन में यह रंग
सजल नयन क्या, सजल वदन थी लहरे लोल।
अन्तर्भाव दिखाने का क्या होगा ढंग।।

'प्रतिबिम्ब' को पढ़ कर ऐसा लगता है कि यदि यह कवि अपनी व्यवसायजन्य विवशता के कारण रयासन विज्ञान की उच्चतर शोध तथा दूसरी ओर वैदिक अध्ययन की गहराइयों में प्रवृत्त एवं प्रविष्ट नहीं होता तो इस बात की सम्भावना थी कि हिन्दी के तत्कालीन काव्य को उसकी कुछ और श्रेष्ठ कृतियों का उपहार मिलता।

65. डा. सत्यव्रत शर्मा अजेय

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के उपाचार्य डा. सत्यव्रत शर्मा अजेय को काव्य प्रणयन में श्लाघनीय सफलता मिली है। अब तक उनके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। वैशाख अमावस्या 1991 वि. (1934 ई.) को सहारनपुर जिले के एक ग्राम में जन्मे सत्यव्रत शर्मा के पिता का नाम पं. बालमुकुन्द शर्मा था। एम.ए. तथा साहित्याचार्य के अतिरिक्त अजेय ने हिन्दी के लावनी साहित्य पर शोध कार्य किया और मेरठ विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। हिन्दी के प्रख्यात कवि पं. जगदम्बाप्रसाद मिश्र हितैषी के काव्य विवेचन पर भी आपकी एक शोध कृति प्रकाशित हुई है। उनके अब तक प्रकाशित काव्यग्रन्थ निम्न हैं—मीरा (चार सर्गो में समाप्त), नारदमद मर्दन, गा सलोनेगा, हीरक सहस्रावली (दोहा छन्द में प्रणीत नीति काव्य), भक्तामर-स्तोत्र (अनुवाद) अप्रकाशित काव्य-दर्शनेन्दु (स्वामी दर्शनानन्द के जीवन पर आधारित महाकाव्य) दयानन्द पचीसी आदि।

अजेय के काव्य का भाव पक्ष—सत्यव्रत शर्मा अजेय ने हिन्दी के उन महान् कवियों से प्रेरणा ली जो द्विवेदी युग और उसके बाद के छायावादी युग की सन्धि सीमा पर खड़े थे। पं. गया प्रसाद शुकल सनेही ने कानपुर से सुकवि का प्रकाशन किया तथा उन्होंने ही कवि सम्मेलनों की परम्परा का प्रचलन किया। पं. अनूप शर्मा आर्यसमाज के विचारों एवं संस्कारों से प्रभावित प्रतिभावान् कवि थे। पं. जगदम्बाप्रसाद मिश्र हितैषी के काव्य में भारतीय आर्य संस्कृति की ऊर्जस्वी धारा अन्तःसलिला की भाँति प्रवाहित है। ये तीनों कवि ओज, तेज, शौर्य तथा वीरता के भावों को स्वकाव्य में उतार सके हैं।

इन्हीं रससिद्ध कवियों से प्रेरणा लेकर काव्य सृजन करने वाले अजेय के काव्य में भी मानव प्रेम, राष्ट्र भक्ति, प्रकृति के प्रति अनुराग तथा स्वधर्म एवं स्वसंस्कृति

की भव्यता का रम्य चित्रण दिखाई पड़ता है। विभिन्न पत्रपत्रिकाओं में उनकी शताधिक काव्य रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

उन्होंने अपने काव्य में खड़ी बोली का सशक्त प्रयोग किया है। घनाक्षरी, सवैया, दोहा आदि परम्परा से प्रयुक्त होने वाले छन्दों के अतिरिक्त उन्होंने ग़ज़ल, रुबाई, कता आदि उर्दू काव्य रूपों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने यथावश्यकता द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीड़ित, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि संस्कृत वर्ण वृत्तों को भी प्रयुक्त किया है। उनके काव्य में सशक्त अलंकार योजना दिखाई देती है। उपमा, रूपक, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, विरोधाभास आदि अलंकारों के अतिरिक्त मानवीकरण तथा विशेषण विपर्यस जैसे नवीन अलंकारों का समावेश भी उनकी कविताओं में हुआ है। हिन्दी के अतिरिक्त वे उर्दू तथा संस्कृत में भी दक्षतापूर्वक काव्य रचना करते हैं।

स्वामी दर्शनानन्द के पावन व्यक्तित्व का चित्रण उनके अप्रकाशित दर्शनेन्दु महाकाव्य में निम्न प्रकार हुआ है–

हिमगिरि तनया के तट का प्रवासी वह
उसको समान सदा राग और विराग था।
भव के विभव नहीं भाये थे तनिक उसे
शाकपात भक्ष्य और लक्ष्य तप त्याग था।
सभ्यता के शीश का सुभग सिंदूर स्वीय
शुभ शुचि संस्कृति सलोनी का सुहाग था।
मानस में 'दया', 'कृपा', 'श्रद्धा' की त्रिवेणी बही
दर्शन आनन्द मानो पावन प्रयाग था।।

स्वामी दयानन्द की गुणावली का गायन करते हुए अजेय ने निम्न घनाक्षरी का प्रणयन किया है–

पाश में बँधे थे पराधीनता पिशाचिनी के,
फन्द में फँसे थे सब दुःख और द्वन्द के।
तूर्ण तमतोम की तमिस्ता ने किये थे अन्धः
मन्द थे प्रकाश हुए सूरज के चन्द के।
यूरोपीय अनुवाद पढ़ पढ़ हम लोग
भ्रमर कहाते रहे वैदिक मरन्द के।
सर्वथा स्वतन्त्र दिव्य नव्य भव्य भारत की
कल्पना असम्भव थी बिना दयानन्द के।।

विभिन्न काव्य विधाओं मे लिखना अजेय का प्रिय व्यसन रहा है। उनके

'कुणाल' नाटक में जो पद्य प्रयुक्त हुए हैं वे हमें पारसी नाटक शैली के उन नाटकों की याद दिलाते हैं जिनमें संवादों के बीच-बीच में लोक प्रचलित, सरल किन्तु प्रभावशाली भाषा में पद्यों को हीरक माला में जड़े मुक्ताओं की भाँति सुसज्जित किया जाता था। तिष्यरक्षिता को क्रुद्ध पाकर सम्राट् अशोक अपनी प्रणयिनी प्रेयसी को सान्त्वना देते हुए कहते हैं--

देवि, आज तुम्हारी यह क्या दशा है?
क्या किसी ने कह दिया है कुछ तुझे आवेश में।
यों देख सकता है मैं नहीं तुझको कदाचित क्लेश में।
जिसने उठाई आँख उसकी आँख फोड़ी जाएगी।
गर्दन उठाई है अगर, गर्दन ही तोड़ी जाएगी।।

स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान पर लिखी कवि की यह उर्दू रुबाई भी लाजवाब है--

इस मुल्क के चमन को है चश्मेतर से सींचा।
इल्मो हुनर से सींचा धन माल जर से सींचा।
श्रद्धा, बयां करें क्या कुर्बानियाँ तुम्हारी,
जब वक्त आ पड़ा तो खूने जिगर से सींचा।।

कवि अजेय ने दो खण्ड काव्य भी लिखे हैं। प्रथम है नारद मद मर्दन। यह उनकी बाल्यावस्था की कृति है जब वे मात्र 15 वर्ष के थे। इस काव्य में यों तो नारद मोह की उस कथा को ही आधार बनाया गया है जिसे महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस के आरम्भ में लिखी है, किन्तु कवि इस पौराणिक कथा के व्याज से पाठकों को यह संदेश देना चाहता है कि शास्त्रवेत्ता पुरुष भी रजोगुण के वशवर्ती होकर चारित्रिक पतन के रास्ते पर चल पड़ते हैं। पुनः ज्ञान के दीप के प्रज्वलित होने पर उन्हें सन्मार्ग पर आते देर नहीं लगती। आलोच्य काव्य तप, गर्व, मोह और ज्ञान शीर्षक चार सर्गों में विभक्त है। कवि के शब्दों में इस काव्य का उद्देश्य 'असतो मा सद्गमय' की उक्ति के अनुसार विवेक के द्वारा मोहमद पर नियन्त्रण कर प्राणि मात्र के हित को दर्शाना है।

'नारद मद मर्दन' यद्यपि पौराणिक गाथा को आधार बनाकर लिखा गया है किन्तु उसमें कवि को अपनी काव्य चातुरी प्रदर्शित करने का पर्याप्त अवसर मिला है। प्रकृति चित्रण, सौन्दर्य चित्रण एवं मनोभावों के चित्रण करने में कवि को अपूर्व सफलता मिली है। निम्न पद्य में प्रकृति का एक रमणीय दृश्य कवि ने उकेरा है--

कमल प्रफुल्लित हुए सरों में
पवन गंध वितरित करता।

सरिता कल कल झरना झर झर
मधुर शब्द कर था झरता।।

सरल तथा प्रसाद पूर्ण खड़ी बोली में रचा गया आलोच्य काव्य तनिक भी आभास नहीं देता कि यह कवि की प्रारम्भ की कृति है।

चार सर्गो में समाप्त मीरा खण्डकाव्य कवि अजेय की एक प्रौढ़ काव्य कृति है। इसमें कवि ने भक्ति की साकार प्रतिमा मीरा के जीवन को काव्यबद्ध किया है। शैशव, यौवन, विरह और निर्वाण जहाँ इस काव्य के चार सर्गो के शीर्षक हैं वहीं वे चरित नायिका मीरा के जीवन यात्रा के चार पड़ाव भी हैं। कवि के शब्दों में 'मीरा' एक चिन्तन-प्रधान काव्य है जिसमें मीरा की अनुभूति, दार्शनिकता, प्रेम और भक्ति साधना, रहस्य भावना तथा प्रकृति प्रेम को प्रस्फुटित करने का प्रयास किया गया है। कवि ने यों तो भक्ति शास्त्र में वर्णित भगवद् भक्ति के स्मरण, कीर्तन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म निवेदन आदि साधनों को मीरा की तन्मयासक्ति में परिणत होते हुए देखा है, किन्तु वह स्वयं मीरा को निर्गुण परमात्मा की उपासिका मानता है। उस निराकार आराध्य के वर्णन में कवि ने कुछ मार्मिक पद्य लिखे हैं जिनमें से कुछ यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

निर्गुण वह निर्मोह निराकुल,
निष्कलंक वह जगदाधार।
निर्मद निराभास निर्मल,
निर्लोभ निरामय निरहंकार।।
निष्कारण है निर्विकार निष्काम
निलय निर्व्रण निष्पाप।
निरूपप्लव निर्वाच्य निरंजन,
रहा निरन्तर घट घट व्याप।।

इस प्रकार परमात्मा के निराकार स्वरूप की व्यंजना कर कवि ने मीरा की भक्ति साधना को एक नया आयाम दिया है।

66. सारस्वत मोहन मनीषी

कविता में पठनीयता और गेयता दोनों गुण यदि एक साथ मिलें तो उसकी श्रेष्ठता में कोई शंका नहीं रहती। सारस्वत मोहन मनीषी आर्यसमाज के युवा कवि हैं जिनका काव्य उच्च विचारों और भावों से गुंफित तो है ही, उसमें पठनीयता तथा गेयता के गुण भी हैं। मनीषी का जन्म 6 मई 1950 को हरियाणा के महेन्द्रगढ जिले के कनीना ग्राम में हुआ। इनकी शिक्षा एम.ए. तक हुई है। कुछ वर्षो तक इन्होंने डी.

ए.वी कॉलेज अबोहर में अध्यापन किया। मनीषी के अब तक चार काव्य-सकलन प्रकाशित हो चुके हैं—आग के अक्षर, आधा कफन, बूँद बूँद वेदना तथा कलम नहीं बेचेंगे।

काव्य विषयक अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए मनीषी ने अपने प्रथम कविता सग्रह 'आग के अक्षर' के आत्मकथन में लिखा—"मेरी प्रतिबद्धता इस देश की संस्कृति, इसके जीवनमूल्य, इसके कणकण, इसके खेत खलिहान, भूत, भविष्य और वर्तमान के साथ है। देश का दर्द मेरा अपना नितान्त व्यक्तिगत दर्द है। साहित्य मेरे स्वप्न शरीर के माथे का मुकुट है और राजनीति पैरों की खड़ाऊँ।" निश्चय ही उनकी कविता में भारत के धर्म, संस्कृति, परम्परा, अस्मिता, तथा पुरातन गौरव की अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु वे अतीत के स्वर्णिम चित्रण से ही सन्तुष्ट नहीं हैं। देश की वर्तमान दुर्दशा तथा पीड़ा को भी उन्होंने अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी है।

जहाँ तक काव्य के कलापक्ष का सम्बन्ध है, मनीषी की धारणा है कि "लय, तुक, ध्वनि, यति, गति और संगीतमयता कविता में से पुराने लिबास अथवा त्याज्य विचारों की भाँति तिरोहित हो गए हैं। कविता का तन भी बदला, मन भी बदला और आत्मा भी बदल गई। कविता आज कविता नहीं रही। उसकी पुरानी पहचान समाप्त हो गई। कविता को यदि जीवित रहना है तो उसे अनुशासन में रहना होगा। कविता का अनुशासन छन्द है।"

वे छन्दहीन कविता को नगर वधू से उपमित करते हैं जब कि छन्दोबद्ध कविता उनकी दृष्टि में कुल कामिनी है। काव्य-कामिनी कुलीना ही रहे इसी में उसका सम्मान है।

मनीषी ने अपनी कविताओं में काव्य विषयक इसी दृष्टिकोण को प्रकट किया है। उसके अनुसार भावों की तीव्रता काव्य को जन्म देती है।

जब तेजी से भावों की आँधी चलती है।
आतुर होकर पीड़ा मुँहजोर मचलती है।
जब तन मन का हर रोम रोम सिहरन से भर
कंकर से शंकर का अभाव पूरा करने
व्याकुल होकर पागल सा हँसता गाता है।
अज्ञात खड़े प्रिय को आवाज लगाता है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।।

प्यार के बदले अपमान, सुन्दर स्वप्नों का भंग हो जाना तथा इच्छाओं की पूर्ति में व्याघात कवि के मन को मसोस देता है। तब उसकी कुण्ठित भावनाएँ ही कविता के रूप में जन्म लेती हैं—

जब प्यार माँगना चाहें नफरत मिलती है,
दरवाज़े से कोई दुत्कारा जाता है।
'काली' आता 'विद्या' कपाट जड़ देती है
'तुलसी' जब 'रत्ना' से फटकारा जाता है।
सपने कच्चे ही मिल जाते हैं धूली में
इच्छाओं को लटकाया जाता सूली पे
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।

राजकुमारी विद्योत्तमा द्वारा अपठित कालिदास का अपमान और रत्नावली द्वारा तुलसीदास का तिरस्कार इन्हीं दो घटनाओं से संस्कृत और हिन्दी को कालिदास और तुलसीदास जैसे श्रेष्ठ कवि प्राप्त हुए थे।

कवि मनीषी हिन्दी की अत्याधुनिक कविता से सन्तुष्ट नहीं हैं। उन्हें इस कविता में पश्चिम की अंधी नकल दिखाई देती है–

है नीरसता औ दुरूहता यह पश्चिम की छिपी नकल है।
इतने भोले भाले कवि हैं नहीं गाँठ की तनिक अकल है।
धरती अपनी बीज पराया है अज्ञेय पन्थ राही का।
मठाधीश बन गए लोग कुछ है युग झूठी वाहवाही का।।

हमारा कवि कविता का नाम धारण करने वाली उन बेतुकी रचनाओं के प्रति अपना क्षोभ व्यक्त करता है जो छन्दों की मर्यादा को तोड़कर छोटी लम्बी पंक्तियों में बेतरतीब तथा क्रमहीन रूप में लिखी जाती हैं। वह काव्य को वादों के घेरे में बाँध रखने का भी विरोधी है–

छोटी लम्बी चन्द लकीरें खड़ा कर दिया चिह्न कठघरा।
कविता को शुभ चिन्तक गण ने बना दिया है बलि का बकरा।
वादों की खन्दक खोदी है खड़ी हुई गुट की दीवारें।
ऐरे गैरे नत्थू खैरे बना रहे कविता मीनारें।।
ताल, छन्द, लय तुक औ ध्वनि भी फांसी ऊपर लटक रही है
काव्य कामिनी क्यों पागल सी आज सड़क पर भटक रही है।

मनीषी की दृष्टि में कविता की सार्थकता लोक मंगल के साधन रूप में उसे प्रयुक्त करने में है। यदि उसकी रचना से जनहित हो, किसी को कर्तव्य-पालन की प्रेरणा मिले तो वह उसे सार्थक मानेगा उसकी कामना है–

हर लावारिस डोली के हित मैं कहार बन जाऊँ।
पतझड़ के मेले में घुस कर मैं बहार बन जाऊँ।

हर चिन्तित हलधर को मेरा गीत फसल हो जाये।
मेरा मन बादल हो जाये।

इस प्रकार काव्य के लोक मंगल विधायक स्वरूप का निरूपण करने के पश्चात् कवि ने जो काव्य रचना की, वह उसकी स्वीकृत कसौटी पर खरी उतरती है। आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन ने मनीषी के काव्य की विवेचना के प्रसंग में लिखा, "कवि के अन्तर्मन में देश की दुरवस्था और उसमें प्रचलित अनेक कुरीतियों, कदाचारों तथा विभीषिकाओं के प्रति जो सात्विक आक्रोश है उसी ने उसे ऐसी क्रान्तिकारी रचनाएँ लिखने को विवश किया है।" मातृवंदना करते हुए वह धरती की माटी को चन्दन रोली से उपमित करता है तथा भारत भूमि के नैसर्गिक सौन्दर्य का अकृपण भाव से वर्णन करता है–

राशि राशि सौन्दर्य यहाँ पर कितना बिखर रहा है।
जितना देखो ध्यान लगा कर यौवन निखर रहा है।
पश्चिम का तूफान पूर्व में आकर उतर रहा है।
डूबा बेड़ा दुनिया का इस भू पर उभर रहा है।
किरण कहारों के कन्धों पर इन्द्र धनुष की डोली।
जितना गर्व करूँ थोड़ा ये माटी चन्दन रोली।।

राष्ट्र को स्वाधीनता दिलाने के लिए जिन शहीदों ने आत्माहुतियाँ प्रदान कीं, उन्हें कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करना कवि अपना पावन कर्तव्य समझता है। 'कुछ दीपक उनके भी नाम' शीर्षक कविता में कवि यह स्वीकार करता है कि केवल असहकार और सत्याग्रह से ही देश को आजादी नहीं मिली थी। स्वतन्त्रता दिलाने में क्रान्तिकारी वीरों का भी पूरा योगदान रहा–

आजादी केवल न मिली है चर्खे, तकली खादी से।
आजादी को पाया अगनित प्राणों की बर्बादी से।
आँख मिलाई कातिल से हँस कर मुसकाकर खंजर से।
स्वतन्त्रता का झरना फूटा कई सदी के बंजर से।।

कवि पुरुषार्थ का हामी है। केवल सपने देखना, भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ रख कर बैठना उसे स्वीकार नहीं–

सपने तो सपने होते हैं
सपने कब अपने होते हैं।
तोड़ रूढ़ियों की कारा दे छोड़ ध्यान जंजीर का।
मेंहदी मेहनत की रचना ले हाथ पकड़ तदबीर का।।

'अप्प दीपो भव' स्वयं ही अपने पथदर्शक दीपक बनी, इस बुद्धवाणी को साकार करते हुए कवि ने उद्‌बोधनात्मक कविता लिखी–

पथ स्वयं अपना बनाओ।
कस कमर बढ़ते ही जाओ।
चल पड़े यदि राह में मंज़िल तुम्हें मिलकर रहेगी।
हो भले ही देर हर मुश्किल मगर टलकर रहेगी।।

कवि मनीषी की कविता में आदर्श और यथार्थ का सुखद समन्वय मिलता है। वह देश में व्याप्त अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा अभाव से अपरिचित नहीं है। जो गाँधी मुक्तिदूत होकर इस देश में आया, आज उसी के अनुयायी गाँधी समाधि पर जाकर देशहित की कसमें भले ही खाएँ, उनसे देश का अहित ही हुआ है। 'महात्मा के मानस पुत्र' शीर्षक कविता में वह लिखता है–

जग थर्राता सब डरते थे ऐसी थी वह आँधी।
ऐसे में ही मुक्तिदूत बनकर उतरे थे गाँधी।।

किन्तु आज–

राम राज्य की मधुर कल्पना स्वर्ग सिधार गई है।
राम नहीं है राज्य राज्य है, रही कल्पना बाकी।।
डूब रहा है देश समूचा भूल गए तैराकी।

अब तो यह हो रहा है–

कुछ सनकी तेरी समाधि गंगाजल से धोते हैं।
भीतर भीतर तो हँसते हैं ऊपर से रोते हैं।
चोरों को अब शरण दे रही है तेरी यह खादी।
दुनिया की नजरों में तो हैं पक्के गाँधीवादी।

वर्तमान राजनीति की विडम्बना को कवि ने पूरी जीवन्तता के साथ उकेरा है–

आज देश के अम्बर पर तो छाया गहन कुहासा है।
लूटो और खसूटो राजनीति की यही परिभाषा है।।

अवसरवादी राजनीति और सत्ता की छीना झपटी को कवि ने निम्न प्रकार से आक्रोशमयी वाणी दी है–

देश पड़े चूल्हे में राष्ट्र जाये भाड़ में।
खेलते शिकार सभी कुर्सियों की आड़ में।।

जैसा कि हम आरम्भ में कह आए हैं मनीषी की कविता में जहाँ पठनीयता का गुण है वहाँ वह कवि सम्मेलनों में भी सफलतापूर्वक श्रोताओं का मनोरंजन करती है। किन्तु आर्यसमाज की पवित्रतामयी आस्थाओं और आर्य मर्यादा के प्रति श्रद्धा रखने वाला कवि अपने को उन मंचीय कवियों से भिन्न मानता है जो सुरा सेवन करके ही काव्य पाठ के लिए मंचासीन होते हैं। ऐसे मद्यप कवियों के प्रति गहरा तिरस्कार प्रकट करता हुआ वह कहता है—

मैंने ऐसे कालिदास भी देखे हैं
बिना पिए जो छन्द नहीं पढ़ सकते हैं।
ऊपर चढ़ने, आगे बढ़ने को कहते,
लेकिन खुद दो कदम नहीं बढ़ सकते हैं।

सरस्वती की प्रतिमा को मदिरा से नहलाने वालों के प्रति कवि का यह आक्रोश उचित ही है।

कलम नहीं बेचेंगे—214 घनाक्षरी छन्दों का यह संग्रह डा. सत्यव्रत अजेय की भूमिका के साथ 1987 में प्रकाशित हुआ। डा. अजेय के शब्दों में "यह घनाक्षरी छन्द समस्त हिन्दी छन्दों का बादशाह है क्योंकि अनुभूतियों की अभिव्यक्ति, नीति, उपदेश एवं समाज सुधार आदि विषयों के मुखरण की जितनी शक्ति इस छन्द में है, उतनी किसी अन्य में नहीं। इसमें शृंगार, वीर, हास्य और करुण आदि सभी रसों का पूर्ण परिपाक हो जाता है, इसलिए प्रत्येक युग में इसका एक छत्र राज्य रहा है।"

डा. अजेय के इस कथन को मनीषी जी ने अपने काव्य संग्रह में शब्दशः चरितार्थ किया है। युद्ध वीरों को प्रेरणा देने वाला उसका स्वर सुनिए—

विजय वधू लिए खड़ी हाथ में सुमाल थाल
बढ़ो वीरो, चूको नहीं तोड़ सभी जाल दो।
डालता जो वक्र दृष्टि देश पै हमारे दुष्ट
खींच खींच मार मार आँख को निकाल दो।
काल शत्रुओं के लिए ढाल दोस्तों के लिए
शूल को त्रिशूल और फूल को सुढाल दो।
काट काट शीश वीरो, वैरियों के व्योम बीच
आँख मीच मीच रोज गेंद सा उछाल दो।।

आज के शासक जो जन हित की सौगन्ध खाकर जन विरोधी नीतियों में संलग्न हैं, उन्हें जब देश की दीन-हीन स्थितियों से वाकिफ कराया जाता है तो वे सार्थक आलोचना को भी सहन नहीं करते और बात-बात में प्रत्येक दुरवस्था और विडम्बना के लिए पड़ोसी देशों या विदेशियों का हाथ होने की बात करते हैं उनके प्रति कवि का यह व्यंग्यात्मक कथन अत्यन्त सटीक है–

धरती बिछौना बनी अम्बर का ओढ़ना है
इसके नसीब में तो आया फुटपाथ है।
कितना अभागा है ये बालक किसी ने कहा,
माँ व बाप जीवित हैं फिर भी अनाथ है।
देश में उपद्रव हैं दिन में अँधेरा हुआ
चोर ने सिपाही का निभाया खूब साथ है।
पूछा नेताजी से मैंने हँस के कहा था तब
इसमें मनीषी जी विदेशियों का हाथ है।।

मनीषी की कविता का विषय फलक अत्यन्त विस्तृत है। उसमें हमारे सांस्कृतिक पर्वो, दयानन्द, हंसराज जैसे महारपुरुषों और भूषण जैसे कवियों का समावेश है तो नेताओं की छल कपट पूर्ण राजनीति, दहेज, भुखमरी, बेरोजगारी, महँगाई, असम और पंजाब की कठिन समस्याओं जैसे आधुनिक बोध से जुड़े प्रश्न भी चर्चित हुए हैं।

वृद्ध भारत के जर्जर शरीर में यौवन की तरुणाई का प्रवेश कराने वाले दयानन्द के प्रति कवि की यह श्रद्धा-समन्वित उक्ति देखिए–

सदियों का ठूँठ वृक्ष हो गया था हरा भरा
कोयलिया डालों पै मीठे गीत गा गई।
शेर की दहाड़ सुन भागे थे शृगाल सभी
ज़िन्दगी में वीरता की भावना सी छा गई।
बादल अविद्या के छँटे तो नभ साफ हुआ
किरणें प्रकाश की अँधेरा सभी खा गई।
भारत बुढ़ापे की झुकी कमर सीधी हुई
आया दयानन्द तो जवानी फिर आ गई।।

आर्यसमाज ने राष्ट्रीय शिक्षा का जो आदर्श बनाया उसे मूर्तिमान रूप देने वाले महात्मा हंसराज के प्रति कवि ने अपने भक्ति पूर्ण उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किए हैं–

भारत की संस्कृति को मारने की साजिश की
विकृति का विष डाला तख्त और ताज ने।
पूरब के घोंसले पै पश्चिम की चोंच तान
पक्षियों को मारने की योजना की बाज ने।
रामकृष्ण भूल जाएँ ईसा के ही गीत गाएँ
रचा ऐसा षड्यन्त्र गोरों के समाज ने।
डी.ए.वी. का बीज बोके विचरे निडर होके
मैकाले को धूल में मिलाया हंसराज ने।।

सशक्त विषय विवेचन तथा उक्ति की वक्रता के कारण मनीषी का यह काव्य आधुनिकयुग बोध को साकार करने वाला सफल साहित्य यज्ञ है।

67. मास्टर सालिग्राम शर्मा

उर्दू की मुसद्दस शैली में लिखी गई यह काव्य कृति ब्रह्मकुल वर्तमान दशा दर्पण लाला द्वारका प्रसाद अत्तार शाहजहांपुर द्वारा प्रकाशित की गई। इसके लेखक मास्टर सालिग्राम शर्मा चर्थावली थे। हमारे पुस्तक संग्रह में 1913 ई. में प्रकाशित इसका चतुर्थ संस्करण विद्यमान है। यह उर्दू की मुसद्दस शैली में लिखी गई है।

आलोच्य कृति में 49 पद्य हैं जिनमें कवि ने ब्राह्मणों के अतीत कालीन गौरव का उल्लेख करने के पश्चात् उनकी वर्तमानकालीन अधोगति एवं दुर्दशा का ज्वलन्त चित्र उपस्थित किया है। उसके अनुसार–

ब्राह्मण कभी रहनुमाये जहाँ थे।
हकीकी धर्म के यही पासवाँ थे।
महायोगी तपस्वी विद्वान् थे।
बड़े तत्वज्ञानी बड़े नुकतादां थे।
थे वेद और वेदांग के पूरे माहिर।
ब्रह्म ज्ञान के राज थे इन पै जाहिर।।

परन्तु उन्हीं अग्रजन्मा ब्राह्मणों का आज हाल यह है कि–

बहुत इनमें अफसोस रोटी पकावें
बहुत बैठ कूओं पै पानी पिलावें।
बहुत बन भगत रोज गर्दन हिलावें
बहुत बन स्याने पशू बध करावें।
फिरें लुटिया डोरी को कन्धे पै रखकर
फिरें घूमते ज्योतिषी बन के घर घर।।

आज के ब्राह्मण मात्र भोजन भट्ट ही रह गए हैं और यजमानों के द्वारा कराए गए भोजन की त्रुटियों की छानबीन करना ही उनका जीवोद्देश्य रह गया है। इस सम्बन्ध में कवि का निम्न कथन द्रष्टव्य है—

फलाने के लड्डू में दाना कड़ा था।
फलाने के यहाँ घी बहुत ही सड़ा था।
फलाने के माँ नोन ज्यादा पड़ा था।
फलाने के रोगन स्याह भी चढ़ा था।

मुसद्दसकार कहता है—

यह जो कुछ भी मैंने लिखा और कहा है।
खयालात का मेरे फोटू खिंचा है।
नहीं दिल दुखाना मेरा मुद्दआ है।
न तान और तशनीय बिलकुल रवा है।
है सच्चे प्रेम और हित की कहानी।
जो 'सालिग' ने इस वक्त लिख कर बखानी।।

उर्दू के छन्द में लिखी गई कविता में उर्दू-फारसी के शब्दों का बाहुल्य स्वाभाविक ही है। फलतः हम देखते हैं कि मुसद्दसकार ने अपनी कृति में रहनुमा, पासवाँ, रुहानियत, रुतबा, लक़ब, रहबर, अज़मत, मुक़ाबिल, ज़लालत, तनज़्ज़ुल, रिफाक़त, ख़तावर, गुनहगार, नुमाया, नुक्स जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।

उठो तुम भी आगे कदम को बढ़ाओ।
ब्रह्म तेज दुनिया को अपना दिखाओ।

कवि का दृढ़ विश्वास है कि यदि ब्राह्मणों ने अपने लुप्त सुप्त गौरव को पुनः प्राप्त कर लिया तो सम्पूर्ण समाज का पुनरुत्थान हो जाएगा, कारण कि ब्राह्मण ही हमारे धर्म एवं समाज के नेता एवं मार्गदर्शक हैं—

तुम्हीं भाइयो, धर्म के रहनुमा हो।
तुम्हीं धर्म की नाव के नाखुदा हो।
तुम्हीं चश्म रुहानियत की ज़िया हो
तुम्हीं इल्म के गौहरे बेबहा हो।
तुम्हारी भलाई में सबका भला है।
तुम्हारी बुराई में सबका बुरा है।।

मुसद्दस की रचना में कवि का प्रयोजन ब्राह्मणों का अपमान करना अथवा

उनका दिल दुखाना नहीं है। वह तो उनका शुभचिन्तक है और हितचिन्तन की दृष्टि से ही उसने चेतावनी रूप में इन पद्यों की रचना की है। अतः काव्य के अन्त मे–

फलाने ने दी दक्षिणा में दुअन्नी।
फलाने ने दी एक लुटिया चोअन्नी।

लिखकर उसने विप्र समुदाय में व्याप्त भिक्षावृत्ति को उजागर किया है। काव्य के अन्त में कवि ने ब्राह्मणों को अपनी विगत गरिमा को पुनः प्राप्त करने तथा उज्ज्वल परम्पराओं को पुनः स्थापित करने की प्रेरणा भी दी है। वह कहता है–

जो इज़्ज़त से जीना है दरकार तुमको।
ब्रह्म कुल की इज़्ज़त से है प्यार तुमको।
कराना है गर अपना सत्कार तुमको।
बसाना है गर अपना घरबार तुमको।
तो निकृष्ट आजीविका को त्यागो।
पठन और पाठन में वेदों के लागो।।

यदि ब्राह्मण समुदाय पुनः वैदिक कृत्यों को अपनाने लगे, तो उसका अभ्युत्थान निश्चित है–

ध्वनी वेद की फिर गुंजाने लगो तुम।
हवन यज्ञ फिर नित रचाने लगो तुम।
पढ़ो आप खुद और पढ़ाने लगो तुम।
कर्मकाण्ड सारे कराने लगो तुम।।

68. कविवर सिद्धगोपाल

इटावा जिले के अजीतमल नामक ग्राम में कविवर सिद्धगोपाल का जन्म एक अग्रवाल वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम श्री रामचरण था। इनमें कवित्व तथा गायन दोनों कलाओं का मणिकांचन संयोग था। स्वरचित कविताओं से घण्टों तक श्रोताओं को रस विभोर करने की क्षमता इनमें थीं। 18 नवम्बर 1917 को इनका हाथरस में निधन हो गया।

कविवर सिद्धगोपाल की स्फुट कविताओं का संग्रह गोपाल कुसुमांजलि शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। सिद्धगोपाल खड़ी बोली में सरस तथा भावप्रवण काव्य रचना करने में सिद्धहस्त थे। इन्होंने कवित्त जैसे पुराने छन्दों का प्रयोग तो किया ही है साथ ही नवीन शैली में भी उत्कृष्ट कविता लिखी है। काव्य में शृंगार, करुण, शान्त आदि रसों के प्रयोग का निषेध करते हुए कवि ने इस समय वीर रस के काव्य

की रचना को श्रेयस्कर माना है। उनका कथन है—

शान्त औ सिंगार के न गाओ गीत कवि आज,
नहीं है अवस्था आज ऐसे गान गाने की।
गया है जमाना लद अदा और नज़ाकत का,
नहीं काम देगी आज आदत जनाने की।
जातियों के जीवन संग्राम में न काम देगी,
बान करुणा की और आँसू बरसाने की।
काम देगी एक ही कायरता को दूर कर,
धारो बन वीर धीर बान मरदाने की।।

महाकवि पद्माकर के वसन्त वर्णन की शैली का अनुकरण एक भिन्न कवित्त में देखा जा सकता है—

प्रस्तर प्रसून पयोराशि औ प्रभाकर में,
प्रभव प्रलय में प्रभु पंचभूत पुंज में
चन्द्रमा चकोर चारु चित्र चपला में रमें,
तरल तंरगिणी तरंग तृण मुंज में।
मीन में मराल में मतंग में मयूरन में
मंजु मंजरी में मकरन्द अलि गुंज में।
मार में मलय में दल्लिका में मालती में सदा,
आपकी समाई नेह सुषमा निकुंज में।।

कवि ने अनुप्रास का सुन्दर निर्वाह करते हुए परमात्मा की सर्व-व्यापकता को प्रकट किया है।

हिन्दी में महाकवि बच्चन की 'मधुशाला' शीर्षक कविताएँ तथा मधुशाला के प्रतीकों को लेकर लिखे गए मधुबाला, मधुकलश आदि काव्य संग्रह एक समय में कविता पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय हुए थे। मधु, मधुशाला, मधुबाला, हाला, प्याला, साकी बाला आदि के प्रतीकों के वास्तविक अभिप्राय को न समझकर अनेक लोग इन कविताओं को मदिरापान के समर्थन में लिखी गई समझते थे। 'मधुशाला' के प्रतीकात्मक अर्थो की ओर ध्यान न देने वाले लोगों ने इस कविताओं का विरोध भी किया था। कविवर सिद्धगोपाल ने भी अपनी 'ओ मतवाले' शीर्षक कविता में इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं—

ओ मधुशाला के मतवाले,
अब नाम न ले मधुशाला का

अब ध्यान छोड़ दे हाला का
अब मान न कर मद प्याला का
साकी अरु सुन्दर बाला का
चिन्तन मत कर बैठे ठाले।

कवि की स्वदेश भक्ति प्रशंसनीय है। वह भारत माता को आश्वासन देता है कि उसकी करुण दशा सुधरेगी और उसके सभी कष्ट दूर होंगे। द्विवेदी काल के काव्य में स्वदेश भक्ति की जो भावनाएँ हिन्दी काव्य में सर्वत्र दिखाई पड़ी थीं, उनका प्रभाव कवि सिद्धगोपाल की कविता पर भी दृष्टिगोचर होता है—

माँ मत रो।
क्यों करती है करुणा क्रन्दन ?
क्यों होती है अतिशय उन्मन ?
क्यों करती है कृश जर्जर तन ?
कट जावेंगे माँ तब बन्धन
इक रोज, रही क्यों आशा खो !

परिवर्तन संसार का नियम है। सृष्टि में हम सर्वत्र इसे देखते हैं। फिर निराशा का क्या कारण है ? अतः कवि कहता है—

होता संसृति में परिवर्तन,
नर्तन नितनित होते नूतन।
बन विकट वहाँ जहाँ थे नन्दन,
जनवाद जहाँ था है निर्जन,
गति विधि ये ही जग की लख लो।
माँ मत रो !

69. कुं. सुखलाल आर्यमुसाफिर

हिन्दी और उर्दू में समान रूप से काव्य रचना करने वाले, गायक, उपदेशक तथा संगीतज्ञ कुं. सुखलाल का जन्म 1890 ई. में जिला बुलन्दशहर के ग्राम अरनियां में ठाकुर भीमसिंह के यहाँ हुआ। कुछ काल तक गुरुकुल सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) में अध्ययन करने के पश्चात् ये पं. भोजदत्त शर्मा द्वारा पं. लेखराम की स्मृति में आगरा में स्थापित आर्य मुसाफिर विद्यालय में प्रविष्ट हुए और वहाँ रह कर उन्होंने विद्योपार्जन करने के साथ-साथ वक्तृत्व कला की भी अभ्यास किया। युवावस्था में प्रवेश करते-करते ये आर्यसमाज के उपदेशक बन गए और आजीवन धर्म प्रचार में लगे रहे। उन्होंने देश के स्वाधीनता संग्राम में भी भाग लिया और अनेक बार कारावास की

यातनाएँ झेलीं। वे हैदराबाद में धार्मिक अधिकारों के लिए चलाए गए आर्य सत्याग्रह में भी गए और गुलबर्गा जेल में रहे। 2 जनवरी 1981 को उनका निधन हो गया।

कुं. सुखलाल का अधिकांश काव्य उर्दू में है। उन्होंने भारत की धार्मिक अवनति, हिन्दुओं की सामाजिक अधोगति, देशदशा, देशवासियों को उद्बोधन आदि विषयों पर उर्दू में फड़कती हुई ग़ज़लें लिखी हैं जिनका साहित्यिक मूल्य भी कम नहीं है। उधर उनका हिन्दी काव्य अनेक गुणों से परिपूर्ण है। उन्होंने मध्यकालीन भक्त कवियों की पद शैली का प्रयोग करते हुए अनेक सुन्दर भक्ति कविताएँ लिखी हैं। अपने आराध्य से कवि की प्रार्थना केवल स्वयं के लिए नहीं है, बल्कि वह जाति उत्थान और समष्टि हित के लिए भगवान् के समक्ष विनय करता है—

दयामय दीनबंधु भगवान्
महादुखित इस आर्यजाति का करो नित्य कल्याण।।

उसकी प्रार्थना धन वैभव आदि नश्वर, क्षुद्र पदार्थों के लिए नहीं है। उसकी याचना और कामना है कि भारतवासी स्वतन्त्रता प्राप्त करें। स्वाभिमान युक्त जीवन ही कवि को अभीष्ट है। अतः वह कहता है—

निर्भय होकर जियें जगत में सहें न अब अपमान।
सत्य मार्ग दिखा पथिक को देकर अपना ज्ञान।।

पद शैली की ही उसकी एक अन्य रचना है—

हमारी सुध लो करुणाकन्द।
दीनबन्धु अब हम दीनन के दूर करो दुख द्वन्द।

अन्यत्र वे कहते हैं—हरो हे हरि भारत की पीर।

प्राचीन कवित्त शैली में उनकी कुछ सुन्दर रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। भाषा सौष्ठव तथा प्रसाद गुण की दृष्टि से उनके ये कवित्त उत्कृष्ट कविता के उदाहरण हैं। यथा—

आर्यों की भाँति भव्य भावना हिए में भरो,
प्रेम प्रणधर राग द्वेष को विसारिये।
साहस से प्रेम करो हिम्मत न हारिये,
मिथ्या मत पन्थों की अंधेरी निशा नाश करो
सत्य व्रत धार धर्म वैदिक प्रचारिये।
दयानन्द लेखराम गुरुदत्त जी की तरह
तन मन जीवन की आहुति दे डारिये।।

इन रचनाओं में यत्र-तत्र ब्रजभाषा का माधुर्य है तो मुहावरेदानी और विदग्धता भी कम नहीं है। भारत के प्रति दयादृष्टि दिखलाने की प्रार्थना करता हुआ कवि भगवान् से प्रार्थना करता है–

दासता की कीच बीच भारत निवासी फँसे,
करुणानिधान दया दृष्टि सों निहारिये।
भक्त नहीं तो भक्तन के पूत हैं यह
नाती हैं तिहारे नेह नातो न बिसारिये।
सुना है कि सदा तुम निर्बलों के साथ रहे,
हम हैं निर्बल अब हम हूँ को तारिये।
अर्जी हमारी आगे मर्जी तुम्हारी,
एक बात की है बात, बात जीतिये कि हारिये।।

चौथी पंक्ति में अनुप्रास का प्रयोग तथा अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त मुहावरा कवि की रचना चातुरी का परिचायक है।

आर्य मुसाफिर अपनी ग़ज़लों के लिए प्रसिद्ध रहे। सेवा को शास्त्रों ने परम गहन तथा योगियों के लिए भी दुस्साध्य बताया है। उसी सेवा धर्म का पालन करने वालों को अपनी अकीदत के फूल पेश करते हुए कवि ने लिखा–

ख़िदमते ख़ल्क में जो कि मर जाएँगे।
वो अमर नाम दुनिया में कर जाएँगे।
ये न पूछो कि मर कर किधर जाएँगे।
वो जिधर भेज देगा उधर जाएँगे।।

मातृभूमि की हितरक्षा के लिए हजारों को आत्माहुति देनी होगी–

देश उद्धार करने में इक दो नहीं,
देख लेना हजारों के सिर जाएँगे।

और विदेशी आकाओं की धमकियों का यह जवाब–

आप दिखला रहे हैं किसे तुर्शियाँ
ये नशे वो नहीं जो उतर जाएँगे।

अछूतोद्धार के बिना देश का कल्याण नहीं, इस धारणा को व्यक्त करते हुए कवि कहता है–

लो अछूतों को छाती लगा हिन्दुओ
वर्ना ये लाल ग़ैरों के घर जाएँगे।

तथापि कवि का काम मात्र उद्बोधन देना ही है, मानना या न मानना यह तो अलग बात है--

आप मानें न मानें खुशी आपकी,
हम मुसाफिर हैं कल अपने घर जाएँगे।

एक युग था जब कुँवर साहब की उपर्युक्त उद्बोधनात्मक नज्म आर्यसमाज तथा काँग्रेस की प्रभातफेरियों में गाई जाती थी।

आर्यसमाज ने देशवासियों को अपने गौरवपूर्ण अतीत पर गर्व करना सिखाया, परन्तु कुँवर साहब को इतने से ही सन्तोष नहीं था। वह पूछते हैं कि आखिर क्या बात थी, इतना शानदार अतीत होते हुए भी हमारा वर्तमान दुखद क्यों बना ?

सुनते रहेंगे कब तलक गुजरी हुई कहानियाँ,
जो कुछ हुआ सो हो गया आहो फुंगा से काम किया।
उठकर उन्हें बचाइए बाकी हैं जो निशानियाँ।।

कवि के स्वर में राष्ट्रीयता का स्वर तो है ही, किन्तु वह मदहोश हिन्दू जाति को सचेत करना भी अपना कर्तव्य मानता है। हिन्दुओं ने अनावश्यक उदारता के कारण बहुत कुछ खोया है। इसी अभिप्राय को व्यक्त करते हुए कवि कहता है--

उठ खड़े हो हिन्दुओ काफी ज़लालत हो चुकी।
बुज़दिलो मर्दानगी सीखो नजाक़त हो चुकी।
लाल लाखों कौम के ग़ैरों को अब तक दे चुके,
क्या ग़ज़ब करते हो रहने दो सखावत हो चुकी।।

काँग्रेस के प्रति निष्ठा रखता हुआ भी कवि महात्मा गाँधी की मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति को कभी समझ नहीं सका। मौलवियों द्वारा अछूत जातियों के धर्म परिवर्तन के लिए चलाए गए तबलीग आन्दोलन पर तो महात्मा जी ने कुछ नहीं कहा, किन्तु आर्यसमाज द्वारा संचालित शुद्धि और संगठन की जब उन्होंने आलोचना की, तो कवि को विवश होकर कहना पड़ा--

ज़ालिमों को लोग जब मज़लूम बतलाने लगे।
उठ गया इन्साफ दुनिया से अदालत हो चुकी।।

इस प्रसंग सुखलाल ने ख़्वाजा हसन निजामी जैसे तबलीग़ के उन पैरोकारों को भी नहीं बख्शा जिन्होंने इस्लाम का सन्देश देने का काम केवल धर्मोपदेशकों को ही नहीं सौंपा, अपितु गलियों में चूड़ी बेचने वालों, कुंजड़ों यहाँ तक कि मुसलमान वेश्याओं को भी कहा कि वे अपने सम्पर्क में आने वालों को इस्लाम की दावत

अवश्य दें। तभी तो मुसाफिर को यह व्यंग्योक्ति करनी पड़ी–

रंडियों को काम जब सौंपा गया तबलीग का।
उड़ गई तौहीद हजरत की रसालत हो चुकी।।

ऐसी स्थिति में साम्प्रदायिक सौहार्द भला कैसे रह सकता था ?

आपने बदला वफ़ाओं का ज़फ़ाओं से दिया,
तो हमारी आपकी साहब सलामत हो चुकी।।

क्योंकि–

अब कुरानो बाइबिल की दाल गल सकती नहीं,
वेद की रोशन ज़माने में सदाकत हो चुकी।।

तथापि कवि का साम्प्रदायिक ऐक्य में पूर्ण विश्वास है। वह ईश्वर से प्रार्थना करता है–

अगर कहीं है तो सूरत दिखा दे।
ये मन्दिर व मसज़िद के झगड़े मिटा दे।
ज़माना तुझे ढूँढ़ता फिर रहा है,
ओ पर्दानशीं रुख़ से पर्दा उठा दे।
बनाकर ये बाजीगरों की सी दुनिया,
छिपा है कहाँ दुनिया वाले बता दे।।

आर्यसमाज का अनुयायी होने पर भी कुँवर सुखलाल आर्यसमाज की स्थिति से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्हें इस बात का दर्द था जिस संस्था ने संसार के उपकार करने का बीड़ा उठाया था, वही संगठन आज फूट और वैमनस्य का शिकार हो रहा है। अतः उसकी शिकायत वाज़िब ही है–

जिन्हें संसार में संसार का उपकार करना था।
जिन्हें दुनिया में वैदिक धर्म का विस्तार करना था।
अनाथों और अछूतों का जिन्हें उद्धार करना था।
जिन्हें इस देश और जाती का बेड़ा पार करना था।
उन्हें देखो तो बाहम बरसरे पैकर बैठे हैं।
वजूद अपना मिटाने को तैयार बैठे हैं।।

आर्यसमाज के नेतृत्व से निराश कवि स्पष्ट कह देता है–

यही लीडर रहे तो हो चुका परचार वेदों का।
इन्हें तो खून करना है दयानन्द की उम्मीदों का।

ऐसी बात नहीं कि यह स्थिति सदा से चली आ रही थी। विगतकाल का आर्यसमाज का इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। उसी बीते ज़माने पर नाज़ करता हुआ कवि कहता है—

ज़माना रश्क करता था कभी वो प्यार था हम में।
धरम पर जान देने को हर एक तैयार था हम में।
बला का जोश था और जज़बये उपकार था हम में।

किन्तु अब—

मगर अब आर्यो में नाम को उल्फत नहीं मिलती।
न वो श्रद्धा है न वो भक्ति है वो हिम्मत नहीं मिलती।
निकलते थे जो हम शानो पे वेदों का आलम रखकर
फरिश्ते भी फिदा होते थे उस पुरजोश मंजर पर।।

कुं. सुखलाल का दृढ़ विश्वास था कि पुनः आशाप्रद स्थिति में आना अशक्य नहीं है। आवश्यकता है समर्पण की, बलिदान की तथा कथनी को करनी में बदलने की। अतः वह इस कटु सत्य को कहने से नहीं चूकता—

धर्म के नाम पर प्यारो, तुम्हें मरना नहीं आता।
लहू से कासये तक़दीर को भरना नहीं आता।
छुरी से पेट फड़वाना तुम्हें आता नहीं प्यारो,
हकीकत की तरह कुर्बान सर करना नहीं आता।।

वह जानता है कि हम आज केवल वाक्शूर रह गए हैं।

तबाही का तुम्हारी एक ही कारण है बस मित्रो,
तुम्हें कहना तो आता है मगर करना नहीं आता।।

कुँवर सुखलाल की कविता के अनेक संग्रह छप चुके हैं। कुछ के नाम इस प्रकार हैं—मुसाफिर का खजाना, मुसाफिर भजनावली, मुसाफिर गीतांजलि, मुसाफिर पुष्पांजलि, मुसाफिर की तड़प, जज्बाते मुसाफिर, नग़माए मुसाफिर।

कुं. सुखलाल आर्य मुसाफिर की कविता देश और धर्म के प्रति हमारी कर्तव्य भावना जाग्रत करने में पूर्ण सफल रही है। इस प्रसंग में सन्तोष कण्व का यह कथन सर्वथा सत्य है—

महफिल में कभी भी ग़र चर्चा ए वतन होगा।
हर लब पै मुसाफिर का बस नाम अहम होगा।

70. श्रीमती सुनीति शर्मा

आर्यसमाज की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सुनीति शर्मा का जन्म 28 जून 1931 को दिल्ली में पं. शालिग्राम शर्मा के यहाँ हुआ। श्री सुखदेव शर्मा से विवाह के पश्चात् उनका कार्यक्षेत्र कलकत्ता रहा जहाँ आपके पति का अपना व्यवसाय था। अब वे कुछ समय से पुनः दिल्ली में रह रही हैं। काव्य रचना में सुनीति जी की सहज रुचि है। आर्य संसार मासिक (कलकत्ता) में आपकी काव्य रचनाएँ लगातार प्रकाशित होती रहीं हैं। उनका एक काव्य संग्रह 'एक गुच्छा फूलों का' 1981 में प्रकाशित हुआ है।

श्रीमती शर्मा की कविता में अध्यात्म, प्रेम, प्रकृति सौन्दर्य तथा आधुनिक बोध जैसे अनेक विषयों को अभिव्यक्ति मिली है। उन्होंने अतुकान्त शैली में भी काव्य रचना की है। सरल तथा परिष्कृत भाषा में उनकी यह काव्य सृष्टि कवयित्री के भावनाप्रवण व्यक्तित्व का सहज प्रस्फुटन है। रहस्यवादी शैली को अपनाकर लिखी गई उनकी 'ज्योतिर्मय' शीर्षक रचना अनिर्वचनीय परम सत्ता के प्रति समर्पण भाव को व्यक्त करती है–

ढक दो
मेरे तन मन को आवेष्टित कर दो
अपनी प्रभा के सौर मण्डल से।
अंग अंग सिहर उठे
नव तरंग लहर उठे।
दीपित कर दो
अपने तेज की तमोहारी रश्मि से,
मेरा अस्तित्व कुन्दन बन चमके।

कवयित्री का मानव जीवन की गुरुता में असीम विश्वास है। 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' की आर्ष वाणी को स्वर प्रदान करती हुई वह कहती है–

मुझे नहीं देवत्व चाहिए मुझे मनुज ही रहने दो।
नहीं कुसुम आकाश चाहिए यहीं धरा पर खिलने दो।
दानव से है मनुज श्रेष्ठतर मनन करें रहें चलते सम।
सब कहते हैं देव श्रेष्ठतम देव ही होना सीखें हम।।

ऋतुराज वसन्त के स्वागत में कवयित्री कहती है–

आओ हे महाराज
अनोखे साज बाज के साथ।
संग लिए ऋतुराज
हमारे हृदय भवन मे आज,
कोयल कूके भ्रमर गुंजाये
पुष्प का सौरभ पवन उठाये।
सिंचित कर हरीतिमा भर दो,
मरु जैसे मन की धरती में।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अभिनन्दन में कवयित्री लिखती हैं–

हे जन मन रंजन राम,
नयनाभिराम हे पूर्ण काम।
हे दशरथ नन्दन राम।
हे राम, हे राम।।
ऊँचे आदर्शों के प्रतीक
तुम भाई, सुत युवराज नींक
हे लखन भरत के राम,
हे राम हे राम।

विविध रंग के काव्य कुसुमों से सुसज्जित सुनीति जी का यह पुष्प गुच्छ सहृदय रसिकों के मनोरंजन तथा भाव परिस्कार की उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करता है।

71. डा. सूर्यदेव शर्मा

आर्यसमाज की वैदिक विचारधारा से अनुप्राणित श्रेष्ठ काव्य के रचयिता डा. सूर्यदेव शर्मा का जन्म 1 मार्च 1901 को एटा जिले के बरना नामक ग्राम में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। एटा में प्रारम्भिक अध्ययन करने के पश्चात् वे कॉलेज की पढ़ाई के लिए कानपुर गए और संयुक्त प्रान्त के विख्यात शिक्षण संस्थान डी.ए.वी. कॉलेज में अध्ययन किया। कुछ काल तक उन्होंने डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में भी अध्ययन किया। कालान्तर में वे डी.ए.वी. हाई स्कूल अजमेर के प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्त हुए और जीवन पर्यन्त अजमेर को ही केन्द्र बना कर वहाँ की साहित्यिक, धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियों से जुड़े रहे। 1983 में उनका निधन हो गया।

डा. सूर्यदेव नैसर्गिक प्रतिभा के धनी थे। इनकी काव्य रचनाओं में समाज सुधार, राष्ट्र भक्ति, भारत के अतीत गौरव का आख्यान तथा प्रोज्ज्वल वैदिक भावनाएँ

सर्वत्र उपलब्ध होती है। भाषा सौष्ठव, सुन्दर और उपयुक्त शब्द चयन तथा व्यवस्थित छन्द योजना आपके काव्य की विशेषता है। भाव प्रवणता के साथ-साथ सुन्दर अलंकार योजना के कारण इनका काव्य सहृदयों के लिए विशेष आकर्षण रखता है। डा. शर्मा ने अपने सुदीर्घ काव्य रचना काल में सैकडो उत्तम कविताओं का प्रणयन किया। आर्यसमाज के प्रायः सभी प्रमुख पत्रों में इनकी कविताएँ प्रकाशित होती थीं।

यहाँ हम कुछ विस्तार में जा कर सूर्यदेव जी के काव्य की समीक्षा करते हैं। स्वामी दयानन्द के जीवन के विभिन्न प्रसंगों को लेकर सूर्यदेव जी ने अनेक सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। गुरु विरजानन्द की पाठशाला में विद्याध्ययन समाप्त कर जब दयानन्द विदा लेने के लिए अन्तिम बार गुरु के सम्मुख उपस्थित होते हैं तो उनके पास गुरु दक्षिणा के रूप में देने के लिए मात्र कुछ लौगें ही हैं। इस पर दण्डी जी कहते हैं–

अहो प्रिय शिष्य मुदित मतिमान,
अखिल आशापिंजर के कीर।
अभय अति अतुलित आभावान,
अनुपम आज्ञाकारी वीर।।
दक्षिणा देते हो क्या तात,
न लौंगें लूँगा सुन लो बात।
आ रही अन्तस्तल से टेर

इस कविता में वर्णन चमत्कार के साथ-साथ अनुप्रास योजना का सौन्दर्य दर्शनीय है।

सूर्यदेव जी ने हिन्दी में प्रचलित छन्दो के साथ-साथ संस्कृत वर्णवृत्तों का भी बहुशः प्रयोग किया है। 'कहाँ है दयानन्द स्वामी हमारा' शीर्षक कविता भुजंग प्रयात छन्द में लिखी गई है–

जहाँ व्यास वागीश से जन्म लेते।
जहाँ योग शिक्षा सदा कृष्ण देते।
जहाँ बुद्ध श्री शंकराचार्य चेते।
जहाँ धर्म नौका श्रुताचार्य खेते।
वहीं जन्म पा जो बना विश्व प्यारा।
कहाँ है दयानन्द स्वामी हमारा।।

डा. सूर्यदेव ने ये कविताएँ उस युग में लिखी थीं, जब हिन्दी काव्य जगत् में आचार्य द्विवेदी द्वारा खड़ी बोली के कवियों का मार्ग दर्शन किया जा रहा था। काव्य के लिए जो विषय चुने जाते थे वे प्रायः आर्यसमाज में चर्चित होने वाले धर्मसुधार,

जाति संस्कार, राष्ट्रोत्थान, महापुरुषों का गुणगान जैसे ही होते थे। आर्यसमाज के पत्र स्वामी दयानन्द के निर्वाणदिवस दीपावली पर ऋष्यंक के नाम से विशेषांक प्रकाशित करते हैं। आर्यमित्र के एक ऐसे ही विशेषांक में डा. सूर्यदेव की भुजंग प्रयातात्मक मिलिन्दपाद छन्द में एक कविता छपी जिसमें कवि की अनुप्रास-प्रियता विशेषतया व्यक्त हुई है–

अजन्मा अनन्तादि आदित्य नामी।
स्वयंभू सखा सच्चिदानन्द स्वामी।
निराकार नेता निहोता निकामी।
गुणी ज्ञेय गम्भीर ज्ञानानुगामी।
पिता पूज्य प्राणेश का प्राण प्यारा।
बने वेद ही प्राणदाता हमारा।

'आर्यसमाज क्या है ?' शीर्षक एक अन्य कविता में कवि ने अपनी प्रिय संस्था के प्रति निम्न प्रकार श्रद्धा पुष्प चढ़ाए हैं–

अथवा वैदिक वाङ्मय गो
का गवेषणामय दोहन है ?
श्रुति संगीतमयी सरगम का
क्या उत्तम ऊहापोहन है ?
अथवा श्रुतिप्रिय वंशीवाला
विश्व विमोहन मोहन है ?

काव्यगत भाषा सौन्दर्य बहुत कुछ शब्द चयन पर निर्भर होता है। सूर्यदेव जी के काव्य में संस्कृत की तत्सम शब्दावली निराला चमत्कार उत्पन्न कर देती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

अहह, चमत्कृत चारु चन्द्र है श्रौत छटा छिटकाने को
जगज्जनों के मन कुमुदों को मेधा मुदित बनाने को।
तपते जगती तल पर शीतल शान्ति सुधा बरसाने को।
नवजीवन की नवज्योत्स्ना से सुषमा सरसाने को।।

शर्मा जी के काव्य में प्रकृति पर्यवेक्षण तथा निसर्ग के सौन्दर्य का सहज वर्णन करने की शक्ति तो है ही, वे प्रकृति के विभिन्न क्रियाकलाप के दृश्यांकन से मानव को कुछ सीखने के लिए भी कहते हैं। काश्मीर की पार्वत्य सुषमा की एक झलक कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत की है–

इतस्ततः झरनों से झर कर
कलकल कर जल बहता है।
प्रस्तर टुकड़ों से टकराकर
मधुर ध्वनि में कहता है।
इस संग्राम स्थल जीवन में
जो विपदाएँ सहता है,
वह होकर स्वाधीन अन्त में
सुख सागर में रहता है।।

वेद मन्त्रों का संक्षिप्त किन्तु भावपूर्ण काव्यानुवाद करने में सूर्यदेव जी को विशिष्ट आनन्द की अनुभूति होती थी। उन्होंने आर्यमित्र में वर्षों तक ऐसे मन्त्रानुवाद प्रकाशनार्थ भेजे जो मुखपृष्ठ पर स्थान प्राप्त करते थे। आर्यमार्तण्ड, परोपकारी तथा अन्य पत्रों में भी वेद मन्त्रों के पद्यानुवाद का यह क्रम वर्षो तक जारी रहा। खेद है कि डा. सूर्यदेव शर्मा का यह काव्य वाङमय पचासों वर्षो तक प्रकाशित होते रहे आर्य पत्रों में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। उसके व्यवस्थित संग्रह तथा सम्पादन का काम यदि वे अपने जीवन काल में स्वयं ही कर जाते तो काव्य के रसाग्रही अनुशीलनकर्त्ताओं को उसे तलाश करने की कठिनाई नहीं होती।

72. डा. सुशीला गुप्ता

आर्यसमाज की कवयित्रियों में डा. सुशीला गुप्ता का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म 5 जुलाई 1930 को हरयाणा के नरवाना कस्बे में श्री हजारीलाल गुप्त के यहाँ हुआ। आपने पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी तथा संस्कृत में एम.ए. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। संस्कृत के आर्य कवि आचार्य मेधाव्रत के व्यक्तित्व एवं कृतित्व विषय को लेकर आपने राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि भी प्राप्त की। वर्षों तक चरखी दादरी के एक कॉलेज में अध्यापन करने के पश्चात् अब आप अवकाश के क्षणों में साहित्य रचना में लगी रहती हैं।

डा. सुशीला प्रमुखतः गीत लिखती हैं। उनके गीतों का प्रथम संग्रह 'सुशीला गीत शतक' शीर्षक से 1964 में प्रकाशित हुआ। गौ महिमा पर लिखित गौगीतांजलि का प्रकाशन 1967 में हुआ।

सुशीला जी के काव्य में नारी सुलभ कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। उनके प्रथम गीत संग्रह की अधिकांश कविताएँ ऐसी हैं जो आर्य जाति के पर्वो, त्योहारों, महापुरुषों के जन्म दिनों के सांस्कृतिक महत्त्व का आख्यान करती हैं। उदाहरणार्थ, रक्षाबंधन, कृष्ण-जन्माष्टमी, विजयदशमी, दीपावली, मकर संक्रान्ति, वसन्त पंचमी आदि आर्य पर्वों के महत्त्व की निरूपक कविताएँ भारतीय संस्कृति

के पावन एवं रम्य रूप को प्रस्तुत करती हैं। ऋषि दयानन्द, लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, धर्मवीर हकीकतराय जैसे महापुरुषों के स्मृति दिनों को लेकर लिखी गई उनकी कविताएँ भी स्थायी महत्त्व की हैं। धर्मवीर हकीकत राय के पावन बलिदान का स्मरण करते हुए सुशीला जी लिखती हैं–

> स्नेह प्रणय की लौह शृंखला बॉध सकी न तुझे बंधन मे।
> तू पक्षी निर्मुक्त गगन का रुका न बंध किंकिणी कंकण में।

73. पं. हरिशंकर शर्मा

प्रसिद्ध कवि पं. हरिशंकर शर्मा ने कार्टून कविताएँ भी लिखी हैं। आर्यमित्र के दयानन्द-जन्म शताब्दी विशेषांक में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले प्रसिद्ध साप्ताहिक 'मतवाला' से लेकर कुछ कार्टून (व्यंग्य चित्र) प्रकाशित किए गए थे। इनमें हिन्दू समाज की दुर्बलताओं, उसकी असंगठित स्थिति से उत्पन्न हानि तथा अन्य सामाजिक विद्रूपों पर तीखे प्रहार किए गए थे। शर्मा जी ने कार्टूनों में व्यक्त भावों को उजागर करने वाली लघु कविताऍं लिखकर इन व्यंग्य चित्रों को पूर्ण अर्थवत्ता प्रदान कर दी। एक व्यंग्य चित्र में एक हिन्दू अबला का अपहरण मुसलमान गुण्डा कर रहा है तो दूसरी स्त्री को ईसाई भगा कर ले जा रहा है। ये अपहृत हिन्दू देवियॉ अपनी विवशता पर आर्तनाद करती हुई अपने बचाव के लिए 'हिन्दू' से प्रार्थना करती हैं–

> गोरा लंठ लिए जाता है, दढियल दगा दिए जाता है।
> दौड़ो भैया हमें बचाओ, छल छन्दों से हमें छुड़ाओ।

अबला की इस आर्त पुकार को सुन कर भी अनसुनी कर देने वाला कायर हिन्दू कहता है–

> मुझसे नहीं चलेगा काम, सचमुच निकल गया अब राम।
> छपवा दूँगा सब संवाद। कर न सकूँगा किन्तु विवाद।
> ऑसुओं से वक्षस्थल धोओ। अपनी किस्मत को बस रोओ।

छुआछूत की अनर्थकारी प्रथा को नष्ट करने में आर्यसमाज सदा ही आगे रहा है। आर्यमित्र के एक व्यंग्य चित्र में आर्यसमाज (एक नारी के रूप में चित्रित) दलित वर्ग से कहती है–

> आओ बेटो गले लगाऊँ। छूतछात का भूत भगाऊॅ।
> दलित अछूत नहीं तुम प्यारे। हो मेरी आँखों के तारे।।

इस पर पुरातनपन्थी पाखण्डानन्द की विपरीत उक्ति सुनिए–

अधम अन्त्यजों को मत छूना।
करना और निरादर दूना।
होने दे मुस्लिम ईसाई।
तुझे पड़ी क्या पीर पराई।।

वृद्ध विवाह पर एक तीखी व्यंग्य कविता की कुछ पक्तियाँ देखें–

देकर पूरे पाँच हजार।
वरनी वरी सातवीं बार।
दुलही दुखमय जीवन पेल।
नाच नचावे डाल नकेल।।

पं. हरिशंकर शर्मा की ये व्यंग्यात्मक कविताएँ केवल धार्मिक पाखण्ड तथा सामाजिक अनाचारों पर ही प्रहार नहीं करतीं, तत्कालीन राजनैतिक अन्तर्विरोधों पर भी व्यंग्य बाणों की वर्षा करती हैं। असहयोग और खिलाफत के दौरान हिन्दू मुसलमानों की अस्थायी एकता, जो शीघ्र ही समाप्त भी हो गई, कवि की दृष्टि से ओझल नहीं हुई है। महात्मा गाँधी द्वारा साम्प्रदायिक सद्भाव के पौधे को सींचा जाना तथा उनके कारागार में चले जाने के तुरन्त बाद ही साम्प्रदायिक तत्वों रूपी वानरों एवं बकरों द्वारा उसे उजाड़ दिए जाने को जहाँ 'मतवाला' के व्यग्य चित्रकार ने अपने रंगों और तूलिका द्वारा साकार रूप दिया है, वहाँ शर्मा जी की इस पर लिखी कविता भी उतनी ही सटीक है–

हिन्दू मुस्लिम वैर विसार। मिले परस्पर प्रेम पसार।
गाँधी जी ने कर जलदान। किया एकता वृक्ष महान्।
फल आने की थी जब आस। गए गाँधी कारावास।
सूखा पेड़ हुआ पतझाड़। वानर बकरी रहे उजाड़।
अब तो बस की रही न बात। होने लगे घात प्रतिघात।।

इस प्रकार व्यंग्य चित्रों के दृश्यों का खुलासा करने वाली कविताओं का काव्य संसार में अपना महत्त्व स्वीकार किया गया है।

74. स्वामी हौलस मस्करी

स्वामी हौलस मस्करी एक वीतराग संन्यासी थे। उनका कार्यक्षेत्र मध्यप्रदेश था। उनके वैयक्तिक जीवन के विषय में कुछ अधिक जानकारी नहीं मिलती। वे वेद तथा व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे तथा वैदिक सिद्धान्तों में उनकी गहरी पैठ थी। मस्करी जी ने 104 छन्दों में 'वैदिक-सिद्धान्त छन्दावली' का प्रणयन किया जो 1959 में छपी।

इसमें विविध वैदिक सिद्धान्तों को छन्दोबद्ध किया गया है। सरल खड़ी बोली में प्रणीत इस काव्य में गम्भीर आध्यात्मिक तथा दार्शनिक मन्तव्यों को जिस प्रकार पद्यबद्ध किया है, उससे कवि की प्रतिभा का परिचय मिलता है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

परमात्मा के स्वरूप का विवेचन–

जीवन मरण से है रहित जो काम बन्धन मुक्त है।
भयभीत अन्तक से नहीं, तद्गम्य भोग अमुक्त है।।
अपितन्नियोजित तंत्र से, सब मौत निज निज हैं मरें।
है काल का भी काल वह, जिसका बिबुध अधिगम करें।।

मूर्तिपूजा की निरर्थकता का प्रतिपादन करने वाला पद्य–

पाषाण पीतल आदिक के विग्रह बना सुगृह सजा।
आयास करना सिद्धिहित घड़ियाल शंखों को बजा।।
यह बाल क्रीड़ा मात्र है दण्डे से जल नहिं आएगा।
साधन निरन्तर योग से उसको हृदगत पाएगा।।

कतिपय पद्यों में कवि ने परमात्मा के विष्णु, रुद्र, नारायण, शिव, शंकर, कालाग्नि, मातरिश्वा आदि नामों के व्युत्पत्तिलक्ष्य अर्थों का विवेचन किया है।

विषय वासना से मनुष्य को विरत करने के लिए कवि ने नारी के विभिन्न अंगों को नाना सुन्दर उपमानों से निरूपित करने के प्रयासों की कटु आलोचना की है। यथा–

कुच कनक कुम्भी सी बता कवि कामिनी स्तोता भये।
दाड़िम फलों की भाँति फल सेमर ग्रही तोता भये।
मिथ्या किया आयास निज कुत्सित दिखाने को कला।
स्तन मांस ग्रन्थिक मात्र हैं अनुरक्त किस पर है भला ?

इसी प्रकार के कुछ अन्य छन्दों में नायिका के अंग प्रत्यंगों के सौन्दर्य का वर्णन करने वाले प्रयत्नों का उपहास कर कवि ने मानव शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन किया है फलतः यहाँ निर्वेद स्थायी भाव वाले शान्त रस की सुन्दर प्रस्तुति हुई है।

अन्यत्र कठ उपनिषद् में आत्मा, शरीर, बुद्धि और मन को क्रमशः रथ के स्वामी, रथ, सारथी तथा प्रग्रह के रूप में वर्णित करने वाले रूपक को कवि ने निम्न छन्द में काव्य का रूप दिया है।

है तन बना रथ सा निरख जिसमें स्वयं तू है रथी।
दृढ़ हस्तगत मन रश्मि कर बैठा सजग मति सारथी।
अति आशुवाही हय निकर इन्द्रिय चपलता युक्त है।
अथ पथ विषय व्यवहार गत तू अज अमर निर्लिप्त है।

आजकल के निरर्थक देशाटन करने वाले, पाखण्ड कृत्यों में रत, मात्र वेशधारी साधुओं को वंचक की संज्ञा देता हुआ कवि कहता है–

जटिली जटायू सा बना गांजा चरस का दम लगा।
कर नेत्र रक्तिम आशुगति घर घर अलख लेवे जगा।
भोले भले भय त्रस्त कर, ठग माल तर भी खा सके।
बंचक बने श्रीमान पर बिन ज्ञान मुक्ति न पा सके।।

इसी क्रम में मस्करी जी ने 'यदि मन विषयरत ही रहा' पंक्ति से समाप्त होने वाले आठ पद्य लिखे हैं। यदि मन का निग्रह किए बिना कोई व्यक्ति केवल दिखावे के लिए गृहस्थ का त्याग करता है तथा परिजनों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है तो उसका यह वैराग्य आडम्बर मात्र ही है। इसी अभिप्राय को व्यक्त करता हुआ कवि कहता है–

गृह त्याग गृहिणी का प्रणय, सुत स्नेह सर्वस छोड़कर
बन चल दिए वन कर बनी, परिवार नाता तोड़कर।
हो त्याग मात्र स्वरूपतः मन राग से रंजित रहा।
तो व्यर्थ आडम्बर हुआ यदि मन विषय रत ही रहा।।

'वैदिक सिद्धान्त छन्दावली' के उपसंहार में कवि ने संसर्ग की हीनता या उच्चता को ही मनुष्य के उच्च या हीन बनने में प्रमुख कारण बताते हुए निम्न दोहा लिखा–

सदा हीन संसर्ग से बनते हीन विचार।
सम से सम हो उच्च से होता उच्च प्रसार।।

आलोच्य काव्य शान्त रस युक्त, वैराग्य के भावों का सर्वत्र निर्वाह कने वाला तथा गूठ शास्त्रीय तथ्यों को कविता का कमनीय रूप देने में समर्थ कवि का सफल प्रयास है।

पाद टिप्पणियाँ

1 सा पराअनुरक्तिर्न ईश्वरे शाण्डिल्य भक्ति सूत्र—1/2
2 सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा, अमृत स्वरूपा च। नारद भक्ति सूत्र 2,3.
3. आद्य शंकराचार्य कृत परापूजा श्लोक 2 तथा 7
4. केनोपनिषद् 1/3
5. तस्य वाचकः प्रणवः तथा तज्जपस्तदर्थ भावनम्। योग द. 1/2728
6. परोपकारिणी सभा का इतिहास, पृ. 18
7. ब्रह्मदत्त सोढ़ा द्वारा प्रकाशित।
8. ब्रह्मदत्त सोढ़ा द्वारा प्रकाशित।
9. अध्याय 2। 121
10. अध्याय 2। 156
11. संदर्भ ग्रंथ—महाकवि शंकर स्मृति ग्रंथ, 1986।
12. सा परा अनुरक्ति ईश्वरे
13. ठगिनी क्यों नैना झमकावे।
तेरे बस कबीर न आवे।।

परिशिष्ट-1

भारतसुदशा प्रवर्त्तक में प्रकाशित काव्य

भारतसुदशा प्रवर्त्तक (फर्रुखाबाद) आर्यसमाज के प्रारम्भ कालीन मासिक पत्रों में प्रमुख स्थान रखता है। इसका नामकरण स्वयं स्वामी दयानन्द ने किया था और वे समय-समय पर इस पत्र के सम्पादक को अनेक महत्त्वपूर्ण परामर्श भी देते थे। इस पत्र में अनेक कवियों की कविताएँ प्रकाशित होती थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में हिन्दी कविता भाव, भाषा, कथ्य और शैली, प्रत्येक दृष्टि से परिवर्तन के दौर से गुजर रही थी। तथापि अनेक कवि भक्ति, शृंगार, नीति आदि परम्परागत विषयों को लेकर कविता लिखते थे। 'सुदशा प्रवर्त्तक' में अनेक ऐसे आर्यसमाजी कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुई हैं जिन्होंने पद शैली का प्रयोग किया है। काव्य रूप और भाषा की दृष्टि से उन कवियों ने पुरानी रूढ़ियों का परित्याग नहीं किया है किन्तु समयानुकूल नवीन विषयों को स्वीकार करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। इस पत्र में प्रकाशित तुलसीराम नामक एक कवि की कुछ रचनाएँ यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं।

संसार रूपी सागर की भयानकता का चित्रण कवि ने रूपक योजना की परम्परागत प्रणाली के आधार पर ही किया है--

मन संसार उदधि अति भारी है।
कच्छप काम नेक है मत्सर लोभ मकर विकरारी है।
है घरियार मोहमद मीना क्रोध उरग विष धारी है।
तृष्णा उड़त तरंग ताहि में नारि भँवर भटकारी है।
आशा सोई अथाह अगम अति, विषय की बहत बयारी है।
बूडत देखि दयानन्द छाड्यो वेद पोत ललकारी है।
तुलसीराम जे चढ़े तासु पै बिन श्रम पार उतारी है।।

संसार सागर की विभीषिका का चित्रण करने के अनन्तर कवि यह कहना नहीं भूलता कि महर्षि दयानन्द ने इस महासागर से पार जाने के लिए वेद रूपी पोत हमें प्रदान किया है। इस पर जिन लोगों ने आश्रय लिया वे बिना श्रम ही संसार सागर से पार हो गए।

तुलसीराम की कविता में आर्यसमाज का धार्मिक खण्डन मण्डन का स्वर भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। निम्न पद में वे पुराणों की व्यभिचारपूर्ण दूषित कथाओं, मृतक श्राद्ध, अवतारवाद आदि का स्पष्ट खण्डन करते हैं–

करे मन उल्टे करम संसारी।
अन्य वाम मा काम केलि करे त्यागि देइ निज नारी।
नारी अपर पति कण्ठ लगावे देवे निज पति गारी।
मात पिता को तृप्त न राखत नहिं श्रद्धा उर सारी।
मरे पै भक्ति बहुविधि बाढी तर्पत पिण्डा पारी।।
गुरु पत्नी सुरेश अहिल्या, हरि वृन्दा व्रत टारी।
विवधि कन्या को दोष लगावे आपु बने ब्रह्मचारी।
रामकृष्ण दोउ सिद्ध पुरुष भये वेद वाक्य व्रत धारी।
बड़े बड़े पण्डित भेद न पायो कहै ब्रह्म औतारी।।
जो औतार रहित अज व्यापक गावत है श्रुति चारी।
ताको तुलसीराम भजति श्री दयानन्द हितकारी।।

हिन्दू धर्म में प्रचलित बहु देवतावाद पर तीव्र प्रहार करते हुए कवि तुलसीराम ने निम्न पद की रचना की–

मन संसार बहुत मतधारी।
कौ पूजत है अब हरि को कौ पूजत त्रिपुरारी।
कौ पूजें है चंडी का माथा कौ मांसाहारी।
को पूजत है गणपति को कौ पूजत तिमिरारी।
को पूजत हनुमान को कौ सैयद शेख बिचारी।
कौ मच्छ कच्छ वारा है कौ नरसिंह विकटारी।
कौ बावन को कौ परसराम को कोऊ अवधबिहारी।
कौ ईसा पूजे कंसारी, तिनहुन को बहुदोष लगावे चोरी रतपरनारी।
तुलसीराम धनि धन्य दयानन्द हमरो मार्ग सुधारी।
एक ब्रह्म तजि और भजो नहिं पतिव्रत रहनि हमारी।।

कवि की दृष्टि में नाना देवताओं, अवतारों तथा सैयद, पीर आदि विधर्मियों के पूज्यों को पूजना वैसा ही है जैसा कोई व्यभिचारिणी नारी स्वपति को त्याग कर

स्वैराचारिणी बन जाए। वह स्वामी दयानन्द के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना भी नहीं भूलता जिन्होंने एक ब्रह्म की पूजा का उपेदश दिया।

भारतसुदशा प्रवर्त्तक के अंकों में जिन कवियों की कविताओं के हमें दर्शन होते हैं उनमें लाला टीकाराम की कविता अनेक कारणों से उल्लेखनीय है। कवि ने प्राचीन कवित्व-शैली का प्रयोग करते हुए आर्यसमाज को भारत का उद्धारकर्ता बताया है। अविद्या की घोर वृष्टि तथा अज्ञान के घनान्धकार के कारण भारत के डूबते हुए जहाज को बचाने के लिए आर्यसमाज वेद रूपी पतवार हाथ में लेकर मल्लाह के वेश में उपस्थित हुआ है–

वेदन को ज्ञाता प्रमाता षटशास्त्रन को
ज्ञान को है दाता सब सुखन को साज है।
शास्त्रन प्रवीण वेद धर्म धुरीण
सत्य कर्म लवलीन सब सुरीतिन सिरताज है।
कहत कवि टीकम अविद्या के वारिद में
गहरे गम्भीर बूड़्यो भारत जहाज है।
ताके उबारन को वेदन की बल्ली हाथ,
केवट को रूप धर्‌यो आरज समाज है।। (अप्रैल 1894)

पाखण्ड तथा अन्धविश्वास के सैन्य का दलन करने के लिए स्वामी दयानन्द रूपी वीर सेनापति ने अपनी आर्यसमाज रूपी सेना को किस प्रकार सुसज्जित किया है, इसका वर्णन कवि टीकाराम साङ्ग रूपक के माध्यम से करते हैं–

नियम निशान व्याख्यान न नगाड़े बजे
वेद मन्त्र छर्रे गोली गायत्री छन्द की
धनुष्टंकार ओंकारवान सामगान।
स्वरन अलाप टाप तुरंग गयन्द की।
श्री प्रधान कप्तान मन्त्री रिसालदार भी
रची समाज सेना सभासदन वृन्द की।
वेदन की तोप घटाटोप पोप दलन माँहि,
कोप करि चढ़ाई भई वीर दयानन्द की।। (अप्रैल 1894 ई.)

परिशिष्ट-2

स्वामी दयानन्द विषयक उर्दू काव्य

भाषा विज्ञान की दृष्टि से उर्दू और हिन्दी में अधिक अन्तर नहीं है। वाक्य रचना और क्रियाओं के प्रयोग की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त समानता है। आर्यसमाज की स्थापना के समय तथा उसके काफी बाद तक पंजाब में उर्दू का बोलबाला रहा। उत्तर प्रदेश में तो सरकारी भाषा काफी समय तक उर्दू ही रही जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य रहता था। आर्यसमाज के प्रारम्भिक लेखक, उपदेशक तथा कार्यकर्त्ता भी उर्दू में ही अपने विचारों को प्रकट करते थे। अतः आर्यसमाज में उर्दू कवियों और लेखकों की एक लम्बी परम्परा रही जो इसी भाषा में साहित्य रचना भी करते थे। पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, स्वामी दर्शनानन्द तथा पं. चमूपति आदि आर्य विद्वानों एवं मनीषियों ने उर्दू में उत्कृष्ट साहित्य की रचना की है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि आर्यसमाज के उर्दू लेखकों ने अपनी एक विशिष्ट शैली विकसित कर ली थी। इन लेखकों का वाक्य विन्यास तो उर्दू का ही होता था किन्तु वे इसमें हिन्दी-संस्कृत के शब्दों का काफी प्रयोग करते थे। अनेक मुसलमान उर्दू लेखक आर्यसमाजी लेखकों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली इस संस्कृत शब्द बहुला उर्दू पर आपत्ति भी करते थे। लाला लाजपतराय ने स्वरचित श्री कृष्ण चरित की भूमिका में इस प्रश्न की विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने उर्दू को भारतवासियों की ही भाषा माना, जो यथार्थ ही है किन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उर्दू में जब हिन्दू धर्म की पुस्तकें लिखी जाएँगी तो उनमें हिन्दी एवं संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करना लाजमी हो जाएगा। निष्कर्षतः वे कहते हैं कि "जो हिन्दू अपने स्वजातीय भाइयों के लिए ऐसी पुस्तकें लिखते हैं जिनमें उनके धार्मिक या जातीय विचार या अवस्थाओं का उल्लेख है, उनमें हिन्दी व संस्कृत के शब्दों का प्रयोग अनुचित नहीं है। कैसे सम्भव है कि कोई हिन्दू हिन्दुओं के लिए

पुस्तक लिखता हुआ कृष्ण, अर्जुन व युधिष्ठिर के व्याख्यानों को उर्दू में जब लिखे तो उसके लिए फारसी व अरबी के कठिन शब्द तलाश करे।" निश्चय ही इन आर्यसमाजी लेखकों ने उर्दू की एक ऐसी शैली विकसित कर दी थी जिसमें संस्कृत के तद्भव शब्दों का बहुलता से प्रयोग होता था, जिससे उसका हिन्दुई चरित्र बन गया।

आर्यसमाज में उर्दू कवियों की भी दीर्घ परम्परा रही, जिन्होंने स्वामी दयानन्द की प्रशस्ति में काव्य-रचना की है। ध्यान देने की बात है कि इस उर्दू कविता में अधिक क्लिष्टता नहीं है। यहाँ हम कुछ ऐसे ही कवियों तथा उनके काव्य का विचार करेंगे।

पं. चमूपति लिखित दयानन्द-आनन्द-सागर

उर्दू में उत्कृष्ट साहित्य के प्रणेता पं. चमूपति ने 1918 में दयानन्द-आनन्द-सागर नामक एक वृहत्काव्य उर्दू में लिखा था। उन्होंने भर्तृहरि के वैराग्य शतक का उर्दू पद्यों में अनुवाद किया था, जो अप्रकाशित रहा। दयानन्द आनन्द सागर में स्वामी जी के जीवन प्रसंगों को शीर्षक देकर उर्दू काव्य का रूप दिया गया है। नमूने के लिए निम्न पद्य को देखें जिसमें शिवरात्रि प्रसंग का वर्णन हुआ है–

जो चौदह बरस का हुआ मूल का सिन।
सिखाया गया उनको शिवजी का पूजन।
वो शिव जिसका कैलाश पर है नशेमन।
सदा जिसकी रहती है दैत्यों से अनबन।
बनाकर लिंग जो उसे पूजते हैं।
सुधर लोक और परलोक उनके गए हैं।
ख्याल अम्बाशंकर को दिन रात ये था।
भगत मूलशंकर हो शंकर का पक्का।
हमेशा करे शिव की तनमन से पूजा।
चढ़ाया करे उस पै जल बे महरबा।।

नौबहार सिंह साबिर टोहानवी कृत ऋषि दर्शन

सरल उर्दू में स्वामी दयानन्द के जीवन का काव्यमय चित्रण करने वाले सरदार नौबहार सिंह साबिर हिसार जिले के टोहाना कस्बे के निवासी थे। इनकी ऋषि दर्शन शीर्षक काव्यकृति सर्वप्रथम उर्दू तथा नागरी दोनों लिपियों में 1930 में छपी। इसका दूसरा संस्करण गुप्ता एण्ड कम्पनी टोहाना ने प्रकाशित किया। ऋषि दर्शन में स्वामी दयानन्द के जन्म से लेकर बलिदान तक की सभी प्रमुख घटनाएँ सरल उर्दू पद्यों में वर्णित

की गई है। साबिर के इस काव्य की एक बानगी देखें–

चूहे की अदा मूल को एक आँख न भाई।
शिवजी का जरा खौफ नहीं, उफ रे ढिठाई।
प्रणाम किया न आके न कुछ भेंट चढ़ाई।
खुद खाने लगा भेंट की गुस्ताख़ मिठाई।
सोचा कि चूहा बच के न जाएगा कहर से।
शिव ने तो मदन को फूँका था एक नजर से।।

यहाँ तक हमने स्वामी दयानन्द के विषय में लिखे गए उस उर्दू काव्य की चर्चा की है जो स्वतन्त्र ग्रन्थाकार प्रकाशित हुआ है। किन्तु ऐसे स्फुट काव्य का विचार करना तो और भी कठिन है जो यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है। श्री पन्नालाल पीयूष ने स्वसम्पादित 'दयानन्द गुण-गान' में उर्दू के अनेक कवियों की स्वामी दयानन्द विषयक कतिपय सुन्दर रचनाओं को संगृहीत किया है। उत्तर प्रदेश के एक भजनोदेशक इन्द्र वर्मा ने 'ऋषिजीवन' शीर्षक एक सुन्दर कविता लिखी थी जिसमें स्वामी जी के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं को किंचित विस्तार से वर्णित किया गया था। दयानन्द के महाप्रयाण का वर्णन कवि ने निम्न पंक्तियों में किया था।

महीना था कातिल दिवाली का दिन।
अभी साठ के पूर्व था सालोसिन।
कि होने लगी चार सू नौहे जात।
बुझा महरिशी का चिरागेहयात।।

उनकी एक अन्य गज़ल में स्वामी जी के आविर्भावकाल की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण मिलता है।
यथा–

धरम तैयार बैठा था यहाँ से रूठ जाने को
उसे स्वामी जी आये थे बसद मिन्नत मनाने को।
समझ रखा था हमने भंग को वैकुण्ठ की सीढ़ी
दरे कैलास की कुंजी चरस का दम लगाने को।।

आर्यमुसाफिर विद्यालय आगरा के संस्थापक पं. भोजदत्त शर्मा ने 'ऋषिजन्म' शीर्षक अपनी कविता में स्वामी दयानन्द के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लिखा है–

आलम में वेदमत का डंका बजा गया वो
तिश्ना लबों को गोया अमरित पिला गया वो।
अहसान उस ऋषि का मानें न क्यों मुसाफिर
दी जान तक भी जिसने आखिर हमारी खातिर।।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि त्रिलोकचन्द महरूम ने तो 'महर्षि दर्शन' शीर्षक एक बृहद् काव्य ही लिखा था। उनकी 'शिवरात्रि' शीर्षक कविता में मूलशंकर को सच्चे शिव का बोध कराने वाले उस अमर प्रसंग को चित्रित किया गया है। कवि कहता है–

रात आई है यह हरफां का उजाला लेकर
हर सितारों में निशां हुस्ने अजला का लेकर।
मुन्तजिर बैठे हैं इसरारे अजल के गोया
दीदए शौक में तूफाने तमन्ना लेकर।।

उर्दू के प्रसिद्ध पत्रकार तथा आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता व तपस्वी संन्यासी महात्मा आनन्दस्वामी (खुशहालचन्द खुर्सन्द) ने ईश्वर दर्शन की लालसा को हृदय में लेकर अपने घर बार से मुँह मोड़ने वाले दयानन्द का चित्र निम्न पंक्तियों में अत्यन्त मार्मिकता से अंकित किया है–

जुस्तजू में जो तेरी घर से दयानन्द चला
घर का आराम चला देश का आनन्द चला।
दोस्त अहबाब को माँ बाप को छोड़ा उसने
मुँह हर एक ऐश से तेरे लिए मोड़ा उसने।।

उर्दू के एक अन्य प्रसिद्ध कवि मुंशी सुखदेवप्रसाद 'बिस्मिल' इलाहाबादी ने स्वामी दयानन्द की प्रशंसा में लिखी एक गज़ल में स्वामी जी की महत्ता को पूरी बेबाकी के साथ अंकित किया है–

कोई माने न माने इससे कुछ होता नहीं
तेरा लोहा मानता है एक जमाना ऐ ऋषि।
बात यह बिस्मिल की सच है सब तेरे दम से हुआ
वेद का फिर खुल गया सब पर खजाना ऐ ऋषि।।

इगलास (अलीगढ़) के निवासी बनवारीलाल शादां की उर्दू कविताएँ अरबी-फारसी के दुरूह शब्दों से युक्त होने के कारण कठिन हैं। स्वामी दयानन्द पर लिखी गई अपनी एक गज़ल का आरम्भ वे इस प्रकार करते हैं–

मरहबा स्वामी दयानन्द क्या था और क्या कर दिया
मेहरे अनवर तेरा भारत जर्रा जर्रा कर दिया।
जान डाली जान देकर तूने बागे हिन्द में
शाखे ना उम्मेद को नख्ले तमन्ना कर दिया।

× × ×

माद्दे की माहियत और रूह की रूहानियत।
शाने कुदरत राजे वहदत आशकारा कर दिया।।

अपने घातक के प्रति करुणा दिखाने वाले के प्रति कवि कहता है–

तू मुजस्सिम रहम था कातिल पै भी लाया दया।
जिन्दगी का दान तूने दानदाता कर दिया।।

मुंशी प्यारेलाल आनन्द लखनवी ने 'ऋषि का पैगाम' शीर्षक अपनी उर्दू कविता में स्वामी जी के अन्तिम सन्देश को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है–

मायूस न हो दिल तोड़ न तू।
ऐ बन्दे भारतवासियों को दे यह पैगाम रब्बानी।
वेदों के सच्चे मायनों में तफसीर तुम्हें बतलाता हूँ।
है बात फायदे की सबके जो तुझ तक पहुँचाता हूँ।।

स्वामी दयानन्द की प्रशस्ति में स्फुट उर्दू कविताओं के लेखन में कुं. सुखलाल आर्यमुसाफिर का कृतित्व सर्वोच्च है। कुँवर साहब की भाषा की सरलता और भावों की मार्मिकता उनके काव्य को उत्कृष्टता के शिखर तक पहुँचा देती है। दयानन्द की वास्तविक महत्ता को पहचानने में संसारवासी असमर्थ रहे, उनके जीवनकाल में भी और उनके बाद में भी। इसी अभिप्राय को व्यक्त करता हुआ कवि कहता है–

बतायें तुम्हें हम दयानन्द क्या था ?
ऋषि था फरिश्ता था या देवता था।
रहा उम्रभर हकपरस्ती
वतन का था शैदा धरम पर फिदा था।

और अन्त में–

घटाओं में चमका था वह बर्क बनकर
मुजस्सिम तजल्ली था नूरे खुदा था।
गरज कोई माने न माने मुसाफिर
दयानन्द दर्देवतन की दया था।।

उनकी एक अन्य गज़ल में दयानन्द को भारत रूपी उपवन का माली कहा गया है—

> बागबां बन के दयानन्द न जो आ जाता।
> गुलशने हिन्द कड़ी धूप में मुरझा जाता।।

उपर्युक्त विवेचन में हमने अत्यन्त संक्षेप में उर्दू के उन कवियों तथा उनके उस काव्य का विवेचन किया है जिन्होंने स्वामी दयानन्द की प्रशंसा में स्फुट उर्दू काव्य की रचना की है। यह काव्य अत्यन्त प्रेरणादायी तथा भावोद्‌बोधक है।

□□